पृष्ठ

मानचित्रोंकी सूची

पश्चिमी यूरोप

प्रथम भाग

पश्चिमी यूरोप

अध्याय १

रोम साम्राज्यके अन्तिम दिन, क्रिस्तानधर्मका आगमन

पाँचवीं शताब्दीके यूरोपका नकशा यदि देखा जाय तो जिस प्रकारसे आज इंगलिस्तान, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि भिन्न-भिन्न देश देख पड़ते हैं वैसे उस समय नहीं मिलेंगे। उस समय यूरोपके दो हिस्से थे। डान्यूब और राइन नदियोंके उत्तर अशिष्ट जर्मन जातियाँ बसी थीं और दक्षिणमें रोमके साम्राज्यका प्रचण्ड प्रताप फैला हुआ था। बड़े बड़े प्रयत्न करनेपर भी रोमके सम्राट् राइन और डान्यूबके उत्तरवासी जर्मन जातियोंको न जीत सके। पर दक्षिणी और पश्चिमी यूरोप, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीकापर इनका अधिकार पूरी तरहपर था। जर्मन जातियोंको जब रोम सम्राट् न जीत सके, तो राइन और डान्यूब नदियोंके किनारे-किनारे अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिए उन्होंने दुर्ग बनवाकर द्वारपालोंको नियत किया। रोमके साम्राज्यमें बहुतसी जातियोंके लोग—मिस्री, अरबी, यहूदी, यूनानी, जर्मन, गाल (फ्रांस देशके प्राचीन निवासी), ब्रिटेन (आंग्ल देशके प्राचीन निवासी) सभी—थे और सब रोमका आधिपत्य मानते थे। इस बड़े साम्राज्यके किसी भी कोनेपर कोई क्यों न रहे, सब एक ही राजाको कर देते थे, एक ही कानूनका पालन करते थे और एक ही सेनाबलसे सुरक्षित थे। आप आश्चर्य करेंगे कि पाँच शताब्दियोंतक ऐसे भिन्न-भिन्न जातिके लोग क्योंकर एक ही राजाके आश्रयमें रह सके? क्या कारण था कि यह साम्राज्य एकाएक अन्य उत्तरीय जातियोंके आवेगसे गिर तो पड़ा, पर तो भी बहुत दिनोंतक अपने जीवनकी रक्षामें समर्थ रहा? किस शृङ्खलोंसे ये अनेक देशसमूह बद्ध थे!

सुनिये, उन कारणोंमेंसे पहला कारण यह था कि रोमका राज्य आप ही बड़ा सुसज्जित था। राजा अपने चक्षुसे प्रत्येक अंग और कार्यको देखता था। इस कारण समाजका व्यूहन पुष्ट रहता था। द्वितीय, राजा ईश्वरतुल्य समझा जाता था, और उसकी यथोचित पूजा और उपासना होती थी। तृतीय, एक ही प्रकारका कानून

अर्थात् रोमका कानून सब प्रदेशोंमें प्रचलित था। चतुर्थ, बड़ी-बड़ी सड़कोंके कारण एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें आना-जाना बराबर लगा रहता था और एक ही प्रकारके सिक्के और नाप-तौल होनेके कारण वाणिज्य-व्यवसाय आदिमें बड़ी सरलता होती थी। फिर रोमके विशेष निवासीगण अन्य प्रदेशोंमें जाकर बसते थे और राजाकी ओरसे शिक्षाके प्रचारका ऐसा प्रबन्ध था कि रोमकी विशेषताएँ चारों ओर फैलती थीं और रोमकी सभ्यताका आदर सब स्थानोंमें होता था।

१. इसे और भी स्पष्ट इस तरह देखिये। पहली बात राजा और राष्ट्रकी लीजिये। राजाके वचन ही कानून थे। जिस प्रकारका कानून वे बनाना चाहते थे वैसी ही आज्ञा देते थे और उस आज्ञाकी घोषणा चारों ओर की जाती थी। यदि नगरोंमें पंचायती संस्था होती थी तो भी राजा कर्मचारियों द्वारा सदा निरीक्षण किया करता था और केवल राज्यसम्बन्धी कार्योंकी चिन्ता ही न कर प्रजाके आमोद-प्रमोद आदिका भी प्रबन्ध किया करता था। दुष्टोंका दमन, न्यायका प्रचार, बाहरी और भीतरी शत्रुओंके आक्रमणको रोकना इत्यादि तो होता ही था, पर राजा यह भी देखता था कि अन्न आदि बेचनेवाले अपना कार्य ठीक प्रकारसे करते हैं या नहीं। किसी समय यह भी यत्न किया गया था कि जन्मसे जातिका निश्चय हो जाय, जिससे कि पुत्र पिताका ही पेशा करे और समाजके कार्यमें वर्णसंकर आदि किसी प्रकारका विरोध न आ सका हो, परन्तु उस समयकी जनताने इस नियमको अंगीकार नहीं किया। दरिद्रोंके लिए खेल-तमाशे किये जाते थे और कभी-कभी बिना मूल्य ही भोजनादिका वितरण भी किया जाता था। राजा प्रजारंजन और उनकी रक्षा दोनोंका ही यत्न किया करता था।

२. राजाका पूजन करना और उसको ईश्वरतुल्य मानना भी राजधर्मका ही एक अंश था। किसीका कुछ भी पन्थविशेष क्यों न हो, पर राजाका पूजन सबका कर्तव्य था। ईसामसीहके धर्म और रोमराष्ट्रसे जो झगड़ा चला, उसका कारण एक विशेष प्रकारसे यह भी था कि ईसाके अनुयायीगण कहते थे कि राजा और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं। ईसा कह गये हैं कि जो राजाका है, वह राजाको दो और जो ईश्वरका है उसे ईश्वरको दो, अर्थात् ये दोनों व्यक्ति अलग-अलग हैं। पूजा, उपासना ईश्वरकी है। इस कारण राजा इसका अधिकारी नहीं है। इस विषयमें आगे चलकर और कहा जायगा।

३. रोमराष्ट्रका संगठनके लिए प्रधान महत्त्व उसका कानून है। जितने प्रदेशोंमें रोमका राष्ट्र था उनमें एक ही कानून था। देशभेद होते हुए भी न्यायका सिद्धान्त एक था और जहाँ पूर्वकालमें पति-पितादिको अपने पत्नी-पुत्रादिपर पूरा अधिकार होता था। रोमके कानूनने सबका अधिकार निश्चित किया और प्रत्येक प्राणीका

खल बतलाया। रोमके न्यायने यह सिद्धान्त प्रचलित किया कि दोषी छूट जाय तो अच्छा है, पर निर्दोषीको दण्ड न मिलना चाहिये। किसी शहरमें यदि चोरी हो जाय और चोर का पता न लगे तो अच्छा है कि किसीको भी दण्ड न दिया जाय, पर शहरवालोंको डराकर चोरी स्वीकार करानेके लिए दस मनुष्योंको पकड़कर उनका दोष बिना साबित किये हुए उन्हें दण्ड देना उचित नहीं है। रोमके कानूनने प्राणी-मात्रको एक मानकर एक न्याय (व्यवहार-धर्म), एक राजा और एक राष्ट्रके आधिपत्य-स्थापनका यथोचित यत्न किया था।

४. राजा और प्रजाके लिए अच्छी सड़कोंका तथा एक नगर और प्रान्तसे दूसरे नगर और प्रान्तमें आने-जानेकी सुविधाओंका होना बड़ा आवश्यक है। इसीसे राजाको अपने राज्यके भिन्न-भिन्न अंगोंका समाचार मिल सकता है। उससे कर्मचारीगण एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आ-जा सकते हैं। राजाज्ञाओंकी घोषणा शीघ्रतासे हो सकती है। फिर प्रजाको वाणिज्यादिमें आने-जानेके लिए बड़ी सुविधा होती है और इस प्रकार राष्ट्रके धन, कला, कौशल, आदिकी उन्नति होती है। जैसे-जैसे वार्ता (समाचार), मनुष्य और व्यावसायिक पदार्थोंके गमनागमनकी सुविधा होती जाती है, वैसे ही वैसे संसारके भिन्न-भिन्न देश निकटस्थ होते जाते हैं। रोमके राष्ट्रमें बड़ी-बड़ी सड़कें थीं। उस समय यही बहुत था। आज जहाजोंके कारण, तार इत्यादिसे बड़े-बड़े राष्ट्र सँभाले जा सकते हैं। फिर रोमने एक ही प्रकारका सिक्का चलाया जिससे यात्रियों, पथिकों और व्यवसायियोंको धोखा और झंझट नहीं उठाना पड़ता था। फिर रोमके प्रवासीगण दूर-दूर जाकर बसते थे और रोमकी सभ्यता अपने साथ ले जाते थे। उनके बनाये हुए पुल, दुर्ग, नाटकघर, विलास-स्थानके खँडहर अब भी दूर-दूर देशोंमें मिलते हैं जिनसे सूचित होता है कि रोमका प्रभाव कितनी दूरतक फैल गया था।

प्रत्येक बड़े नगरमें राजाकी ओरसे शिक्षकगण नियुक्त होते थे जो रोमकी शिक्षा नगरवासियोंको देते थे, और इस शिक्षाकी एकताके कारण राष्ट्रभरमें एकता हो चली थी और लगातार चार शताब्दियोंतक यही विश्वास था कि रोमका साम्राज्य अटल और अचल है, और जो इसका विरोधी है, वह संसारका विरोधी और सभ्यताका शत्रु है।

यहाँ यह बात कही जा सकती है कि ऐसे सुसज्जित राज्यका, जहाँकी प्रजा इस प्रकार राजभक्त थी, अन्तमें अधःपतन क्यों हुआ? जो कारण जाने जा सकते हैं उनसे पता लगता है कि एक तो कर बहुत लगता था जिससे धनी लोग धीरे-धीरे दरिद्र हो चले। फिर, दासत्वकी प्रथा, जिससे अधीन जातियोंमें आत्मगौरव और राष्ट्राभिमान घटता गया, मूल जातिकी जनसंख्या कम होती गयी और बाहरी

जातियाँ आकर बसने लगीं, जिन्होंने काल बीतनेपर अपने भाई-बन्धुओंको अधिक-अधिक बुलाकर राष्ट्रके अन्दर बसाना आरम्भ कर दिया। आगे चलकर उन्हींमेंसे अधिकारी भी बन बैठे।

राजा और राजकर्मचारियोंके भरण और पोषणके लिए बहुत धनकी आवश्यकता पड़ती थी। इस कारण प्रजापर सैकड़ों प्रकारके कर लगाये जाते थे और सख्तीसे वसूल किये जाते थे। प्रत्येक नगरके कुछ धनिकोंपर कर एकत्र कर सरकारी कोषमें जमा करनेका भार दिया जाता था, और समयपर यदि नियत कर न मिल सका तो उसकी पूर्ति उन्हें अपने पाससे करनी पड़ती थी। इस भारसे लोग दबने लगे, क्योंकि केवल बड़े-बड़े महाजन ही इस बोझको सहन कर सकते थे। मध्यम वृत्तिके लोग दरिद्र और निराश होने लगे और इस कारण साम्राज्यका वैभव घटने लगा और उसकी नींव कमजोर होने लगी।

शक्ति और धनके कम होनेके साथ ही साथ कला-कौशल, लिखना-पढ़ना भी कम हुआ। पाँचवीं शताब्दीसे कई शताब्दियोंतक न ऐसे लेखक, न वक्ता, न गुणी ही पैदा हुए जैसे कि सम्राट् आगस्टसके समयको सुशोभित करते थे। अब न सिसरो रह गये, न टैसीटस और न इन सुप्रसिद्ध लेखकोंकी भाषाओंको समझनेवाले विद्वान् ही रह गये। यूरोपकी मानसिक उन्नतिकी समाप्ति हुई और चौदहवीं शताब्दीतक यूरोप अन्धकारमय था। जब पेट्रार्क, डाँटे आदिने जन्म लिया तब इस अन्धकारका परदा टूटा और पुनः जागृति हुई। इसके पश्चात् पुरातन ग्रीक और लैटिन भाषाओंके ग्रन्थोंको लोग पढ़ने और समझने लगे। आधुनिक युगकी यूरोपमें उत्पत्ति हुई।

पर हाँ, इससे यह न समझना चाहिये कि यूरोपने इन शताब्दियोंमें कुछ कर न दिखाया था। मान लिया कि कला-कौशल और लिखने-पढ़ने आदिकी अवनति हुई, परन्तु एक विशेष प्रकारकी धार्मिक जागृति हुई जिससे कि ईसामसीहका धर्म यूरोपमें फैला और उसने एक विशेष प्रकारकी सभ्यताका सम्पादन किया। रोमके पुरातन निवासी एक ईश्वरको न मानकर बहुतसे देवताओंको मानते थे। अब कुछ लोगोंका विचार यह होने लगा कि ईश्वर एक ही है। सज्जनोंको बड़े-बड़े नगरोंके पापोंसे घृणा भी होने लगी और यह इच्छा होने लगी कि स्वच्छ और धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसे समय जब एक ओरसे पुराने धर्ममें लोगोंको शंका होने लगी और उपर्युक्त बातोंसे लोग व्याकुल होने लगे उसी समय ईसामसीहके धर्मका प्रचार होने लगा। मनुष्योंके हृदयमें नयी आशाकी जागृति हुई। ईसामसीहने कहा कि प्रत्येक [illegible] मनुष्य सुखी हो सकता है और मृत्युके अनन्तर सुखका भागी

भी हो सकता है। जो इस धर्मकी शरण लेगा वह इहलोक और परलोक दोनोंमें सुखी रहेगा।

कुछ दार्शनिकोंका मत था कि पुरातन धर्ममें और इस धर्ममें कुछ अन्तर नहीं है। परन्तु यह मत दार्शनिकोंतक ही रह गया। जनता इन दोनोंमें अन्तर ही अन्तर देखती थी। सन्तपालके पत्रोंसे प्रतीत होता है कि क्रिस्तानी भक्तमंडलीमें आरम्भसे ही विचार हुआ कि एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है जिससे आत्मरक्षा और धर्मका प्रचार हो। इसी कारण विशप नामके कर्मचारीगण नियुक्त किये गये। इनसे निम्नतर कर्मचारी भी थे जो "डीकन", "सब-डीकन", "ऐकोलाइट", "एकजार्सिस्ट"के नामसे प्रसिद्ध थे। इस प्रकार 'क्लर्जी' (पुरोहितगण) और "लेटी" अर्थात् साधारण जनसमूहमें अन्तर किया गया। सं० ३६८ में प्रथम बार रोमके सम्राट् "वलेरियस"ने क्रिस्तानी धर्म और रोमके प्राचीन धर्मको बराबर स्थान दिया था। आगे चलकर रोमके प्रथम क्रिस्तान सम्राट् 'कांस्टेन्टाइन'ने क्रिस्तान धर्मका महत्त्व बढ़ाया। इस बीचमें क्रिस्तान धर्मका बाहरी रूप, अर्थात् 'कैथोलिक चर्च'का वही आकार हो गया था जो आजतक वर्तमान है। रोममें एक विशप था, जिसने आगे चलकर पोपके नामसे यूरोपके राजनीतिक इतिहासमें अपनी शक्ति दिखलायी। आगे चलकर पुरोहितोंकी मानमर्यादा इतनी बढ़ी कि वे कई प्रकारके करोंसे, जो साधारण मनुष्योंको देने पड़ते थे, बरी किये गये। धार्मिक धनी पुरुष बड़ी-बड़ी जायदादें भी इनको देने लगे। थोड़े ही दिनोंमें "कैथोलिक चर्च" बड़ा धनी हो गया और इसकी आय यूरोपके कई राष्ट्रोंकी आयसे भी बढ़ गयी। इसके अनन्तर क्लर्जीको कई प्रकारके मुकद्दमोंका फैसला करनेका अधिकार मिला और जब उनपर स्वयं अभियोग लगाया जाता था तो भी मामला उन्हींके न्यायालयोंमें जाता था, राजाके नहीं। इस प्रकार एक ही राष्ट्रमें दो राष्ट्र हुए। एक राजाका, दूसरा चर्चका। जर्मन जातियोंके आक्रमणसे राजाका राष्ट्र नष्ट हो गया। परन्तु चर्चका आधिपत्य बना रहा और जेताओंको भी इसने पराजित किया। राजकर्मचारी अपने-अपने स्थान छोड़ भागने लगे, परन्तु विशप अपने कर्तव्यपर दृढ़प्रतिज्ञ रहे। उन्हींके कारण पुरातन सभ्यता और सुराज्यके विचार प्रचलित रहे। जिस समय लिखना-पढ़ना बन्द हो रहा था उस समय लैटिन भाषाको उन्होंने ही जीवित रखा, क्योंकि धार्मिक कार्योंमें लैटिन भाषाकी बड़ी आवश्यकता पड़ती थी और चर्चके भिन्न-भिन्न कर्मचारियोंमें पत्रव्यवहार भी करना पड़ता था, इस कारण जो कुछ शिक्षा इस समय रह गयी, इन्हींके पास थी। यद्यपि रोमसाम्राज्यमें एक कानून, एक राज्य था, तिसपर भी जर्मन जातियोंके आनेके पहिले ही साम्राज्यके देशोंमें भिन्नता आने लगी थी। इस बड़े साम्राज्यको सुरक्षित रखनेके लिए कान्स्टेन्टाइनने सं० ३८७ में यूरोप और एशियाकी सीमापर

जातियाँ आकर बसने लगीं, जिन्होंने काल बीतनेपर अपने भाई-बन्धुओंको अधिक-अधिक बुलाकर राष्ट्रके अन्दर बसाना आरम्भ कर दिया। आगे चलकर उन्हींमेंसे अधिकारी भी बन बैठे।

राजा और राजकर्मचारियोंके भरण और पोषणके लिए बहुत धनकी आवश्यकता पड़ती थी। इस कारण प्रजापर सैकड़ों प्रकारके कर लगाये जाते थे और सख्तीसे वसूल किये जाते थे। प्रत्येक नगरके कुछ धनिकोंपर कर एकत्र कर सरकारी कोषमें जमा करनेका भार दिया जाता था, और समयपर यदि नियत कर न मिल सका तो उसकी पूर्ति उन्हें अपने पाससे करनी पड़ती थी। इस भारसे लोग दबने लगे, क्योंकि केवल बड़े-बड़े महाजन ही इस बोझको सहन कर सकते थे। मध्यम वृत्तिके लोग दरिद्र और निराश होने लगे और इस कारण साम्राज्यका वैभव घटने लगा और उसकी नींव कमजोर होने लगी।

शक्ति और धनके कम होनेके साथ ही साथ कला-कौशल, लिखना-पढ़ना भी कम हुआ। पाँचवीं शताब्दीसे कई शताब्दियोंतक न ऐसे लेखक, न वक्ता, न गुणी ही पैदा हुए जैसे कि सम्राट् आगस्टसके समयको सुशोभित करते थे। अब न सिसरो रह गये, न टैसीटस और न इन सुप्रसिद्ध लेखकोंकी भाषाओंको समझनेवाले विद्वान् ही रह गये। यूरोपकी मानसिक उन्नतिकी समाप्ति हुई और चौदहवीं शताब्दीतक यूरोप अन्धकारमय था। जब पेटार्क, डाँटे आदिने जन्म लिया तब इस अन्धकार-का परदा उठा और पुनः जागृति हुई। इसके पश्चात् पुरातन ग्रीक और लैटिन भाषाओंके लेखोंको लोग पढ़ने और समझने लगे। आधुनिक युगकी यूरोपमें उत्पत्ति हुई।

पर हाँ, इससे यह न समझना चाहिये कि यूरोपने इन शताब्दियोंमें कुछ कर न दिखाया था। मान लिया कि कला-कौशल और लिखने-पढ़ने आदिकी अवनति हुई, परन्तु एक विशेष प्रकारकी धार्मिक जागृति हुई जिससे कि ईसामसीहका धर्म यूरोप-में फैला और उसने एक विशेष प्रकारकी सभ्यताका सम्पादन किया। रोमके पुरातन निवासी एक ईश्वरको न मानकर बहुतसे देवताओंको मानते थे। अब कुछ लोगोंका विचार यह होने लगा कि ईश्वर एक ही है। सज्जनोंको बड़े-बड़े नगरोंके पापोंसे घृणा भी होने लगी और यह इच्छा होने लगी कि स्वच्छ और धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसे समय जब एक ओरसे पुराने धर्ममें लोगोंको शंका होने लगी और प्रचलित पापोंसे लोग पराङ्मुख होने लगे उसी समय ईसामसीहके धर्मका प्रचार होने लगा। मनुष्योंके हृदयमें नयी आशाकी जागृति हुई। ईसामसीहने कहा कि पापके बन्धनसे मनुष्य मुक्त हो सकता है और मृत्युके अनन्तर सुखका भागी

भी हो सकता है। जो इस धर्मकी शरण लेगा वह इहलोक और परलोक दोनोंमें सुखी रहेगा।

कुछ दार्शनिकोंका मत था कि पुरातन धर्ममें और इस धर्ममें कुछ अन्तर नहीं है। परन्तु यह मत दार्शनिकोंतक ही रह गया। जनता इन दोनोंमें अन्तर ही अन्तर देखती थी। सन्तपालके पत्रोंसे प्रतीत होता है कि क्रिस्तानी भक्तमंडलीमें आरम्भसे ही विचार हुआ कि एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है जिससे आत्मरक्षा और धर्मका प्रचार हो। इसी कारण विशप नामके कर्मचारीगण नियुक्त किये गये। इनसे निम्नतर कर्मचारी भी थे जो "डीकन", "सब-डीकन", "ऐकोलाइट", "एकजहा-रसिस्ट"के नामसे प्रसिद्ध थे। इस प्रकार 'क्लर्जी' (पुरोहितगण) और "लेटी" अर्थात् साधारण जनसमूहमें अन्तर किया गया। सं० ३६८ में प्रथम बार रोमके सम्राट् "वलेरियस"ने क्रिस्तानी धर्म और रोमके प्राचीन धर्मको बराबर स्थान दिया था। आगे चलकर रोमके प्रथम क्रिस्तान सम्राट् 'कांस्टेन्टाइन'ने क्रिस्तान धर्मका महत्त्व बढ़ाया। इस बीचमें क्रिस्तान धर्मका बाहरी रूप, अर्थात् 'कैथोलिक चर्च'का वही आकार हो गया था जो आजतक वर्तमान है। रोममें एक विशप था, जिसने आगे चलकर पोपके नामसे यूरोपके राजनीतिक इतिहासमें अपनी शक्ति दिखलायी। आगे चलकर पुरोहितोंकी मानमर्यादा इतनी बढ़ी कि वे कई प्रकारके करोंसे, जो साधारण मनुष्योंको देने पड़ते थे, बरी किये गये। धार्मिक धनी पुरुष बड़ी-बड़ी जायदादें भी इनको देने लगे। थोड़े ही दिनोंमें "कैथोलिक चर्च" बड़ा धनी हो गया और इसकी आय यूरोपके कई राष्ट्रोंकी आयसे भी बढ़ गयी। इसके अनन्तर क्लर्जीको कई प्रकारके मुकद्मोंका फैसला करनेका अधिकार मिला और जब उनपर स्वयं अभियोग लगाया जाता था तो भी मामला उन्हींके न्यायालयोंमें जाता था, राजाके नहीं। इस प्रकार एक ही राष्ट्रमें दो राष्ट्र हुए। एक राजाका, दूसरा चर्चका। जर्मन जातियोंके आक्रमणसे राजाका राष्ट्र नष्ट हो गया। परन्तु चर्चका आधिपत्य बना रहा और जेताओंको भी इसने पराजित किया। राजकर्मचारी अपने-अपने स्थान छोड़ भागने लगे, परन्तु विशप अपने कर्तव्यपर दृढ़प्रतिज्ञ रहे। उन्हींके कारण पुरातन सभ्यता और सुराज्यके विचार प्रचलित रहे। जिस समय लिखना-पढ़ना बन्द हो रहा था उस समय लैटिन भाषाको उन्होंने ही जीवित रखा, क्योंकि धार्मिक कार्योंमें लैटिन भाषाकी बड़ी आवश्यकता पड़ती थी और चर्चके भिन्न-भिन्न कर्मचारियोंमें पत्रव्यवहार भी करना पड़ता था, इस कारण जो कुछ शिक्षा इस समय रह गयी, इन्हींके पास थी। यद्यपि रोमसाम्राज्यमें एक कानून, एक राज्य था, तिसपर भी जर्मन जातियोंके आनेके पहिले ही साम्राज्यके देशोंमें भिन्नता आने लगी थी। इस बड़े साम्राज्यको सुरक्षित रखनेके लिए कान्स्टेन्टाइनने सं० ३८७ में यूरोप और एशियाकी सीमापर

कुस्तुन्तुनिया नामक शहर बसाया और यह द्वितीय रोमके नामसे प्रसिद्ध हुआ। रोम और कुस्तुन्तुनियामें जो भिन्न-भिन्न राजा राज्य करते थे, वे दोनों राष्ट्रकी एकता मानते थे और एक दूसरेके बनाये कानूनका पालन करते थे। सच बात तो यह है कि मध्ययुगके अन्ततक मनुष्योंके हृदयमें यह विचार उत्पन्न न हुआ कि सभ्य संसारभरमें एक राष्ट्र छोड़, दो राष्ट्र हो सकते हैं।

जर्मन जातियोंका आवेग इस पूर्वीय राजधानीपर बहुत हुआ, परन्तु कुस्तुन्तुनियाके सम्राट् अपना अधिकार किसी न किसी प्रकार जमाये ही रहे और जब सं० १५१० में राष्ट्रका नाश हुआ तो कुस्तुन्तुनिया जर्मनके हाथ में न जाकर तुर्कियोंके हाथमें गया। इस पूर्वीय राष्ट्रकी भाषा तथा सभ्यता यूनानी थी और इसपर पूर्वीय देशोंका बड़ा प्रभाव पड़ा था। इस कारण इसमें और पश्चिम यूरोपमें (जिसपर लैटिनका प्रभाव था) बड़ा अन्तर हो गया था। यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि पूर्वमें विद्या और कलाका ह्रास इतना नहीं हुआ जितना कि पश्चिममें।

पश्चिमीय रोमराष्ट्रके टूटनेके पश्चात् भी पूर्वीय रोमराष्ट्र सर्वांगपुष्ट रहा। कुस्तुन्तुनियाका विशाल नगर धनिक व्यापारियोंसे भरा रहा। बड़े-बड़े भवनों, सुन्दर बगीचों और स्वच्छ सड़कोंको देखकर पश्चिमी यात्री अचम्भित होते थे। जब क्रूसेड अर्थात् क्रिस्तान धर्म और इस्लामका भयंकर युद्ध हुआ तो पश्चिमने पूर्वसे बहुत कुछ सीखा और पूर्वका प्रभाव पश्चिमके हृदयपर अटल रूपसे स्थापित हुआ।

इस पुस्तकमें पूर्वीय यूरोपका इतिहास विस्तारपूर्वक नहीं दिया जा सका। इस विषयपर यदि बन पड़ा तो अलग पुस्तक लिखी जायगी। यहाँ इस सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना है।

अध्याय २

जर्मन जातियोंका प्रवेश, रोम साम्राज्यका अधःपतन

सं० ४३२ के पहले जिन जर्मन लोगोंने रोम साम्राज्यमें प्रवेश किया उन लोगोंके हृदयमें स्वकीय राज्यस्थापनके विचार नहीं थे, परन्तु वे लोग अपने मनका हौसला मिटाने, देशाटन करने अथवा सभ्य जातियोंके संसर्गके लिए आये थे। रोमके द्वारपालगण भी इनके आक्रमणको रोके रहते थे। परन्तु मध्यएशियासे हूण (मंगोल) जाति एकाएक यूरोपमें धावा करती पहुँची। इसने डान्यूब नदीके किनारे बसे हुए जर्मन लोगोंको भगाया। उन्होंने नदीके इस पार आ साम्राज्यकी शरण ली। यह जर्मन जाति इतिहासमें "गाथ" नामसे प्रसिद्ध है। थोड़े ही दिनोंमें रोमराज-कर्मचारियोंसे और इनसे झगड़ा हुआ और एड्रियानोपुलके युद्ध (सं० ४३५) में इन्होंने रोमसम्राट् वालेन्सको पराजित किया और मार डाला। जर्मन लोग साम्राज्य-की सीमाके पार तो आ ही गये थे। इस एड्रियानोपुलके युद्धसे उन्हें यह भी मालूम हुआ कि साम्राज्यकी सेना अजेय नहीं है। एड्रियानोपुलके युद्धसे ही साम्राज्यके अधःपतनका दिन गिनना चाहिये। इस युद्धके कुछ दिन बादतक गाथ लोग शान्ति-पूर्वक साम्राज्यमें रहते और रोमकी सेनामें नौकरी करते थे। कुछ दिनोंके अनन्तर आलेरिक नामी एक जर्मन सरदारने कर्मचारियोंके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर सेना एकत्र कर इटलीकी तरफ धावा मारा। सं० ४६८ में रोम इसके हाथ लगा। रोमकी प्रचलित सभ्यताका आलेरिकके हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने किसी प्रकारसे उस विशाल नगरीको हानि नहीं पहुँचायी। उसने अपने सैनिकोंको आज्ञा भी दी कि गिर्जोमें कोई लूट-पाट न मचायी जाय। राष्ट्रका व्यूहन करनेके पहले ही आलेरिकका देहान्त हो गया। उसके मरनेके पश्चात् गाथ जाति घूमती-घूमती गाल तथा स्पेन देशोंमें गयी। इनके कुछ ही पहले वाण्डाल जाति उत्तरसे आकर राइन नदीको पार कर गालमें घुस आयी और देशको नष्टभ्रष्ट करती हुई पेरिनीज पहाड़ोंको पार कर स्पेनमें पहुँच गयी। गाथ लोगोंने स्पेनमें पहुँच रोम साम्राज्यसे मैत्री कर वाण्डाल लोगोंसे लड़ाई करनी आरम्भ की। लड़ाईमें इनकी ऐसी जीत हुई कि सम्राट्‌ने प्रसन्न होकर दक्षिण गालमें इनको बसनेके लिए बड़ा स्थान दिया जहाँपर कि इन्होंने अपना राष्ट्र स्थापित किया। इसके बाद वान्डाल लोग स्पेनसे चलकर उत्तरीय अफ्रीकामें आये और वहाँपर भूमध्यसागरके किनारे-किनारे उन्होंने

अपना राज्य स्थापित किया। इनके चले जानेपर स्पेनमें गाथ लोगोंका राज्य फैला और यूरिक नामके राजाने पराक्रमसे स्पेनपर अपना राज्य स्थापित किया। सारांश यह कि पाँचवीं शताब्दीमें भिन्न-भिन्न प्रदेशोंको भिन्न-भिन्न प्रकारकी बाहरी जातियों-ने रोमके साम्राज्यके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भ्रमण तथा अधिकार स्थापित करना आरम्भ किया और साम्राज्य अपनी रक्षाके लिए असमर्थ हुआ। जर्मन जातियोंका पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिणतक अधिकार फैला। जर्मन जातियाँ तो फैल ही रही थीं, इसी बीच हूण जाति भी जो पहले गाथ लोगोंको निकालकर पूर्वीय यूरोपमें बसी थी, अब पश्चिमीय यूरोपकी तरफ चली! आटिला नामी सर्दारके साथ-साथ इन्होंने गालपर धावा मारा। परन्तु सं० ५०८ में रोमन और जर्मनने मिलकर शालौन्सकी लड़ाईमें इन्हें हराया। इस हारके बाद आटिला इटलीकी तरफ चला। उस समयके पोप लीओने उसके पास दूत भेजा कि "रोमपर मत चढ़ाई करो"। इसका प्रभाव उसके ऊपर पड़ा और वह रोममें नहीं आया। सालभरके भीतर ही भीतर वह मर गया और हूण लोगोंने फिर सिर न उठाया। इस सम्बन्धमें स्मरण रखनेकी यह बात है कि इटलीके उत्तरपूर्वीय शहरोंसे हूणोंके आक्रमणके कारण भागे हुए लोग ऐड्रियाटिक समुद्रके तटपर बसे और उन्होंने वेनिस नामके विशाल और सुन्दर शहरकी स्थापना की। सं० ५३४ पश्चिमीय रोम साम्राज्यके पतनका दिवस समझा जाता है। और मध्ययुगका आरम्भ इसी दिवससे माना जाता है। बात यह थी कि सं० ४५२ में थियोडोसियन नामी राजा रोम साम्राज्यके कार्यका भार अपने ही लड़कोंमें बाँट गया था। पश्चिमीय राजाओंने राज्यकार्य ठीक नहीं किया। अशिष्ट बाहरी जातियाँ भी उनके राज्यमें इधर-उधर घूम रही थीं और साम्राज्यकी जर्मन सेना मनमाने ढंगसे राज्यको बिगाड़ती और बनाती थी। सं० ५३३ में इन्होंने चाहा कि इटलीका एक तिहाई माल हमें मिल जाय। जब सम्राटने इसे स्वीकार नहीं किया तो उनके सर्दार ओडेसरने आखिरी पश्चिमीय सम्राट्को निकाल दिया।

ऐसा कर ओडेसरने पूर्वीय सम्राट्के पास राजदण्ड, छत्र आदि भेज दिया और उनसे आज्ञा माँगी कि "मुझे अपना प्रतिनिधि समझ राजकार्य करनेकी आज्ञा दीजिये"। इस घटनाका बड़ा महत्त्व है। रोम साम्राज्यकी धाक इतनी बँध गयी थी कि किसी नये राजाकी इतनी हिम्मत न होती थी कि केवल अपने पराक्रमसे ही रोम ऐसी राजधानीमें कोई नया राष्ट्र स्थापित कर सके। राज्यका स्थापन केवल बाहुबलसे नहीं होता। यह आवश्यक है कि प्रजा राजाको हृदयसे स्वीकार करे। यह सम्भव नहीं था कि इतनी शताब्दियोंसे सुबद्ध परम्परागत रोम साम्राज्यका स्वामी एक अनजान असभ्य जातिका सेनापति हो जाय और आत्माभिमानी सभ्य रोमन

लोग जो अपने राज्यको अनन्त समझते थे, उनको स्वामी मान लें। ओडेसर बुद्धिमान था। वह इन बातोंको जानता था। वह यह जानता था कि नामके प्रतिनिधि बने रहनेसे वास्तविक राज्य हमारे ही हाथमें रहेगा और यदि ऐसा बहाना न किया जायगा तो नव-स्थापित राज्य नष्ट हो जायगा। इन सबपर ध्यान देकर ओडेसरने पूर्वीय सम्राट्के पास अपने दूत भेजे और कहला भेजा कि—"आप तो स्वयं ऐसे प्रतापी और तेजस्वी हैं कि साम्राज्यके दो विभाग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। और आप ही एकाकी इस विशाल साम्राज्यपर अपना अधिकार रख सकते हैं। पर यदि आप चाहें तो मैं प्रतिनिधिस्वरूप होकर आपके राजकार्यकी पश्चिममें देख-रेख कर सकता हूँ।" ऐसा ही हुआ, परन्तु ओडेसरका यह भाग्य न था कि वह इटलीकी भूमिपर जर्मनोंका आधिपत्य जमावे। थोड़े ही दिन पीछे पूर्वीय गाथके सर्दार थियोडेरिकने ओडेसरको जीत लिया। थियोडेरिकने दस वर्षतक कुस्तुन्तुनियामें वास किया था और इस कारण रोम साम्राज्यके भीतरी हालसे परिचित था। जब वह अपने देशको लौटता तब वहींसे पूर्वीय साम्राज्यकी सीमापर बार-बार आक्रमण कर पूर्वीय सम्राटोंको तंग किया करता था। इस कारण जब उसने पश्चिम साम्राज्यपर धावा करना प्रारम्भ किया तो पूर्वीय सम्राट् बड़े प्रसन्न हुए कि एक बखेड़ा हटा। कई वर्षतक थियोडेरिक और ओडेसरमें झगड़ा होता रहा। और अन्तमें रावेना नगरमें इसने अपनी हार मानी। सं० ५५० में थियोडेरिकने अपने हाथोंसे उसकी हत्या की। थियोडेरिक भी ओडेसरके सदृश यह जानता था कि एकाएक अपने राष्ट्रको अपने ही नामसे स्थापित करना असम्भव है। इस कारण उसने सिक्कोंपर पूर्वीय सम्राट्की मूर्ति बनायी और हर प्रकारसे यत्न किया कि सम्राट् हमारे नये जर्मनराष्ट्रका समर्थन करें। यद्यपि वह सम्राट्का समर्थन चाहता था पर वह सम्राट्को किसी प्रकारसे हस्तक्षेप करने देना नहीं चाहता था। पुराने कानून और पुरानी संस्थाओंको इसने स्थायी ही रखा। पुराने कर्मचारीगण, पुरानी मान-मर्यादा, सब वैसी ही बनी रही और गाथ तथा रोमन दोनों एक ही न्यायालयमें भेजे जाने लगे। चारों ओर शान्ति फैली और विद्यावृद्धिका यत्न किया गया और सुन्दर भवनोंसे उसने अपनी राजधानी रावेनाको सुशोभित किया। सं० ५८३ में इसका देहान्त हुआ। इसने राष्ट्रको सुसज्जित और सुरक्षित किया था, परन्तु उसमें एक बड़ी न्यूनता यह रह गयी थी कि गाथ जाति यद्यपि क्रिस्तान धर्मकी अनुयायी अवश्य थी, किन्तु उस विशेष पन्थकी नहीं थी जिसके कि रोमके पूर्वनिवासी थे। इस कारण इन दोनों जातियोंमें परस्पर द्वेष और घृणा बनी रही। जब इटलीमें थियोडेरिक अपना राज्य फैला रहा था उस समय फ्रांक नामकी प्रौढ़ और बली जाति उत्तरसे उतर गालमें आ गयी। इस जातिने यूरोपके इतिहासमें बड़ा-बड़ा कार्य कर दिखाया

है और इसीने पुरातन गाल देशको आधुनिक फ्रांसका नाम दिया है। पूर्वीय गाथ इटलीमें बस रहे थे। फ्रांक जाति गालपर राज्य जमा रही थी और पश्चिमी गाथ तो पहलेसे ही आधुनिक स्पेनमें जमे थे और वाण्डाल जाति उत्तरीय आफ्रीकामें पहुँच गयी थी। इन जातियोंके भिन्न-भिन्न राजाओंमें विवाह सम्बन्ध आरम्भ हो गया था और यूरोपके इतिहासमें प्रथम बार अलग-अलग राष्ट्र स्थापित हुए जो स्वतन्त्रतासे अपना कार्य करते थे।

कुछ दिनोंतक तो ऐसा ज्ञात हुआ कि रोमन और अन्य जातियाँ एक दूसरेसे मिल जायँगी और साहित्य, कला-कौशल आदिकी उन्नति पूर्ववत् होती जायगी। पर ऐसा न हुआ। छठीं शताब्दीका बीथियस नामी लेखक जिसकी थियोडेरिकने हत्या की थी, इस युगका अन्तिम विद्वान् था। ३०० वर्षतक यूरोपमें ऐसा एक भी लेखक न हुआ जो अपने समयका विवरण छोड़ जाता। पुरातन विद्यापीठ कार्थेज, रोम, सिकन्द्रिया, मिलान इत्यादि सभी नष्ट हो गये। देवताओंके मन्दिरोंमें रखी पुस्तकें भी क्रिस्तानोंने नष्ट कर दीं। क्रिस्तानोंका यह विचार था कि असभ्य मूर्ति-पूजकोंके देवताओं तथा पुस्तकोंका साथ ही नाश होना चाहिये। पूर्वीय सम्राट्‌ने भी शिक्षकोंकी सहायता रोक दी और एथेन्सके विशाल विद्यालयको बन्द कर दिया। पूर्वीय साम्राज्यकी राजगद्दीपर सं० ५८४ में जस्टिनियन नामक प्रसिद्ध राजा बैठा। इसने विचार किया कि पुराने रोम साम्राज्य, इटली और अफ्रीकाके हिस्सोंको फिर जीत लें। सं० ५९१ में उत्तरीय अफ्रीकाके वाण्डालोंके राज्यको सेनापति बेलीसरियसने जीता, परन्तु इटलीके गाथ लोगोंको जीतना कठिन हुआ। पर सं० ६१० में बेलीसेरियसने इनको भी हराया और इटलीसे निकाल दिया। इटलीके पूर्ववासीगणोंने पूर्वीय साम्राज्यकी सेनाका स्वागत किया पर अपनी करनीके कारण उन्हें पीछे पश्चात्ताप करना पड़ा। गाथ राज्यका नाश हुआ। थोड़े दिन पीछे जस्टिनियनकी मृत्यु हुई और लम्बार्ड जातिने साम्राज्यपर धावा किया और उत्तरीय इटलीमें आ बसी। उसके बसनेका प्रदेश अबतक लम्बार्डीके नामसे प्रसिद्ध है। लम्बार्ड जाति हब्शियोंकी तरह लूटती-पाटती चारों ओर भ्रमण करती थी। वहाँके निवासी-गण अपना घर छोड़ समुद्रतटपर भागने लगे। पर वे लोग सारी इटली न जीत सके, क्योंकि दक्षिणमें अभी पूर्वीय अथवा यूनान साम्राज्यका आधिपत्य बना था। आगे चलकर लम्बार्ड जातिने अपना हब्शीपन छोड़ दिया और क्रिस्तान धर्म स्वीकार कर प्राचीन निवासियोंकी तरह रहने लगी। २०० वर्षतक इनका राज्य रहा।

अबतक जिन जर्मन जातियोंका वर्णन किया गया है उन सबोंने किसी स्थायी रूपमें अपना राज्य नहीं स्थापित किया। एकके पीछे एक आती रहीं और हारती रहीं। अब फ्रांक जातिपर ध्यान देना उचित है, क्योंकि सब जातियोंसे श्रेष्ठ,

बुद्धिमती और बलवती जाति यही थी। प्रथम बार जब फ्रांक लोगोंका नाम सुनाई पड़ता है तो ये राइन नदीके किनारे बसे हुए पाये जाते हैं। इन्होंने अपनी विजयके लिए एक विशेष ढंगका आविष्कार किया। उन लोगोंने अपने घरसे अपना सम्बन्ध तोड़कर दूर-दूर धावा करना उचित नहीं समझा। इनकी इच्छा यह थी कि जहाँ वे बसे थे वहाँसे ही धीरे-धीरे आगे बढ़ें। इससे उन्हें यह लाभ हुआ कि अन्य जातियोंकी भाँति अपने घरसे दूर बसे शत्रुओंके बीचमें वे एकाएक न फँसते थे और अपने घरसे संबन्ध बनाये रखनेके कारण अपनी ही जातिके और लोगोंसे बराबर सहायता पा सकते थे। पाँचवीं शताब्दीके अन्तमें इन लोगोंने आधुनिक बेलजियमकी भूमिपर अधिकार जमाया। सं० ५४३ में इनका राजा क्लोविस अपनी सेनाको रोमसाम्राज्यकी सीमाके पार ले गया और रोमन सेनापतिको पराजित किया। फिर इसने गालपर अपना अधिकार जमाया और वहाँसे पूर्वकी ओर बढ़ा। पूर्वमें अलेमानी नामकी जर्मन जाति बसी थी, उसको भी इसने जीता। एक बातसे यह युद्ध बड़े महत्वका है। संवत् ५५३ में जब अलेमानियोंसे क्लोविस युद्ध कर रहा था, उसने अपनी सेनाको पीछे हटते देखा। उसने उस समय प्रार्थना की कि "हे ईश्वर, यदि इस युद्धमें विजय पाऊँ तो मैं क्रिस्तान हो जाऊँगा"। विजयके बाद उसने अपने प्रणका पालन किया और क्रिस्तान धर्म स्वीकार किया। अन्य जर्मन जातियाँ भी क्रिस्तान थीं, किन्तु वे रोमके पन्थमें न थीं। क्लोविसने रोमका पन्थ स्वीकार किया और रोमके पोपसे तथा इससे राजनीतिक मैत्री हुई जिसका यूरोपके इतिहासपर बहुत प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे क्रिस्तान धर्मके नामसे इसने अपना आधिपत्य दक्षिणकी ओर बढ़ाया और शीघ्र ही गाल देशका पूरा राजा बन बैठा।

क्लोविसने पेरिसको अपनी राजधानी बनाया और संवत् ५६८ में इसकी मृत्यु हो गयी। बादमें इसके चारों लड़कोंने आपसमें राज्यका बँटवारा किया। १०० वर्षतक लगातार राजकुमारोंकी परस्पर लड़ाई ठनी रही, परन्तु राजाओंके इस प्रकार लड़ते रहनेपर भी फ्रान्स देशवासी उन्नति करते ही गये। कारण इसका यह था कि परस्पर ईर्ष्या होते हुए भी बाहर कोई इतना पराक्रमी राज्य न था जो इनपर धावा करता। सातवीं शताब्दीमें फ्रांसीसी राजाओंका अधिकार आधुनिक फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड और पश्चिमी जर्मनीतक फैला था। संवत् ६१२ तक आधुनिक बवेरिया भी इन्हींके राज्यके अन्तर्गत हो गया। कितने ही प्रान्त अब पश्चिमी यूरोपकी सभ्यता स्वीकार करने लगे जो रोम साम्राज्यका अधिकार नहीं मानते थे।

क्लोविसके देहान्तके ५० वर्ष पीछे इनके राज्यके तीन हिस्से हुए। पश्चिममें न्यूस्ट्रिया जिसका केन्द्र पेरिस था, इसमें प्रायः ऐसे ही फ्रांक लोग बसते थे जो रोमकी सभ्यता स्वीकार किये हुए थे। पूर्वमें अस्ट्रेसिया जिसके प्रधान नगर मेत्स

और एक्सलाशैपल थे, इस प्रान्तमें प्रायः जर्मन ही बसते थे। इन्हीं दो प्रान्तोंसे आगे चलकर फ्रेंच और जर्मन जाति उत्पन्न हुई है। इन दोनोंके बीचमें पुराना बरगण्डीका राज्य था। क्लोविसका वंश इतिहासमें मेरोविंजियन वंश कहा जाता है। फ्रान्सीसी राज्यमें सर्दारों तथा जमींदारोंके बढ़ते हुए प्रभावके कारण एक भयानक संकट आ खड़ा हुआ। जर्मन जातियोंके प्राचीन विवरणसे विदित होता है कि कुछ वंश ऐसे थे जिनके विशेष आदर-सत्कार तथा अधिकार थे। दिग्विजयके समय गुणी सेनानायक अपनी मान-मर्यादा बढ़ा सकता था। जिन सर्दारोंपर राजा अपने अधिकारके निमित्त भरोसा करता है उनकी मनोकामना तो ऊँची होती ही है, फिर जो कर्मचारी राजाके साथ ही रहते थे, उनकी मान-मर्यादाका तो कहना ही क्या। अस्तु, इनमेंसे जो मेजर डोमस (महलनवीस) था, वह प्रधान मन्त्री-सा था। संवत् ६९५ में मेरोविंजियन वंशके राजा डेगोबर्टका देहान्त हुआ। तदनन्तर जो मेरोविंजियन राजागण राज्यसिंहासनपर बैठे, वे राजकार्यसे सम्बन्ध नहीं रखते थे और इस कारण इन महलनवीसोंका ही राज्य होने लगा। अस्ट्रेसिया प्रदेशका महलनवीस पिपिन शार्लमेनका प्रपितामह था और इसने अपना अधिकार न्यूस्ट्रिया और बरगण्डीपर भी जमा लिया। इस प्रकार उसने अपने वंशका ऐश्वर्य खूब बढ़ाया।

संवत् ७७१ में उसकी मृत्युके उपरान्त उसके प्रसिद्ध बेटे चार्ल्स मार्टेल ("मुँगरा") पर इस विशाल राज्यको सुसज्जित करनेका भार पड़ा। (शत्रुओंकी भली-भाँति दुर्दशा करनेके कारण इसको मुँगराकी उपाधि मिली थी।)

इस स्थानपर आगेकी और घटनाएँ न लिखकर उचित है कि दो-एक प्रश्नोंको हल किया जाय। एक तो यह कि रोमन साम्राज्यमें अशिष्ट जर्मनोंके कितने प्रदेश हुए और दूसरे रोमकी सभ्यताका इनपर कितना प्रभाव पड़ा। प्रथम तो यह ठीक तौरसे निश्चय नहीं हो सकता कि कितने लोग आये। एड्रियानोपुलकी लड़ाईके बाद कहा जाता है कि लगभग ५ लाख पश्चिमी गाथ जातिके पुरुष तथा स्त्री-बच्चे सम्राज्यमें आ बसे। सबसे बड़ी संख्या इन्हींकी थी, और समय कुछ कम ही लोग आते थे और ये आकर रोम राज्यकी भूमिपर बसते थे। इनको कला-कौशल, साहित्य आदिसे कुछ प्रीति नहीं थी। केवल लड़ना-भिड़ना और शारीरिक सुख भोगना ही इनको अभीष्ट था। इस कारण रोमकी दी हुई सभ्यताका बहुत कुछ नाश हुआ। पर यह न समझना चाहिये कि यह सभ्यता पूरी तौरसे नष्ट-भ्रष्ट हो गयी, क्योंकि जब जर्मन जातियाँ स्थायी रूपसे बसीं, तब इन्हें भी कृषि करना, सड़क बनाना आदि हुनरोंकी आवश्यकता पड़ी, और इन्होंने प्राचीन नियमका ही पालन किया। पुनः परस्पर विवाह आदि होनेके कारण इनकी भाषा और रहन-सहनके ढंग भी रोमन लोगोंकेसे

हो गये। भिन्न-भिन्न देशोंमें एक ही लैटिन भाषा कई प्रकारसे बोली जाने लगी और इसीसे आधुनिक फ्रांसीसी, स्पेनिश, इटालियन और पुर्तगीज भाषाएँ निकली हैं। दोनों जातियोंमें इतनी एकता होने लगी कि फ्रांक राजागण रोमन लोगोंको अपने राज्यमें बड़े-बड़े पद देने लगे। केवल एक बातमें अन्तर बना रहा। वह यह कि प्रत्येक जाति अपने ही कानूनका पालन करती थी। रोमन लोग अपने प्राचीन प्रकारसे न्यायालयमें जाते थे और गवाही, जिरह और बहसकी रीति बनाये हुए थे। परन्तु जर्मन लोग अपनी ही रीतिका पालन करते थे। इनकी रीति जान लेनी चाहिये। इनके यहाँ तीन प्रकार थे—एक यह कि वादी या प्रतिवादी बहुतसे लोगोंको इकट्ठा करके लावे, जो इस बातकी गवाही दें कि अमुक मनुष्य इतना सच्चरित्र है कि वह झूठ नहीं बोल सकता और जो वह कहता है वह अवश्य ठीक होगा। इसे "कम्परगेशन" कहते थे। उनका विश्वास यह था कि जो झूठ बोलता है उसे ईश्वर दण्ड देगा। द्वितीय तरीका यह था कि वादी और प्रतिवादी मल्लयुद्ध करें। लोक-विश्वास यह था कि ईश्वर सच्चेको विजयी करेगा।

तीसरा तरीका "आर्डियल" का था। दोषीका हाथ जलते हुए पानीमें रखा जाता था और यदि तीन दिनतक उसके हाथपर गर्म पानीका कोई प्रभाव न पड़ता था तो वह निर्दोष समझा जाता था। कभी उसे गर्म-गर्म लोहेपर चलनेको कहा जाता था और यदि उसके पैरमें छाले नहीं पड़ते थे तो वह निर्दोष समझा जाता था, इत्यादि। यूरोपकी सभ्यतामें इन दो जातियोंके चिह्न वर्तमान हैं। रोमन जाति और जर्मन जातिके संयोगसे आधुनिक सभ्यताकी उत्पत्ति हुई है। एक सहस्र वर्ष-तक दोनोंमें संघर्ष होता रहा और उसके बाद १५ वीं और १६ वीं शताब्दीकी पुनर्जागृतिके समय इन हजार वर्षोंका अनुभव होते हुए जब प्राचीन रोम और ग्रीस-की भी शिक्षा ग्रहण की गयी उस समय आधुनिक यूरोपकी नींव डाली गयी।

अध्याय २

पोपका अभ्युदय

जिस समय फ्रांक जाति अपना अधिकार जमा रही थी और अपनी शक्तिको बढ़ा रही थी, ठीक उसी समय यूरोपमें एक नया राष्ट्र स्थापित हुआ। यह राष्ट्र फ्रांक राष्ट्रसे बढ़कर हुआ। यह क्रिस्तान धर्मका राष्ट्र था। ईसामसीहके बाद दो-तीन शताब्दियोंके भीतर क्रिस्तान धर्म चारों ओर फैल गया था और उसे लोग सर्वव्यापी, सर्वश्रेष्ठ मानने लगे थे। हम ऊपर कह चुके हैं कि किस प्रकारसे चर्चने (पुरोहित समुदायने) अपना अधिकार जमाया। चर्चके अधिकारका क्या कारण था और किस भाँति यह अटल बना रहा और जब कितने ही राष्ट्र उठते थे और गिरते थे, इसे समझना आवश्यक है। प्रथम तो उस समयकी जो कुछ आवश्यकताएँ थीं, उनको यह पूरा करता था। उस समय क्रिस्तान धर्मके फैलनेके कारण मृत्युसे लोग बड़ा भय करते थे और आगे क्या होगा इसकी चिन्ता सदा किया करते थे। यूरोपके पुराने धर्ममें परलोकका विचार इतना नहीं था, इस कारण वे लोग इसी लोकका विचार करते थे। परन्तु क्रिस्तान धर्ममें इस मतका खण्डन किया गया और इस लोकसे परलोक अधिक आवश्यक समझा गया। इस परलोकका विचार इतना फैला कि सहस्रों मनुष्य अपने कार्य-व्यवहारको छोड़कर केवल परलोकके ही विचारमें तत्पर हुए। जंगलों और पहाड़ोंकी खोहोंमें एकाकी रहने लगे, अपने शरीरको हर प्रकारकी पीड़ा देने लगे, व्रत, रतजगा आदि करने लगे। उनका विश्वास था कि इस प्रकार पापके बन्धनसे मोक्ष मिलेगा और परलोकमें आनन्द भोगेंगे। इस कारण क्रिस्तानोंके आदर्श योगी-संन्यासी हुए, न कि संसारके जीव। निदान जितनी नयी-पुरानी जातियाँ इस समय यूरोपमें बसी हुई थीं सबकी प्रवृत्ति इधर हो चली। उस समय पुरोहित लोग यही कहते थे कि "बिना क्रिस्तान धर्मकी शरण लिये मोक्षका कोई अन्य द्वार नहीं है। जब मनुष्य इस धर्ममें प्रवेश करता है तब वह पापोंसे मुक्त हो जाता है और जो इस धर्ममें सम्मिलित नहीं होते, उनको मरणके उपरान्त अनन्त कालके लिए भयंकर और असह्य वेदना सहनी पड़ती है। जो बपतिस्मा ले लेते हैं वे सीधे स्वर्ग जाते हैं। उनके किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं और यदि वे आगे चलकर कुछ पाप करें तो भी पुरोहितके सामने उसे स्वीकार कर लेनेसे वे उससे भी बरी हो जाते हैं।" इसके अतिरिक्त पुरोहित लोग

उस समय बड़ी बड़ी आश्चर्य-जनक घटनाओंको दिखलाकर लोगोंके विश्वासको दृढ़ करते थे। रोगीको नीरोग करना, दुःखीकी सहायता करना, इत्यादि तो वे करते ही थे, परन्तु इससे बढ़कर लोगोंको यह भी विश्वास था कि क्रिस्तान धर्मके पुरोहितगण बड़े-बड़े चमत्कार कर सकते हैं, जैसे मुर्दोंको जिला सकते हैं, अन्धेको आँखें दे सकते हैं, इत्यादि। वास्तवमें ऐसा न होनेपर भी लोगोंके हृदयमें यह विश्वास था कि अमुक-अमुक संन्यासी या योगी ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य कर सकते हैं। सारांश कि जैसे आजकल भारतमें साधु-संतोंकी मढ़ियोंपर लोग चिकित्साके अर्थ अथवा पुत्र-धनादिकी अभिलाषासे बड़े विश्वासके साथ जाते हैं वैसे ही उस समय यूरोपमें भी आते-जाते थे।

क्रिस्तानोंके धार्मिक विचारपर तो ध्यान देना आवश्यक है ही किन्तु धर्म और राष्ट्रका जो उस समय सम्बन्ध था उसपर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। जबतक रोमन राष्ट्र बना था तबतक साम्राज्य और चर्चकी बड़ी मैत्री थी। सम्राट्का भरोसा चर्चको करना पड़ता था, सम्राट्की ही बदौलत क्रिस्तान धर्म पनपा। जो कानून सम्राट् इनके लिए बनाता था उससे पुरोहितगण संतुष्ट रहते थे। पर जब साम्राज्यमें नयी जातियोंका संचार बहुत हुआ और रोमन राष्ट्र टुकड़े-टुकड़े होने लगा, उस समय चर्चके अधिष्ठाताओंने विचार किया कि अब अपनेको राष्ट्रसे पृथक करना चाहिये। चारों ओर अराजकता फैलने और चर्चके व्यूह-बद्ध होनेके कारण वे अपनेको अलग कर सके, और अलग होकर उन्होंने बहुत ऐसा शासनकार्य करना आरंभ किया जो अशान्त और अस्थिर होनेसे राष्ट्र स्वयं नहीं कर सकता था। संवत् ५५९ (सन् ५०२) में प्रथम बार रोममें चर्चकी एक सभाने बैठकर यह निश्चय किया कि ओडेसर सम्राट्का कोई एक विशेष आदेश तिरस्कृत और अमान्य है, क्योंकि किसी एक साधारण मनुष्यको धार्मिक विषयोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है। रोमके विशपने (जो पीछे पोप प्रथम गलेशियसके नामसे कहलाने लगे) धर्म और राष्ट्रका परस्परका सम्बन्ध यों बतलाया है कि ईश्वरने संसारमें अधिकार की दो तलवारें दी हैं। एक राजाके हाथमें, दूसरी पुरोहितके हाथमें, एक धर्मको, एक राष्ट्रको, एक ब्राह्मणको, एक क्षत्रिय को। इसमें ब्राह्मणका अधिकार क्षत्रियके अधिकारसे अधिक है क्योंकि ब्राह्मण ईश्वरके सम्मुख सम्राटोंके कार्योंका भी उत्तर-दाता है। उस समय साधारण तौरपर यही विश्वास था कि परलोक सम्बन्धी बातें इहलोककी चर्चासे अधिक बलवती हैं, इस कारण चर्चका यह कहना कि 'पुरोहितका अधिकार श्रेष्ठ है' सर्वमान्य समझा गया। जब धर्म और राष्ट्रमें झगड़ा हो, जब ब्राह्मण-क्षत्रियमें परस्पर वैमनस्य हो, तो ब्राह्मण-पुरोहितकी ही बात मानी जाय, क्षत्रिय राजाकी नहीं, यह आदेश भी सबको स्वीकृत हुआ।

अब दो विचार उत्पन्न हुए—एक तो यह कि चर्च अपनी ही मान-मर्यादाके लिए अपना कार्य स्वयं करे और उसमें राष्ट्र-कर्मचारियोंको किसी प्रकार हस्तक्षेप न करने दे, दूसरा यह कि राजकार्य भी वह स्वयं करने लगे। समय बड़ा कठिन था, चारों ओर स्थापित राष्ट्र टूट रहे थे और अशान्ति फैल रही थी। यदि ऐसे समय चर्चने कुछ ऐसे कार्योंके करनेका भार अपने ऊपर उठाया जो प्रायः राष्ट्रकी ओर से होते हैं, तो यह न समझना चाहिये कि इसने बलात् ये सब अधिकार राष्ट्रसे छीन लिये, पर सच पूछिये तो उस समय कोई राष्ट्र ही नहीं था। रोम साम्राज्यके भ्रष्ट होनेपर कई शताब्दियोंतक कोइ चिरस्थायी राष्ट्र नहीं स्थापित हुआ जो शान्ति रख सके, न्यायालय स्थापित करे एवं शिक्षा इत्यादिका प्रबन्ध करे। इन सब कार्योंको चर्चने करना आरम्भ किया। यूरोपकी सामाजिक और राजनीतिक दशा इस समय ऐसी थी कि केवल बाहुबलसे लोग आपसके झगड़े तय करते थे और प्रायः लोग लड़ना-भिड़ना ही अपना कर्तव्य समझते थे। ऐसे समय यूरोपका एक मात्र आश्रय चर्च था, जिसने धर्मके नामसे कुछ मान-मर्यादा बना रखी और समाजको जीवित रखा। लोग चर्चका सम्मान करते थे इस कारण कुछ भय दिला करके, कुछ दण्ड दे करके, इहलोक-परलोक दोनोंके नामसे, किसी किसी तरहसे पुरोहित-गण लोगोंको परस्पर लड़नेसे रोकते थे, एक दूसरेकी प्रतिज्ञाका पालन कराते थे, मृत व्यक्तियोंकी अन्तिम इच्छाओंका आदर कराते थे, विवाह आदिके भारसे लोगोंको नीतिबद्ध रखते थे, विधवा और अनाथकी रक्षा करते थे, आतुर जनोंको भोजन-वस्त्र देते थे, जब सब लोग शिक्षाहीन हो रहे थे, ये लोग शिक्षाका प्रचार करते थे। ऐसी अवस्थामें क्या यह समझना कठिन है कि किस प्रकार चर्चने अपने अधिकारको यूरोपमें जमाया और सर्वसाधारणका हृदय हरण किया और बहुतसे ऐसे कार्योंको उठाया जो साधारणतः केवल राज-कर्मचारी ही करते हैं।

इस तरह क्रिस्तान धर्म और क्रिस्तान पुरोहितोंका अधिकार फैला। अब देखना यह है कि पोपका अभ्युदय किस प्रकार हुआ और किस प्रकार पश्चिमी चर्चका अनन्य प्रभुत्व अपने हाथमें रखकर ये बड़े-बड़े राजाओं और महाराजाओंसे अधिक प्रतापी हुए और उनसे कितनी लड़ाइयाँ इन्होंने लड़ीं।

ईसामसीह प्रान्तीय धर्माधिष्ठाता बिशपको बना गये थे। इस प्रबन्धके अनुसार रोमके बिशपका अन्य बिशपोंसे अधिक मान नहीं था, पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि आरम्भसे ही रोमके बिशपका सम्मान अधिक था और क्रिस्तान इनको सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य समझते थे। पश्चिमीय देशोंमें यही एक धर्मपीठ था जो ईसा-मसीहके प्रथम उपासकों द्वारा स्थापित किया गया था।

लोगोंका यह विश्वास है कि सन्त पीटर रोमके प्रथम बिशप थे, किन्तु सच

पूछिये तो यह निश्चय भी नहीं है कि पीटर कभी रोममें गये थे। पर लोगोंका विश्वास इस सम्बन्धमें ऐसा दृढ़ था कि इसका प्रभाव यूरोपके इतिहासपर बहुत पड़ा है। कारण इसका यह है कि ईसामसीहके भक्तोंमें पीटरका स्थान श्रेष्ठ था और नयी इंजीलमें ईसामसीहने स्वयं कहा है कि—"हे पीटर! सुनो, तुम पीटर हो, तुम वह चट्टान हो, तुम वह अचल पर्वत हो जिसपर हम अपने चर्चकी स्थापना करेंगे। नरकका भय इस चर्चको भयभीत नहीं कर सकता। मैं तुम्हें स्वर्गकी कुंजी देता हूँ। तुम जिन्हें संसारमें मुक्त करोगे वे स्वर्गमें भी मुक्त रहेंगे, तुम जिन्हें इहलोकमें बन्धनमें डालोगे वे परलोकमें भी बन्दी ही रहेंगे।" जब लोगोंका ऐसा ही विश्वास था कि पीटरके बारेमें स्वयं ईसामसीहका यह वचन है और जब पीटर रोमका प्रथम बिशप था तो रोमका विशेष आदर होना चाहिये ही। पश्चिममें जितने चर्च स्थापित हुए, सबका जनक रोमका चर्च समझा जाता था। रोमके वचन सबसे पवित्र थे, क्योंकि रोमके चर्चकी स्थापना स्वयं ईसामसीहके उपासकोंने की है। यदि किसी बातमें मतभेद होता था तो व्यवस्थाके लिए लोग रोम जाते थे। फिर रोम नगरी भी बड़े भारी साम्राज्यकी राजधानी हो चुकी थी, इस कारण उसका विशेष गौरव था। अन्य-अन्य स्थानोंके बिशप विरोध करते हुए भी रोमके बिशपका अधिकार मानने लगे।

प्रथम चार शताब्दियोंमें रोमके बिशपोंका कुछ ठीक हाल नहीं ज्ञात होता। उन दिनोंमें रोमके सम्राट्का कोप क्रिस्तान धर्मपर था और क्रिस्तानोंको हर प्रकारसे पीड़ा दी जाती थी। इस कारण बिशपकी कोई गिनती न थी और पीछे जो वे लोग इतना राजनीतिक अधिकार दिखलाने लगे उसका लेशमात्र भी उस समय न था। पाँचवीं और छठीं शताब्दियोंका हाल कुछ अधिक मालूम पड़ता है, क्योंकि उन्हीं दिनोंमें क्रिस्तान धर्मके धुरन्धर पण्डितोंने अपने धर्मका अर्थ बतलाया और लिखा। इससे अबतक ये क्रिस्तान धर्मके पिता-स्वरूप माने जाते हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ अथानीसीयस था। इसने सच्चे चर्चका आचार-विचार आदि निर्णय किया और एरियन पन्थके विरुद्ध बहुत कुछ लिखा-पढ़ा। फिर बासिल नामके पण्डितने चतुर्थाश्रम अथवा यती जीवनके लिए लोगोंको उत्साहित किया। अन्य पण्डितोंके नाम अम्ब्रोस, जेरोन थे और सबसे बड़ा पण्डित आगस्टाइन (संवत् ४११—४८७ या सन् ३५४—४३०) था जिसके लेख अबतक प्रमाण माने जाते हैं। ध्यान रखना चाहिये कि इन लेखकोंने केवल क्रिस्तान धर्मकी शिक्षापर ही विचार किया, चर्चके व्यूहनसे इनका कोई सम्बन्ध न था। परन्तु शीघ्र ही चर्चने राजनीतिक रूप भी धारण किया। इसका मुख्य कारण यह था कि रोमकी गद्दीपर लियो नामक बिशप संवत् ४९७—५१८ (सन् ४४४—४६१) तक बैठे थे। इनके ही समयसे

पोपके अभ्युदयका इतिहास आरम्भ होता है । इनके अदेशानुसार तृतीय वैलेन्टीनियन सम्राट्ने (संवत् ५०२, सन् ४४५ में) यह आज्ञा दी कि रोमका विशप सर्वोपरि समझा जाय और पश्चिमीय यूरोपके जितने विशपगण हैं सब रोमके विशपके बनाये हुए कानूनका अनुसरण करें । यदि कोई विशप इनकी आज्ञाका पालन न करे तो राजकर्मचारीगण बलात् उससे पालन करावें । ६ वर्ष पीछे चायलिसडन स्थानमें धार्मिक सभाने निश्चय किया कि कुस्तुन्तुनियाके विशपका भी रोमके विशपके समान अधिकार समझा जाय और संसारके क्रिस्तान धर्मपर इन दोनों विशपोंका समान अधिकार हो, परन्तु इस बातको पश्चिमी धर्माध्यक्षों ने नहीं स्वीकार किया ।

पूर्वीय और पश्चिमीय धार्मिक विचारोंमें बड़ा अन्तर होने लगा और ग्रीक चर्चके अनुयायी पूर्वमें कुस्तुन्तुनियाँके विशपको सर्वश्रेष्ठ बनाने लगे और लैटिन चर्चके अनुयायी रोम चर्चको सर्वश्रेष्ठ समझते थे । पाठकोंको स्मरण होगा कि थोड़े ही दिन पीछे ओडेसरने पश्चिमीय सम्राटोंका नाश किया । तत्पश्चात् थियोडेरिक अपने पूर्वीय गाथ लोगोंके साथ आया । तदनन्तर लम्बर्ड लोगोंका धावा हुआ । ऐसे भयंकर राष्ट्र विप्लवके समय रोमके विशपको जो अब पोप कहलाने लगे थे, लोग अपना नायक मानते थे । सम्राट् तो बड़ी दूर कुस्तुन्तुनियामें रहते थे और उनके कर्मचारियोंने मध्य इटलीमें किसी न किसी प्रकार सम्राट्का नाममात्र जीवित रखा था । वे पोपकी सहायता करने और उनसे प्रसन्नतापूर्वक परामर्श लेने लगे । रोम नगरीमें कर्मचारियोंके निर्वाचनमें पोप प्रकट रूपसे हस्तक्षेप करते थे और निर्णय करते थे कि किस प्रकार धन व्यय किया जाय । इसके अतिरिक्त जो धार्मिक लोगोंने बड़ी-बड़ी जागीरें रोमके धर्मपीठको दी थीं उनका प्रबन्ध और रक्षा करना भी पोपकेही हाथमें था । इस कारण जर्मन जातियोंके पास दूत भेजना और उनके विरुद्ध लड़नेकी तैयारी करना आदि सब काम पोप ही करने लगे ।

संवत् ६४७ से ६६१ तक रोमके धर्मपीठपर महान् ग्रेगरी बैठे । आप एक धनी पिताके पुत्र थे और सम्राट्ने आपको प्रीफेक्टका उच्च स्थान दिया । एकाएक आपके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इतने धन तथा इतने अधिकारसे हम अभिमानी हो जायँगे । अपनी धार्मिक माताके प्रभावसे और बड़ी-बड़ी धार्मिक पुस्तकोंके पढ़नेसे आपने अपना सब धन धर्मशालाओंके बनवानेमें व्यय किया । एक धर्मशाला आपकेही घरमें थी और इसमें रहकर अपने शरीरको आपने व्रतादि कष्टों द्वारा इतना शिथिल कर दिया कि आपका स्वास्थ्य सर्वदाके लिए बिगड़ गया । योगीके जीवनके जोशमें आपकी मृत्यु अवश्य हो गयी होती यदि आपको

ोपने* एक आवश्यक कार्यसे कुस्तुन्तुनिया न भेजा होता। वहाँपर आपने अपनी ेशाल बुद्धि और चतुरताका प्रथम बार नमूना दिखलाया।

ग्रेगरी संवत् ६४७ (सन् ५९०) में पोप बनाया गया। प्राचीन रोमका बाह्य ूप इस समयतक बहुत कुछ बदल गया था। देवताओंके मन्दिरोंके स्थानमें गेरजाघर बन गये थे। पीटर और पाल सन्तोंकी समाधियाँ धर्मके केन्द्र और ात्राओंके स्थान समझी जाने लगीं। चारों ओरसे लोग यहाँ यात्राके विचारसे आने लगे। जब ग्रेगरीने अपना कार्य आरम्भ किया था उसी समय नगरीमें महामारी फैली ुई थी। उस समयके विचारके अनुसार शहरमेंसे उसने एक जुलूस निकाला क्योंकि ोगोंको विश्वास था कि इससे ईश्वर अपने कोपको हटा लेगा। लोगोंका यह विश्वास था कि जिस समय शहरमें यह जुलूस निकल रहा था, उस समय ईश्वरके माइकल नामके दूत अपने खड्गको म्यानमें रखते हुए देख पड़े, जिससे यह अनुमान किया गया कि ईश्वरका कोप शान्त हुआ। ग्रेगरी बड़ा प्रसिद्ध पोप हुआ। एक तो यह बड़ा भारी लेखक था, इसकी पुस्तकें इसी कारण पढ़ी और मानी जाती हैं। दूसरे यह निपुण नीतिज्ञ था। इसके जो लिखित पत्र अब भी मिलते हैं, उनसे प्रकट होता है कि यह कितना दूरदर्शी था और किस प्रकारसे यह यूरोपमें पोपको सर्वश्रेष्ठ राजा बनाना चाहता था। ईश्वरके दासानुदासकी उपाधि इसने प्राप्त की। पोप अब भी इसी उपाधिको ग्रहण करते हैं। यद्यपि यह उपाधि इतनी छोटी थी तथापि इसका प्रभाव और प्रकाश बहुत बड़ा था। इस समयसे लेकर संवत् १९२७ (सन् १८७०) तक रोम नगरीका राज्य पोप ही करते थे। मध्य इटलीसे लम्बर्ड लोगोंको दूर रखनेका भार आपके ही ऊपर पड़ा।

बहुतसे साधारण शासनकार्य आप करते थे। इस प्रकार परलोकका ही नहीं, किन्तु इहलोकका भी प्रबंध आपके हाथमें आया। इसके अतिरिक्त इटलीकी सीमाके पार आप सदा कुस्तुन्तुनियाके सम्राट् और अस्ट्रेसिया, न्यूस्ट्रिया, बर्गण्डी आदिके राजाओंसे सदा सम्बन्ध रखते थे। आपको इसकी सदा चिन्ता रहती थी कि सच्चरित्र पुरोहित ही बिशप बनाये जायँ। धर्म-शास्त्र आदिका निरीक्षण भी आप भली प्रकार

* पोप शब्द पितासे निकला है। प्रारम्भमें यह नाम सभी पुरोहित बिशपोंका था। परन्तु छठीं शताब्दीके प्रारम्भमें रोमका ही बिशप इस नामसे पुकारा जाने लगा, यद्यपि अन्य लोगोंको यह उपाधि देनेमें कुछ रोक-टोक न थी। सं० ११४२ (सन् १०८५) में सप्तम ग्रेगरीने प्रथम बार यही निश्चित [illegible]

करते थे परन्तु इतिहासमें आप विशेषकर इस कारण प्रसिद्ध हैं कि देश-देशांतरमें क्रिस्तान धर्म फैलानेके लिए उपदेशकोंको आपने ही भेजा और आधुनिक इंग्लिस्तान, जर्मनी, फ्रांस आदि देशोंको क्रिस्तान धर्ममें सम्मिलित करना और इनपर पोपका अधिकार जमाना आपके ही परिश्रमका फल है। आप स्वयं संन्यासी थे और इसीके बलसे आपने इतनी सफलता प्राप्त की। संन्यासियोंकी संस्था किस प्रकारसे उत्पन्न हुई और उनमें क्या विशेषता थी इसकी चर्चा आगे की जायगी।

अध्याय ४

संन्यासियोंकी संस्था तथा धर्मका उपदेश

मध्य युगमें संन्यासियोंके प्रताप और प्रभावका पूरी तौरसे वर्णन करना असम्भव है। बेनेडिक्ट, फ्रांसिस, डोमनिक आदिसे प्रचारित पंथोंके इतिहासमें कितने ही प्रतापी और बुद्धिमान आनुयायियोंका नाम मिलता है। बड़े-बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक, इतिहास-वेत्ता, नीतिज्ञ, इनमें पाये जाते हैं। इस युग के बड़े-बड़े नेता संन्यासी ही हुए हैं। बीड, बानीफेस, आवेलार्ड, टामस, ऐक्वीनास रोजर, बेकन, सावोनारोला, लूथर, एरास्मस आदि सब संन्यासी ही थे। हर प्रकार और हर वृत्तिके लोग संन्यास आश्रमकी ओर झुकते थे। ऐसे समय जब संसारमें सुख तथा शांति नहीं थी, जब चारों ओर चोरों और डाकुओंका भय रहता था, उस समय कितने ही लोगोंने घबरा-कर और विरक्त होकर इस आश्रमकी शरण ली। ये लोग झुण्डके झुण्ड धर्मशाला-ओंमें जाकर निवास करते थे। धर्मशाला संन्यासियोंके ही लिए ही बनी थी। यहाँ केवल ऐसे ही लोग नहीं पाये जाते थे जो मोक्षमात्रकी अभिलाषासे संसारको छोड़ते थे, पर ऐसे लोग भी पाये जाते थे जो पठन-पाठनकी अभिलाषा तथा अनुरागसे वहाँ जाते थे। देखनेमें आया है कि प्रायः ऐसे लोग क्षत्रियवृत्ति अथवा सिपाहीका जीवन ग्रहण करना नहीं पसन्द करते और अराजकताके समय भयपूर्ण संसारमें रहना नहीं चाहते। संन्यासीका जीवन ऐसे समय भय-रहित, शांतिदायक और पवित्र था। अशिष्ट और निर्दय सैनिक भी संन्यासीके जान-माल, वस्त्र तथा भोजनादिपर आक्रमण नहीं करते थे क्योंकि उनके मनमें भी ऐसा विचार था कि संन्यासियोंपर ईश्वरकी विशेष कृपा रहती है। इसके अतिरिक्त ऐसे बहुतसे लोग धर्मशालाओंका आश्रय लेते थे जो किसी कारण दुःखित थे, मान-हीन हो गये थे, अथवा आलसी होनेसे अपनी जीविकाके लिए धन उपार्जन नहीं कर सकते थे और धर्मशालाओंमें भोजनादिकी लालसासे चले जाते थे। ऐसे भिन्न-भिन्न विचारोंसे प्रेरित भिन्न भिन्न प्रकारके स्त्री-पुरुषोंसे धर्मशालाएँ भरी रहती थीं। राजा और जमीन्दार अपनी आत्माकी शांतिके लिए बड़ी-बड़ी जागीरें धर्मशालाओंको प्रदान कर देते थे जहाँ कि संन्यासी लोग बस सकते थे। पहाड़ों और जंगलोंमें ऐसी बहुतसी गुफाएँ और कुटियाँ थी, जहाँ

संन्यासी लोग इच्छानुसार एकाकी रह सकते थे। प्रथम बार पाँचवीं शताब्दीमें मिश्र देशमें क्रिस्तान संन्यासियोंका पंथ खोला गया। सन्त जेरोमने संन्यास आश्रमकी महिमा गायी। पश्चिमी यूरोपमें अबतक इसका नाम नहीं सुना गया था। छठीं शताब्दीमें पश्चिमी यूरोपमें इतनी धर्मशालाएँ बनने लगीं कि इनके लिए कुछ नियम बनाना आवश्यक हो गया। जब बहुतसे लोग संसारकी साधारण वृत्तियोंको छोड़कर संन्यासाश्रममें ही जीवन व्यतीत करना चाहते थे तो उनके लिए कोई विशेष नियम बनाना आवश्यक था। सांसारिक व्यवहारकी दृष्टिसे अन्य पूर्वी देशोंमें संन्यासियोंके लिए जो नियमादि थे वे पश्चिमी देशोंके लिए अनुकूल न थे। पश्चिमी लोगोंकी प्रकृति ही भिन्न थी। इस कारण सन्त बेनेडिक्टने संवत् ५८३ (सन् ५२६) में दक्षिण इटलीके माण्टेकैसिनो नामक धर्मशालाके लिए एक नियमावली बनायी। आप स्वयं इस धर्मशालाके अध्यक्ष थे। ये नियम संन्यासाश्रमके लिए इतने उपयुक्त थे कि प्रायः सभी मठोंने इनको ग्रहण कर लिया और पश्चिमीय संन्यासाश्रमके ये ही नियम माने जाने लगे। उनका संक्षिप्त अभिप्राय यह है—सब लोग संन्यासाश्रमके अधिकारी नहीं हैं और जो इस आश्रमको ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें पहले कुछ दिनोंतक विशेष प्रकारकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। तत्पश्चात् उनकी दीक्षा हो सकती है और तब वे संन्यासाश्रमका संकल्प ले सकते हैं। इसके बाद प्रत्येक धर्मशालाके सब संन्यासी मिलकर अपने अध्यक्षों (एबट) का निर्वाचन करेंगे और केवल धर्मविपरीत आज्ञाओंको छोड़ उनकी अन्य सब आज्ञाओंका सदा पालन करेंगे। योग और उपासनाके अतिरिक्त संन्यासियोंको शारीरिक श्रम, खेती आदि भी करना चाहिये। उनको पठन-पाठनका काम भी करना चाहिये। जो मठोंके बाहर जाकर काम करनेमें असक्त थे उनको पुस्तकोंकी नकल आदि करनेका हलका भार दिया जाता था। संन्यासी किसी प्रकारका धन अपने नाम न ले सकता था और न रख सकता था। उसे सर्वथा भोगरहित जीवन व्यतीत करनेका प्रण करना पड़ता था। जो कुछ उसके पास था वह सब धर्मशालाका ही समझा जाता था। इसके अतिरिक्त उसे ब्रह्मचर्यका संकल्प ग्रहण करना पड़ता था और वह विवाह नहीं कर सकता था। गृहस्थाश्रमसे संन्यासाश्रम केवल अधिक पुनीत ही नहीं समझा जाता था, बल्कि सच बात तो यह थी कि यदि संन्यासी विवाहित होते तो इस प्रकारकी संस्थाका स्थापन ही असम्भव हो जाता। संन्यासियोंको साधारणतः मानवी जीवनका अनुसरण ही करना पड़ता था और असह्य शारीरिक कष्ट, व्रत आदि से अपने शरीरको शिथिल करनेकी मनाही थी।

इन संन्यासियोंका प्रभाव इस बातसे बहुत पड़ा कि उन्होंने पुरानी, लैटिन भाषाकी पुस्तकोंको जीवित रखा। लगभग सोलह सहस्र लेखक इस कार्यमें लगे

जातिके स्त्री-पुरुष पाये जाते हैं और बहुतेरे तो कदाचित् अपने ही स्थानपर रह गये और इन्होंने साक्सन आँग्ल सर्दारोंका अधिकार स्वीकार किया। इन सर्दारोंने छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये। जब महान् ग्रेगरी रोममें पोप हुआ उस समय इनके सात या आठ राज्य वर्तमान थे।

कहावत है कि जब ग्रेगरी संन्यासी-वेशमें एक दिन भ्रमण कर रहा था तो रोमके बाजारमें आँग्ल देशके नवयुवक दासोंको बिकते देखकर उसका हृदय बड़ा आकर्षित हुआ और जब उसने सुना कि ये लोग आँग्ल देशसे आये हुए हैं जहाँ क्रिस्तान धर्मका संचार नहीं हुआ है, तो इसने संकल्प किया कि, "यदि अवसर मिलेगा तो मैं स्वयं वहाँ जाकर उपदेश दूँगा।" जब वह पोप हुआ तो चालीस संन्यासियोंको इसने आँग्ल देशमें उपदेश देनेके हेतु भेजा। इनका नायक आगस्टीन था, जिसको इसने इंगलिस्तानके बिशपकी उपाधि पहलेसे ही दे दी थी। केण्टके राजाकी भूमिपर प्रथम बार इन संन्यासियोंने डरते डरते पैर रखा। परन्तु राजाकी पत्नी फ्रांसदेशीय थी, और क्रिस्तान होनेके कारण इन संन्यासियोंका उसने बड़ा आदर-सत्कार किया। केन्टरबरी गाँवके एक पुराने गिरजाघरमें उनको स्थान मिला। यहीं उन्होंने धर्मशाला बनायी और यहीं रहकर उन लोगोंने अपना धर्म-प्रचार करना आरम्भ किया। यही केन्टरबरी आजतक प्रसिद्ध है और एक प्रकारसे अब भी आँग्ल देशका धर्मपीठ कहा जाता है।

आगस्टीनके आनेके पहिले भी जिस समय यह रोमके राज्यका अंग था, क्रिस्तान धर्मका कुछ प्रचार इस देशमें हो गया था। उन्हींमेंसे कुछ पादरी सन्तोंने पेट्रिकके साथ सं० ५१६ (४६९ सन्) में आयर्लैण्ड जाकर क्रिस्तान धर्मका प्रचार किया और उसे केन्द्र बनाया। जर्मन जातियाँ इस देशमें आयीं तो आँग्ल देशसे क्रिस्तान धर्म पुनः लुप्त हो गया, पर दूरस्थित होनेके कारण आयर्लैण्डपर उन असभ्योंका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इनके तथा रोम धर्मके रीति-रस्ममें अब कुछ अन्तर पड़ गया था। आयर्लैंडके उपदेशकोंने उत्तरमें अपना कार्य जारी रखा। आगस्टीनने दक्षिणमें अपना कार्य आरम्भ किया। इन दोनों धर्मप्रचारकोंमें परस्पर वैमनस्य और झगड़ा स्वाभाविक था। यद्यपि आयर्लैंडके उपदेशक अपनेको पोपका ही अनुयायी मानते थे तथा पोपसे स्थापित केन्टरबरीके प्रधान बिशपको ये अध्यक्ष स्वीकार नहीं करते थे। पोप यह चाहते थे कि चारों ओरके तितिर-बितिर क्रिस्तान हमारी अध्यक्षतामें दलबद्ध रहें। परन्तु आयर्लैंडके क्रिस्तान अपने विशेष रीति-रस्मोंको छोड़ना नहीं चाहते थे। इस कारण लगभग १०० वर्षतक झगड़ा चलता रहा। रोमके पोपका प्रभाव यूरोपमें बढ़ता ही गया। इसका कारण हम ऊपर कह आये हैं। छोटे-छोटे राजा पोपसे मैत्रीभावसे रहना

चाहते थे। इस कारण पोपकीही धर्म-व्यवस्था चारों ओर मानी जाने लगी। कहा जाता है कि नार्दम्ब्रियाके राजाने एक सभामें कहा था कि जो लोग एक ईश्वरकी उपासना करते हैं उन्हें एक ही प्रकारका आचार-विचार रखना चाहिये। यह उचित नहीं है कि यूरोपके एक कोनेमें बसा हुआ कोई देश अन्य देशोंके आचार-विचारसे पृथक् रहे। राजाकी यह राय देखकर आयर्लैंडका उपदेशक उस सभासे उठकर चला गया। उस दिनसे १७ वीं शताब्दीतक, प्रायः एक सहस्रवर्ष तक, पोपका और इंगलिस्तानके राजाका धार्मिक और राजनीतिक सम्बध घनिष्ठ बना रहा।

जब आंग्ल देशने रोमके धर्मको पूर्णतया स्वीकार कर लिया तो रोमके साहित्य, कला, कौशलादिके ज्ञानके लिए देशमें बड़ा उत्साह फैला। बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ विद्यापीठका काम करने लगीं। रोमसे कितने कारीगर समुद्र पार कर आंग्ल देशमें गये और रोमकी-सी इमारतें बनाने लगे। लकड़ीकी जगह पत्थरका काम होने लगा। प्राचीन प्रसिद्ध पुस्तकें यहाँ लायी गयीं और उनकी नकल की गयी। कई प्रसिद्ध लेखक भी इस समय इंगलिस्तानमें उत्पन्न हुए। इस समय क्रिस्तान धर्मके प्रचारके लिए बड़ा उत्साह था। आयर्लैंडके धर्मोपदेशक सन्त कोलम्बनने बड़े-बड़े दुर्गम स्थानोंमें जाकर धर्मका प्रचार किया और धर्मशालाएँ बनायीं। मध्ययूरोपमें आपका प्रभाव बहुत पड़ा और कान्स्टेन्स झीलके पास आपकी बनायी हुई धर्मशालामें इतने शिष्य और भ्रातृगण आये कि यह बहुत दूरतक प्रसिद्ध हो गया। बड़े-बड़े घोर जंगल और पहाड़ोंमें घुस-घुसकर वहाँके निवासियोंको क्रिस्तान धर्मका उपदेश दिया गया और इन संन्यासियोंके उत्साह और आत्मत्यागका यह फल हुआ कि क्रिस्तान धर्म बहुत शीघ्रतासे चारों ओर फैल गया।

दूसरे प्रसिद्ध संन्यासी सन्त बोनीफेस हो गये हैं। आप जर्मन जातियोंमें धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये थे। आप पोपके अनन्य भक्त थे और आपने पोपका अधिकार जमानेमें बड़ी सहायता दी थी। फ्रांक देशके महलनवीस चार्ल्स मार्टेलकी सहायतासे आप जितने भिन्न-भिन्न पंथ फैले हुए थे सबको एक करके पोपके अधिकारमें ले आये और कितने ही स्थानोंमें आपने धर्मपीठ स्थापित किया। जर्मनीके चर्चको सुधारकर आप गाल देशकी ओर बढ़े। परस्पर युद्धके कारण यहाँपर धर्मकी बड़ी दुर्दशा हो रही थी। बड़े यत्नसे आपने धर्मके सब अध्यक्षोंको एकत्र कर यह निश्चय कराया कि सब लोग धर्मकी सेवा भली भांति करेंगे, पोपका अधिकार स्वीकार करेंगे और एकतासे रहेंगे।

अध्याय ५

फ्रांक राज्यकी उत्पत्ति

किस प्रकारसे पोपका राजनीतिक प्रभाव फैला, यह हम ऊपर दिखला चुके हैं। क्रिस्तान धर्मका जितना प्रचार होता गया उतना ही इनका अधिकार बढ़ता गया। जब पोपका अभ्युदय हो रहा था उसी समय फ्रांकके राष्ट्रको वहाँके कई प्रतापी राष्ट्र-निपुणोंने पुष्ट किया था। हम ऊपर कह आये हैं कि किस प्रकार महलनवीस चार्ल्स मार्टेलने राज्यका अधिकार अपने हाथमें लिया। इसको भी उन्हीं सब कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा जिनका सामना उस समय सभी राजाओंको करना पड़ता था। बड़ी आवश्यता यह थी कि राजा अपना अधिकार छोटे-बड़े सबपर जमा सके, राजाके जो बड़े-बड़े धनी और उद्दण्ड कर्मचारी थे वे बड़े-बड़े बिशप और एब्बट थे, जो सदा राजाके कष्टोंसे और निर्बलतासे लाभ उठाया करते थे, वे सब मर्यादाबद्ध रहें। दो प्रकारके कर्मचारियोंका नाम प्रायः सुना जाता है। एक तो काउण्ट और दूसरा ड्यूक। काउण्ट जिलोंमें राजाके प्रतिनिधि-स्वरूप रहता था। कई काउण्टोंका निरीक्षक ड्यूक होता था। यद्यपि राजाका यह अधिकार था कि जिस समय कर्मचारीको चाहे वह निकाल सकता था, तथापि प्रायः ये कर्मचारीगण जीवनपर्यन्त अपने अधिकारको बनाये रखते थे। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते कर्मचारियोंका अधिकार अपने ही जीवनतक नहीं बल्कि वंशपरम्परागत हो गया। बादको कर्मचारी न रह-कर ये लोग स्वयं पृथक् राज्याधिकारी हो गये। यही कारण था कि अपने राष्ट्रको पुष्ट करनेके लिए चार्ल्स मार्टेलको एक्वीटेन, बवेरिया, आलेमेनिया आदिके ड्यूकोंसे युद्ध करना पड़ा, क्योंकि ये चाहते थे कि जिस प्रदेशपर राजाके कर्मचारीरूप ये रखे गये थे उसके स्वामी स्वयं ही जायँ। चार्ल्स मार्टेलने लगातार धावा मारकर इन विद्रोहियोंपर राष्ट्रका अधिकार पुनः स्थापित किया और राज्यको सुदृढ़ बनाया। इन ड्यूकोंके सिवाय बिशप और काउण्टने भी बड़ा कष्ट दिया। बिशपोंका निर्वाचन चार्ल्सने अपने ही हाथ में रखा था, यद्यपि चर्चके नियमोंके अनुसार प्रत्येक धर्म-शालाके पुरोहितोंको अपने अध्यक्ष चुननेका अधिकार था तथापि जब एक बार बिशप अपनी धर्मशालाओंके अन्तर्गत धन-सम्पत्तिका स्वामी हो जाता था तब वह फिर राजाकी परवाह नहीं करता था। चार्ल्सने बलात् बहुतसे विद्रोही बिशप और

एव्वर्डोंको अपने स्थानसे निकाला और बहुतसे अध्यक्षोंका पद अपने ही भाई-बन्धुओंको दिया। यूरोपीय इतिहासमें चार्ल्स इस कारण विशेषकर प्रसिद्ध है कि उसने स्पेनकी ओरसे गालमें आती हुई एक विशाल मुसलमानी सेनाको रोका था। यह बड़ी प्रसिद्ध घटना थी, क्योंकि सम्भव था कि यदि चार्ल्सकी हार होती तो यूरोपका इतिहास कुछ और ही हो गया होता।

इस सम्बन्धमें उचित है कि इस्लाम धर्म और उसके प्रचारक मुहम्मद साहबके बारेमें यहाँ कुछ लिखा जाय। मुहम्मद का जन्म सं० ६२८ (सन् ५७१) में हुआ था। आपके आगमनके पहिले अरबकी सब जातियाँ चारों ओर छितरायी हुई थीं और उनमें सदासे परस्पर युद्ध चला करता था। परन्तु मुहम्मदका मत स्वीकार करनेके बाद ही ये जातियाँ एकाएक दलबद्ध होकर ऐक्यका अद्भुत उदाहरणस्वरूप हो गयीं, अपने नये धर्मके जोशमें इन्होंने संसारको चकित कर दिया और इतिहासमें उच्च स्थान पाया। मुहम्मद साहब कुलीन वंशके थे। आपके माता-पिता आपको बाल्यावस्था-में ही छोड़कर परलोक सिधारे थे। आप अपने दादाके घरमें पले थे। धनके अभावसे आपने खादिजा नाम्नी एक धनी विधवाकी नौकरी कर ली थी और उसका कारोबार देखनेके लिए देश-देशान्तर फिरा करते थे। खादिजाने आपकी ईमानदारी और सत्यप्रियतासे प्रसन्न होकर आपसे विवाह कर लिया। आप आराममें रहने लगे। पर जब आपकी अवस्था ४० वर्षकी हुई तो आपको नये धर्मका प्रचार करनेकी इच्छा हुई। कहा जाता है कि सालमें एक बार आप अपने कुटुम्बके साथ यात्राके अर्थ एक पहाड़ीपर जाकर योग करते थे। आपका कहना था कि मुझको स्वप्नमें देवदूतोंने नया धर्म-प्रचार करनेके लिए आज्ञा दी थी। इन्होंने बड़ा साहसकर इस्लाम धर्मका प्रचार किया। आपकी पत्नीने आपका धर्म स्वीकार किया। मक्कामें आपके लिए रहना कठिन हो गया। शत्रुओंने आपकी हत्याके लिए षड्यन्त्र रचा। आप घबड़ाकर मक्कासे मदीना भाग आये। यह घटना सं० ६७९ (सन् ६२२) में हुई। इसी समयसे मुसलमानोंका हिजरी संवत् आरम्भ होता है। इसके बाद मक्का और मदीनामें ६ वर्षतक युद्ध जारी रहा। युद्धमें मुहम्मदकी जीत हुई, और आप मक्कामें अपनी सेनाके साथ वापस आये। सं० ६८९ (सन् ६३२) में अपनी मृत्युके पहिले आपने अरबके सब सर्दारोंको नया धर्म सिखलाया था, और वे सब मिलकर मुहम्मद साहबको अपना स्वामी मानने लगे थे।

कहा जाता है कि मुहम्मद साहब कभी-कभी ध्यानावस्थित होकर अपने शिष्यों-को ज्ञानका उपदेश किया करते थे। इन्हीं वचनोंको एकत्र करके कुरान नामक धर्म-पुस्तक बनी है। सब मुसलमान इसे अपना धर्म-ग्रन्थ समझते हैं। नये धर्मके जितने आचार-विचार थे उनका वर्णन इस पुस्तकमें है, और इसीमें सामाजिक और राज-

नीतिक विचारोंका भी वर्णन मिलता है। इस्लाम धर्म एक सर्वश्रेष्ठ दयालु ईश्वरको मानता है और मुहम्मद साहबको उसका पैग़म्बर समझता है। इसका विश्वास है कि कयामतके रोज (महाप्रलयके दिन) अपने सांसारिक जीवनके अनुसार सब लोगोंका न्याय होगा और सदाके लिए अच्छोंको बिहिश्त (स्वर्ग) में और पापियोंको दोजख (नरक) में वास मिलेगा। जो अपने धर्मके लिए काम आवेंगे उन्हें विशेष ऊँचा स्थान मिलेगा। कई बातोंमें यहूदी और क्रिस्तान धर्मसे इस्लाम धर्म मिलता-जुलता है। सच पूछिये तो मुहम्मद साहबने इब्राहिम, मूसा और ईसामसीहको भी पैगम्बरोंमें ही गिना है।

मुहम्मद साहबका धर्म बड़ा ही सरल है। न उसमें पुरोहितके लिए स्थान है और न उसमें बहुत रीति-रस्म ही है। दिनमें ५ बार मक्काकी ओर मुख करके प्रत्येक सच्चे मुसल्मानको संध्यावन्दन करना चाहिये और सालमें एक मासतक रोजा (उपवासव्रत) रखना चाहिये। शिक्षित लोगोंको कुरान ग्रन्थ कण्ठस्थ करना चाहिये। मस्जिदमें संध्यावन्दन और कुरानका पाठ होना चाहिये। किसी प्रकारकी मूर्तिकी आराधना न करनी चाहिये।

मुहम्मदके पश्चात् मुसल्मान धर्माध्यक्षोंने खलीफाकी उपाधि धारण की। आप अरबकी सेनाओंको एकत्र कर उत्तरकी ओरके प्रदेशोंकी विजय करने चले। ये देश ईरानवालोंके थे और कुछ कुस्तुन्तुनियाके रोमन बादशाहके राज्यान्तर्गत थे। अरबोंकी बड़ी जीत हुई। थोड़े ही दिनोंमें इनका बड़ा साम्राज्य स्थापित हो गया। डेमास्कस इनकी राजधानी बनी। अरब, ईरान, सीरिया, मिश्र आदि देशोंपर खलीफाका आधिपत्य फैला। कुछ सालके अन्दर ही अन्दर अफ्रीकाकी उत्तरी सीमाके किनारे-किनारे मुसल्मानोंका राज्य फैलता गया, और संवत् ७६५ (सन् ७०८) में ये स्पेनके मुहानेपर पहुँच गये।

इस समय स्पेनमें पश्चिमीय गाथ लोगोंका जो राष्ट्र था उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह अरब लोगों और उत्तरीय अफ्रीकाके प्राचीन निवासियोंका सामना कर सके। कहीं कहीं शहरोंमें इनको रोकनेका यत्न किया गया। पर स्पेनमें इन्हें राज्य जमानेमें कोई कष्ट न हुआ। पहिले तो यहूदियोंने उनकी सहायता की, क्योंकि क्रिस्तानोंने इनको बड़ा ही सताया था। इसके अतिरिक्त, जो किसान जमींदारोंके इलाकोंमें काम करते थे उनको इसकी परवाह भी न थी कि किस जातिका मनुष्य जमींदार होता था। अरब और उनके सहचर वर्बर जातिवालोंने सं० ७६८ (सन् ७११) में बड़ी भारी लड़ाई जीती और धीरे-धीरे इन आगन्तुकोंने सब देशको छा लिया।

सात वर्षके अन्दर ही अन्दर पेरीनीज पहाड़के दक्षिणके समस्त प्रान्तोंके
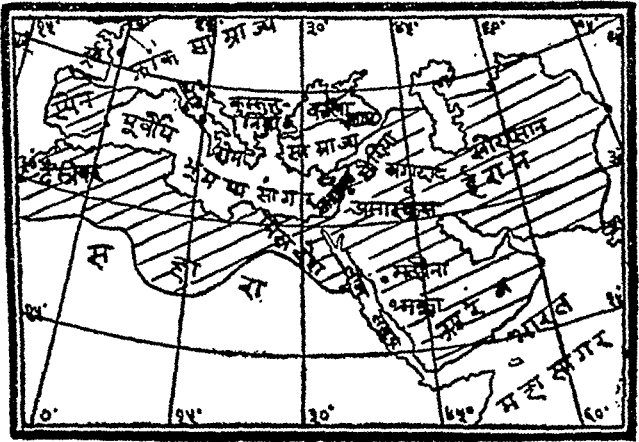
अरबोंकी विजय

पृ० ३०

स्वामी मुसल्मान हो गये। इसके अनन्तर वे गालकी ओर बढ़े और सीमान्तके एक-दो शहर जीत लिये। एक्वीटेनके ड्यूकने इनके रोकनेका बड़ा प्रयत्न किया। किन्तु मुसल्मान संवत् ७८९ (सन् ७३२) में बड़ी भारी सेना एकत्र कर बोर्डोमें ड्यूकको हराकर प्वाटियर्स लेते हुए टूर्स शहरकी ओर बढ़े। इस विपत्तिको सम्मुख उपस्थित देखकर चार्ल्स मार्टेलने आज्ञा दी कि जितने लोग युद्ध करनेके योग्य हैं वे लोग देशकी रक्षाके लिए प्रस्तुत हो जायँ। चार्ल्स मार्टेलने स्वयं सेनापतिका पद ग्रहण किया और टूर्समें मुसलमानोंको पराजित किया। यह युद्ध बड़ा भीषण था और इसमें मुसलमानोंने इतनी गहरी हार खायी कि फिर उन्होंने इस ओरसे यूरोपपर चढ़ाई करनेका साहस न किया।

सं० ७९८ (सन् ७४१) में चार्ल्सका परलोकवास हुआ और इसने महल-नवीसका पद अपने पुत्र पिपिन और कार्लोमानको दिलवाया। राजा तो सिंहासनपर बैठा था, पर सब अधिकार इन्हीं दोनों भाइयोंके हाथमें थे। जो ये चाहते थे, कर सकते थे और राजासे भी करा सकते थे। जो कोई इनसे विरोधादि करता था उन सबको इन्होंने दबाया और राज्यके पूर्ण अधिकारी ये ही हुए। पर थोड़े ही दिनोंमें कार्लोमानने संन्यास धारण कर लिया और पिपिन ही राज्यका मालिक हुआ। पिपिनने राजाको निकालकर स्वयं ही राजाका पद ग्रहण कर लेना चाहा। पर यह कार्य कुछ सरल न था। इस कारण उसने पोपकी सम्मति ली। पिपिनने पूछा, "क्या यह उचित है कि मेरोविञ्जियन-वंशका ही राजा सिंहासनपर बैठे, जब कि वास्तवमें उसे कोई अधिकार नहीं है?" पोपने उत्तर दिया कि, "राष्ट्रमें जिसे अधिकार है वही राजा है और उसीको राजा कहना चाहिये और जिसको अधिकार नहीं, वह राजा नहीं हो सकता।" सारांश यह कि जब पोपने देखा कि पिपिनका विरोध कोई नहीं कर सकता और फ्रांक जातिका इसपर पूरा भरोसा है तो उसने पिपिनको ही राजपदवी लेनेका अधिकार दे दिया। पोप स्वयं लाचार था। इस प्रकारसे अपने सर्दारोंकी सहायतासे और पोपके आशीर्वाद से सं० ८०९ (सन् ७५२) में कैरोलिंजियन-वंशका पिपिन प्रथम राजा हुआ। वास्तवमें कई पीढ़ियोंसे यही वंश राज्य करता चला आया था। उसने केवल राजाकी उपाधिसे अपने नामको विभूषित नहीं किया था, अब उसने यह भी कर लिया और राज-सिंहासनपर बैठनेका अधिकारी हो गया।

पिपिनके गद्दी पानेमें पोपकी सहायताके कारण राज्यारोहणकी प्रथामें नये भावका संचार हुआ। अबतक जर्मन जातियोंके राजा केवल सेनाके सर्दार ही होते थे और अपने अनुचर और सहचरकी इच्छासे राजाका पद ग्रहण करते थे। इस विषयमें धर्माध्यक्षोंकी राय नहीं ली जाती थी। केवल उसकी योग्यता, सर्वप्रियता तथा सर्व-

साधारणकी सम्मति उसे उस पदपर पहुँचाती थी। परन्तु पिपिनका राज्याभिषेक पहिले सन्त बोनिफेसने किया, फिर पोपने स्वयं किया। इस कारण एक साधारण जर्मन सर्दार दैवी शक्तिसे राज्याधिकारी माना जाने लगा। पोपने घोषणा की—"जो कभी भी पिपिनके वंशके विरुद्ध हाथ उठावेंगे उनपर ईश्वरका कोप होगा।" राजाकी आज्ञाका पालन करना प्रजाका धार्मिक कर्तव्य हो गया। चर्चने इन्हें पृथ्वीपर ईश्वरका प्रतिनिधिरूप माना। इसी कारण आजतक लोग यूरोपीय सम्राटोंको "ईश्वरकी दयासे राज्याधिकारी" मानते हैं, और चाहे वे कितने ही दुष्ट क्यों न हों उनके विरुद्ध हाथ उठाना पाप समझा जाता है। इस समय पश्चिममें दो सबसे बड़े राज्य थे। एक तो रोमके पोपका और दूसरा फ्रांकके राजाका।

इन दोनों बलवान राष्ट्रोंमें इस समय मैत्री हो गयी थी जिसका यूरोपके इतिहासपर बड़ा प्रभाव पड़ा। क्या कारण था कि पोप लोगोंने कुस्तुन्तुनियाके रोमन सम्राटोंसे अपनी परम्परागत सन्धि तोड़कर इस नये अशिष्ट जातिके राजासे सन्धि की? ग्रेगरीकी मृत्युके बाद लगभग १०० वर्षतक उसके पदाधिकारियों-ने अपनेको कुस्तुन्तुनियाके सम्राटोंकी ही प्रजा समझा। उत्तरीय इटलीसे आये हुए लाम्बर्ड लोगोंसे बचनेके लिए उन्होंने पूर्वीय राष्ट्रसे ही सहायता माँगी। इससे यह प्रतीत होता है कि पोपकी पूर्वीय साम्राज्यसे अपने सम्बन्ध तोड़नेकी कोई इच्छा न थी। पर सं० ७८२ (सन् ७२५) में सम्राट् तृतीय लियोने यह आज्ञा दी कि सच्चे क्रिस्तान लोग ईसामसीह और अन्य साधु-सन्तोंकी मूर्तियोंका पूजन न करें। इसका कारण यह था कि मुसलमानोंका धर्म चारों ओर फैल रहा था और क्रिस्तानों-को ये मूर्तिपूजक कहकर उनका उपहास करते थे। लियोके हृदयपर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने मूर्तिपूजनके विरुद्ध व्यवस्था दी। उसने आज्ञा दी कि साम्राज्यके गिरजाघरोंमें जितनी मूर्तियाँ हैं सब हटा ली जायँ और दीवारोंपर बने सब चित्र मिटा दिये जायँ। अब चारों ओर देशमें घोर विरोध पैदा हुआ। पश्चिमी क्रिस्तानोंने इस आज्ञाको मानना अस्वीकार किया। पोपने इसका विरोध कर कहा कि धर्मकी परम्परागत रीतियोंके परिवर्त्तनका अधिकार राजाको नहीं है। उसने सभा करके निश्चय कराया कि जो लोग मूर्तियोंका किसी रूपमें अपमान करेंगे वे सर्वधर्मच्युत समझे जायँगे। इसका परिणाम यह हुआ कि मूर्तियाँ अपने-अपने स्थानोंसे हटायी नहीं गयीं। यद्यपि लियोका इतना विरोध किया गया तथापि यह आशा बनी रही कि रोमसे लाम्बर्ड शत्रुओंको दूर करनेमें सम्राट् अवश्य सहायता देंगे, परन्तु सं० ८०८ (सन् ७५१) में आइस्टुल्फ नामके लाम्बर्ड सर्दारने रोमपर दृष्टि उठायी। उसकी इच्छा यह थी कि सम्पूर्ण इटलीको एक राष्ट्र बनाकर रोमको अपनी राजधानी बनाऊँ। पोपके लिए यह कठिन समस्या थी। यदि लाम्बर्ड

लोग अपना राज्य स्थापित करेंगे तो पोप ऐसे बड़े धर्म्माध्यक्षको उनके नीचे बैठना पड़ेगा। इसी कारण आजतक इटलीके सुसज्जित राष्ट्र होनेमें पोप लोगोंने बाधा डाली। जब पूर्वीय सम्राट्‌ने पोपकी प्रार्थना सुनी-अनसुनी कर दी तब उसने पिपिनकी शरण ली। आल्प्स पहाड़को पार करके वह फ्रांस देशमें गया। पिपिनने उसका बड़ा आदर किया और संवत् ८११ (सन् ७५४) में अपनी सेना सहित इटलीमें जा लाम्बर्ड लोगोंके धावेसे रोमकी रक्षा की।

पिपिनके वापस जानेके उपरान्त ही लाम्बर्ड राजाने फिर रोमपर धावा किया। पोप स्टीफनने पिपिनको लिखा, "यदि आप इस समय यहाँ आकर इस पुरातन और विशाल नगरीको नहीं बचाते हैं और धर्मकी रक्षा नहीं करते हैं तो आपको अनन्तकालतक नरकका कष्ट सहना पड़ेगा, और यदि आप इसकी रक्षा करेंगे तो आपके यश और पुण्यकी दिनों दिन वृद्धि होगी।" इन बातोंका पिपिनपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। वह इटलीमें फिर आया। लाम्बर्ड लोगोंको जीतकर उसने उनका राष्ट्र अपने राष्ट्रमें मिला लिया। इटलीके जिन-जिन प्रदेशोंको इसने लाम्बर्डोंसे जीता था वे पहिले पूर्वीय सम्राट्‌के अधीन थे। उचित तो यह होता कि वह उन्हें सम्राट्‌को लौटा देता। किन्तु यह न करके उसने उन्हें पोपको दक्षिणास्वरूप दे दिया। इससे पोपकी पुरानी सम्पत्तिमें बहुत बढ़ती हुई और मध्य इटलीके बड़े भारी प्रदेशपर इसका राज्य फैल गया। विक्रमकी २०वीं शताब्दीके आरम्भतक इटलीके नक्शेमें मध्य प्रदेश पोपकी सम्पत्तिके ही नामसे लिखा जाता था। पिपिनका शासन बड़ा प्रसिद्ध है। इसके समयमें फ्रांकका राष्ट्र सुदृढ़ हुआ और थोड़े ही दिनों पीछे पश्चिमीय यूरोपपर इसका अधिकार फैला। आधुनिक फ्रांस, जर्मनी, और आस्ट्रिया इसी राष्ट्रसे निकले हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रथम अवसर था कि किसी बाहरी राजाने इटलीके राज्य-कार्यमें हस्तक्षेप किया हो जिससे भविष्यमें कितने ही फ्रांसीसी और जर्मन राजाओंके मार्गमें संकट उपस्थित हुए। अब पोपके हाथमें एक अच्छी सम्पत्ति आ गयी और बहुत दिनोंतक इसके हाथ रही। पिपिनने और फिर इसके पुत्र शार्लमेन (महान चार्ल्स)ने पोपकी मैत्रीसे केवल भलाई ही देखी। उससे जो बुराई होनेवाली थी उसकी सूचना इनको न थी। राजा और पोपके सम्बन्धका क्या प्रभाव पड़ा यह इतिहाससे भली भाँति विदित हो जायगा।

अध्याय ६

शार्लमेन (महान् चार्ल्स)

अबतक जितने बड़े व्यक्तियोंका विवरण लिखा गया है उनके विषयमें इस समयतक लोगोंको बहुत कम परिचय मिला है, परन्तु शार्लमेनके बारेमें विविध रूपसे बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। उनके मन्त्रीने लिखा है कि, "शार्लमेन देखनेमें बड़ा यशस्वी प्रतीत होता था। चाहे बैठा हो या खड़ा हो, उसके शरीर-से सदा वैभव ही झलकता था। उसका शरीर बड़ा फुर्तीला था। स्थूल होनेपर भी घोड़ेकी सवारी, शिकार खेलने और तैरनेमें बड़ा चतुर था। अच्छे स्वास्थ्य और शारीरिक स्फुरताके कारण वह अपने साम्राज्यभरमें बराबर दौरा लगाता था। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर धावा करनेके लिए ऐसी शीघ्रतासे जाता था कि जिसका विचार करते समय मनुष्यकी बुद्धि चकित हो जाती है।"

चार्ल्स कुछ विशेष विद्वान् न था, परंतु इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। औरोंसे पढ़वाकरके वह पुस्तकें सुनता था और बड़ा प्रसन्न होता था। लैटिन भाषा तो बोल ही सकता था, परन्तु ग्रीक भी समझता था। पिछली अवस्थामें उसने लिखना सीखनेका प्रयत्न किया था, परन्तु केवल अपना नाममात्र ही लिखना सीख सका। यद्यपि वह स्वयं लिख-पढ़ नहीं सकता था, तथापि वह अपनी सभामें बड़े-बड़े विद्वानोंको निमन्त्रित करता था और उनकी विद्यासे अपने काममें सहायता लेता था। साम्राज्यमें लड़कों और लड़कियोंके पढ़ानेके लिए उसने बड़ा यत्न किया था। इसके अतिरिक्त अपने राज्यको सर्वांगसुन्दर बनानेके लिए वह बड़े-बड़े विशाल भवनोंके बनवानेमें सदा तत्पर रहता था। एक्सला शापेलके विचित्र गिरजाघरको इसीने बनवाया था और कितने ही पुल, इमारतें, प्रासाद इत्यादि इसके बनवाये हुए अबतक भी मिलते हैं। इसके विलक्षण कार्योंका उस समयके नर-नारियोंके चरित्र-पर इतना प्रभाव पड़ा कि इसके बारेमें बड़ी-बड़ी कथायें चिरकालतक चारों ओर प्रचलित रहीं। यह एक अवतारके समान माना जाने लगा। इसके साथियों, सरदारों और सिपाहियोंकी बहुत अद्भुत कहानियाँ प्रचलित हो गयीं। इसके सम्मानार्थ कितनी ही कवितायें लिखी गयीं। सत्यासत्य कथायें तो बहुत फैलीं, परन्तु वास्तवमें भी शार्लमेनका राज्य प्रशंसाके योग्य था। इसकी गणना सबसे बड़े वीरोंमें है। यूरोपको नवीन मार्गसे ले जानेवाले मनुष्योंमेंसे यह भी एक है। प्रथम

तो यह बड़ा प्रतापी विजयी राजा था जो देश-देशान्तर जीतने गया। उसने राज्य-शासन सम्बन्धी नयी-नयी संस्थाओंका स्थापन किया। इसके अतिरिक्त उसने विद्या, कला-कौशलादिकी बहुत उन्नति की थी।

शार्लमेनकी इच्छा थी कि जर्मन जातियोंके सभी लोग एक क्रिस्तानी साम्राज्यमें सम्मिलित हों। इस आदर्शकी पूर्तिमें उसने बड़ी सफलता पायी थी। आधुनिक जर्मनीका बहुत थोड़ा अंश पिपिनके राज्यमें सम्मिलित था। फ्रीसिया और बावेरियाके लोग क्रिस्तान हो चुके थे। उनके सर्दारगण फ्रांकके राजाको अपना सम्राट् मानने लगे थे, परन्तु इन दोनों देशोंके बीचमें साक्सन जातियाँ थीं जो कि अपने पुरातनधर्म और रीतियोंका ही पालन करती थीं। इनके देशमें न नगर थे और न मार्ग ही थे। इसलिए इनको जीतना बहुत कठिन था। जब ये जातियां अपने शत्रुओंको जीत नहीं सकती थीं तो अपना माल-असबाब लेकर जंगलोंमें भाग जाती थीं। जबतक ये पराजित न की गयीं तबतक फ्रांक राष्ट्रको सदा डर बना रहा, इस कारण फ्रांक राजाओंके लिए इन्हें जीतना आवश्यक हुआ। शार्लमेनने इस कठिन कार्यको अपने हाथमें लिया। कई वर्षोंतक वह साक्सन जातियोंके जीतनेके उद्योगमें लगा रहा। इस कार्यमें राजाको चर्चकी भी बड़ी सहायता मिली थी। सम्भव है, यदि यह सहायता न मिली होती तो शार्लमेनको भी सफलता न प्राप्त होती।

चर्चका प्रभाव शार्लमेनके ऊपर कितना था और किस प्रकार धर्मके नामसे वह अपना कार्य करना चाहता था यह इतनेसे ही मालूम हो सकता है कि जब-जब साक्सन जातिमें बलवा होता था तब-तब वह उनकी पराजय करता था। उनसे वह चर्चका सदा आदर करने और क्रिस्तान धर्ममें सम्मिलित रहने तथा सदा राजभक्त बने रहनेका वादा करा लेता था। उसने गिरजाघर और किला अर्थात् धर्म-गृह और राष्ट्रगृह साथ ही साथ बनवाया था। वह राजविद्रोही तथा धर्म-विद्रोही दोनोंको एक ही प्रकारका प्राणदण्ड देता था। धर्म-विहित व्रतादिके विरुद्ध आचरण करनेवालोंको भी वह कठिन दण्ड देता था। वह अपने पुराने वृक्ष, मूर्त्ति आदिके भजनमें तत्पर लोगोंको भी दण्ड देता था।

पुरोहितोंके स्थान और भोजन-वस्त्रादिका भी प्रबन्ध आसपासके पड़ोसियोंको ही करना पड़ता था। इन सब बातोंसे यूरोपके मध्य युगकी प्रधान विशेषता भली-भाँति देखी जाती है। युगका आदर्श यही था कि संसारके प्राणियोंके आचार-विचार, शासन-पद्धति आदिमें राष्ट्र और पारलौकिक धर्मकी समता है। इन दोनोंको साथ ही साथ चलना चाहिये। यदि कोई धर्ममार्गसे च्युत होता था तो उसका अपराध राजद्रोहके बराबर समझा जाता था। यद्यपि राष्ट्र और चर्चमें बहुत विरोध हुआ

करता था; तथापि उस समयके लोगोंके हृदयमें यह विचार कदापि न आय कि इन दोनों संस्थाओंके साथ चले विना भी मनुष्यका कार्य्य चल सकता है। राज-कर्मचारी और धर्म-कर्मचारी भी मानते थे कि हम एक दूसरेके विना कुछ नहीं कर सकते।

फ्रांक लोगोंके आक्रमणके पहिले साक्सन लोगोंके देशमें कोई नगर नहीं थे, परन्तु अब विशपकी गद्दी और धर्मशालाके कारण बहुतसे लोग एकत्र होने लगे और नगर बसने लगे। हम आगे लिख चुके हैं कि पिपिनने पोपसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि रोमपर कोई आपत्ति आवेगी तो फ्रांक देशके राजा उसकी रक्षा करेंगे। जब शार्लमेन उत्तरमें साक्सन लोगोंकी पराजयमें लगा हुआ था उस समय लाम्बर्ड राजाने अवसर पाकर रोमपर धावा कर दिया। पोपने उसी समय शार्ल-मेनसे सहायता माँगी। शार्लमेन अपने पिताके वचनको शिरोधार्य्य मान रोमकी सहायताके लिए चला। लाम्बर्ड राजाको उसने आज्ञा दी कि पोपसे जिन-जिन नगरोंको तुमने लिया है उन्हें तुरन्त लौटा दो। जब उसने यह आज्ञा नहीं मानी तब शार्लमेनने लाम्बर्डोंपर सं० ८३० में धावा मारा और उनकी राजधानी पेवियाको जीत लिया। लाम्बर्ड राजा देशसे निकाल दिया गया और उसका धन फ्रांक सिपाहियोंमें बाँट दिया गया। संवत् ८३१ में लाम्बर्ड देशमें जितने ड्यूक और काउंट थे उन सबोंने शार्लमेनको अपना राजा माना। एक्वीटेन और बावेरिया देशोंको भी इसने अपने साम्राज्यमें भली भाँति सम्मिलित किया। पहिले भी वे प्रदेश फ्रांक राष्ट्रके ही समझे जाते थे, पर इनके ड्यूक और काउंट वास्तवमें स्वतन्त्र थे। अब ये फ्रांक राष्ट्रमें पूरी तौरसे मिल गये। बावेरियाके जीतनेसे बड़ा भारी लाभ यह हुआ कि उत्तरसे आती हुई स्लाव जातिका विरोध यह भलीभाँति कर सकता था।

जितने राष्ट्र इसने अबतक जीते, इनसे यह सन्तुष्ट न रहा। वह और सीमाओंपर बसी हुई जातियोंके विरुद्ध अपनी सेना ले चला। एक तो पूर्वमें स्लाव जातियाँ थीं, दूसरे दक्षिणकी ओर मुसल्मान जातियाँ थीं। इन दोनोंसे ही अपने राष्ट्रको बचाना इसके लिए आवश्यक हुआ। इस कारण अपनी सीमापर इसने छोटे-छोटे ज़िले बनाये जो सैनिक काउंटोंके अधीन रखे गये। इन काउंटोंकी उपाधि मारग्रेव थी। अभीतक जर्मनीके सम्राट्की अन्य उपाधियोंमें एक उपाधि ब्रांडेन बर्गका मारग्रेव रही है। इन मारग्रेवोंका कर्तव्य था कि राष्ट्रको शत्रुओंके आक्रमणसे बचावें और सीमाकी रक्षा करें। इन लोगोंकी योग्यता तथा पुरुषार्थपर बहुत कुछ निर्भर था। कितने तो इतने बुद्धिमान् और चतुर निकले कि उन्होंने स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित किये, जिनके अधिकारी उनके

वंशज हुए और जिन्होंने आगे चलकर शार्लमेनके साम्राज्यको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

पाठकोंको स्मरण होगा कि आठवीं शताब्दीके आरम्भमें स्पेनपर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ था। चार्ल्स मार्टेलने इनको गालमें आनेसे रोका था। उस समय उनका राष्ट्र बने बहुत ही कम दिन हुए थे। सं० ८१३ (सन् ७५६) में स्पेनके राजाने अमीरकी उपाधि ली और २०० वर्ष पीछे सवत् ९८६ (सन् ९२९) में आप खलीफा बन बैठे। खलीफाकी उपाधि पहिले अरब साम्राज्यके अनन्य शिरोमणि-पुरुषको ही मिलती थी जिनकी राजधानी पहिले डामस्कस थी, पीछे बगदाद हुई। सं० ८३४ (सन् ७७७) में कार्डोवाके अमीरके आचरणसे असन्तुष्ट होकर कुछ मुसलमान शार्लमेनकी राज-सभामें उपस्थित हुए और उसकी भक्त प्रजा हो जाना चाहा, तथा उसकी सहायता चाही। इस निमन्त्रणको पाकर शार्लमेन स्पेनकी ओर चला। उत्तरका भाग इसने जीता और एब्रो नदीके किनारे-किनारे इसने मारग्रेव नगर बसाया। स्पेनमेंसे मुसलमानोंको हटानेका पहिला यत्न यही था। परन्तु ७०० वर्षतक क्रिस्तान राजा इसी प्रयत्नमें लगे रहे। संवत् १५४९ (सन् १४९२) में जाकर मुसलमान इस प्रदेशसे निर्मूल किये गये। शार्लमेनके कार्योंमें सबसे बड़ी यह बात हुई कि ओडेसरके समयसे जो पश्चिमीय राष्ट्र नष्ट हो गये थे उनकी इसने एक प्रकारसे पुनःस्थापना की।

कथा यों है कि संवत् ८५७ में शार्लमेन पोप तृतीय लियो और उनके शत्रुओंसे समझौता करनेके लिए रोम गया था। झगड़ेका समझौता हो जानेपर अपनी प्रसन्नताको दिखलानेके लिए पोपने संत पीटरके गिरजाघरमें बड़ा उत्सव किया था। जब शार्लमेन मस्तक नवाये ध्यानमें लगा हुआ था, उस समय पोपने राज-मुकुट लेकर उसके सिरपर रख दिया और चतुर्दिक् "रोम सम्राट्की जय" "रोम सम्राट्की जय" की ध्वनि होने लगी। उस समय शार्लमेनने यह कहा कि "मैं इस बातसे बड़ा चकित हूँ, मुझको इसका लेशमात्र भी ध्यान न था कि पोप ऐसा अन्याय करेंगे।"

एक पुरातन इतिहासवेत्ताने लिखा है कि इस समय सम्राट्का नाम पूर्वके ग्रीक साम्राज्यसे भी उठ गया था; क्योंकि वहाँ एक आयरीनी नामकी भयंकर स्त्री राज्य करती थी। इसलिए पोप लियोको और अन्य धर्म धुरन्धरोंको यह उचित मालूम हुआ कि चार्ल्सको सम्राटकी पदवी दी जाय। इसके हाथमें इटली, गाल जर्मनी इत्यादिके अतिरिक्त रोम भी था, जहाँ पूर्व-कालमें बड़े-बड़े रोम सम्राटोंने राज्य किया था। इससे यही स्पष्ट होता है कि जिस ईश्वरने इन बड़े बड़े प्रदेशोंको, यहाँतक कि रोमको भी, इनके अधीन किया उसीने सम्राट्की पदवी और क्रिस्तान-धर्म तथा उनके अनुयायियोंकी रक्षाका भार भी इन्हींको दिया।

सन्त पीटरके गिरजाघरमें हुई इस घटनाका बड़ा प्रभाव यूरोपके इतिहासपर पड़ा। पोपके इस कार्यसे चार्ल्स (शार्ल) जो पहिले केवल फ्रांक और लाम्बर्ड जातियोंका राजा मात्र था, अब रोमका सम्राट् हुआ। पूर्वीय साम्राज्य और पोपसे झगड़ा चला ही आता था, क्योंकि मूर्तिपूजनके विरुद्ध पूर्वीय सम्राटोंने आदेश दिया। पश्चिममें मूर्ति-पूजनका नियम था। इसके अतिरिक्त जिस समयकी यह घटना है उस समय पूर्वीय-राज्य-सिंहासनपर एक दुष्ट दुराचारिणी और कठोरहृदया स्त्री राज्य कर रही थी। इसने अपने ही पुत्रके नेत्रोंको निकलवाकर उसे राज्यसे च्युत कर दिया था। प्रथम तो स्त्रियोंको राजा माननेका नियम ही न था, दूसरे, जो स्त्री राज्य कर रही थी, आदरयोग्य न थी, तीसरे, मूर्तिपूजनके विषयमें पश्चिम और पूर्वमें बड़ा मतभेद था और चौथे, किसी प्रकारकी सहायता न तो रोम साम्राज्यसे और न अन्यत्र कहींसे मिलनेकी आशा ही थी। इन सब कारणोंसे पोपके लिए हर प्रकारसे यह श्रेयस्कर था कि परम प्रभावशाली, तेजस्वी, बलवान, चार्ल्सको ही राजा बनावे। इस प्रकार और सन्त पीटरके प्राचीन गिरजेमें ईसा-मसीहकी जयन्तीके दिन क्रिस्तानधर्मके नामपर धर्मके अनुयायियोंकी ओरसे राज्याभिषेक करनेमें जो कुछ विरोध हो सकता था वह सब रुक गया।

अब जो साम्राज्य स्थापित हुआ वह यद्यपि नवीन था तथापि आगस्टसके ही बनाये हुए रोमन सम्राज्यको परम्परागत साम्राज्य समझा जाने लगा। पूर्वीय साम्राज्यके जिस छठे कांस्टनटाइनको आयरीनी नामी एक स्त्रीने राज्यच्युत किया था उसीका पदाधिकारी शार्लमेन समझा जाने लगा। परन्तु यह साम्राज्य कितना ही क्यों न पुराने रोमसे सम्बद्ध किया जाय, यह तो मानना ही होगा कि यह साम्राज्य पूर्ण रूपसे अनोखा था। प्रथम तो पूर्वीय साम्राज्य जैसाका तैसा ही बना रहा। कितनी ही शताब्दियोंतक वहाँके सम्राट् अलग ही राज्य करते रहे। इसके अतिरिक्त शार्लमेनके पश्चात् जो सम्राट् हुए वह प्रायः इतने कमजोर थे कि जर्मनी, उत्तरी इटली आदिपर अपना राज्य नहीं जमा सकते थे। अन्य देश तो छूट रहे। तथापि जो यह साम्राज्य पश्चिमीय साम्राज्यके नामसे स्थापित हुआ था, जिसका नाम ११ वीं शताब्दीमें 'पवित्र रोमन राष्ट्र' (होली रोमन एम्पायर) हुआ, एक सहस्र वर्षतक स्थायी रहा। संवत् १८६३ (सन् १८०६) में जब नेपोलियनका प्रभाव चतुर्दिक्‌में फैल रहा था, उस समय अन्तिम सम्राट्‌ने इस पदवीका परित्याग कर दिया। यह केवल पदवी ही मात्र थी। न इस सम्बन्धमें कोई कर्त्तव्य थे और न अधिकार। यह साम्राज्य धर्मके नामसे स्थापित हुआ था। इसी कारण इसका नाम पवित्र रखा, और पुराने रोमन राष्ट्रसे इसका परम्परागत सम्बन्ध समझे जानेके कारण ही इसे रोमन राष्ट्रकी उपाधि मिली। ११ वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध फ्रान्सीसी

लेखक वाल्टेयरने इसका परिहास करते हुए कहा है कि इसका नाम "पवित्र रोमन राष्ट्र" इस कारण पड़ा कि न तो वह पवित्र था, न रोमन था और न राष्ट्र ही था।

इस प्रकारसे सम्राट्‌की पदवी प्राप्त करनेसे जर्मनीके भावी राजाओंकी बड़ी दुर्दशा हुई। इन्हें कितनी ही बार इटलीपर अपना आधिपत्य जमानेके लिए निष्फल यत्न करना पड़ा। फिर जिस विशेष अवस्थामें शार्लमेनका राज्याभिषेक हुआ उससे भावी पोपको यह कहनेका अवसर प्राप्त हुआ कि, 'हमने ही तो राजाको सिंहासनपर बैठाया है, और जब हम चाहें, उनको राज्यच्युत कर सकते हैं।" इन सब वाद-विवादोंके कारण सदा परस्पर युद्ध होता रहा और वैमनस्य बना रहा।

इतने बड़े साम्राज्यका शासन करना चार्ल्स ऐसे विचित्र और विलक्षण बुद्धि-वाले राजाके लिए भी कठिन था, उसके उत्तराधिकारी तो इसको सम्हाल ही नहीं सकते थे। बड़ी कठिनाइयाँ फिर-फिर आती थीं, एक तो राजनिधि (कोश) बहुत थोड़ी थी, दूसरे कर्मचारियोंके ऊपर पूरा दबाव न हो सकनेके कारण वे स्वतन्त्र होने लगते थे। जिस-जिस प्रकारसे शार्लमेनने अपने बृहत् साम्राज्यके कोने-कोनेतक अपने प्रभावको पहुँचाया था उसीसे वह नीतिशास्त्र-निपुण कहा जाता था। इस समय राजाकी आय अपनी ही विशेष सम्पत्तिसे होती थी। कर लगानेका साधारण नियम न था, इस कारण जितने इसके इलाके थे उनका प्रबन्ध वह भलीभाँति करता था। वह इस बातका विचार रखता था कि जितना जमीन्दाराना हक हो सो उसे मिले।

फ्रांक राजा काउण्ट नामके कर्मचारियोंपर ही प्रायः राज्य-कार्यके लिए भरोसा रखते थे। राज्यमें शान्ति रखना, न्यायका प्रचार करना और आवश्यकता पड़नेपर राजाके लिए सेना तैयार करना इन्हीं काउण्टोंका काम था। सीमापर सीमाके मार्च-काउण्ट (मारग्रेव) कहे जाते थे। काउण्ट मारग्रेव अथवा मारक्विस ड्यूक आदि उपाधियाँ अब भी यूरोपके महाजनोंकी हैं, यद्यपि उपाधिके कारण उनके सुपुर्द कोई राज-कार्य नहीं है। तथापि कहीं-कहीं इनको धर्म-परिषदोंके श्रेष्ठ विभागमें बैठनेका अधिकार मिलता है।

इन काउण्टोंपर निरीक्षण करनेके लिए शार्लमेनने मिसी डामेनिक नामके कर्म-चारी नियुक्त किये थे, जो भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें समय-समयपर भेजे जाते थे। ये सब कार्योंका निरीक्षण करके अपने विवरणको राजाके पास भेजते थे। ये कर्मचारी साथ भेजे जाते थे, एक बिशप (धर्माध्यक्ष) और साधारण पुरुष, जिससे कि ये दोनों एक दूसरे को रोक सकें। प्रतिवर्ष इनके निरीक्षणका स्थान बदल दिया जाता था और इससे यह सम्भावना न थी कि ये स्वयं किसी स्थानके काउण्टसे मिल जायँगे।

पश्चिमीय रोमन साम्राज्यकी स्थापनासे शार्लमेनकी शासन-पद्धतिमें कोई परिवर्तन न हुआ, केवल उसने इतना और किया कि जितनी उसकी प्रजा १२ वर्षसे अधिक वयकी थी उसने उनसे राजभक्त होनेकी शपथ करायी। प्रतिवर्ष वसन्त अथवा ग्रीष्ममें वह अपने सरदारों और पुरोहितोंकी सभाएँ करता था, जहाँ साम्राज्यकी उन्नति और अन्य विषयोंपर विचार होता था। उसने अपने सलाहकारोंकी रायसे "कापी तुलरी" नामके कई नये कानून भी बनाये थे। धर्म्म सम्बन्धी आवश्यकताओंपर बिशप और एबटसे सदा राय लिया करता था, और विशेषकर वह इस चिन्तामें रहता था कि प्रत्येक श्रेणीकी शिक्षाके लिए समुचित प्रबन्ध किया जाय। शार्लमेनके इन सुधारोंसे ही उस समयके यूरोपकी दशा भली भाँति प्रतीत होती है और यह भी ज्ञात होता है कि ४०० वर्षकी हलचलके पश्चात् शार्लमेनने किस प्रकारसे राष्ट्रको फिरसे सुसज्जित किया। ऊपर कहा जा चुका है कि थियोडोरिकके बाद विद्याकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। शार्लमेन इस समयका प्रथम राजा था जिसने फिरसे विद्याके प्रचारका यत्न किया। पहिले मिश्र देशसे यूरोपमें ताड़-पत्र आया करते थे जिनपर ग्रंथ लिखे जाते थे। सातवीं शताब्दीमें मिश्रमें अरबनिवासियोंका राज्य हो जानेके कारण ताड़-पत्रका आना बन्द हो गया और अब केवल पतले चमड़ेकी पटिया ही (पार्चमेण्ट) लिखनेके लिए रह गयी। इसका मूल्य बहुत था। वह यद्यपि ताड़-पत्रसे अधिक स्थायी थी, तथापि अधिक मूल्यवान् होनेके कारण पुस्तकोंकी नकलें कम हो गयीं। शार्लमेनके राज्याभिषेकके पश्चात्के लेखक लिखते हैं कि, "उसके पहिलेके १०० वर्ष घोर अन्धकारमय थे। लिखना-पढ़ना सब लोग भूल गये थे और चारों ओर अविद्या छायी हुई थी।" परन्तु आगे चलकर बड़ी उन्नतिकी आशा होने लगी। धर्म-सम्बन्धी सब कार्य और धर्माध्यक्षोंके आपसके पत्र-व्यवहार सब लातीनी भाषामें होते थे, इससे लातीनी भाषाके लोप हो जानेका भय न था। [illegible] धर्म्म सम्बन्धी उपदेश और कर्मकाण्ड भी लातीनी भाषामें होनेके कारण उस भाषाका ज्ञान थोड़ा प्रचलित हो गया था। चर्चके लिए आवश्यक था कि पुरोहितोंको कुछ-न-कुछ अवश्य ही शिक्षा दी जाय जिससे कि वे अपने कर्त्तव्योंका पालन भली भाँति कर सकें। इस कारण सभी यूरोपीय देशोंके सब उच्च पदाधिकारी [illegible] पढ़ सकते थे। इसके अतिरिक्त रोम-राष्ट्रका महत्त्व और उसके साहित्यकी [illegible] बनी ही थी। जिसका कुछ-न-कुछ ज्ञान चारों ओर फैला हुआ था। [illegible] नाम भी ये लोग जानते ही थे। गणित तथा ज्योतिष [illegible] जानना त्यौहारोंका दिन निकालनेके लिए आवश्यक था। [illegible] ठीक नहीं है। जिस समय कुछ धर्मशालाओंके [illegible] और [illegible] अशुद्ध भाषामें लिखा तो उसने

उत्तरमें धन्यवाद प्रकट करते हुए लिखवाया था कि "यद्यपि आपकी मनोकामना और शुभचिन्तनोंसे मैं बड़ा सन्तुष्ट हूँ, तथापि यह कहना बड़ा आवश्यक है कि आपकी भाषा कर्ण-कटु और अशुद्ध है। इस कारण आप सब लोगोंको उचित है कि विद्याके उपार्जनमें विशेष ध्यान दें, जिससे केवल आपके भाव ही शुद्ध न हों, किन्तु भावोंको प्रकट करनेवाली भाषा भी शुद्ध हो। दूसरे पत्रमें आप लिखते हैं कि मैंने यथाशक्ति यत्न किया कि विद्याका पुनः प्रचार हो, क्योंकि हम लोगोंके पूर्वजोंने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। इसी कारण विद्याकी हीन दशा हो गयी है। अब मेरी सब लोगोंसे प्रार्थना है कि विद्याका ह्रास न होने पावे। इस विचारसे जिन धर्म-पुस्तकोंको कुशिक्षित लेखकोंने भ्रष्ट कर रखा था उन्हें मैंने शुद्ध कराया है।"

शार्लमेनका विश्वास था कि अपने ही कर्मचारियोंके लिए नहीं किन्तु सर्व-साधारणके लिए कमसे कम प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध करना चर्चका कर्तव्य है। इस कारण उन्होंने कलर्जी पुरोहितोंको संवत् ८४६ (सन् ७८९) में आज्ञा दी कि अपने पड़ोसके सब जातियोंके लड़कोंको एकत्र करके उन्हें पढ़ना-लिखना सिखलाओ। यह तो कहना बड़ा कठिन है कि कितने धर्माध्यक्षोंने इस आदेशका पालन किया था, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कई स्थानोंमें विद्यापीठ स्थापित हुए थे। शार्लमेनने "प्रासाद पाठशाला" भी स्थापित की थी, जिसमें अपने और सरदारोंके लड़कोंके लिए शिक्षाका प्रबन्ध किया था। इस पाठशालामें इसने दूर-दूर देशोंसे शिक्षा देनेके लिए प्रसिद्ध विद्वानोंको बुलाया था।

शार्लमेनका इस बातपर विशेष ध्यान रहता था कि जिन पुस्तकोंकी नकल की जाय वे शुद्ध हों। इस कारण उसने अपने शिक्षा सम्बन्धी आज्ञा-पत्रमें कहा है कि, "धर्म-सम्बन्धी जितने शब्द, चिह्न और पुस्तकें हैं सब शुद्ध रीतिसे लिखी जायँ। यदि ईश्वरकी उपासना की जाय तो शुद्ध शब्दोंमें की जाय। बालकोंको कुशिक्षा देना बड़ा ही अनुचित है। सुशिक्षित लोगोंसे ही पुस्तकोंकी नकल करानी चाहिये, यह सब बहुत ही छोटी बात विदित होती है। प्रायः इसे लोग अनावश्यक भी समझें, परन्तु बहुत दिनोंतक विद्याके लोप होनेके पश्चात् उसके उद्धार करनेके समय यह आवश्यक है कि वे वर्तमान पुस्तकोंको भली भाँति शुद्ध करके नवीन विद्याका प्रचार करें।" प्राचीन यूनान और रोमके शास्त्रोंके उद्धारका यत्न तो इसने नहीं किया, परन्तु लातीनी भाषाकी शिक्षाके प्रचारमें वह अवश्य सफलमनोरथ हुआ।

इतिहासके पढ़नेवाले प्रायः यह कहेंगे कि शार्लमेनने जो इतना यत्न किया, सब व्यर्थ था; क्योंकि इनके बाद कई सौ वर्षोंतक कोई बड़े धुरन्धर विद्वान् या पण्डित नहीं हुए। एक पक्षमें यह ठीक कहा जा सकता है। क्योंकि शार्लमेनके साम्राज्यका थोड़े ही दिन पीछे नाश हुआ। छोटे-छोटे नेता बहुतसे निकले जिन्होंने

पृथक्-पृथक् अपना राज्य स्थापित किया और जो किसी सम्राट्का अधिकार नहीं मानते थे। ऐसी उथल-पुथलके समय जहाँ चतुर्दिक मार-काट हो रही है, विद्याका प्रचार होना बड़ा कठिन है। यद्यपि उस समय विद्वानोंके लिए शान्ति-पूर्वक सरस्वतीकी उपासना करना असम्भव था, तथापि शार्लमेनने जो कुछ किया उसकी प्रशंसा इस बातसे कम नहीं हो सकती कि आगे चलकर कुछ दिनोंतक उसका फल नहीं दीख पड़ा। प्रत्युत शार्लमेनका महत्त्व, उसकी राज्यनिपुणता और कला-कौशलप्रियतादि गुण यूरोपके बड़े-बड़े सम्राटोंमें भी उसे उच्च पद दिलवाते हैं। यदि उसके कार्यके चलानेके लिए योग्य कर्मचारी और पदाधिकारी न मिले तो दोष इन पदाधिकारियोंका ही है, शार्लमेनका नहीं। अराजकताके समय इसने सुसज्जित राष्ट्र तैयार किया था। बाहरी शत्रुओंसे बचानेके लिए इसने बड़ा प्रबन्ध किया और इससे बढ़कर घोर अन्धकारमय यूरोपमें विद्याका उद्दीपन किया था।

अध्याय ७

शार्लमेनके साम्राज्यका बँटवारा

शार्लमेनके मरणोपरान्त यूरोपके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि अब उसका बड़ा साम्राज्य संयुक्त रहेगा या विभक्त। स्वयं शार्लमेनको यह आशा न थी कि साम्राज्य अविभक्त रह जायगा; क्योंकि संवत् ८६३ में उसने अपने तीनों लड़कोंमें अपना साम्राज्य बाँट दिया था। इसपर आश्चर्य होता है, क्योंकि शार्लमेनका एकमात्र यह उद्देश्य था कि अपने जीवनमें साम्राज्य विभक्त होकर भी एकमें ही रहे, परन्तु सम्भव है कि फ्रांक जातिमें परम्परागत यह नियम था कि धन सब पुत्रोंको बराबर मिले। सम्भव है कि शार्लमेनने इस नियमके विरुद्ध जाना अनुचित समझा हो। इस कारण केवल एक ही पुत्रको सारा राज्य उसने न दिया। अथवा उसने विचार किया हो कि इतना बड़ा राष्ट्र वास्तवमें एक ही राजाके हाथमें नहीं रह सकता। जो कुछ हो। उसके तीनों लड़कोंमेंसे प्रथम दोका शीघ्र ही देहान्त हो गया और सबसे छोटा लुई सर्व-राष्ट्राधिकारी हुआ। फ्रांक राष्ट्र और रोमन राष्ट्र दोनोंका स्वामी लुई हुआ। इतिहासने लुईको "पुण्यात्मा"की उपाधि प्रदान की है। लुईने थोड़े ही दिन राज किया था कि उसका यह विचार हुआ कि राज्यका बँटवारा अपने लड़कोंमें किस प्रकार करूँ कि आपसका झगड़ा मिट जाय। लड़के उसके बड़े उत्पाती थे, राज-विद्रोहका झंडा बार-बार उठाया करते थे। तब राजाने घबड़ाकर राज्यका बँटवारा कर दिया। पर इससे कुछ भी शान्ति न हुई।

संवत् ८९७ (सन् ८४०) में लुईके मरनेके पश्चात् उसके द्वितीय पुत्र जर्मन लुईने बावेरिया प्रदेशको अपने हाथमें कर लिया और समय-समयपर जितने प्रदेश जर्मनीमें सम्मिलित थे सब उसे अपना राजा मानने लगे। कनिष्ठ पुत्र गंजा-चार्ल्स पश्चिमी फ्रांक देशीय अंशका राजा था। ज्येष्ठ पुत्र लोथेयरको इटलीका राज्य और इन दोनों भाइयोंके बीचके प्रदेशोंका राज्य तथा सम्राट्की उपाधि मिली थी। इन लोगोंकी आपसमें जो वर्डूनकी सन्धि हुई थी वह यूरोपीय इतिहासमें बड़े महत्त्वकी घटना है। सुलह होनेके पहिले जो आपसमें सलाह-मशविरे हुए थे उससे यह भली भाँति प्रतीत होता है कि तीनों भाइयोंने आपसमें निश्चय कर लिया था कि इटली लोथेयरको, आकीटेन चार्ल्सको और बावेरिया लुईको मिले। इसमें कोई झगड़ा न था। साम्राज्यके बाकी प्रदेशोंके बारेमें विपरीत मत था। यह तो उचित ही था

कि ज्येष्ठ भ्राताको सम्राट्‌की उपाधिके साथ ही साथ इटली, मध्यवर्ती फ्रांकीय प्रदेश और एक्स ला-श पेलकी राजधानी मिले। इससे रोमसे लेकर उत्तरीय हालैंडतक एक ऐसा बलिष्ठ राज्य बनाया गया था कि जिसमें भाषा अथवा आचारकी समता न थी। जर्मन लुईको बावेरियाके अतिरिक्त लाम्बर्डीके उत्तरका तथा राइनके पश्चिमका प्रदेश भी मिला था। चार्ल्‌सको आधुनिक फ्रांकतक प्रायः पूरा अंश मिला था। साथ ही साथ उत्तरमें फ्लाण्डर्स और दक्षिणमें स्पेनका उत्तरीय सीमान्त प्रदेश भी मिला था।

संवत् ९०० (सन् ८४३) की वर्डूनकी सन्धिकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसी समयसे पश्चिमी और पूर्वी फ्रांक राष्ट्रका भेद भली भाँति दिखाई पड़ने लगा। यही पश्चिमी प्रदेश आगे चलकर फ्रांस और पूर्वीय देश जर्मन होनेवाले थे। गञ्जे-चार्ल्‌सके राज्यमें जो भाषायें साधारण रीतिसे बोली जाती थीं वह सब लातीनसे निकली थीं, और आगे चलकर प्रौढ फ्रांसीसी भाषा होनेवाली थी। जर्मन लुईके राज्यमें भाषा और प्रजा जर्मन थी। इन दोनों राज्योंका मध्यवर्ती प्रदेश जो लोथेयरके हाथमें आया था वह लोथेयरके राज्यके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसीसे लोथरिंगिया और फिर लोरेन नाम निकला है। यह स्मरणीय बात है कि इसी मध्य प्रदेशके लिए कितनी ही बार फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हुआ और वह युद्ध आजतक नहीं मिटा।

एक बात और स्मरण रखने योग्य है कि फ्रांस और जर्मन भाषामें जो भेद आरम्भ हो चुका था उसका एक उदाहरण निम्नलिखित घटनाओंसे मिलता है। संवत् ८९९ (सन् ८४२) में जब वर्डूनकी सन्धि होनेवाली ही थी उसीके पहिले दोनों छोटे भाइयोंने सर्वसाधारणके सामने एक विशेषरूपसे यह प्रतिज्ञा की कि हम दोनों एक दूसरेको ज्येष्ठ भ्राता लोथेयरके आक्रमणसे बचावेंगे। पहिले दोनों भाइयोंने अपने-अपने सिपाहियोंको पृथक्-पृथक् कर उन्हींकी भाषामें व्याख्यान दिये जिसमें कहा कि, "यदि मैं अपने भाईको त्याग दूँ तो तुम लोग हमें भी त्याग देना।" इसके उपरान्त लुईने उस समयकी फ्रान्सीसी भाषामें तथा चार्ल्‌सने उस समयकी जर्मन भाषामें शपथ खायी, जिससे कि एक दूसरेके सिपाही इन्हें समझ सकें। इस शपथ-की भाषा परीक्षाके योग्य है, अबतक फ्रान्सीसी या जर्मन भाषा लिखी नहीं जाती थी, क्योंकि वे स्वयं नितान्त बाल्यावस्थामें थीं। जितने लोग लिखनेकी शक्ति रखते थे, वे अपनी मातृ-भाषामें न लिखकर लातीनमें ही लिखा करते थे। इन्हीं तुच्छ प्राकृत भाषाओंसे आज विशाल सर्वसम्मानित फ्रान्सीसी और जर्मन भाषाएँ निकली हैं।

संवत् ९१२ (सन् ८५५) में जब लोथेयरका देहान्त हुआ तो वह अपने राष्ट्र

अर्थात् इटली तथा मध्य-प्रदेशको अपने तीनों लड़कोंके लिए छोड़ गया। पर संवत् ९२७ (सन् ८७०) तक इनमेंसे दोनों भाइयोंका देहान्त हो गया, उनके दोनों चाचा गन्जे-चार्ल्स और लुईने चुपचाप मध्य प्रदेशको अपने हाथमें ले लिया और उसका बँटवारा आपसमें मर्सेनकी सन्धिके अनुसार कर लिया। लोथेयरके अवशिष्ट पुत्रको तो उन्होंने इटलीका राज्य तथा सम्राट्की पदवी दी। वस्तुतः एक सौ वर्ष-तक सम्राट्की पदवी केवल नाममात्रकी थी। उसका अधिकार कुछ न था। इस सन्धिका फल यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप तीन बड़े खण्डोंमें विभाजित हो गया। वे इस समयमें फ्रांस, जर्मनी, इटलीके बड़े राष्ट्रोंका रूप धारण किये हुए हैं।

जर्मन लुईका उत्तराधिकारी उसका बेटा मोटा चार्ल्स था। संवत् ९४१ (सन् ८८४) में गन्जे-चार्ल्सके सब पुत्र-पौत्रोंकी मृत्यु हो जानेसे उनके वंशका प्रतिनिधि केवल एक पांच वर्षका लड़का रह गया था पश्चिमी फ्रांकीय राष्ट्रके महाजनोंने मिलकर मोटे चार्ल्सको राजा बनानेके लिए निमन्त्रित किया। इस प्रकारसे शार्लमेन का पूरा राज्य फिर थोड़े दिनोंके लिए एक ही राजाके अधीन हुआ।

मोटा चार्ल्स अपनी स्थूलताके कारण सदा बीमार रहता था, अपने बड़े और विस्तृत साम्राज्यके शासन और रक्षामें सर्वथा असमर्थ था। उत्तरीय-खंड-निवासी नार्मन लोग जब साम्राज्यपर आक्रमण करने लगे तो इसने अपनी बड़ी कायरता प्रकट की। जिस समय पारिसका काउण्ट ओडो इसके विरुद्ध अपने नगरकी रक्षा करनेके लिए बड़ी वीरतासे यत्न कर रहा था, उस समय राजाने उसकी सहायताके लिए अपनी सेनाको न भेजकर शत्रुओंको बहुत-सा धन दे उनसे हट जानेकी प्रार्थना की। इसके उपरान्त बरगंडीमें वास करनेके लिए उन्हें इजाजत दी गयी, जहाँ उन्होंने मनमाना लूट-मार मचाना आरम्भ किया। इस प्रकार घृणित और लज्जास्पद कार्य करनेसे पश्चिमके फ्रांकीय महाजनगण बहुत कुपित हुए और उसके भतीजे वीर आर्नुल्फ़के साथ उन सबोंने मोटे चार्ल्सको राज्यसे च्युत करनेका षड्यन्त्र रचा। संवत् ९४४ (सन् ८८७ में वह राज्यसे हटा दिया गया। आर्नुल्फ़ राज-सिंहासनपर बैठा और उसने सम्राट्की उपाधि धारण की। परन्तु वह अपना अधिकार सारे फ्रांकीय राज्यपर न जमा सका। इसलिए साम्राज्यमें नाम-मात्रकी भी एकता न रही। बहुतसे छोटे छटे राज्य स्थापित हो गये। जैसे मनुष्य-के हृदयकी दुर्बलताके साथ ही साथ सब अंग शिथिल होने लगते हैं उसी प्रकार जब राष्ट्रका हृदयस्वरूप राजा ही बलहीन होने लगता है तब राष्ट्रके सब अंगोंका शिथिल हो जाना साधारण था, जहाँ जो बलवान होता है वह स्वतन्त्र राजा बन बैठता है। इसी प्रकार मोटे चार्ल्सके ही समयसे साम्राज्यके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें

कि ज्येष्ठ भ्राताको सम्राट्की उपाधिके साथ ही साथ इटली, मध्यवर्ती फ्रांकीय प्रदेश और एक्स ला-श पेलकी राजधानी मिले। इससे रोमसे लेकर उत्तरीय हालैंडतक एक ऐसा बलिष्ठ राज्य बनाया गया था कि जिसमें भाषा अथवा आचारकी समता न थी। जर्मन लुईको बावेरियाके अतिरिक्त लाम्बर्डीके उत्तरका तथा राइनके पश्चिमका प्रदेश भी मिला था। चार्ल्सको आधुनिक फ्रांकतक प्रायः पूरा अंश मिला था। साथ ही साथ उत्तरमें फ्लाण्डर्स और दक्षिणमें स्पेनका उत्तरीय सीमान्त प्रदेश भी मिला था।

संवत् ९०० (सन् ८४३) की वर्डूनकी सन्धिकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसी समयसे पश्चिमी और पूर्वी फ्रांक राष्ट्रका भेद भली भाँति दिखाई पड़ने लगा। यही पश्चिमी प्रदेश आगे चलकर फ्रांक और पूर्वीय देश जर्मन होनेवाले थे। गञ्जे-चार्ल्सके राज्यमें जो भाषायें साधारण रीतिसे बोली जाती थीं वह सब लातीनसे निकली थीं, और आगे चलकर प्रौढ फ्रांसीसी भाषा होनेवाली थी। जर्मन लुईके राज्यमें भाषा और प्रजा जर्मन थी। इन दोनों राज्योंका मध्यवर्ती प्रदेश जो लोथेयरके हाथमें आया था वह लोथेयरके राज्यके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसीसे लोथरिंगिया और फिर लोरेन नाम निकला है। यह स्मरणीय बात है कि इसी मध्य प्रदेशके लिए कितनी ही बार फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हुआ और वह युद्ध आजतक नहीं मिटा।

एक बात और स्मरण रखने योग्य है कि फ्रांस और जर्मन भाषामें जो भेद आरम्भ हो चुका था उसका एक उदाहरण निम्नलिखित घटनाओंसे मिलता है। संवत् ८९९ (सन् ८४२) में जब वर्डूनकी सन्धि होनेवाली ही थी उसीके पहिले दोनों छोटे भाइयोंने सर्वसाधारणके सामने एक विशेषरूपसे यह प्रतिज्ञा की कि हम दोनों एक दूसरेको ज्येष्ठ भ्राता लोथेयरके आक्रमणसे बचावेंगे। पहिले दोनों भाइयोंने अपने-अपने सिपाहियोंको पृथक्-पृथक् कर उन्हींकी भाषामें व्याख्यान दिये जिसमें कहा कि, "यदि मैं अपने भाईको त्याग दूँ तो तुम लोग हमें भी त्याग देना।" इसके उपरान्त लुईने उस समयकी फ्रान्सीसी भाषामें तथा चार्ल्सने उस समयकी जर्मन भाषामें शपथ खायी, जिससे कि एक दूसरेके सिपाही इन्हें समझ सकें। इस शपथ-की भाषा परीक्षाके योग्य है, अबतक फ्रान्सीसी या जर्मन भाषा लिखी नहीं जाती थी, क्योंकि वे स्वयं नितान्त बाल्यावस्थामें थीं। जितने लोग लिखनेकी शक्ति रखते थे, वे अपनी मातृ-भाषामें न लिखकर लातीनमें ही लिखा करते थे। इन्हीं तुच्छ प्राकृत भाषाओंसे आज विशाल सर्वसम्मानित फ्रान्सीसी और जर्मन भाषाएँ निकली हैं।

संवत् ९१२ (सन् ८५५) में जब लोथेयरका देहान्त हुआ तो वह अपने राष्ट्र

अर्थात् इटली तथा मध्य-प्रदेशको अपने तीनों लड़कोंके लिए छोड़ गया। पर संवत् ९२७ (सन् ८७०) तक इनमेंसे दोनों भाइयोंका देहान्त हो गया, उनके दोनों चाचा गन्जे-चार्ल्स और लुईने चुपचाप मध्य प्रदेशको अपने हाथमें ले लिया और उसका बँटवारा आपसमें मर्सेनकी सन्धिके अनुसार कर लिया। लोथेयरके अवशिष्ट पुत्रको तो उन्होंने इटलीका राज्य तथा सम्राट्की पदवी दी। वस्तुतः एक सौ वर्ष तक सम्राट्की पदवी केवल नाममात्रकी थी। उसका अधिकार कुछ न था। इस सन्धिका फल यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप तीन बड़े खंडोंमें विभाजित हो गया। वे इस समयमें फ्रांस, जर्मनी, इटलीके बड़े राष्ट्रोंका रूप धारण किये हुए हैं।

जर्मन लुईका उत्तराधिकारी उसका बेटा मोटा चार्ल्स था। संवत् ९४१ (सन् ८८४) में गन्जे-चार्ल्सके सब पुत्र-पौत्रोंकी मृत्यु हो जानेसे उनके वंशका प्रतिनिधि केवल एक पांच वर्षका लड़का रह गया था पश्चिमी फ्रांकीय राष्ट्रके महाजनोंने मिलकर मोटे चार्ल्सको राजा बनानेके लिए निमन्त्रित किया। इस प्रकारसे शार्लमेनका पूरा राज्य फिर थोड़े दिनोंके लिए एक ही राजाके अधीन हुआ।

मोटा चार्ल्स अपनी स्थूलताके कारण सदा बीमार रहता था, अपने बड़े और विस्तृत साम्राज्यके शासन और रक्षामें सर्वथा असमर्थ था। उत्तरीय-खंड-निवासी नार्मन लोग जब साम्राज्यपर आक्रमण करने लगे तो इसने अपनी बड़ी कायरता प्रकट की। जिस समय पारिसका काउण्ट ओडो इसके विरुद्ध अपने नगरको रक्षा करनेके लिए बड़ी वीरतासे यत्न कर रहा था, उस समय राजाने उसकी सहायताके लिए अपनी सेनाको न भेजकर शत्रुओंको बहुत-सा धन दे उनसे हट जानेकी प्रार्थना की। इसके उपरान्त बरगंडीमें वास करनेके लिए उन्हें इजाजत दी गयी, जहाँ उन्होंने मनमाना लूट-मार मचाना आरम्भ किया। इस प्रकार घृणित और लज्जास्पद कार्य करनेसे पश्चिमके फ्रांकीय महाजनगण बहुत कुपित हुए और उसके भतीजे वीर आर्नुल्फ़के साथ उन सबोंने मोटे चार्ल्सको राज्यसे च्युत करनेका षड्यन्त्र रचा। संवत् ९४४ (सन् ८८७ में वह राज्यसे हटा दिया गया। आर्नुल्फ़ राज-सिंहासनपर बैठा और उसने सम्राट्की उपाधि धारण की। परन्तु वह अपना अधिकार सारे फ्रांकीय राज्यपर न जमा सका। इसलिए साम्राज्यमें नाममात्रकी भी एकता न रही। बहुतसे छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गये। जैसे मनुष्यके हृदयकी दुर्बलताके साथ ही साथ सब अंग शिथिल होने लगते हैं उसी प्रकार जब राष्ट्रका हृदयस्वरूप राजा ही बलहीन होने लगता है तब राष्ट्रके सब अंगोंका शिथिल हो जाना साधारण था, जहाँ जो बलवान होता है वह स्वतन्त्र राजा बन बैठता है। इसी प्रकार मोटे चार्ल्सके ही समयसे साम्राज्यके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें

छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न होने लगे। इनमेंसे कुछ तो सीधे राजाकी पदवी लेने लगे और अन्य लोग केवल अधिकारसे ही सन्तुष्ट रहे।

जिन जर्मन जातियोंको शार्लमेनने बड़े यत्नसे अपने राज्यमें सम्मिलित किया था, वे सबके सब स्वतन्त्र होने लगे। इस प्रकारके राष्ट्र-विप्लवका सबसे अधिक बुरा प्रभाव इटलीपर पड़ा।

शार्लमेनके साम्राज्यपर जो आपत्ति आयी उसके कई कारण थे। सबसे पहला कारण तो यह था कि उसके उत्तराधिकारी इतने योग्य न थे कि वे उसके राष्ट्रकी रक्षा कर सकें। ऐसे समयमें जब आधुनिक रूपमें राष्ट्रको सुसज्जित करनेकी सामग्री न थी उस समय राजाके बल-पराक्रम इत्यादिकी आज-कलसे अधिक आवश्यकता पड़ती थी। इन विचारोंसे यही स्थिर होता है कि इस साम्राज्यका अधःपतन विशेषकर इस कारण हुआ कि योग्य राजा न थे। तृतीय कारण यह था कि साम्राज्यके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें आने-जानेके लिए उचित सामग्री न थी। रोमन साम्राज्यके समयकी सब बड़ी सड़कें अब नष्टप्राय हो गयी थीं। राजाकी ओरसे उनकी मरम्मतका प्रबन्ध न था। इसके अतिरिक्त अभीतक सिक्का बहुत नहीं चला था। चाँदी-सोनेका पूर्ण अभाव था। इस कारण कर्मचारियोंको वेतनमें सिक्का नहीं दिया जा सकता था। बड़ी सेना भी नहीं रखी जा सकती थी जिससे कि बाहरके आक्रमणों और भीतरके उपद्रवोंसे राष्ट्रकी रक्षा की जा सके। फ्रांकीय साम्राज्यका नाश बाहरी आक्रमणके कारण जल्द हो जाय इस कारण चतुर्दिकसे शत्रुओंने आक्रमण कर दिया। उत्तरसे डेनमार्क, नार्वे, स्वीडनसे नार्मन (उत्तरीय) नामकी लुटेरी जातियाँ टूट पड़ीं। वे समुद्रसे नावों द्वारा आती थीं, बड़ी बहादुरीसे समुद्रमें चलती थीं, नदियोंके मुहानेमें घुसकर नदीके किनारोंपर बसे हुए नगरोंको लूटती थीं और पारिस नगरीतकमें पहुँचने लगीं। यह तो पश्चिमकी कथा हुई। अब पूर्वमें स्लाव जातियोंसे जर्मनोंको लगातार युद्ध करना पड़ा। इसके अतिरिक्त हंगेरियन नामकी भयंकर जाति मध्य जर्मनी और उत्तरीय इटलीपर धावा करने लगी। दक्षिणसे मुसलमानोंने आक्रमण किया। सं० ८८४ (सन् ८२७) में इन्होंने सिसली प्रदेश जीत लिया। ये दक्षिण इटली और दक्षिण फ्रांसको सदा भयभीत रखते थे। रोमनगरीको भी इन्होंने नहीं छोड़ा था।

बलवान राजा और उसके साथ बलवती सेनाके न होनेके कारण साम्राज्यके प्रत्येक जिले और प्रान्तको अपनी ही रक्षाके लिए पृथक्-पृथक् प्रबन्ध करना पड़ता था। बहुतसे प्रदेशोंके काउंट, मारग्रेव, बिशप और अन्य जमींदार लोग अपने असामी, प्रजा आदिके रक्षणार्थ उचित प्रबन्ध करते थे और शत्रुओंके आक्रमणोंसे

उन्हें बचाते थे व दुर्ग भी बनवाते थे जिनमें आवश्यकता पड़नेपर आस-पासके लोग शरण ले सकें। इस प्रकारसे बहुत काउंट स्वतन्त्र राजा बन बैठे। यही कारण था कि जो कुछ राज्य-प्रबन्ध था वह राजा या राज-कर्मचारियोंके द्वारा नहीं होता था, किन्तु बड़े-बड़े जमींदार और बलवान ठाकुरोंके द्वारा होता था। यदि उस समय वहाँ कोई प्रतापी बलवान राजा होता तो इन ठाकुरोंको बड़े-बड़े दुर्ग कदापि न बनवाने देता। परन्तु समयके फेरसे चारों ओर दुर्ग बन गये और उन स्वार्थी ठाकुरोंने अपनेको राजासे स्वतन्त्र करके मध्य युगके दुर्ग तैयार किये जो अबतक विद्यमान हैं। यूरोपके पथिक-वर्ग इन्हें देखकर अब भी चकित होते हैं। ये दुर्ग केवल शान्तरूपसे वास करनेके ही लिए नहीं बने थे, किन्तु इनके स्वामी अपने योग्य अनुचरोंके साथ रहते थे। यदि किसी पड़ोसके ठाकुरपर धावा करना होता था, तो इन्हीं लोगोंको अपने साथ ले जाते थे। उनपर जो कोई धावा करता था तो वे ही लोग उनकी रक्षा करते थे। इन्हीं दुर्गोंमें सुरंगे होती थीं। इनमें जिन लोगोंसे स्वामी अप्रसन्न होता था वे बन्द किये जाते थे। इन सब बातोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये ठाकुर लोग उस समय हर प्रकारसे स्वतन्त्र रहे। मार-काट, लड़ना-भिड़ना आदि सब बातोंमें वे केवल अपने बाहुबलके पराक्रमपर भरोसा करते थे। किसी अन्यका प्रभुत्व नहीं मानते थे। इसी प्रकार ठकुरँती अथवा क्षत्रिय राजतन्त्र (फ़्युडेलिज्म)का प्रादुर्भाव हुआ। बड़े-बड़े जमींदार ठाकुर लोग किस प्रकार उत्पन्न हुए यह बात जानने योग्य है।

शार्लमेनके समय पश्चिमी यूरोप बड़े-बड़े इलाकोंमें विभक्त था। इन सब इलाकोंपर जोतने-बोनेका काम असामी लोग किया करते थे। ये असामी लोग कभी भूमिको नहीं छोड़ते थे। सदा जमींदारके अधीन रहा करते थे। अपने स्वामीके सीर (वह भूमि जो स्वामी अपने प्रयोजनके लिए रखता था) का भी सब काम ये ही लोग करते थे। जितनी आवश्यकतायें जमींदारकी होती थीं, उन्हें भी ये ही पैदा करते थे। बाहरसे किसी वस्तुके मँगानेकी आश्यकता नहीं पड़ती थी। इन इलाकोंका मालिक अपना समय ठाकुरोंसे युद्ध करनेमें ही व्यतीत करता था।

शार्लमेनके समयसे यह साधारण नियम चला आता था कि धर्मशालाओं, गिरजों तथा कभी-कभी विशेष व्यक्तियोंको जो सम्पत्ति दी गयी थी वह राज-कर्मचारियोंके निरीक्षणसे बरी रहे. राज-कर्मचारीगण जिन्हें मुकद्दमोंके तय करनेका भार, जुर्माना करने अथवा रातको किसी मकानमें निवास करनेका अधिकार दिया गया था, वे भी बरी की हुई भूमिपर नहीं जा सकते थे। बरी होनेका अधिकार लोग

अध्याय ८

क्षत्रिय-राजतन्त्र (फ्यूडेलिज़्म)

उस समयकी अवस्था देखकर यह प्रतीत होता है कि क्षत्रिय-राजतन्त्रकी विशेष संस्थाका उत्पन्न होना एक प्रकारसे स्वाभाविक ही था। यह कोई नयी रीति न थी; पर पुरानी कई रीतियोंने मानों मिलकर समयके अनुसार यह रूप धारण किया था। प्रथम तो पहिलेसे ही यह नियम चला आता था कि ज़मींदार असामीको इस प्रकारसे ज़मीन प्रदान करता था कि नामका स्वामी तो वह स्वयं रहता था, परन्तु वास्तवमें सब स्वत्व असामीको मिल जाता था। दूसरे, जमींदार और असामीके परस्पर सम्बन्धका विचार बड़ा पुराना था। रोम-साम्राज्यके टूटनेके समय जब बहुत-सी बाहरी जातियाँ साम्राज्यके प्रदेशोंपर दखल करने लगीं, उस समय छोटे-छोटे ज़मींदार अपने रक्षणार्थ अपनी भूमि अपनेसे अधिक बलवान जमींदारोंको सुपुर्द करने लगे। समयके अस्त-व्यस्त होनेके कारण काम करनेके लिए मज़दूर बहुत कम मिलते थे, इस कारण जिन लोगोंके पास ज़मीन सौंपी गयी थी वे पुराने स्वामीको ही जमीनके जोतने-बोनेका अधिकार दे देते थे। जैसे-जैसे उत्पात बढ़ता गया, वैसे-वैसे छोटे जमींदारगण अपनी-अपनी रक्षा करनेमें नितान्त असमर्थ होते गये। इन लोगोंने मिलकर एक नयी रीति निकाली। इन लोगोंने अपनी ज़मीन धर्मार्थ धर्मशालाओंको सुपुर्द कर दी। धर्मशालाके संन्यासियोंने प्रसन्नतापूर्वक इन्हें लेना स्वीकार कर लिया। आपसका समझौता यह था कि जोतने-बोनेका काम तो पुराने ही स्वामी करेंगे, परन्तु जमींदारकी हैसियतसे धर्मशालाकी ओरसे उनकी रक्षा होगी। इससे भूमिका फल सब पुराने ही अधिकारीको मिलता था। केवल कुछ लगान धर्मशालाको दे देना पड़ता था। इस प्रकारसे बहुत सी भूमि चर्चके हाथमें आ गयी। आगे चलकर जब विशेष कारणोंसे चर्च पूर्णतया इन भूमि-प्रदेशोंका अधिकारी बन गया तो ऐसी शर्तोंपर स्वयं वह जमीन अन्य लोगोंको प्रदान करने लगा। लगानकी रीतिको उस समयकी भाषामें "बेनीफ़ीजियम" कहते हैं।

बेनीफ़ीजियमके साथ ही साथ एक दूसरी रीति और निकाली गयी। रोम-साम्राज्यके पिछले दिनों यह नियम था कि जिस मनुष्यके पास भूमि नहीं रहती थी वह किसी धनी शक्तिशाली महाजनका अनुचर हो जाया करता था। इस प्रकार उसे भोजन और वस्त्रादि मिलते थे। इसी प्रकारसे उसकी रक्षा होती थी। बन्धन

केवल इतना ही होता था कि स्वामी जिससे प्रेम करता था उसे भी उससे स्नेह निबाहना पड़ता था, तथा जिससे शत्रुता करता था उससे उसे भी शत्रुता रखनी पड़ती थी। आगन्तुक जर्मन जातियोंमें ऐसी ही एक रस्म थी। इससे यह कहना कठिन हो गया है कि पीछेसे जो जमींदारीके नियम प्रचलित पाये जाते हैं उनपर रोमन रीतियोंका अधिक प्रभाव है या जर्मन लोगोंका। जर्मन लोगोंमें यह नियम था कि बहुतसे योद्धा किसी एक सर्दारके आज्ञाकारी होनेकी प्रतिज्ञा करते थे। उसके बदलेमें सर्दार वचन देता था कि वह अपने आज्ञाकारी विश्वासपात्र अनुचरोंकी रक्षा सदा करता रहेगा। इस समझौतेका नाम 'कामिटेटस' था। स्वामी और सेवक दोनों इस सम्बन्धको बहुमान्य, कीर्तिवर्द्धक समझते थे। धार्मिक संस्कारोंके साथ ही यह सम्बन्ध स्थापित होता था। मध्ययुगमें स्वामी-सेवक अर्थात् जमींदार-असामी-का जो परस्परका सम्बन्ध पाया जाता है, उसमें बेनीफ़ीजियम और कामिटेटस दोनों रीतियाँ मिली-जुली थीं। शार्लमेनके मरणोपरान्त जबसे यह नयी रीति निकली कि लोग अपनी जमीन औरोंको इस समझौतेपर दें कि असामी सदा स्वामि-भक्त बना रहेगा, तबसे फ्युडल रीति जारी हो गयी। यह विचार करना भूल है कि किसी राजाने अपनी राजाज्ञासे फ्युडेलिज्मकी रीति स्थापित की अथवा जमींदार लोगोंने मिल-जुलकर आपके समझौतेसे इसे जारी किया हो। वास्तवमें यह नियम बिना किसीके चलाये या विचार किये धीरे-धीरे स्वयं ही चल निकला, क्योंकि जो दशा उस समय यूरोपकी हो रही थी उसमें सबसे सरल और स्वाभाविक यही नियम ज्ञात होता है। बड़े-बड़े ताल्लुकोंके मालिकोंने जब देखा कि यदि हम अपनी जमीन बहुतसे असामियोंमें बांट दें जो हम लोगोंके साथ रणमें चलें, हमारे दर्बारमें आवें, हमारे दुर्गकी रक्षा करें और संकटके समय हमें सहायता दें, तो हमें बड़ी सुविधा होगी। उपर्युक्त शर्तोंपर जो जमीन दी जाती थी उसे "फ़ीफ़" कहते थे। फ़ीफ़ पानेवाला उन्हीं शर्तोंपर अपनी जमीनका कुछ हिस्सा दूसरोंको देकर स्वयं भी मालिक हो जाता था। इसी प्रकारसे लगातार स्वामी, सेवक, जमींदार और असामीकी सीढ़ी लग गयी। "फ्युडेलिज्म" स्थापित होनेका पहला नियम यही था। दूसरा यह कि छोटे-छोटे भूप्रदेशोंके स्वामी जो अपनेको बदमाशोंसे सुरक्षित नहीं रख सकते थे, उनके लिए यही श्रेयस्कर था कि वे अपनी जमीन किसी शक्तिशाली निकटस्थ जमींदारको दे देते। फिर फ़ीफ़के तौरपर वापस भी कर लेते थे। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट होता है कि फ्युडेलिज्मकी रीति ऊपर तथा नीचे सभी तरफसे स्थापित हो रही थी।

बड़े-बड़े जमींदार अपनी भूमिके टुकड़े नये-नये असामियोंको दे देते थे। छोटे-छोटे जमींदार किसी बड़े जमींदार अथवा धर्मशालासे फ्यूडेल सम्बन्ध कर लेते थे और उनके असामी हो जाते थे। अथवा कोई जमींदार किसीके कार्यसे प्रसन्न

होकर या किसीको अनुचर बनानेकी अकांक्षासे जागीरके तौरपर भूमि दे देता था। इन्हीं सब भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे फ्यूडेलिज्म जारी हुआ था। तेरहवीं शताब्दीतक फ्रांस देशमें इस साधारण नियमका प्रचार हुआ। पश्चात् पश्चिमी यूरोपके सब देशों-में यह प्रचलित हो गया। यह बात स्मरण रखनेके योग्य है कि फीफ़ जो दी जाती थी वह केवल असामीके जीवनपर्यन्ततकके लिए ही न थी। किन्तु असामीके कुलमें पैतृक सम्पत्तिकी नाई समझी जाती थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी जबतक कि असामी अपने स्वामीका विश्वासपात्र समझा जाता था और नियमित रूपसे उसका कार्य किया करता था तबतक न उसे और न उसके वंशजको उस ज़मीनसे निकाला जा सकता था। राजा और जमींदार इस बातको समझते थे कि सदाके लिए अपनी भूमिको असामियोंके हाथ दे देनेसे हमारा बड़ा नुकसान है, परन्तु साथ ही साथ लोग यह भी मानते थे कि पिताका हक़ पुत्रको अवश्य मिलना चाहिये। इसका परिणाम यह हुआ कि वास्तवमें स्वामीके हाथ भूमि तो कुछ न रह गयी, केवल अपने असामियोंसे सेवा करा लेनेका अधिकार ही रह गया। सम्पूर्ण भूमि असामियोंकी ही हो गयी।

राजाके बड़े-बड़े असामी स्वयं राजा बन बैठे। राजधानीमें बैठे हुए सम्राट्की उन्हें कुछ परवाह न थी। उनके असामियोंका सम्राट्से कोई पारस्परिक सम्बन्ध न रहनेके कारण सम्राट्का दबाव उनपर कुछ न था। इसी कारण फ्रांस और जर्मनीके राजा नाममात्रके राजा थे, परन्तु उनकी प्रजा उन्हें कर कुछ भी नहीं देती थी और न उनका आधिपत्य ही मानती थी। इन सम्राटोंका अधिकार केवल इतना ही था कि वे अपने विशेष असामियोंसे लगान ले सकते थे और उनसे सेवा करा सकते थे। परन्तु साधारण जनतापर उनका अधिकार बहुत ही कम था। वे असामी अपने ही अपने जमींदारको स्वामी मानते थे।

फ्यूडेलिज्म सम्बन्धी रीतियाँ सब जगह एक ही प्रकार की न थीं। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भेद था, परन्तु कुछ साधारण विषय इसके नीचे लिखे जाते हैं। इस सम्बन्धमें मुख्य बात फ़ीफ़ थी। इसी शब्दसे फ़्यूडल-फ़्यूडेलिज़्म आदि शब्द निकले हैं। फ़ीफ़ उस भूमिका नाम था जो स्वामी दूसरेको कुछ शर्तोंपर देता था। जो भूमिको लेता था उसे आवश्यक होता था कि स्वामीके सामने घुटनेके बल बैठकर स्वामीके हाथमें अपना हाथ रखकर प्रतिज्ञा करे कि, "अमुक फ़ीफ़के लिए मैं आपका असामी होता हूँ। सदा सच्चे भावसे मैं आपकी सेवा करता रहूँगा।" इसके उपरान्त स्वामी उसकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करता हुआ उसका चुम्बन करता था और ज़मीनपरसे उठाकर उसे खड़ा करता था।

अंजील अथवा अन्य धार्मिक चिह्न हाथमें लेकर असामी अपने कर्तव्योंका यथार्थ पालन करनेकी प्रतिज्ञा करता था। हाथमें हाथ रखनेका नियम बहुत ही

आवश्यक समझा जाता था। जो असामी इसको नहीं करता था वह स्वामिद्रोही समझा जाता था। असामियोंके निम्नलिखित कर्तव्य थे—

(१) किसी प्रकार किसी समय स्वामीका विरोध न करना।

(२) उनको हानि न पहुँचाना।

(३) रणमें सदा स्वामीका साथ देते रहना।

(४) चालीस दिनतक रणकी सेवा अपने ही कामसे करना।

जब यह देखा गया कि केवल थोड़े ही दिनकी सेवा लेनेमें बड़ी असुविधा है तो आगे चलकर कुछ ही लोगोंको फ़ीफ़ दिये जानेका नियम हो गया। उनको आयका प्रबन्ध रखनेके लिए आज्ञा दी गयी। उनका कर्तव्य यह रखा गया कि स्वामीको जभी आवश्यकता पड़े तभी उनके साथ रणमें चलने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहें। रण-सेवाके अतिरिक्त या जब स्वामीकी आज्ञा हो तभी उसके दर्बारमें असामी-का तुरन्त उपस्थित होना आवश्यक था, और उसका कर्त्तव्य था कि दर्बारमें वह अन्य असामियोंके अभियोगोंको सुनकर अपनी राय दे, उसमें जब भी उससे सम्मति माँगी जाय तो वह स्वामीको यथार्थ सम्मति दे और सब उत्सवोंपर वह अपने स्वामीके साथ उपस्थित रहे। कुछ अवसरोंपर उसे अपने धनसे भी स्वामीकी सहायता करनी पड़ती थी, जैसे कि कन्याके विवाहमें, या लड़केको नाइट (धार्मिक संस्कार सहित योद्धा) बनानेमें, अथवा जब स्वामी कैद हो जाय. स्वामीको छुड़ानेके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारकी फ़ीफ़ोंके भिन्न भिन्न नियम थे काउंट या ड्यूककी फ़ीफ़ोंमें तो असामी स्वतन्त्र राजा होता था। परन्तु कुछ साधारण कृषकोंकी फ़ीफ़के अन्य ही नियम थे।

उस समयके सर्दारों अथवा महाजनोंके जमींदार असामियोंसे केवल ऐसे कार्य कराते थे जो उनके योग्य होते थे। परन्तु साधारण कृषकोंके कर्तव्य पृथक् ही होते थे। सर्दार या महाजनके लिए यह आवश्यक था कि बिना अपने हाथोंसे परिश्रम किये कृषकोंके पास इतनी आय हो कि वे अपने और अपने घोड़ेको सर्वदा सुसज्जित रख सकें। महाजन और कृषकमें उच्च-नीच जातिका अन्तर माना जाता था। उच्च जातिवालोंके अधिकार विशेष थे। वे अपने हाथसे कृषि आदिका कार्य नहीं करते थे। महाजन भी कई श्रेणीके हुआ करते थे। परन्तु उनका अन्तर बतलाना बड़ा ही कठिन है। यह भी कह देना पर्याप्त नहीं है कि किसी एक श्रेणीवालेके पास अधिक और दूसरेके पास कम धन होता था। साधारण रीतिसे यह विचार करना चाहिये कि ड्यूक, काउंट, बिशप और एबट ये सब ऐसे महाजन थे जिन्होंने स्वयं सम्राट्से फ़ीफ़ पाये हुए थे और उच्च श्रेणीके महाजन समझे जाते थे। इनके पश्चात् दूसरी श्रेणीके महाजन होते थे। फिर साधारण नाइटगण होते थे।

भूमिके प्रभुत्वके नियम इतने जटिल थे और समाजका जीवन इसपर निर्भर होनेके कारण यह आवश्यक था कि हर 'एक जमींदार अपनी भूमिका चिट्ठा रखे। अब ऐसे चिट्ठे बहुत कम मिलते हैं। पर इस समय एक-आध चिट्ठे हाथ लगे हैं। उनसे विदित होता है कि उस समय यूरोपको भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंमें विभक्त करना नितान्त असम्भव था, क्योंकि एक जमींदारसे दूसरे जमींदार और एक राजासे दूसरे राजाकी भूमि ऐसी सम्बद्ध तथा सम्मिलित हो गयी थी कि हर एक देशको विभक्त करना बड़ा ही असम्भव था। किस प्रकारसे अपनी जमींदारियोंको बढ़ा-बढ़ाकर कुछ लोगोंने राज्य स्थापित किया था उसका एक उदाहरण लीजिये। ग्यारहवीं शताब्दी-में ट्रायका काउंट रार्बट फ्रांसके राजाके विरुद्ध युद्ध करनेके कारण मारा गया। इसकी रियासत इसके जामाताके हाथ लगी जिसके पास पहिलेसे शातोथियरी और मोकी रियासतें थीं। इसका बेटा इन तीनों रियासतोंका मालिक हुआ। इसने आसपासकी अन्य रियासतोंको जबर्दस्ती अपने हाथमें कर लिया। इसके वंशज बराबर अपनी उन्नति करते गये। दो सौ वर्षके भीतर इन लोगोंने जमीनका एक बहुत बड़ा चक्र अपने हाथ कर लिया। यहाँतक कि शाम्पाइन भूप्रदेशके काउंट हो गये। इसी प्रकारसे अन्य रियासतें भी उत्पन्न हुईं। कुछ सौभाग्यसे, कुछ बलात्कारसे और कुछ पराक्रमसे कितने ही जमींदार बहुत-सी रियासतोंको मिलाकर प्रतापी राजा हो गये। वास्तवमें फ्रांसका सम्पूर्ण राष्ट्र ही इसी प्रकार आविर्भूत हुआ है।

शाम्पाइनके काउण्टका उदाहरण इस प्रकार है। उसकी रियासत २६ जिलोंमें विभक्त थी। प्रत्येक जिलेका केन्द्र-स्थान कोई एक दृढ़ दुर्ग था। ये सब जिले दूसरे-दूसरे जमींदारोंकी फीफ़ थे। कई फीफ़ोंके लिए तो यह काउंट फ्रांसके सम्राट्का असामी था। परन्तु साथ ही और भी ९ जमींदारोंका असामी था। और कुछ जमीनके लिए बरगण्डीके ड्यूककी सेवा करनी पड़ती थी, तथा कुछके लिए रीम्सके आर्चबिशपकी और इसी प्रकार अन्य-अन्य जमींदारोंकी भी सेवा करनी पड़ती थी। नियमानुसार इसने सबसे बड़ी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि हम आप सब लोगोंकी सदा सत्यतापूर्वक सेवा करते रहेंगे। परन्तु यह बात जरा सोचने-विचारनेकी है कि यदि इन भिन्न-भिन्न जमींदारोंके परस्पर युद्ध छिड़ते तो यह काउंट किस-किसकी सेवा कर सकता था। इसी प्रकारका अस्तव्यस्त कारखाना चारों ओर प्रचलित हो रहा था। जमींदार लोग जो अपना चिट्ठा बनाते थे उसका अभिप्राय यह विदित होता है कि दूसरोंके प्रति उन लोगोंका क्या कर्तव्य है। जमींदारोंके बीच सदा आपसमें गड़बड़ मची रहती थी। प्रायः ऐसा होता था कि जमींदार और असामी दोनों किसी अन्य जमींदारके असामी हों। अथवा दो जमींदार भिन्न-भिन्न भूमिके टुकड़ोंके लिए एक दूसरे के असामी हों। यह निश्चय कर

लेना भूल है कि समाजका काम उस समय शान्तिपूर्वक चला जाता था, क्योंकि ऐसे अनिश्चित समाजकी जैसा कि फ्यूडलतन्त्रसे प्रतीत होता है, स्थिति केवल बाहुबलपर निर्भर थी। जबतक कि जमींदारोंमें यह शक्ति थी कि अपना काम वह असामियोंसे करा लें तबतक ठीक था। जहाँ जमींदारोंकी शक्ति शिथिल हुई वहाँ उनके अधिकार अन्य लोग छीनना आरम्भ कर देते थे। इस कारण उस समय आपसका युद्ध एक साधारण बात थी। सब महाजन जमींदार जिनके पास भूमिका प्रभाव था और जिनके हाथमें राज्यकार्यका अधिकार था, सदा लड़ने-भिड़नेको उद्यत रहा करते थे। प्रकृति, स्वार्थ अथवा परस्पर अधिकारोंका विभाग न होनेके कारण उस समयके महाजन जमींदार सदा युद्धके लिए तत्पर रहा करते थे। यह तो बहुत साधारण बात थी कि युद्धोत्साही असामी अपने सब स्वामियोंसे एक बार लड़ आवें। फिर आसपासके बिशप और एबटसे लड़ने जायँ और अन्तमें अपने ही असामीसे जाकर लड़ें। एक दूसरेकी न्यूनतासे लाभ उठानेके लिए सब लोग सदा तत्पर रहा करते थे। इसका पूरा प्रभाव गृहस्थ परिवारपर ही पड़ता था। यहाँतक कि पिता-पुत्र, भाई-भाई और चचा भतीजा, एक दूसरेसे युद्ध किया करते थे।

यों तो नियमानुसार प्रत्येक जमींदारका अधिकार था कि अपने असामियोंको यह आज्ञा दे कि लोग प्रायः अपने झगड़े बिना रक्तपातके, शान्तिपूर्वक तय कर लें, परन्तु यह केवल नियममात्र ही था। जब लोग तलवारसे ही अपना झगड़ा तय करना चाहते थे तो जमींदार क्या कर सकता था। इस कारण लोगोंकी विशेष वृत्ति यही रहा करती थी कि एक दूसरेका सिर काटते रहें। यहाँतक कि उस समयके जर्मनी और फ्रांसकी न्याय-पुस्तकोंमें पड़ोसियोंका झगड़ा उचित और स्वाभाविक माना गया था और केवल इतना आदेश था कि लोग आपसमें भलमनसाहतसे लड़ा करें।

उस समय रण तथा रक्तपातकी प्रियता इस दर्जेतक बढ़ी चढ़ी थी कि जब कोई अन्य युद्ध नहीं रहता था तो आपसमें मल्लयुद्ध किया करते थे। इन मल्लयुद्धोंमें भिन्न भिन्न जमींदारोंके अनुचरवर्ग एक दूसरेसे अखाड़ोंमें बराबर युद्ध किया करते थे।

ऐसी अवस्थाओंमें जब किसीके प्राण और सम्पत्ति सुरक्षित नहीं समझी जाती थी, उस समय कितने ही लोगोंके मनमें यह विचार उत्पन्न होता था कि इस समय शान्ति और सुनियमकी बड़ी ही आवश्यकता है। पुराने-पुराने शहरोंमें वाणिज्य-व्यवसाय तथा सभ्यता आदिकी उन्नति हो रही थी। इसलिए यह आवश्यक था कि पारस्परिक युद्ध बंद हों और राष्ट्रभरमें शान्ति हो।

धर्माध्यक्षोंकी ओरसे यह सदा यत्न किया जाता था कि रणकी प्रथा एकबारगी समाप्त हो। सब लोग सुख और शान्तिसे रहें। इस कारण चर्चकी ओरसे यह

नियम बनाया गया था कि बृहस्पतिवारसे लेकर सोमवारतक किसी प्रकार-का युद्ध न हो। जो होता हो वह भी इन दिनोंके लिए बन्द कर दिया जाय। उन लोगोंने यह भी नियम बनाया कि जितने व्रतके दिन हैं उन दिनोंमें भी युद्ध न हुआ करे। यह इस विचारसे किया गया कि बारहों मास लड़ाई न होकर कुछ दिन तो शान्तिके मिलें। चर्चने सब जमींदारोंको शपथ दिलाकर बाध्य किया कि नियमित दिनोंतक तुम लोग किसी प्रकारके रणमें भाग न लो। यदि कोई नियमके विरुद्ध आचरण करता था तो वह जातिसे बाहर कर दिया जाता था। जातिच्युत होनेसे उस समयके बड़ेसे बड़े लोग इतना भयभीत होते थे कि चर्चकी आज्ञाका पालन बड़ी सावधानीसे करते थे। १२ वीं शताब्दीमें जब "क्रूसेड" अर्थात् मुसलमानों और ईसाइयोंके झगड़े आरम्भ हुए उस समय पोपगण इसी रणप्रियताकी बदौलत असंख्य लोगोंको तुर्कोंके विरुद्ध रणमें लड़नेको भेज सके थे।

इसीके साथ-साथ फ्रांस और आंग्ल देशोंमें राजाका अधिकार विशेष बढ़नेके कारण ये सब देश सुदृढ़ राष्ट्र बनने लगे। सम्राट् यह यत्न करने लगा कि लोग आपस-के झगड़े रक्तपातसे स्वयं न तय करके राजकीय न्यायालयोंमें आकर शान्तिपूर्वक तय किया करें। कई शताब्दियोंकी परम्परागत रणप्रियताको एकाएक दूर कर देना सरल न था। यदि आगे चलकर रक्तपात कम हुआ और सभ्यता फैली तो उसका विशेष कारण यह था कि वाणिज्य और व्यवसायकी उन्नति बराबर होती गयी और साधारण लोग लड़ाकू जमींदार और महाजनोंका तिरस्कार करने लगे। उनको असभ्य और अशिष्ट मानने लगे और उनकी रणप्रियताको हर प्रकारसे रोकने लगे।

———

अध्याय ९

फ्रान्स देशका उत्कर्ष

अब जागीरदारी (फ्यूडल) के राज्यक्रमसे निकलकर आधुनिक रीतिके राष्ट्रका स्थापन बड़े महत्वकी बात है। इस कारण इतिहासवेत्ताओंको आवश्यक है कि वे फ्यूडल अराजकता और अस्तव्यस्त समाज-व्यूहनसे निकलकर आजकलके फ्रांस, जर्मनी, इगंलिस्तान, इटली आदि राष्ट्रोंका उत्कर्ष समझें और जानें कि किस प्रकारके परिवर्तन होनेसे इन लोगोंका उत्कर्ष हुआ। यह बात कह देना बहुत ही उचित है कि दो या तीन शताब्दियोंतक यूरोपका इतिहास असंख्य जमींदारोंका इतिहास है। यद्यपि सम्राट् अपने अनेक प्रतापी असामियोंसे कम पराक्रमी था, तथापि इस समयका इतिहास जानना परम आवश्यक है, क्योंकि इन सम्राटोंके ही कारण आगे चलकर सुसज्जित राष्ट्रस्थापनके रूपमें राष्ट्रीयताका विचार लोगोंके हृदयपटलपर पड़ा। फ्रांस, इंगलिस्तान आदि देशोंमें राजाके ही प्रयत्नसे राष्ट्रीयता स्थापित हुई है। हम ऊपर कह आये हैं कि संवत् २४५ में मोटे चार्ल्सको राजच्युत करके पश्चिमी फ्रांक महाजनोंने पेरिसके कांउट ओडोको राजगद्दीपर बैठाया था। यह बड़ा पराक्रमी जमींदार था। इसके पास बहुत बड़ी स्टेट थी, परन्तु सब कुछ सामग्री होते हुए भी दक्षिणमें कोई उसका आधिपत्य नहीं मानता था, उत्तरमें भी उसे बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था, क्योंकि जिन सर्दारोंने उसे राजगद्दी दी वे ही अपनी स्वतन्त्रतामें उसे हस्तक्षेप करने नहीं देते थे। इस कारण गंजे चार्ल्सके पौत्र सरल चार्ल्सको ओडोके शत्रुओंने राजगद्दीपर बैठाया। लगभग सौ वर्षतक कभी चार्ल्स और कभी ओडोके वंशज राज-सिंहासनके अधिकारी होते थे। पेरिसके कांउटगण तो धनी और बलवान होते गये, परन्तु चार्ल्सके वंशज दरिद्र और भाग्यहीन होते गये और कुछ समय पश्चात् अपने विरोधियोंके सम्मुख न खड़े हो सके। संवत् १०४४ (सन् ९८७) में ह्यूकापेटओडोका वंशज गाल, ब्रिटेन, नार्मन, ऐक्वीटेनियन, गाथ, स्पहानी, गास्कन जातियोंका सम्राट् निर्वाचित हुआ। सारांश यह था कि जितनी जातियाँ मिलकर आगे फ्रांस-राष्ट्रका निर्वाचन करनेवाली थीं वे सब ह्यूकापेटके अधीन इस समय हुई थी। यह बात जानने योग्य है कि दो सौ वर्षके लगातार परिश्रमके पश्चात् ह्यूकापेटके वंशजोंने अपना आधिपत्य स्थापित किया और इन दो सौ वर्षोंके भीतर इनका अधिकार बहुत कम फैला था,

वास्तवमें उनका अधिकार कुछ ढीला पड़ गया था। चारों ओर स्वतन्त्र रजवाड़े खड़े होने लगे थे, दृढ़ दुर्ग बना-बनाकर बलवान स्वामी राजाको तंग किया करते थे। एक नगरसे दूसरे नगरके वाणिज्यको तथा ग्राम-वासियोंको असह्य कष्ट पहुंचता था। सम्राट्को भी जिनके सामने बड़े पराक्रमी जमींदार लोग और महाजनगण सिर नवाते थे, पेरिस नगरीके बाहर निकलना कठिन हो जाता था, क्योंकि चारों ओर दुर्ग थे और दुर्गका स्वामी न राजा, न पुरोहित, न व्यवसायी और न श्रमजीवी, किसी-की भी परवाह नहीं करता था। बिना धन और सैन्यके राज-गौरव केवल मौरूसी जायदादपर निर्भर हो रहा था। दूर-दूरके देशोंमें तो उसकी जमींदारीके कारण उसका आदर-सत्कार भी था, परन्तु अपने देशमें उसे कोई नहीं मानता था। राज-धानीसे निकलते ही राजाको अपने शत्रुओंका सामना करना पड़ता था।

दशवीं शताब्दीमें नार्मण्डी, ब्रिटनी, फ्लंडर, बर्गंडी आदिकी बड़ी बड़ी फीफ़ोंने स्वतन्त्र रियासतोंका रूप धारण कर लिया। आगे चलकर ये फीफ़े छोटे राष्ट्र तुल्य हो गयीं और प्रत्येकके योग्य शासक भी उत्पन्न हुए। हर एकके रहन-सहन, आचार-विचार भिन्न थे। इसी भिन्नताका लेशमात्र अब भी दिखायी पड़ता है। इन सब उपराष्ट्रोंमें सबसे बड़ा नार्मण्डी था। नार्मन लोग अर्थात् उत्तर देशवासी उत्तरीय सागर (नार्थ सी) के तटके निवासियोंको बहुत दिनोंसे सता रहे थे। अतः संवत् ९६८ (सन् ९११) में सरल चार्ल्सने इनके सर्दार रोलेको फ्रांसका पूर्व-उत्तरीय प्रदेश प्रदान किया, जिसमें कि ये लोग आकर बसे थे। यही प्रदेश आगे चलकर नार्मण्डीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। रोलेने नार्मंडीके ड्यूककी उपाधि धारण की। उसने अपनी सब प्रजाको क्रिस्तान-धर्मावलम्बी बनाया। बहुत दिनोंतक इन आगन्तुकोंने अपने ही देशकी रीति और भाषा कायम रखी, परन्तु धीरे-धीरे इन लोगोंने अपने पड़ोसियोंकी रीति-रस्म स्वीकार कर ली। बारहवीं शताब्दीतक उनकी राजधानी "रूआं" बहुत ही सुन्दर सुसज्जित नगरी हो गयी। संवत् ११२३ (सन् १०६६) में जब नार्मंडीके ड्यूक विलियमने अपना आधिपत्य इंग्लिस्तान-पर जमाया उस समयसे फ्रांसीसी राजाओंके अधिकारमें बड़ी भारी गड़बड़ मची, क्योंकि नार्मण्डीके ड्यूक अब इतने पराक्रमी हो गये थे कि फ्रान्सीसी राजा उनको अपने अनुकूल नहीं रख सकते थे।

ब्रिटनी प्रदेशपर भी इन उत्तरीय-व्यवसायियोंने कई बार धावा किया। किसी समय यह भी विचार हुआ था कि नार्मण्डीके राज्यमें यह भी सम्मिलित हो जायगा, परन्तु संवत् ९९५ (सन् ९३८) में अलैन नामके वीर पुरुषने इन लोगोंको अपने देशसे निकाल बाहर किया। थोड़े दिन पीछे ब्रिटनी भी एक ड्यूक-शासित प्रदेश हो गया। सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें यह फ्रान्सीसी-राष्ट्रमें सम्मिलित हुआ। उत्तर-

वासियोंके आक्रमणने एक प्रकारसे बड़ा लाभ पहुँचाया। फ्रांसके उत्तरोत्तर समुद्रतट-वासियोंने दुखी होकर स्वरक्षणार्थ प्राचीन रोमसाम्राज्यके बचे हुए दुर्गोंकी शरण ली। इस प्रकार सब लोगोंको साथ रहनेका अभ्यास पड़ गया। पश्चात् घेण्ट, ब्रूज आदि नगरोंकी उत्पत्ति हुई और आगे चलकर ये नगर वाणिज्य, व्यवसाय आदिमें बड़े ही प्रसिद्ध हुए।

नगरसे बाहरी आक्रमण अधिक सरलतासे रोका जा सकता है। जिन लोगोंने उत्तरवासियोंको रोकनेका यत्न किया था उनके वंशज नगरोंमें प्रसिद्ध हुए। इस प्रदेशका नाम फलान्डर्स था। यहाँ भी काउंट तथा अन्य निम्न श्रेणियोंके महाजन जमींदार थे जिनका आपसमें सदा युद्ध हुआ करता था। दूसरा प्रसिद्ध प्रदेश बर्गण्डी था जो भविष्यमें फ्रांस-राष्ट्रका प्रधान अंश हुआ। बर्गण्डीके ड्यूक आरम्भमें प्रतापी तो थे, पर स्वतन्त्र न बन सके। इस कारण फ्रान्सीसी राजाओंका अधिकार स्वीकार करना पड़ा। दूसरा प्रदेश आक्वीटेन था। इसके अतिरिक्त टूलूसका एक प्रदेश था जहाँ कि कथकों और भाँटोंके कारण साहित्य जीवित था। इन सब प्रदेशोंका राजा ह्यूकापेट था।

कापेट-वंशके राजाओंका राज्याधिकार कई रूपोंका था और कई प्रकारसे उन्हें मिला भी था। प्रथम तो वे पेरिसके काउंट थे। इस प्रकारसे उनको साधारण जमींदाराना अधिकार प्राप्त था। फिर वे फ्रांसके भी ड्यूक थे जिससे कि उनके कुछ विशेष अधिकार भी थे। इसके अतिरिक्त नार्मण्डी, फलाण्डर्स आदिके पराक्रमी ड्यूक तथा काउंट इनके असामी थे। राजा होनेके कारण उनके विशेष अधिकार थे। एक तो चर्च, दूसरे धर्माध्यक्षकी ओरसे इनका राज्याभिषेक होता था। इस कारण वे ईश्वरनियुक्त धर्मके रक्षक, दीनके हितकारी, न्यायके प्रवर्तक भी समझे जाते थे। सब लोग इनका पद बड़े-बड़े ड्यूक और कांउटोंसे ऊंचा समझते थे। पराक्रमी ड्यूक और कांउट तो इनको केवल अपना जमींदार ही समझते थे, राजा जमींदार-की हैसियतसे और राजाकी हैसियतसे भी यथाशक्ति यत्न करता था कि हमारा अधिकार अधिकाधिक फैलता ही जाय। तीन सौ वर्षतक बिना भंग हुए कापेट-वंशके राजा ही राजसिंहासनपर बैठाये गये। ऐसा बहुत कम हुआ कि राजसिंहासन-पर कोई बलहीन बालक बैठाया गया हो। १५ वीं शताब्दीके आरम्भतक तो राजा तथा जमींदारकी लड़ाईमें सर्वदा राजाकी ही जीत होती रही।

फ्रांसके राजा मोटे लूईने प्रथम बार यह यत्न किया कि अपने राजपर हम अपना प्रभुत्व वास्तवमें जमावें। इन्होंने संवत् ११६५ (सन् ११०८)से संवत् ११९४ (सन् ११३७)तक राज्य किया। यह बड़े पराक्रमी थे और अपनी जमींदारीके भिन्न-भिन्न भागोंसे आवागमनके जो मार्ग थे उनको सुरक्षित रखते थे।

बीच-बीचमें जो सर्दारोंने किले बनवाकर उत्पात मचा रखा था, उनका दमन करते रहते थे। इस प्रकारसे फ्रांसपर राजाका अनन्याधिकार स्थापित करनेका कार्य इन्होंने आरंभ कर दिया और इनके वंशज इस कार्यकी उन्नति करते रहे। विशेषकर इनके पौत्र फिलिप आगस्टसने इस कार्यको बहुत ही बढ़ाया।

फिलिपको बड़े बखेड़ोंका सामना करना पड़ा। अबतक यूरोपमें सर्दारों और राजाओंके विवाहका बड़ा राजनीतिक प्रभाव पड़ा करता था। इस कारण मध्य, पश्चिम और दक्षिण-फ्रांसकी बहुत बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ इंग्लिस्तानके राजा द्वितीय हेनरीके हाथमें आ गयी थीं। अतः पश्चिमीय यूरोपमें इनका बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित हो गया था। विजयी विण्डिवनकी पौत्री मेटिल्डाका पुत्र द्वितीय हेनरी था। मेटिल्डाका विवाह फ्रांसके बड़े भारी जमींदार आंजू और मेनके काउंटसे हुआ था। अतः हेनरीने अपनी माताके द्वारा आंग्ल देशके नार्मन राजाओंका सब राज्य पाय अर्थात् इंग्लिस्तान, नार्मण्डी और ब्रिटेनी और अपने पिताके द्वारा मेन और आंजू। इसके अतिरिक्त उसका विवाह इलीनरसे हुआ जो ग्वेन अर्थात् आक्विटेनके ड्यूकोंकी उत्तराधिकारिणी थी। अतः पाइटू और गासकनीके साथ-साथ उसे करीब-करीब पूरा दक्षिण फ्रांस मिल गया। द्वितीय हेनरीका नाम आंग्ल देशके इतिहासमें बहुत बड़ा है। परन्तु सच पूछिये तो वह आधा अंग्रेज और आधा फ्रांसीसी था, उसने अपना बहुत-सा समय फ्रांसमें ही बिताया। इस प्रकारसे फ्रांसके राजाने देखा कि एक यशस्वी राजाके अधीन एक विरोधी राष्ट्र हमारे बगलमें स्थापित हो गया है। इस राज्यके अन्तर्गत फ्रांसकी आधी जमीन ऐसी थी कि जिससे नाममात्र वह फ्रांसका राजा समझा जाता था। प्लान्टाजेनेट घरानेपर लगातार आक्रमण करना ही फिलिपका जीवन-कर्तव्य था। उसके शत्रुओंके बीच बहुतसे झगड़ोंके कारण उसे उनपर आक्रमण करनेमें बड़ी मदद मिलती थी। द्वितीय हेनरीने फ्रांसमेंकी अपनी सब जायदादोंको अपने तीन लड़कों जेओफ्रे, रिचर्ड और जानमें विभक्त कर दिया और वहाँकी राज्यप्रणाली जैसी थी वैसी ही रहने दी। इन तीनों भाइयों तथा उनके पिताके परस्पर कलहसे फिलिपने लाभ उठाया। उसने प्रथम तो उनके पिताके प्रतिकूल वीर रिचर्डका पक्ष, फिर रिचर्डके प्रतिकूल उसके छोटे भाई लैकलैण्डका पक्ष ग्रहण किया। इसी प्रकार वह एकको छोड़ दूसरेका साथ कर लेता था। यदि घरमें ही इस प्रकारका विरोध न हुआ होता तो प्लान्टाजेनेटके शक्तिशाली राज्यने फ्रांसके राजवंशको मटियामेट कर दिया होता; क्योंकि उसके छोटे राज्यको वह चारों ओरसे घेरे था और सर्वदा भयावह था।

जबतक द्वितीय हेनरी जीवित था तबतक प्लान्टाजेनेट घरानेको नष्ट करने अथवा उनके प्रभावको कम करनेका कोई रास्ता नहीं था। परन्तु जब कुविचारी

पहिले रिचर्ड (हेनरीका पुत्र)के अधीन राज्यसूत्र हो गये तब फ्रान्सीसी राजाके भावी विचारोंका कुछ और ही रूप हो गया। रिचर्ड राज्य छोड़कर धर्मसम्बन्धी युद्धमें शामिल हो जेरुसलम चला गया। लड़ाईमें शरीक होनेके लिए उसने फिलिपको बहुत समझाया, परन्तु वह गर्वी और अहंकारी होनेके कारण उसके उच्च ध्येयोंका अनुगामी न हुआ। दोनोंमें ऐसी एकवाक्यता न हुई कि वह कुछ देरतक बनी रहे। फ्रांसका राजा सुदृढ़ न होनेके कारण बीमार हो गया। उसने घर वापस जानेके लिए और अपने बलवान् जमींदारको गढ़ेमें झोंकनेके लिए अपनी बीमारीको एक अच्छा बहाना समझा। जब कई वर्षतक घूमने-फिरनेके पश्चात् रिचर्ड घर वापस आया तब फिलिपसे और उससे युद्ध आरम्भ हुआ। युद्धके समाप्त होनेके पहिले ही उसका देहान्त हो गया।

रिचर्डके छोटे भाई जानका अंग्रेज राजवंशमें बड़ा तिरस्कार हुआ था। उस समय एक बहाना पाकर फिलिपने उसकी बहुतसी जागीरें छीन लीं। जानपर यह दोषारोपण किया गया कि उसने अपने भतीजे आर्थरको मार डाला; क्योंकि मेन, आन्जू और टूरेनके जागीरदारोंने उनको अपना जमींदार मान रखा था। साथ ही उसने यह भी एक अत्याचार किया कि जिस स्त्रीकी सगाई उसके एक जागीरदारसे हो चुकी थी उसको वह उठा ले गया और उससे अपना विवाह कर लिया। फिलिपने जो जानका जमींदार था, जानको अपने दर्बारमें तलब किया कि तुम इस अत्याचारका कारण बतलाओ। जब जानने दर्बारमें आना नामंजूर किया तब फिलपने हुक्म निकलवाया कि जितनी प्लान्टाजेनेट वंशकी जागीरें फ्रांसमें हों वे सब छीन ली जावें। केवल दक्षिण-पश्चिमका एक कोना अंग्रेज राजाके हाथमें रहा।

नार्मण्डी, लोअर आदिपर फिलिपका राज्य अनायास ही हो गया; क्योंकि वहाँके लोग अंग्रेज राजाओंसे विशेष खुश न थे। रिचर्डकी मृत्युके ६ वर्ष बाद अंग्रेज राजाओंका प्रभुत्व फ्रांससे प्रायः उठ गया। केवल अक्विटेन अथवा ग्वेनकी जागीर उनके पास रह गयी। अतः कापेट वंशके हाथमें प्रथम वार फ्रांसका अधिकांश भूप्रदेश और धन आ गया। अब फिलिप इन नयी जागीरोंका केवल दूरवर्त्ती जमींदार (सूजेरेन) ही न रह गया, परन्तु वास्तवमें वहाँका अधिकारी हुआ। प्रत्यक्षमें उसका समुद्रकी सीमातक अधिकार हो गया था।

अपने राज्यको विस्तृत करनेके साथ ही साथ उसने अपना अधिकार अपनी प्रजापर भी बढ़ा लिया। इस समय स्थान-स्थानपर नगरोंकी स्थापना हो रही थी। इनकी आवश्यकता भी उसने पहिचानी। उसने देखा कि आगे चलकर क्या-क्या हो सकता है। अतः जिन नयी जागीरोंमें उसने नगरोंको पाया उनका विशेष

ख्याल किया। उनकी रक्षा कर अपना अधिकार बढ़ाया। इस प्रकारसे उसने जमींदारों और जागीरदारोंका प्रभाव-अधिकारादि कम कर दिया।

फिलिपके बेटे आठवें लुईने एक नये प्रकारकी जागीर निकाली जिसका नाम उसने एपैनेज रखा। अपने छोटे लड़कोंको उसने इन एपैनेजोंका अधिकारी बनाया। एकको उसने आरटायका काउंट, दूसरेको आन्जू और मेनका काउंट और तीसरेको ऑवर्नका काउंट बनाया। यह इसकी बड़ी भूल थी। जिन प्रदेशोंको उसके पिताने इतना यत्न करके एकत्र किया था उन सबको उसने फिर अलग-अलग कर दिया। अतः राज्यका संगठन कठिन हो गया तथा राजवंशमें आपसका झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

फिलिपके एक पौत्रका नाम नवाँ लुई था, कोई-कोई उसको सन्त लुई भी कहते हैं। इसने संवत् १२८३ से १३२७ (सन् १२२६–१२७०)तक राज्य किया। यह एक अद्भुत व्यक्ति था। फ्रांसके राजवंशमें यह सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा हुआ। इसके पराक्रम और औदार्यकी बहुतसी कथाएँ प्रचलित हैं। इसने फ्रांसके राष्ट्रको पुनः संगठित करनेके बड़े प्रयत्न किये जिनका सारांश यहाँ लिखा जाता है। मध्य-फ्रांसके कुछ लोगोंने आंग्ल देशके राजासे मिलकर बलवा कर दिया था, परन्तु लुईने उसको दबा दिया। आंग्ल देशके राजासे यह समझौता किया गया कि "ग्वेन-गासकनी और पाँयट् प्रदेशोंके लिए आप हमको अपना स्वामी मानें और प्लान्टाजेनेट वंशके पुराने सब प्रदेशोंपर आपका जो कुछ अधिकार है उस सबको आप त्याग दें।"

इसके अतिरिक्त लुईने राजाका अधिकार बढ़ानेके विचारसे एक अच्छा प्रबन्ध किया। फिलिपने एक नये प्रकारके कार्याधिकारियोंको स्थापित किया था जिनका नाम बेली था। उन्हें बँधी तनखाह दी जाती थी। उनके स्थान निरन्तर बदले जाते थे ताकि किसी एक स्थानपर बहुत दिनतक वे जमने न पावें और आगे चलकर राजाके प्रतिद्वन्द्वी न हो जावें। पूर्व-कालमें काउंट लोग जो राजाके कर्मचारी ही होते थे, बहुत दिनोंतक एक ही स्थानमें रहनेके कारण पृथक् राजा हो बैठते थे।

लुईने बेली स्थापित करनेका तरीका और विस्तृत किया। इस प्रकारसे उसने अपने राज्यको अपने ही अधीन रखा और यह यत्न किया कि प्रजाके साथ न्याय हो और मालगुजारी ठीक समयपर इकट्ठी हुआ करे।

चौदहवीं शताब्दीमें फ्रांसका शासन-प्रबन्ध बहुत विस्तृत न था। राजा अपने कर्तव्योंके पालनार्थ बड़े-बड़े जागीरदारों और धर्माधिकारियों आदिसे परामर्श और सहायता लेता था। इन लोगोंकी एक परिषद् थी, जिसका कोई नियमित रूप नहीं था, जो हर प्रकारका सरकारी काम करती थी। लुईके शासनकालमें इस संस्थाके नियमित रूपसे तीन विभाग किये गये। एकसे राजा साधारण शासन-प्रबन्धमें परा-

मर्श लेता था, दूसरेके द्वारा अपने राज्यके हिसाब-किताबका प्रबन्ध करता था और तीसरा विभाग न्यायालयके रूपमें स्थापित हुआ जो आगे चलकर बड़ा जटिल होता गया। यह विभाग सदा राजाके साथ न घूमकर पेरिस नगरमें सेन नदीके किनारे स्थायी रूपसे स्थापित हुआ। अब भी यह "पालाय दी जस्टिस" अर्थात् "न्याय-प्रासाद" मौजूद है। जागीरदारोंके न्यायालयोंसे राष्ट्रीय न्यायालयमें पुनर्विचारके लिए अपीलें आने लगीं। इससे राजाका अधिकार अपने राज्यके दूर-दूर प्रदेशोंमें फैलने लगा और यह भी हुक्म हुआ कि राजाके प्रत्यक्ष अधीन प्रदेशोंमें राजाका ही सिक्का चलेगा। जिन जमींदारोंको सिक्का बनानेका अधिकार था उनके भी प्रदेशोंमें राजाका सिक्का उन्हींके सिक्कोंके समान चलेगा।

लूईका पौत्र सुन्दर फिलिप था। उसके पास एकतंत्र राजा हो जानेकी पूरी सामग्री थी। उसके हाथमें सुदृढ़ राज्य-प्रबन्ध आया। उसको ऐसे न्यायाधिकारियों-की सहायता प्राप्त रही जिन्होंने रोमके कानूनोंसे अपना हृदय भर रखा था। जो इस कारण राजाके अनन्याधिकारमें कुछ भी फरक नहीं होने देना चाहते थे वे राजाको सदा उत्साहित किया करते थे कि जमींदारों और पुरोहितोंके अधिकारपर बिना विचार किये आप अपना सर्वश्रेष्ट अधिकार रखिये।

जब फिलिपने यह यत्न किया कि पुरोहित लोग भी अपने धनमेंसे कुछ अंश राजाको दिया करें तो पोपसे बड़ा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस विचारसे कि इस झगड़ेमें सारा देश हमारी सहायता करे, राजाने संवत् १३५९ (सन् १३०२) में एक बड़ी सभा एकत्र की। बड़े-बड़े सर्दार और धर्माधिकारियोंके साथ उसने प्रथम बार नगरोंके प्रतिनिधियोंको भी एकत्र किया। इस प्रकार फ्रांस देशकी राष्ट्रीय सभा अर्थात् 'स्टेट जनरल' स्थापित हुई। यह ध्यान रखनेकी बात है कि इसी समय आंग्ल देशमें भी पार्लमेण्ट अर्थात् लोक-प्रतिनिधि-सभा स्थापित हो रही थी।

इन बुद्धिमत्ताके तरीकोंसे फ्रान्सीसी राजाओंने पश्चिमी यूरोपके सबसे अधिक शक्तिशाली राजवंशकी स्थापना की। परन्तु आंग्ल देश और फ्रांसका झगड़ा अभी *नहीं मिटा, वह बना ही रहा। दोनोंकी सीमाएँ भी निश्चित नहीं हुईं।* इसके कारण आगे चलकर बड़े-बड़े भीषण युद्ध हुए जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय १०

आँग्ल देश

यूरोपीय इतिहासमें आँग्ल देशका महत्व विशेष है, क्योंकि आँग्ल देशसे ही निकलकर लोगोंने अमरीकाको बसाया है। और कितने ही उपनिवेश ऐसे हैं जहाँ आँग्ल भाषा और आँग्ल आचार-विचार प्रचलित हैं। फिर उसकी शासन-प्रणाली और उसके व्यापार-व्यवसायका सारे संसारपर प्रभाव पड़ा है। हम ऊपर कह आये हैं कि किस प्रकारसे कतिपय जर्मन-जातियोंने आँग्ल देशको पराजित किया था तथा किस प्रकारसे रोमके ईसाईमतका इस देशमें प्रचार हुआ। विजयी लोगोंके भिन्न-भिन्न राज्य थे, पर ९ वीं शताब्दीमें वेसेक्सके राजा एकवर्टने सब राजाओंको अपने अधीन कर लिया। एकता होने न पायी थी कि उत्तरीय लोग अर्थात् डेन-जातियाँ जो बहुत दिनोंसे फ्रांसपर धावा कर रही थीं, आँग्ल देशपर भी उतर पड़ीं। थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने टेम्स नदीके उत्तरस्थ कुछ प्रदेशोंको अपने अधीन कर लिया। आल्फ्रेडने इनको हराया, इनसे क्रिस्तान-धर्म स्वीकार कराया और अपने और इनके राष्ट्रोंकी सीमा निर्धारित की।

शिक्षाके प्रचारमें आल्फ्रेड बड़ा दत्तचित्त रहता था। अन्य देशोंसे शिक्षितोंको निमन्त्रित करके वह नवयुवकोंको शिक्षित कराता था। उसकी इच्छा थी कि यथा-सम्भव सब लोग आँग्ल भाषाको अच्छी तरह जानें। जो लोग धर्मोपदेशक होना चाहें वे लोग लातीन भाषा भी पढ़ें। कई लातीन भाषाके ग्रंथोंका इसने स्वयं आँग्ल भाषामें अनुवाद किया था। इसने अपने समयके इतिहासको लिखवानेका भी यत्न किया था। सं० ९५८ (सन् ९०१)में इसका देहान्त हुआ। परन्तु इसके मरनेके सौ वर्ष पीछेतक डेन लोगोंका आक्रमण बना रहा। इसका प्रधान कारण यह था कि इस बीच डेनमार्क, स्वीडन और नार्वेमें पृथक्-पृथक् राष्ट्र स्थापित हुए। जिन सर्दारोंकी भूमि छीनी गयी थी वे अन्य देशोंमें लूट-मार करनेके लिए चले। आंग्ल देशमें जब इन लोगोंका आक्रमण होता था तो डेनगेल्ड नामका एक विशेष कर लगाया जाता था, जिसको दान करके डेन लोगोंके आक्रमणसे देश बचाया जाता था, परन्तु इससे उन लोगोंका लालच बढ़ता ही जाता था और वे फिर-फिर आते थे। संवत् १०७४ (सन् १०१७) में कन्यूट नामका डेन राजा इंग्लिस्तानका भी राजा बन गया। डेन-वंश बहुत थोड़े दिनतक चला और अंग्रेज राजा एडवर्ड

(कनफेसर) सारे मुल्कका राजा हुआ। उसके मरणोपरान्त नार्मण्डीके ड्यूक विलियम-ने आँग्ल देशके राज्यका उत्तराधिकारी होनेका दावा किया और संवत् ११२३ (सन् १०६६)में हेरल्डको हराकर वह राजा हो गया। इस घटनाके बाद आँग्ल देशके इतिहासका एक युगविशेष समाप्त होता है। आँग्ल देशका सहसा घनिष्ठ सम्बन्ध यूरोपके अन्य देशोंसे हो जाता है।

आँग्ल देश अर्थात् इंग्लिस्तानका इस समयतक वही रूप हो गया था जो अब भी है। छोटे-छोटे राष्ट्र सब गायब हो गये थे। उत्तरमें आजकी ही तरह स्काट-लैण्डका प्रदेश था और पश्चिममें वेल्स का। वेल्समें अब भी वे खास ब्रिटन जातिके लोग हैं, जो उत्तरीय लोगोंके धावा करनेके पहले आँग्ल देशमें रहते थे। डेन लोग आकर आँग्ल देशकी जातियोंसे हिल-मिल गये और सब एक ही राजाका अधिकार मानने लगे। समय पाकर राजाका अधिकार बढ़ता गया, परन्तु उसके लिए यह आवश्यक समझा जाता था कि हर जरूरी कामके लिए विटेनेजीमॉट (विद्वानोंकी समिति) नामक परिषद्से वह सलाह लेवे। इस परिषद्में उच्च राजकर्मचारी, धर्माध्यक्ष और सर्दारगण रहते थे। राज्यके कई विभाग थे और प्रत्येक विभाग अर्थात् शायरमें एक स्थानीय सभा रहती थी जो स्थानीय मामलोंके लिए प्रतिनिधियों-की सभाका काम करती थी।

रोमके धर्मका प्रभाव बढ़नेके कारण आँग्ल देशके पुरोहितोंके द्वारा यूरोपके अन्य प्रदेशोंसे आँग्ल देशका सम्बन्ध बना रहा; अतः आँग्ल देशने अपनी विशेषता बिना खोये ही अन्य देशोंकी सभ्यतासे अपना सम्पर्क सदा बनाये रखा। आगे चल-कर व्यवसायकी उन्नति, उपनिवेशोंकी स्थापना और शासन-पद्धतिकी विचित्रतामें सर्वमान्य हुआ। अन्य देशोंकी तरह यहाँ भी फ्यूडल शासनका जोर रहा। कितने ही स्थानीय सर्दार राजाके प्रतिवादी हो जाते थे। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े धर्माध्यक्षोंको भी शासनका अधिकार स्थान-स्थानपर था, अतः इनसे और राज-कर्मचारियोंसे झगड़ा होनेकी सदा सम्भावना बनी रहती थी। अंग्रेज जमींदार भी प्रायः अपने असामियोंपर उतना ही अधिकार रखते थे जितना कि फ्रांस देशके।

विजयी विलियमने आनेके पहले यह कहा था कि आँग्ल देशकी गद्दीका उत्तरा-धिकारी एडवर्डके पश्चात् मैं ही हूँ, पर इस बातपर बिना कुछ ध्यान दिये हेरल्ड एडवर्ड-की मृत्युके पश्चात् स्वयं गद्दीपर बैठ गया। यह वेसेक्स प्रदेशका अर्ल था और राज्यका बहुतसा अधिकार पहिलेसे ही अपने हाथमें कर चुका था। ऐसी अवस्थामें विलियम-ने पोपसे प्रार्थना की कि मेरा हक मुझे मिलना चाहिये। साथ ही वादा किया कि यदि मैं राजा हो जाऊँगा तो आँग्ल देशके धर्माध्यक्षोंको आपके अधीन कर दूँगा। पोपने सहर्ष विलियमको आशीर्वाद देकर यह कहा कि आप अवश्य आँग्ल देश जायँ, आपको

ईश्वर सहायता देगा। विलियम धर्मयुद्धके बहाने आँग्ल देशमें पहुँचा। सं० ११२१ (सन् १०६६) में सेनलकके प्रसिद्ध युद्धमें हेरल्ड मारा गया और उसकी सेना पराजित हुई। थोड़े ही दिन पीछे कितने ही बड़े-बड़े सर्दार तथा धर्माध्यक्ष विलियमको राजा मानने लगे। लण्डनमें पहुँचकर विलियमने अपना राज्य स्थापित किया। वेस्टमिनिस्टरके गिरजेमें उसका राज्याभिषेक हुआ। विलियमको फ्रांस और आँग्ल देश दोनोंमें बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। आँग्ल देशके कितने ही सर्दारोंको अपने वंशमें करना पड़ा। फ्रांसके राजासे भी उसका सामना हुआ। परंतु उसने सब शत्रुओंको पराजित किया। आँग्ल देशका राष्ट्र-व्यूहन उसने बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ किया। फ्रांसमें प्रचलित फ्यूडल प्रबन्ध वह इस देशमें भी लाया था, परन्तु उसने यह यत्न किया कि इस प्रबन्धसे मेरा अधिकार कम न हो जाय। जो आँग्ल देशीय उसके विरुद्ध लड़े थे उनको उसने राजद्रोही ठहराया। उनकी सब जमीनें छीन लीं। ऐसी जमीनें उसने अपने अनुयायियोंको दे दीं। जिन अंग्रेजोंने इसका साथ दिया था उनको भी पुरस्कार और जमीनें मिलीं।

विलियमने यह घोषणा कर दी कि मैं आंग्ल देशके आचार-विचारोंको परिवर्त्तित नहीं करना चाहता हूँ, अतः मैं सैक्सन राजाओंकी ही तरह राज्यकार्य चलाऊँगा। विटेनेजी मॉट नामकी संस्थाको उसने कायम रखा तथा जितनी वहाँ अंग्रेजी रीति-रस्में थीं उन सबको भी कायम रखा। यह इतना प्रभावशाली था कि किसीके मातहत नहीं रहना चाहता था। सब प्रदेशोंके अर्ल और काउंटोंको अपने पदाधिकारी शेरिफोंके द्वारा अपने हाथोंमें रखता था। किसी जमींदारको वह एक ही चकमें इतनी जमीन नहीं देता था कि वह बहुत शक्तिशाली हो जाय। उसने यह भी यत्न किया कि छोटे-बड़े जितने जमदीार हों सब प्रत्यक्ष रूपसे उसे अपना मालिक मानें। लिखा हुआ है कि सं० ११२३ (सन् १०६६) की पहली अगस्तको विलियम सालसबरी पहुँचा। वहाँ उसके सब मन्त्रिगण भी उपस्थित हुए। वहींपर सारे आँग्ल देशके जमींदार आये। उसके सामने सिर झुकाकर सबने वादा कि हम सब लोग आपको अपना स्वामी मानते हैं और सब लोगोंके विरुद्ध हम लोग आपका साथ देंगे।

इस घटनाका महत्त्व यह है कि फ्यूडल प्रकारके राष्ट्रमें राजा प्रत्यक्ष रूपसे केवल बड़े-बड़े जमींदारोंका ही मालिक होता था। इन जमींदारोंके अनुचरोंपर उसका कुछ अधिकार नहीं रहता था। विलियमका यह यत्न था कि छोटेसे छोटे जमींदार हमको अपना स्वामी समझें। यदि हमारे अर्ल और काउंट हमारे विरुद्ध रहें तो ये इनका साथ न देकर हमारा ही साथ दें। यह तो सम्भव नहीं है कि सालसबरीमें आंग्ल देशके सब छोटे-बड़े जमींदार आये होंगे, तथापि इसमें भी सन्देह

नहीं है कि कुछ लोग अवश्य ही आये। विलियमके हृदयका किस ओर झुकाव था वह इस घटनासे स्पष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त विलियम यह भी चाहता था कि अपने राज्यकी एक-एक बातका मुझे पूरा ज्ञान हो। अतः उसने एक अद्भुत पुस्तक तैयार करवायी जिसे "डूम्सडे बुक्" कहते हैं। इसमें आंग्ल देशकी सब भूमियोंकी सूची है। इसमें प्रत्येक आराजीका मूल्य दिया हुआ था, कितने आदमी काम कर रहे थे और कितनी जायदाद जमीनपर थी, इन सब बातोंका भी ब्योरा इस पुस्तकमें लिखा हुआ था। भूमिके तत्सामयिक मालिक और विलियमकी विजयके पहिलेके मालिक दोनोंका नाम दिया हुआ था। इस पुस्तकका उद्देश्य कर एकत्र करनेमें विशेष सुविधा ही था।

दूसरी बात यह है कि विलियम चाहता था कि पोप मेरे काममें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करे और यद्यपि धर्माध्यक्षोंको उसने यह अधिकार दे रखा था कि वे अपना कार्य स्वतन्त्रतासे करें, और कई अदालती मामलोंका निश्चय भी करें, तथापि वह यह जरूर करता था कि जैसे औरोंसे वैसे ही बिशपसे भी राजभक्तिकी प्रतिज्ञा करा लेता था। आंग्ल देशके मामलोंमें वह पोपको हस्तक्षेप नहीं करने देता था; यद्यपि पहले उसने पोपसे आशीर्वाद लिया था, तथापि अब उसने पोपके अधीन रहनेसे इन्कार कर दिया।

आंग्ल देशमें नार्मन लोगोंके आनेसे केवल यही नहीं हुआ कि एक नया राजा राज्यपर बैठा और एक नये राजवंशका सूत्रपात हुआ। वास्तवमें आंग्ल देशका एक नयी जातिसे सम्पर्क हुआ जिसका प्रभाव देशके आचार-विचारपर बहुत अधिक पड़ा। नार्मन लोग बराबर समुद्र पार करके आते रहे। वे धीरे-धीरे देशमें बसने लगे। यहाँतक कि कर्मचारीगण, महाजन लोग सब धर्माध्यक्षों सहित नार्मन जातिके ही लोग हो गये। इस समय जो बड़ी-बड़ी इमारतें, गिरजाघर, धर्मशालाएँ आदि बनीं वे सब नार्मन जातिके लोगोंकी कारीगरी थी। इसके अतिरिक्त कितने ही सौदागर, जुलाहे आदि आकर आँग्ल देशमें बसने लगे और इनका प्रभाव क्रमशः केवल नगरोंमें ही नहीं, परन्तु गावोंमें भी बढ़ने लगा। कुछ दिनोंतक तो इन आगुन्तोंकी जाति अलग रही, परन्तु सौ वर्षके भीतर ही भीतर ये लोग आंग्ल देशवासियोंके साथ हिलमिल गये। देशी-परदेशीका अन्तर मिट गया। दोनों जातियोंके संघर्षणसे यह अनुमान होता है कि अब जो नयी जाति निर्मित हुई उसमें बल-बुद्धि और उत्साह अधिक बढ़ गया।

विलियमके पश्चात् उसके दो लड़के विलियम रूफस अर्थात् लाल और प्रथम हेनरी राजगद्दीपर बैठे। प्रथम हेनरीके देहान्तके बाद बड़ा झगड़ा पैदा हुआ। कुछ लोग यह चाहते थे कि विलियमके नाती स्टीफनको ही राज्य मिले और कुछ चाहते

थे कि विलियमकी पोती मेटिल्डाको राज्य मिले। सं० १२११ (सन् ११५४) में जब स्टीफन मर गया तब मेटिल्डाके पुत्र द्वितीय हेनरीको राजसिंहासनपर बैठाया गया। स्टीफनके उन्नीस वर्षके राज्यकालमें जब चारों ओर परस्परका युद्ध छिड़ा हुआ था तब कितने ही सर्दारोंने अलग-अलग अपना स्वतन्त्र राज्य जमाया। प्रतिद्वन्द्वियोंने अपने-अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिए कितने ही सैनिकोंको रुपयेका लालच देकर अन्य देशोंसे बुलाया था। ये लोग भी आफत मचाये हुए थे। सारांश यह कि जब द्वितीय हेनरी राजगद्दीपर बैठा तब चारों ओर देशमें आफत मची हुई थी।

हेनरी बड़ा प्रतापी था। उसने फौरन बड़े साहससे काम करना आरम्भ किया। जिन-जिन सर्दारोंने दुर्ग बना-बनाकर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाकी चेष्टा की थी, उनको उसने अपने वशमें किया और इनके दुर्गोंका नाश कर दिया। हेनरीको आँग्ल देशमें शान्तिकी स्थापना करनी थी और फ्रांसके एक विस्तृत अंशपर भी राज्य जमाये रखना था। फ्रांसमें जो प्रदेश उसे मिले थे उनके कुछ अंश इसकी पैतृक सम्पत्ति थी और कुछ इसने विवाहके कारण दहेजमें पाया था। फ्रांसके प्रदेशोंके शासनके अर्थ इसको प्रायः वहीं रहना पड़ता था तिसपर भी आँग्ल देशका इसने बड़ा सुप्रबन्ध किया, जिसके कारण इस देशके ओजस्वी राजाओंमें वह आजतक गिना जाता है।

इसका बड़ा प्रशंसनीय कार्य यह हुआ कि इसने न्यायालयोंका पूरा सुधार किया। प्रजा आपसमें सर्वदा लड़ा करती थी। इसको बन्द करनेके लिए न्याया-लयोंका संस्कार बड़ा आवश्यक था। इसने यह प्रबन्ध किया कि सरकारी न्यायाधीश देशभरमें भ्रमण करें, ताकि प्रत्येक स्थानमें प्रतिवर्ष एक बार वहाँके सब मामले तय हो सकें। इसने 'किंग्ज बेंच' नामकी अदालत स्थापित की। यहाँपर उन सब मामलोंका फैसला होता था जिनपर राजाका अधिकार था। इस अदालतके न्याया-धीश परिषद्के पाँच सभासद होते थे, जिनमें दो धर्माध्यक्ष और तीन साधारण पुरुष होते थे। हेनरीकी ही स्थापित की हुई संस्था 'ग्राण्ड जूरी' है, जिसमें कि सब स्थानोंपर समयानुसार कुछ सज्जन नियुक्त किये जाते थे जो दोषियोंपर अभियोग चलाकर उनको दण्ड दिलाते थे। ग्राण्ड जूरीके अतिरिक्त एक छोटी जूरी और होती थी जो दोषीका मुकदमा सुनती थी तथा सजा देती थी। यह व्यवस्था पहिलेसे चली आयी थी, परन्तु इस प्रकारसे बहुत कम लोगोंका मुकदमा चलाया जाता था और अब हेनरीने इसको नियमित कर सर्वसाधारणके लिए यह प्रकार खोल दिया। इसमें बारह सज्जन नियुक्त किये जाते थे। वे सब मुकदमा सुन पक्षपातहीन होकर अपनी राय देते थे। यह प्रथा कितनी अच्छी थी और इसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई

वह इतनेसे ही मालूम हो सकता है कि आजतक "कामन लॉ"के नामसे इसके किए हुए निर्णयोंका आदर होता है।

धार्मिक मामलोंमें भी हेनरीने सुधारका यत्न किया था। धर्माध्यक्षोंका उस समय बड़ा जोर था। राष्ट्र तथा चर्चका सदा झगड़ा चलता था। यूरोपियनोंकी यही इच्छा रहती थी कि राष्ट्रको अपने हाथमें रखें। हेनरीका एक पुराना मित्र "टामस ऑ वैकेट" था। आरम्भमें इसने हेनरीकी बड़ी सहायता की थी। इसको हेनरीने अपना चांसलर बनाया था। उसने मंत्रीकी हैसियतसे पुरोहितोंको राजाके अधीन रखनेका यत्न किया। राजाने विचार किया कि यदि हम इसे मुख्य धर्माधिष्ठाता अर्थात् 'केन्टर-बरीका आर्च बिशप" बना दें तो हमारे हाथमें देशभरकी धर्मसंस्थाएँ आ जावेंगी। उस समय ऐसे श्रेष्ठ धर्माध्यक्षोंके चुननेका अधिकार राजाको ही हुआ करता था। अतः उसने वैकेटको आर्च बिशप बनाया। अब उसने यह विचार किया कि इस आर्च बिशपकी सहायतासे यह प्रबन्ध हो जाय कि पुरोहित लोग भी यदि कोई दोष करें तो साधरण दोषियोंकी भाँति वे भी राष्ट्रकी अदालतोंमें दंड पावें और अपनी विशेष अदालतोंमें न जायँ, क्योंकि यहां प्रायः उन्हें कुछ दंड ही नहीं मिलता था। उसकी यह भी इच्छा थी कि बिशप लोग अपनी जमींदारियोंके लिए साधारण जमींदारोंकी तरह मालगुजारी राजाको दिया करें, किसी संशयके समय पोपके यहां अंग्रेजी पुरोहित न जाया करें। परन्तु वैकेटके जीवनमें आर्च बिशप होते ही एक अद्भुत परिवर्त्तन हो गया। वैकेटने अपनी ऐश-आरामकी जिन्दगी छोड़कर पूर्णरूप-से धर्माध्यक्षका रूप धारण किया। उसने यह भी कहना आरम्भ किया कि राजाको पारलौकिक धर्मसम्बन्धी किसी बातपर कोई अधिकार नहीं है। आर्चका एकाएक ऐसा परिवर्त्तन देखकर राजा बड़ा दुःखी और क्रुद्ध हुआ। परन्तु वैकेट अटल बना रहा और पोपसे उसने प्रार्थना की कि आप मेरी रक्षा करें। वैकेटने राजाकी इच्छाके विरुद्ध कितनों-को ही धर्मच्युत कर दिया और कितने ही राजभक्त धर्माध्यक्षोंको अपने पदसे निकाल दिया। एक समय क्रोधमें आकर हेनरीने कहा, "क्या कोई ऐसा आदमी नहीं है जो इस दुःखको दूर कर सके?" उसके कुछ अनुयायियोंने यह समझकर कि राजा चाहता है कि वैकेटका नाश हो, जाकर वैकेटको कंटरबरीके गिरजेमें मार डाला। किन्तु वास्तवमें राजा उसका खून नहीं किया चाहता था। जब उसने यह सुना तब उसे बड़ा ही दुःख हुआ और उसको यह भी भय हुआ कि इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। पोपने यह आज्ञा दी कि हेनरी धर्मच्युत समझा जाय और जो लोग पोपकी तरफसे आँग्ल देशमें आवें उनको समझा-बुझाकर उनसे यह कहलाया जाय कि टामसकी मृत्युकी इच्छा हम नहीं करते थे। उसने यह वादा किया कि कंटरबरीका जो धन हमने लिया है, हम सब वापस कर देंगे और जो धर्मयुद्ध अर्थात् क्रुसेड इस समय

हो रहा है उसमें आर्थिक और शारीरिक दोनों प्रकारकी सहायता करेंगे। हेनरीका अन्तकाल दुःखमय ही था। एक तो फ्रांसका राजा महाप्रतापी फिलिप्र (आगस्टस) इस फिक्रमें लगा हुआ था कि हेनरीके अधीन फ्रांसका सब प्रदेश हमारे हाथ आ जावे, दूसरे, उसके सब पुत्र आपसमें झगड़ रहे थे। उसके मरणोपरान्त उसका पुत्र रिचर्ड जो बड़ा प्रतापी था, राजगद्दीपर बैठा। यद्यपि यह दस वर्षतक राजा रहा; तथापि कुछ ही मासतक यह आँग्ल देशमें रहा, बाकी सब समय इसने बाहर पर्यटन करनेमें व्यतीत किया। पश्चात् इसका भाई जॉन राज्यपर बैठा। यद्यपि यह बड़ा अधम पुरुष था, तथापि इसका राज्यकाल स्मरणीय है। एक तो फ्रांसके जो बहुतसे प्रदेश द्वितीय हेनरीके समयसे आँग्ल राजाओंके अधीन थे वे सब छिन गये और फ्रांस राष्ट्रमें सम्मिलित हो गये, दूसरे, आँग्ल देशीय एकतन्त्र शासन-प्रणालीसे असन्तुष्ट होकर राजासे मेग्नाकार्टा नामका प्रसिद्ध राजपत्र लेकर उसने प्रजातन्त्र-राष्ट्र-शासनप्रणालीकी नींव डाली।

इस घटनाका विशेष कारण यह था कि संवत् १२७० (सन् १२१३)में जॉनने यह चाहा कि समुद्र पारकर उन प्रदेशोंको फिर पा लें जो हमारे हाथसे निकल गये हैं। अतएव उसने अंग्रेज सर्दारोंको आज्ञा दी कि तुम सब हमारे साथ चलो। जॉनसे वे लोग एक तो असन्तुष्ट ही थे। उन सब लोगोंने कहा कि आपके साथ देशके बाहर जानेको हम लोग बाध्य नहीं हैं। कुछ दिन पीछे कई सर्दारोंने मिलकर यह शपथ की कि हम लोग राजाको विवश करके और यदि आवश्यकता होगी तो उससे लड़कर ऐसा राजपत्र लेंगे जिसमें उन सब बातोंकी स्पष्ट सूचना रहेगी जिनको करनेका राजाको अधिकार नहीं है। संवत् १२७२ (सन् १२१५ की १५ वीं जून) १ मिथुनको इन सरदारोंने राजपत्र लिखकर राजाके सम्मुख उपस्थित किया और रनीमीडपर विवश होकर जॉनने यह प्रतिज्ञा की कि हम आप लोगोंके अधिकारोंको सदा सुरक्षित रक्खेंगे। सारांश यह कि इस राजपत्रमें राजाने यह वादा किया कि हम नियमित करसे अधिक न लेंगे और प्रजासे किसी प्रकारकी जबरदस्ती न करेंगे। यदि विशेष करकी आवश्यकता पड़ेगी तो हम अपनी राजपरिषद्से पूछकर वसूल करेंगे, बिना न्यायालयमें उचित प्रकारसे मुकदमा चलाये किसीको दण्ड न देंगे, न किसीका धन छीनेंगे। इसके पहले राजाको अधिकार था कि वह जिसको जब चाहे, पकड़कर दंड दे देता था।

अब यह अधिकार राजासे ले लिया गया। इन सब बातोंपर विचार करके यह कहना पड़ता है कि इस चार्टरको पानेकी घटना आंग्ल देशके इतिहासमें युगान्तर करनेवाली थी। इसमें अंग्रेज और नार्मनका कोई भेद नहीं है। ऐसे बड़े-बड़े सिद्धान्तोंका निर्देश किया गया है कि जिसे

रहे थे। यह न समझना चाहिये कि चार्टरको पाते ही सब संकट दूर हो गये, क्योंकि जॉनने स्वयं और उसके पश्चात् कितने ही राजाओंने इस चार्टरकी धाराओंके विरुद्ध आचरण किया और यह यत्न किया कि इसकी धाराएं प्रमाणित न समझी जायँ। परन्तु अंग्रेज जाति इसपर सदा अटल बनी रही और इसीका प्रमाण देते हुए एकतन्त्री राजाओंको अपने वशमें करती रही।

जॉनके पुत्र तृतीय हेनरी—संवत् १२७३ से १३२९ (सन् १२१६ से १२७२)के समयमें पार्लमेंट नामी संस्थाका विकाश होने लगा। आंग्ल देशके इतिहासमें पार्लमेंटका स्थान बड़ा ऊँचा है। बहुतसे अन्य देशोंने भी अपने राष्ट्रके निर्माणमें आंग्ल देशीय पार्लमेंट का अनुकरण किया है। तृतीय हेनरी विदेशियोंका बड़ा पक्षपाती था। उच्च-उच्च पदोंपर उसने विदेशियोंको नियुक्त किया। पोपको अंग्रेजी गिरजोंमें बहुत कुछ हस्तक्षेप करने दिया, अतएव अंग्रेज सर्दार जो राजाका अधिकार कम करना चाहते थे, उठ खड़े हुए और साइमन डी मॉंट फोर्टके नेतृत्वमें उन्होंने युद्ध ठाना। इतिहासमें ये युद्ध सर्दारोंके युद्धोंके नाम से प्रसिद्ध हैं। उनसे प्रजाके अधिकारोंकी रक्षा सफलता पूर्वक की गयी और पार्लमेंट संस्थाकी उन्नति होने लगी।

यह स्मरण रखना चाहिये कि पूर्वकालमें अर्थात् सैक्सन राजाओंके समयमें जो "विटेनेजी मॉट" नामकी संस्था थी उसमें केवल बड़े-बड़े सरदार और धर्माध्यक्ष सम्मिलित होते थे। जब राजा सम्मति लेना चाहता था तो उन लोगोंको निमन्त्रित करके उनसे सम्मति लेता था। तृतीय हेनरीके समयमें इस संस्थाकी बैठकें बहुत होने लगीं और इसमें बहस भी अधिक होती थी। इसी समयसे इसको सब लोग पार्लमेंट कहने लगे।

संवत् १३२२ (सन् १२६५)में पार्लमेंटकी एक बैठक हुई। साइमनके यत्नसे इसमें बहुत साधारण लोग भी आये थे। अर्थात् केवल सरदार और धर्माध्यक्ष ही नहीं, मामूली लोग भी उपस्थित थे। स्थान-स्थानके शेरिफोंको यह आज्ञा हुई कि सरदार और धर्माध्यक्ष ही नहीं, किन्तु प्रत्येक कांउटीसे दो साधारण सैनिक (नाइट) और बड़े-बड़े नगरोंसे दो नागरिकोंको भी लिया जाय जो पार्लमेंटमें बैठकर बहसमें भाग ले सकें। यह एक बड़ी घटना हुई। प्रथम एडवर्ड हेनरीके पश्चात् राजसिंहासनपर बैठे। उन्होंने इस सुधारको स्वीकार कर लिया। इसमें एडवर्डकी एक मसलहत भी थी। वह चाहता था कि धनिक नागरिकोंको इसी बहाने बुलाकर उनपर दबाव डालकर उनसे राजकार्यके लिए अधिक धन वसूल करें। इसके अतिरिक्त एडवर्ड कुछ ऐसे कार्य करना चाहता था, जिनके लिए उसको देशके सब लोगोंकी अनुमति लेनेकी इच्छा थी। संवत् १३५२ (सन् १२९५)में इसने

अपने प्रसिद्ध आदर्शको पार्लमेंटमें निमन्त्रित किया। तबसे बराबर पार्लमेंटकी बैठकोंमें सर्दारों और धर्माध्यक्षोंके साथ-साथ साधारण प्रतिनिधि भी आने लगे। पार्लमेण्टके लार्ड-सभा और कामनसभा, ये अभीतक दो विभाग भी नहीं हुए थे। वे इसके बाद हुए। इतिहासवेत्ता ग्रीनने कहा है कि प्रथम एडवर्डके समयसे हम लोगोंको आधुनिक आंग्ल देशका रूप देख पड़ने लगा है। राजा, लार्ड, कामन, न्यायालय, राष्ट्र और पारलौकिक धर्मका पारस्परिक सम्बन्ध सारांशमें समाजका संगठन ही इस समयसे ऐसा हुआ जो अबतक मौजूद है। अँग्रेजी भाषाने भी आजका-सा रूप धारण करना प्रारम्भ किया।

अध्याय ११

इटली और जर्मनीकी दशा।

ऊपर कहा जा चुका है कि किस प्रकारसे शार्लमेनका राष्ट्र पूर्वीय अर्थात् जर्मनी और पाश्चात्य अर्थात् फ्रांसके राज्यमें विभक्त हो गया। फ्रांसका इतिहास हम संक्षेपसे कह आये हैं। जर्मनीका इतिहास कुछ दूसरा ही है। शार्लमेनके पौत्र जर्मन लूईको जर्मनीका प्रथम राजा समझना चाहिये। चार सौ वर्षतक इसके वंशज अपना अनन्याधिकार जमानेका यत्न करते ही रहे, पर कृतकार्य न हुए। वास्तवमें तो बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भतक जर्मनी कोई विशेष राष्ट्र नहीं हुआ, परन्तु अनेक छोटे और बड़े स्वतन्त्र राज्योंमें विभक्त रहा।

शार्लमेनका साम्राज्य उसके मरणोपरान्त पूर्वमें बहुतसे राज्योंमें विभक्त हो गया जिसके ऊपर ड्यूक राज करते थे। इन लोगोंकी उत्पत्तिका अनुमान इस प्रकारसे किया जा सकता है। जर्मन लूईके बाद बहुत कमजोर राजा राज्यपर बैठा था। बहुत-सी स्वतन्त्रता-प्रिय जर्मन जातियाँ फिर उठीं और राजाको कमजोर पाकर वे अपने सर्दारोंके नेतृत्वमें स्वतन्त्र होने लगीं। इसके अतिरिक्त बाहरसे बहुतसी जातियाँ इन लोगोंपर धावा करती थीं। चूँकि कोई राजा इन लोगोंके आक्रमणसे अपनी प्रजाको नहीं बचा सकता था, अतः इन लोगोंको भी आत्मरक्षाके निमित्त यह जरूरी था कि अपने ही सर्दारोंकी अधीनतामें संगठित होकर लड़ें। उपराष्ट्रोंको जर्मने लोग स्टेम डची अर्थात् मूल डची कहते थे। इन्हीं लोगोंके कारण जर्मन राजा अपने सारे राज्यपर खूब मजबूतीसे नहीं बैठ सकते थे। वे किसी न किसी प्रकारसे सब राष्ट्रोंको एकत्र रखते थे, संवत् ९७६ (सन् ९१९)में जर्मन सर्दारोंने प्रथम हेनरीको अपना राजा चुना। इसने ड्यूकोंका अधिकार कम करनेका यत्न नहीं किया। चारों ओरसे शत्रु घेरे आते थे। उसे इन सबकी सहायताकी आवश्यकता थी। इसीके कार्यका फल आगे चलकर यह हुआ कि हंगेरियन लोग हराये गये और स्लाव जाति पराजित की गयी।

संवत् ९९३ (सन् ९३६) में प्रथम ओटो राज्यपर बैठा। यह बड़ा ही प्रताप-शाली राजा था। यद्यपि इसने भिन्न-भिन्न डचियोंका नाश नहीं किया, तथापि उन सबको अपने ही पुत्रों और निकट सम्बन्धियोंके अधीन कर दिया। उसका भाई हेनरी बवेरियाका ड्यूक हुआ। दूसरा भाई कोलोनका ड्यूक हुआ। ऐसा प्रबन्ध करनेका उपाय यह था कि यदि बिना पुत्रके कोई ड्यूक मर जाता था तो उस

ड्यूकके उत्तराधिकारी नियुक्त करनेका अधिकार राजाको होता था। यदि कोई ड्यूक राजाके विरुद्ध हाथ उठाता था तो उसे हटाकर उसका सब अधिकार राजा छीन लेता था। फिर जिसको चाहता था वह राजा बना देता था। इन सब बड़ी-बड़ी डचियोंको अपने सम्बन्धियोंके हाथमें रखनेका उसका उद्देश्य यह था कि उसीके अधीन सब रहें और उसीके मनका सब कार्य करें।

जर्मनीकी उत्तर और पूर्व सीमाओंका निश्चय न होनेके कारण स्लाव जातियाँ बराबर सेक्सनीपर आक्रमण करती रहीं। ये जातियाँ अभी क्रिस्तान-धर्ममें सम्मिलित नहीं हुई थीं। अतः ओटोने इनसे युद्ध तो किया ही, पर साथ ही साथ कई धर्मकेन्द्र भी स्थापित किये जिनके द्वारा एल्ब और ओडर नदीके बीचके रहनेवालोंको क्रिस्तान-धर्मका अनुयायी बनानेका यत्न किया गया। हंगेरियनोंको इसने एक बड़े भारी युद्धमें आग्जवर्गके निकट संवत् १०१२ (सन् ९५५)में हराया और जर्मनी-की सीमाके बाहर भगाया। ये लोग जो अब मगयारके नामसे प्रसिद्ध हैं, अपने प्रदेशमें जमकर अपनी राष्ट्रीय उन्नतिका विचार करने लगे और आगे चलकर इनकी बड़ी उन्नति हुई। इसी समय बवेरिया नामक डचीका एक अंश अलग बसाया गया। इससे आस्ट्रियाके साम्राज्यकी उत्पत्ति हुई।

ओटोका सबसे बड़ा कार्य यह था कि उसने इटलीके मामलोंमें हस्तक्षेप किया। उस समय इटली और पोपकी दशा शोचनीय थी। उत्तरसे सैनिक सर्दारगण आ-आकर समय-समयपर इटलीके राजा बन बैठते थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानोंने भी आक्रमण करना आरम्भ किया, जिससे यह गड़बड़ बढ़ती ही गयी। पाठकोंको स्मरण होगा कि पोपने शार्लमेनको साम्राज्यका पद प्रदान किया था, उसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारियोंको साम्राज्यका पद बराबर मिलता गया। फिर इटलीके कई राजाओंको पोपने यही पद दिया और उसके बाद कुछ दिनोंतक इस उपाधिका लोप हो गया था। अब ओटोने इस उपाधिको पाया। कारण यह था कि इटलीको अस्त-व्यस्त देखकर ओटोने उसके प्रबन्धमें हस्तक्षेप करनेका विचार किया। संवत् १००८ (सन् ९५१)में वह इटलेमें गया। वहाँके किसी राजाकी विधवासे उसने अपना विवाह कर लिया। यद्यपि राज्याभिषेक इसका नहीं हुआ था, तथापि वहाँका राजा माना जाने लगा। दस वर्षके पश्चात् पोपने इसे निमन्त्रण दिया कि तुम आकर हमारे शत्रुओंसे हमें बचाओ। इसने ऐसा ही किया और सं० १०१९ सन् (९६२)में इसका राज्याभिषेक हुआ।

यह भी एक बड़ी भारी घटना हुई। शार्लमेनके राज्याभिषेकसे इसकी तुलना करनी चाहिये। ओटो स्वयं इतना प्रतापी और बलवान् था कि इस नयी जिम्मेदारी-का भार सम्हाल सकता था, परन्तु आगे चलकर इसके वंशज इस भारको नहीं सम्हाल

सके और इसी कारण उनका नाश भी हो गया। लगातार तीन शताब्दियोंतक वह लोग यत्न करते रहे कि जर्मनीको सम्बद्ध रखें, इटली और पोपपर अपना अधिकार जमावें, किन्तु बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़कर तथा बहुत बड़ा दुःख सहकर भी इन्होंने सब कुछ खो दिया। इटली अलग हो गया और पोप अलग स्वतन्त्र हो गये। जर्मनी सम्बद्ध राष्ट्र न रहकर बहुतसे छोटे-छोटे राष्ट्रोंमें विभक्त हो गया।

राजा और पोपके सम्बन्धसे क्या-क्या होनेवाला था उसका नमूना ओटोके ही समय मिल गया। ओटोके इटलीसे वापस लौटते ही पोप अपनी शर्तोंके विरुद्ध कार्य्य करने लगा। ओटोने लौटकर पोपको उसके स्थानसे च्युत कर दिया और दूसरा पोप नियुक्त करवाया। जब लोगोंने इसके बनाये हुए पोपका अधिकार नहीं मानना चाहा तो उसको शस्त्र भी उठाना पड़ा। इसी प्रकार इसको और इसके बाद-के राजाओंको कितनी ही बार रोम जाना पड़ा है। एक बार तो ये राज्याभिषेकके लिए जाते थे और फिर पोपपर अपने अधिकार सुरक्षित रखनेके लिए युद्ध-सामग्रीके साथ जाते थे। इस प्रकार बार-बार जानेसे बड़ी भारी हानि यह होती थी कि जर्मनी-के राजद्रोही सर्दार राजाको देशसे बाहर गया जानकर अपना मतलब साधने लग जाते थे।

ओटोके उत्तराधिकारियोंने "पूर्वीय फ्रांक जातिके राजा"की उपाधि छोड़कर रोमके राजाकी उपाधि ग्रहण की। इनके राष्ट्रका नाम पवित्र रोमन राष्ट्र हो गया। यदि अधिक नहीं तो कमसे कम इसका नाम बीसवीं शताब्दीके आरम्भ-तक चला। राजा और सम्राट् इन उपाधियोंमें अन्तर केवल इतना ही था कि राजा-की हैसियतसे जर्मनी और इटलीका राज्याधिकार इनके हाथमें था ही, पर सम्राट्की हैसियतसे उनका यह अधिकार और भी था कि पोपकी नियुक्तिमें वे हस्तक्षेप भी कर सकते थे। इससे उनपर आपत्ति ही आयी, कुछ सुख नहीं मिला। क्योंकि वे लोग अपने ही देशमें चुपचाप रहकर अपने राष्ट्रको ही सुसज्जित न कर सके और लगा-तार पोपोंसे लड़ाई कर इन्होंने अपनी शक्ति कम कर ली। इसका फल यह हुआ कि पोप अधिक बलवान् हो निकले और साम्राज्य केवल नामका रह गया।

ओटोके उत्तराधिकारियोंको भी बाहरी जातियोंके आक्रमणका विरोध करना पड़ा। इस साम्राज्यका सबसे बड़ा वैभव-काल द्वितीय कानराड सं० १०८१ से १०९६ (सन् १०२४ से १०३९) और द्वितीय हेनरी सं० १०९६ से १११३ (सन् १०३९ से १०५६)के शासन-कालमें हुआ। सं० १०८९ (सन् १०३२)में बर्गण्डीका राज्य कानराडके हाथमें आया।

यह प्रदेश बहुत दिनोंतक साम्राज्यका अंश बना रहा और इस कारण जर्मनी और इटलीका परस्परका आवागमन भी बहुत सरल हो गया। यह जर्मनी और फ्रांस-

के बीचमें एक रुकावटसी हो गयी। पूर्वमें पोलैंडका भी राज्य ग्यारहवीं शताब्दीमें स्लाव जातिने जमाया। यद्यपि सम्राट्का इनसे बराबर युद्ध हुआ करता था, तथापि ये उसका आधिपत्य मानते थे। कानराडने भी बड़े यत्नसे बहुतसी स्टेम डचियां अपने पुत्र तृतीय हेनरीके हाथमें कर दीं और जब यह राज्यपर बैठा तो फ्रान्कोनिया, स्वाबिया और बवेरियाका भी ड्यूक हुआ। इससे राज्यकी नींवकी बड़ी पुष्टि हुई। कानराड और हेनरीके समयमें साम्राज्यके बलका विशेष कारण यह था कि कोई प्रतिद्वन्द्वी ड्यूक विशेष बली न थे। वे दोनों सम्राट् बड़े प्रतापी थे। फ्रान्सके राजा अपने ही झगड़ोंमें ऐसे लगे थे कि वे जर्मनीके ऊपर धावा नहीं कर सकते थे। इटली भी एकमत होकर इनका विरोध नहीं कर सकता था; अतः इन लोगोंकी बड़ी उन्नति हुई।

इस समयसे क्रिस्तान-धर्मके बाह्य रूपके सुधारका यत्न हो रहा था। पोपकी तरफसे यह यत्न हो रहा था कि राजाका अधिकार बिशप आदिपरसे उठ जाय। वे धार्मिक मामलोंमें अपना कुछ अधिकार न रखें। यदि इसमें सफलता होती तो राष्ट्रकी बहुत ही आर्थिक हानि होती, क्योंकि बड़े-बड़े जमींदार बिशप थे जो राजाको कुछ करने न देते थे। आरम्भमें जब राजाओंने बिशप और एबट लोगोंको भूमि दी तो उसका विशेष अर्थ यही था कि वे राजाओंके सहायक बने रहें। अब जो सुधारके लिए बात चलायी गयी तो उसका अभिप्राय यह नहीं था कि राजद्रोह खड़ा किया जाय, परन्तु इसका प्रभाव राजाके अधिकारके विरुद्ध अवश्य ही पड़ने लगा। अब जो झगड़ा पोप और सम्राट्में प्रारम्भ हुआ उसको समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समय चर्चकी क्या दशा थी। धर्माध्यक्षोंके अधिकारमें बड़े-बड़े भूमिके टुकड़े थे। राजा और जमींदार भी बीच-बीचमें बिशप और धर्मसंस्थाओं अर्थात् मोनेस्टरियोंको बड़े-बड़े भूमिके टुकड़े प्रदान कर देते थे। क्योंकि उससे उनका यह ख्याल था कि परलोकमें बड़ा लाभ होगा। इस प्रकारसे धर्माध्यक्षोंके हाथमें पश्चिमीय यूरोपकी बहुतसी जमीन आ गयी थी।

जब जमींदारगण इस प्रकारसे भूमि धर्माध्यक्षोंके हाथमें परमार्थके निमित्त दान करने लगे, उस समय साधारण फ्यूडल प्रकारसे इनकी जमीनकी भी गणना होने लगी। राजा या अन्य जमींदार साधारण लोगोंकी तरह पुरोहितोंको भी जमीन देते थे। जब बिशपको जमीन मिलती थी तब और लोगोंकी तरह वह भी प्रतिज्ञा करता था कि हम सदा आपके विश्वासपात्र बने रहेंगे। इस सम्बन्धमें उनकी धर्माध्यक्षताके कारण कोई विशेषता न थी। एबटगण भी अपने मठोंको अर्थात् निवासालयोंको पड़ोसके किसी जमींदारके अधीन कर देते थे ताकि वह उनकी रक्षा करे

और मठकी जमीनें इस रक्षाकी आशामें वे जमींदारोंको प्रदान कर देते थे और फिर साधारण असामियोंकी तरह वापस कर लेते थे। यहाँ यह एक भेद न भूलना चाहिये कि बिशप और एबटगण उस समयके धर्मानुसार विवाह नहीं कर सकते थे, अतः साधारण असामियोंकी भाँति वे अपनी जमीन अपनी सन्ततिके हाथमें नहीं छोड़ सकते थे। अतः जब कोई धर्माध्यक्ष एबट मर जाता था तब उसके स्थानपर किसी दूसरेको नियत करना पड़ता था जो उसके कर्तव्योंका पालन कर सके और उसके धनका भी भोग करे। चर्चका यह बड़ा पुराना नियम था कि प्रत्येक धर्म-केन्द्र (डायोसीस)के पुरोहित बिशपको नियत किया करें और उनकी नियुक्तिका अनुमोदन सर्वसाधारणसे हुआ करे। चर्च सम्बन्धी कानूनमें कहा है कि जब पुरोहितगणकी रायसे सर्वसाधारणका अनुमोदन प्राप्त कर कोई बिशप नियुक्त हो, तब वह वास्तवमें ईश्वरके मंदिरमें स्थान पावेगा।

ऐसे नियमोंके होते हुए भी बिशप और एबटगण ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दीतक वास्तवमें राजा अथवा जमींदारसे ही नियुक्त किये जाते थे। यद्यपि ऊपरी तौरसे साधारण निर्वाचनका रूप रखा जाता था तथापि जमींदार स्पष्ट रूपसे कह देता कि हम किसको नियुक्ति चाहते हैं और यदि उसकी नियुक्ति नहीं होती थी तो उसे वह जमीन ही नहीं देता था। इस प्रकारसे वह अपना पूरा अधिकार उनके निर्वाचनपर रखता था। अधिकार रखनेका एक कारण यह भी था कि बिशपको विधिपूर्वक अपना अधिकार जमींदारोंसे लेना पड़ता था। इस प्रकारसे यदि जमींदार किसी निर्वाचित विषयको पसन्द नहीं करता था तो वह न उसे भूमि देता था और न विधिपूर्वक स्थानापन्न ही बनाता था। विचारकी एक बात और है कि जो पुरुष बिशप बननेकी अभिलाषा रखता था उसे केवल धर्माध्यक्षताकी ही इच्छा न थी, पर वह उसके साथ लौकिक सुखोंकी भी इच्छा रखता था।

विधिपूर्वक स्थानापन्न बनानेका प्रकार यह था कि पहले बिशप या एबट जमींदार-का असामी बनता था और वह उसके लिए उचित प्रतिज्ञा करता था। इसके पश्चात् जमींदार उसके पद सम्बन्धी अधिकार और भूमि प्रदान कर देता था। सम्पत्ति और धार्मिक कर्त्तव्योंमें कोई अन्तर नहीं किया जाता था। इसलिए यह दोनों भी जमींदार ही प्रदान करा देता था। एक अंगूठी और एक दंड उसे चिह्न रूपमें दिया जाता था जिससे उसके धार्मिक अधिकारोंका बोध होता था। उस समयके जमींदार लोग असभ्य सैनिकमात्र थे; अतः बहुतसे लोग इसे बड़ा अनुचित समझते थे कि पारलौकिक धर्मके मामलोंमें ऐसे लोगोंका कुछ अधिकार रहे और जब कभी-कभी

ऐसा होता था कि जमींदार स्वयं विशप बन बैठता था तब तो बड़ा अन्धेर प्रतीत होता था।

चर्च समझता था कि सम्पत्ति तो बहुत अविचारणीय बात है, प्रधान बात तो हमारे धार्मिक अधिकार ही हैं। इन धार्मिक संस्कारोंको केवल पुरोहितगण ही करा सकते थे, अतः उन्हींको यह भी अधिकार होना चाहिये। बड़े-बड़े धार्मिक ओहदों-पर वे ही अधिकारियोंको स्वतन्त्रतापूर्वक नियुक्त करें, इसमें किसी अन्य पुरुषको हस्तक्षेप करनेका अधिकार न रहे। अतः चर्च सम्बन्धी जितनी सम्पत्ति थी उसपर भी नियुक्तिका अधिकार पुरोहितको होना चाहिये। इसपर राजाका यह कहना था कि केवल मामूली पुरोहितगण बड़े-बड़े इलाकोंका प्रबन्ध नहीं कर सकते और इस समय विशप और एबट लोगोंको अपने धार्मिक कर्तव्योंके साथ राज्य-प्रबन्ध करनेका भी काम उठाना पड़ता है। इस कारण उचित पुरुषोंकी नियुक्ति होनी चाहिये।

सारांश यह कि विशप लोगोंके कर्तव्य बड़े ही जटिल थे। एक तो धर्माध्यक्ष होनेके कारण उनको सब धार्मिक विधियोंकी देख-भाल करनी पड़ती थी, साथ ही यह भी फिक्र करनी पड़ती थी कि उचित-उचित स्थानोंपर योग्य पुरुष चुने जायँ जो अपना काम ठीक प्रकारसे करते रहें। साथ ही पुरोहितोंके मामलोंके लिए उनको न्यायाधीशका भी काम करना पड़ता था। दूसरे, चर्च सम्बन्धी जितनी भूमि होती थी उसका प्रबन्ध भी करना पड़ता था। तीसरे, साधारण असामियोंकी तरह-उन जमींदारोंकी भी सेवा करनी पड़ती थी जिनसे उसने जमीन पायी हो। लड़ाईके समय स्वामीको सिपाही भी देने पड़ते थे। फिर जर्मनीमें तो इन्हीं धर्माध्यक्षोंको राजा काउंट भी बना देता था। इस कारण उसे कर बटोरने, सिक्का बनाने और अन्यान्य राष्ट्र-प्रबन्ध सम्बन्धी कार्योंका अधिकार भी मिल जाता था।

ऐसी अवस्थामें यदि तत्काल सुधारके विचारसे राजासे यह अधिकार ले लिया जाता कि वह विशपको चर्चकी जमीन न दे सके, तो इसका नतीजा यह होता कि वह कितने ही अफसरोंके ऊपर कुछ अधिकार न रख सकता। क्योंकि कितने स्थानोंपर विशप और एबट राष्ट्र-प्रबन्धके लिए उसके अधीन काउंटके रूपमें थे। अतः जब यह विचार होने लगा तब राजाको यह चिन्ता हुई कि हमारे हाथसे यह अधिकार निकल न जाय और कहीं ऐसे लोग धर्माध्यक्ष न बन जायँ जो हमारा कहना न मानें।

एक और आफ़त आ रही थी। यह एक पुराना नियम था कि पुरोहितोंका विवाह न होना चाहिये। उसका विचार कम होने लगा। इटली, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लिस्तान आदि देशोंमें कितने ही पुरोहित विवाह करने लगे। इससे बहुतसे धार्मिक लोगोंको यह भय हुआ कि अब ईश्वरकी उपासना ठीक प्रकारसे नहीं हो

सकती। क्योंकि पुरोहितो को चाहिये कि वे गृहस्थ बन्धनोंसे मुक्त रहें, ताकि एकाग्र चित्तसे धर्मका उपदेश दे सकें और ईश्वरकी सेवा किया करें। यह तो एक बात हुई, और दूसरी यह, कि यदि पुरोहितगण विवाह करने लगें तो उनकी सम्पत्तिमें सब चर्चकी सम्पत्ति बँट जायगी, क्योंकि पिता अवश्य ही चाहेगा कि पुत्रोंका कुछ प्रबन्ध हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो जैसे साधारण जमींदार परम्पराबद्ध हो रहे हैं वैसे ही पुरोहित भी हो जायंगे। अतः पुरोहितोंका अविवाहित ही रहना ठीक है।

एक और गड़बड़ जो इस समय मच रही थी वह यह थी कि कितने ही लोग पदों-को खरीदते और बेंचते थे। यदि धर्माध्यक्ष अच्छी नियतसे काम करे तब तो उसके लिए पूरी मेहनत थी और उस पदको ग्रहण करनेके लिए कोई भी बड़ा उत्सुक न होता, परन्तु बहुतेरे लोग अपने कर्तव्योंका विचार न करके केवल उसके लाभका ही विचार करते थे, अतः घूस दे-देकर स्थानको प्राप्त करनेका यत्न करते थे। एक तो विस्तृत भूमि, दूसरे बड़े सम्मानका पद, तीसरे राष्ट्रकार्यका अधिकार, इन तीनोंके लिए बड़े-बड़े लोग भी यह आकांक्षा रखते थे कि हमको बिशपकी पदवी मिले। जिस राजा या जमींदारके हाथमें नियुक्तिका अधिकार होता था, उसे बड़े-बड़े लोग घूस देकर उस पदको प्राप्त करनेकी कोशिश करते थे। साधारणतः यह समझा जाता था कि चर्चके पदोंका खरीदना और बेचना महापाप है। इसको 'साइमनी' नामका पाप कहा करते थे। यह शब्द साइमन नामके जादूगरसे निकला है। कहावत यह है कि महात्मा पीटरको इसने इस अधिकारके लिए धन देना चाहा था, कि वह जिसको चाहे केवल स्पर्श करनेसे ही पवित्रात्मा बना देवे। महात्मा पीटरने पहलेसे ही साइमनको घृणाकी दृष्टिसे देखा, इससे सब उपासकगण जो इस पवित्र पदके खरीदनेकी अभिलाषा करते थे, घृणा करने लगे। "तेरा धन तेरे साथ नाश हो जाय, क्योंकि तू धनके बलसे ईश्वरको खरीदना चाहता था"—(संस्करण ८ सू० २०)।

जिन्होंने धर्मके पदको खरीदा था उनमें बहुत कम ऐसे थे जिनकी आकांक्षा परमेश्वरकी कृपासे धार्मिक पद पानेकी थी। उनकी केवल अभिलाषा प्रतिष्ठा और आमदनी पानेकी थी। इसके अतिरिक्त जब कभी कोई राजा या सर्दार कुछ पुरस्कार उन लोगोंसे पाता जिनके लिए उसने कोई पद दिला दिया था, उसको वह बिक्रीका न समझता था, केवल अपनेको इस लाभमें हिस्सेदार समझता था। मध्य-युगमें कोई भी यह निर्वाचन बिना पुरस्कार या अनेक प्रकारके शुल्कके नहीं पाता था। गिरजोंकी ज़मीनोंकी हालत निहायत अच्छी थी और उनसे आमदनी भी खूब थी। जो कोई पादरी किसी बिशप (गिरजेका अध्यक्ष) या एबटके पदपर नियुक्त किया जाता था उसे उसकी आवश्यकतासे कहीं अधिक आमदनी थी। इससे यह

आशा की जाती थी कि वह राज्य-कोशको भी पूरा करेगा जो कि प्रायः खाली ही रहता था।

साइमनीका पाप बहुत प्रचलित हो गया और उस अवस्थामें उसे दूर करना भी असम्भव जान पड़ने लगा। पर वह अत्यन्त दुश्चरित्र था, क्योंकि उसकी खराब हवा उलटी बहने लगी और तमाम पादरीवर्गको उसकी छूत लग गयी, क्योंकि जब कोई पादरी अपना पद प्राप्त करनेमें अधिक धन व्यय करता था तो यह उन पुरोहितोंसे जिन्हें कि वह स्वयं नियुक्त करता था, कुछ न कुछ अवश्य लेनेकी आशा रखता था और वह पुरोहित फिर अपने हल्केदारोंसे बपतिस्मा देने, विवाह कराने और दफन करानेके कार्योंमें हदसे ज्यादा रकम वसूल करता था।

ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें यह मालूम पड़ने लगा कि अपनी मिलकीयतके कारण अब गिरजोंमें भी अराजकता फैल जायगी, जैसा कि पिछले अध्यायमें कहा है। बहुत बातोंसे तो यह स्पष्ट था कि अब गिरजोंके भी बड़े-बड़े पदाधिकारी राजाओं तथा उमराओंके मातहत हो जायंगे, और अब वे पोपकी मातहतीकी सर्व-जातीय संस्थाके प्रतिनिधि न रहेंगे। ग्याहवीं शताब्दीमें रोमके बिशपका कुल अधिकार आल्प्सके उत्तरमें नष्ट हो गया था और वह स्वयं भी इटलीके अशान्त उमराओंकी मातहतीमें था। समयके फेरमें वह रांस या मायान्सके श्रेष्ठ धर्माध्यक्षों (आर्च बिशप)से भी तुच्छ समझा जाता था। इतिहासमें इससे बढ़कर आश्चर्य-कारक परिवर्त्तन कोई भी नहीं है जिसने ग्यारहवीं शताब्दीके दीन और क्षीण पोप्‌को यूरोपीय मामलों सबसे ऊंचे पदपर पहुँचा दिया।

पोपका नियुक्त करना रोमके एक उमरावके हाथमें था और वह उस पदके अधिकारमें अपना अधिकार जमाता था। संवत् १०८१ (सन् १०२४) में जब द्वितीय कानराड बादशाह हुआ तो एक लँगड़ा आदमी पोप बनाया गया और इसके बाद नवाँ बेनडिक्ट एक दस या ग्यारह वर्षका बच्चा उसी पदपर नियुक्त किया गया जो बालक होनेपर भी बहुत दुष्ट था। उसके खानदानवाले शक्तिशाली थे और उन्हीं लोगोंने उसे उस पदपर दस वर्षतक सँभाला। इसके बाद उसने शादी करनेकी इच्छा प्रकट की। इस सूचनासे रोमकी जनता बिगड़ गयी और उसे शहरसे निकाल दिया। इसके बाद एक अमीर बिशपने अपनेको नियुक्त कराया।

ऐसी अवस्थामें बादशाह तृतीय हेनरीने अपना हस्तक्षेप आवश्यक समझा, अतः वह इटलीमें गया और संवत् ११०३ (सन् १०४६)में इटलीके उत्तर सुत्री नगरमें एक सभा कर दोनों स्वत्वाधिकारियोंको उतार दिया। छठे ग्रेगरीने जो अपने प्रतिवादियोंसे कहीं अधिक समझदार था, केवल अपने पदसे इस्तीफा ही न दिया, बल्कि अपने पदकी पोशाकको भी टुकड़े-टुकड़े कर डाला। यद्यपि उसने उस पदको

पाक नियतसे लिया था तथापि उसने खरीदनेका पाप स्वीकार किया। बादशाहने उस पदपर जर्मनीका एक सुयोग्य पोप नियुक्त किया जिसका पहला काम हेनरी और उसकी पत्नी अग्नेसको गद्दीपर बैठाना था।

ऐसे अवसरपर तृतीय हेनरीका इटलीमें आना और तीनों प्रतिवादी पोपोंके मसलेको तय करना मध्य युगके इतिहासकी खास घटनाओंमें है। इटलीकी हीन राजनीतिक अवस्थाके ऊपर जो उच्च स्थान तृतीय हेनरीने पोप-पद्धतिको दिया उससे उसने अपने राज्याधिकारके सामने एक प्रतिवादी खड़ा कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि दो सौ वर्षके भीतर ही उसने राज्याधिकारको दबा दिया और पश्चिमीय यूरोपमें सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया।

करीब दो सौ वर्षतक पोपने यूरोपके सुधारमें बहुत कम भाग लिया था। गिरजेको एक ऐसा सांसारिक राज्य-संघ जिसकी राजधानी भूमध्य रोम हो, बनाना बड़ा भारी काम था। रास्तेमें जो कुछ कठिनाइयाँ थीं उन्हें दूर करना भी सहज नहीं जान पड़ता था। उन आर्कबिशपोंको, जो कि पोपकी शक्तिसे उतना ही जलते थे जितना कि एक नायब राजाकी शक्तिसे जलता है, दबाना आवश्यक था। लोगोंके विचारोंको जो कि गिरजोंके मिलानेके विरुद्ध थे, दूर करना आवश्यक था। इसके सिवाय गिरजोंके पदपर अधिकारीवर्गके चुननेका अधिकार राजाओं, अमीरों और अन्य लोगोंके हाथसे छीनना, साइमनी और उसके नाशकारी प्रभावको मिटाना, गिरजेकी सम्पत्तिको नष्ट होनेसे बचानेके लिए पादरियोंके विवाहोंको रोकना और गिरजेके पुरोहितोंसे लेकर आर्कबिशपतक तमाम अधिकारीवर्गको लोगोंकी आँखोंसे गिरानेवाले इस दुष्कर्म तथा सांसारिक विषयोंसे दूर रखना भी आवश्यक था।

अपने जीवनभर तृतीय हेनरीने पोपके चुनावका काम अपने हाथमें रखा और वह हमेशा गिरजोंकी उन्नतिके प्रयत्नमें लगा रहा। जर्मनीके अच्छेसे अच्छे प्रेलेटको उस पदपर नियुक्त करता रहा। इसमें सबसे अच्छा नवाँ लियो संवत् ११०६–१११ (सन् १०४९–५४)में हुआ। यह उन लोगोंमें पहला था जिन्होंने यह दिखलाया कि पोप न केवल पादरी और गिरजोंका ही मालिक बन सकता है, बल्कि राजाओं और बादशाहोंके ऊपर भी शासन कर सकता है। लियोकी नियुक्ति बादशाह द्वारा होनेके कारण उसने पोप होना स्वीकार नहीं किया। उसका कहना था कि बादशाह पोपको सहायता दे, उसकी रक्षा करे न कि उसकी नियुक्ति करे। इसलिए वह रोममें यात्रियोंकी तरह नंगे पैर गया और वहाँवालोंने गिरजेके कानूनके अनुसार उसे नियुक्त किया।

साइमनी और पादरियोंके विवाह रोकनेकी मन्शासे सभा करानेके लिए लियो स्वयं फ्रांस, जर्मनी और हंगरीमें गया, लेकिन कुछ दिनोंके बाद यह आत्मशक्ति

पोपोंमें न रही। इसका मुख्य कारण यह था कि उनमें अधिकारी वृद्ध होते थे और यात्रा करना उनके लिए दुःखदायी और कभी-कभी भयावह भी था। लियोके उत्तराधिकारी दूतोंपर अधिक भरोसा रखते थे जिनको उन्होंने बहुत अधिकार दे रखा था और उन्हींको उन लोगोंने यूरोपके समस्त देशोंमें भेजा। यह काम उसी तरहका था जैसा शार्लमेनका मिसीको नियुक्त करना। कहा जाता है कि लियो-को अपने शक्तिशाली कार्यमें हिल्डब्रैण्ड नामी किसी मनुष्यसे बहुत आयोजना मिली थी। हिल्डब्रैण्ड ग्रेगरी सप्तमके नामसे एक बड़ा भारी पोप होनेवाला था, जिसने कि मिडिवल चर्चके बनानेमें बड़ा काम किया था। इस कारणसे हम लोग उसे सीजर, शार्लमेन, रिचलू, बिस्मार्क ऐसे नीतिज्ञोंमें स्थान देते हैं।

साधारण जनके अधिकारसे गिरजोंके उद्धार करनेके कार्यका प्रारम्भ पहले पहल द्वितीय निकोलसने किया था। संवत् १११६ (सन् १०५९) में इसने एक घोषणा निकाली, जिसके द्वारा पोपका अधिकार बादशाह तथा रोमकी प्रजा दोनोंके हाथसे छीन लिया गया और सदैवके लिए कार्डिनलोंके हाथमें दे दिया गया, वे रोमन पाद-रीके प्रतिनिधि थे। इस घोषणाका मतलब केवल हस्तक्षेप रोकना था, चाहे वह बाद-शाह या अमीर-उमरा किसीका हो। रोमन प्रजामें कार्डिनलोंकी संस्था अबतक वर्त्तमान है, जो पोपका चुनाव करती है।

सुधारक दल पोपके कार्यका संचालक था। उसने पोपकी नियुक्तिका कार्य पाद-रियोंके हाथमें देकर गिरजोंके मुख्य पदको सांसारिक मनुष्योंके दबावसे पृथक् कर दिया। अब उन लोगोंने दुनियावी लगावसे गिरजेको ही सुधारना चाहा। उन लोगोंने विवाहित पादरियोंको धार्मिक अनुष्ठान-संपादन करने और उनके हलकेके लोगोंको ऐसे पादरियोंकी धार्मिक-शिक्षा सुननेसे रोका। दूसरे, उन लोगोंने राजाओं तथा उमराओंको पादरियोंके चुनावके अधिकारसे वंचित किया, क्योंकि यही पादरियोंके दुनियावी लगावका मुख्य कारण समझा जाता था। स्वभावतः नये तरीकेसे पोपके चुनावसे भी कहीं अधिक इसके विरोधी पैदा हुए। मिलनमें एक निर्वाचित पादरी-को निकालनेके प्रयत्नमें बलवा हो गया। पोपके दूतकी जान जोखिममें थी। जिन चालानोंमें पादरियोंको गिरजेकी ज़मीन और पद अन्य लोगोंसे लेनेका निषेध था, उनपर न तो पादरियोंने ही और न उमराओंने ही ध्यान दिया। जो काम पोपोंने अपने हाथमें लिया था उसकी पूरी व्यवस्था संवत् ११३० (सन् १०७३) में हिल्डब्रैण्डके सप्तम ग्रेगरी नामसे पोप बन जानेपर मालूम हुई।

अध्याय १२

सप्तम ग्रेगरी और चतुर्थ हेनरीका झगड़ा

सप्तम ग्रेगरीने अपने संक्षिप्त लेखमें दिखलाया है कि पोपके क्या अधिकार हैं। इनका नाम उसने 'डिक्टेटस्' रखा है। उसके मुख्य अधिकारमें कहा गया है कि "पोपके पदकी समता नहीं है, वह संसारभरमें एक ही बिशप है और जिस बिशपको चाहे, निकाल दे, फिर दूसरेको नियुक्त कर दे, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेज दे। उसकी आज्ञाके बिना गिरजेकी कोई भी जनता ईसाई-धर्मके बारेमें कुछ नहीं कर सकती। रोमन चर्चने न तो कभी भूल की है और न वह कभी कर सकती है। जो मनुष्य रोमन चर्चसे सहमत नहीं है, वह कैथोलिक नहीं समझा जा सकता। कोई भी किताब जबतक वह पोपकी स्वीकृति न पा ले, प्रमाण नहीं मानी जा सकती।"

ग्रेगरी चर्चोंपर पोपके अखंड अधिकारपर ही जोर देकर न रह गया, बल्कि वह आगे बढ़ा और जहां-जहां धर्मके लिए आवश्यक समझा, उसने राज्याधिकारके रोकनेका हक पोपका दिखलाया। उसका कहना है कि केवल पोप ही है जिसके पैर तमाम राजे महाराजे छूते हैं। वह बादशाहको गद्दीपरसे उतार सकता है और प्रजाको बेइन्साफ राजाका सहगामी होनेसे रोक सकता है। जो कोई पोपके पास प्रार्थना भेजे उसे कोई दुर्वाद नहीं कह सकता। पोपकी बातोंको कोई काट नहीं सकता। पोप चाहे जिसकी बातको काट सकता है पर पोपके कामपर कोई अपनी राय जाहिर नहीं कर सकता।

ये सब केवल एक क्रूर उपद्रवीके स्थिर अविचार न थे, परन्तु राज्यपद्धतिके विचार थे, जिसके समर्थक आगामी समयके कितने ही विद्वान् मनुष्य हुए हैं। ग्रेगरीके विचारोंकी आलोचना करनेके पहले हमें दो बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है। पहले यह जान लेना चाहिये कि उस समय आजकलकी तरह राज्योंमें शान्ति न थी, उसके सरदार विग्रही राजे थे जिनको अराजकता अत्यन्त प्रिय थी। किसी समय ग्रेगरीने कहा था कि राज्याधिकारको किसी बुरे मनुष्यने शैतानकी आयोजनासे बनाया है। उसका उस समयका विचार तत्कालीन राजाओंके आचरणका सच्चा चित्र था। दूसरे यह समझ लेना आवश्यक है कि ग्रेगरी कभी नहीं चाहता था कि राज्याधिकार चर्चके हाथमें जाय, बल्कि उसका यह कहना था कि चर्च उन पापात्मा राजा-

ओंके बुरे कार्यको रोके और असङ्गत नियमोंका प्रचार न होने दे, क्योंकि इसीपर ईसाई-धर्मके अनन्त सुखका भार है। इन सबोंमें सफलता न होनेपर उसने अपने अधिकारोंमें यह भी कहा था कि उस जातिका बचाना हमारा धर्म है जो एक दुष्टात्मा राजाके संसर्गसे अपने लोक तथा परलोक दोनोंका सत्यानाश कर रही है।

पोपके पदपर आते ही ग्रेगरीने ऐसे विचारोंका अनुसरण करना आरम्भ किया जैसा रोलके मुताबिक किसी धार्मिक संस्थाके महन्तको करना चाहिये। उसने सारे यूरोपमें दूत भेजे और इसी समयसे ये दूत राज्यमें एक प्रबल शक्ति हो गये। उसने फ्रांस, इंगिलस्तान तथा जर्मनीके राजा चतुर्थ हेनरीको कहला भेजा कि 'बुरे रास्तेको छोड़ दीजिये, न्यायप्रिय बनिये और मेरे अनुशासनको मानिये।' जयशील राजा विलियमसे उसने बड़े नम्रभावसे कहा कि "जैसे नक्षत्र-मण्डलमें सूर्य और चन्द्रमा सबसे बड़े समझे जाते हैं वैसे ही संसारकी शक्तियोंमें ईश्वरने पोप तथा राजाके अधिकारको सबसे बड़ा बनाया है, परन्तु पोपका अधिकार राजाके अधिकारसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि राजाके कार्योंका उत्तरदायी पोप है। अन्त समयमें ग्रेगरी राजाके कार्योंका उत्तरदायी होगा; क्योंकि वह भी एक मामूली जीवकी तरह उसके हाथ सुपुर्द किया गया है।" उसने फ्रांसके राजाको कहला भेजा कि "साइमनीका कार्य छोड़ दो, नहीं तो तुम राजकाजसे अलग कर दिये जाओगे और तुमसे तुम्हारी प्रजाका सम्बन्ध तोड़ दिया जायगा।" ग्रेगरीने वह तमाम कार्य किसी सांसारिक सुखकी अभिलाषा से नहीं किया था, परन्तु उसका सत्यधर्मपर पूरा विश्वास था और ऐसा करना वह अपना धर्म समझता था।

ग्रेगरीके सुधारकी व्यवस्था समस्त यूरोपके लिए थी, परन्तु विशेष दशाके कारण उसे जर्मनीके बादशाहसे ही विरोध करना पड़ा। समरका आरम्भ यों है। तृतीय हेनरी संवत् ११११ (सन् १०५६) में मरा। उस समय उसकी पत्नी अनिस और उसका एक छः वर्षका लड़का उत्तराधिकारी था और इन्हींपर जर्मनीके बादशाहकी सत्ताका भार था जिसका उपार्जन उसने बड़ी कठिनाईसे किया था, जिसपर बड़े-बड़े उमराव लोग दाँत गड़ाये बैठे थे। यहाँतक कि यशस्वी ओटो भी उनको न दबा सका।

संवत् ११२२ (सन् १०६५) में पन्द्रह वर्षका वह बालक बालिग बना दिया गया और यहींसे उसकी कठिनाइयोंका आरम्भ हुआ, क्योंकि उसके पदपर आते ही सेक्सन लोगोंने बलवा करना आरम्भ कर दिया। उन लोगोंने यह दोषारोपण किया कि राजाने हम लोगोंकी जमीनमें जबरदस्ती किला बनाकर उसमें नये-नये सिपाही रख छोड़े हैं जो मनुष्योंका शिकार करते हैं। इस विषयमें हस्तक्षेप करना ग्रेगरीने

अपना धर्म समझा। ग्रेगरीको यह मालूम हुआ कि वह विचारहीन बालक बुरी संगतिमें पड़कर सेक्सन लोगोंपर अत्याचार करता है।

हेनरीकी कठिनाइयों तथा आपत्तियोंको पढ़कर आश्चर्य होता है कि वह कैसे बादशाह बना रह गया। बिना किसी विश्वासपात्रके पीड़ितहृदय होकर, अपनी प्रजा-से भागकर, पश्चात्तापके साथ उसने पोपको लिखा कि "मैंने ईश्वर और आप दोनोंके सामने पाप किया है और अब मैं आपका पुत्र कहलाने लायक नहीं हूँ।" परन्तु सेक्सनोंके ऊपर विजय पानेकी प्रसन्नतामें वह पोपके अधिकार माननेका वचन बिलकुल भूल गया और पुनः उन्हीं लोगोंकी राय लेने लगा जिनको पोपने निकाल दिया था। वह पोपका ख्याल न करके जर्मनी और इटलीके मुख्य-मुख्य गिरजोंमें स्वयं बिशप नियुक्त करने लगा।

ग्रेगरीके पहले जो पोप हुए थे उन्होंने गिरजेवालोंको मना किया था कि वे लोग साधारण जनोंसे अधिकारका पद न प्राप्त करें। जिस समय हेनरीसे विरोध पैदा हुआ था, ठीक उसी समय ग्रेगरीने संवत् ११३२ (सन् १०७५) में इस प्रतिरोधकी पुनः घोषणा करा दी, जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि राजा लोग गिरजेके नये अधिकारियोंको उसके संसर्गकी तमाम जमीनका अधिकार देते थे। सामान्य जनोंसे अधिकार पदको लेनेसे रोकनेमें ग्रेगरीने एक बड़ा भारी टंटा खड़ा कर दिया। बिशप और एबट लोग सरकारी आदमी होते थे जो जर्मनी और इटलीमें काउण्ट लोगोंके अधिकारका भोग करते थे। राजा लोग केवल उनकी राय तथा राज्य-कार्यमें सहायता ही नहीं चाहते थे, किन्तु जब कभी उनको अपने अमीर-उमरावोंसे लड़ना पड़ता था तो ये बिशप लोग इन राजाओंके मुख्य सहायक होते थे।

ग्रेगरी ने सं० ११३२ (सन् १०७५) में हेनरीके पास तीन दूत पत्र देकर भेजे थे। पत्र ऐसे लिखा था जैसे पिताने मानों पुत्रको लिखा हो। उसमें उसने राजाको उसकी सब बुरी कारवाइयोंके लिए फटकारा था, लेकिन उसे पूरी आशा थी कि केवल इन प्रत्यादेशोंका हेनरीपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि उसने अपने दूतोंको पहलेसे सूचित कर दिया था कि यदि आवश्यकता पड़े तो धमकीसे भी काम लेना जिसका परिणाम यह होगा कि या तो वह दब जायगा या खुल्लम-खुल्ला बलवा कर देगा। दूत लोग राजासे यह कहने गये थे कि "आपके अपराध ऐसे कठोर, दारुण तथा जघन्य हो गये हैं कि आपको सदाके लिए राज्यसे निकाल देना चाहिये।"

दूतोंके उग्र वचनसे केवल राजाकी ही कोपाग्नि नहीं भभकी, किन्तु उसके बिशपोंको भी यह असह्य प्रतीत हुआ। हेनरीने सं० ११३३ (सन् १०७६) में

वर्म स्थानमें एक सभा की। इसमें जर्मनीके करीब-करीब सब बिशप उपस्थित थे। वहाँपर यह कहकर कि ग्रेगरीका चुनाव नियमसे नहीं हुआ है, उसे पदसे च्युत कर दिया और उसपर दुश्चरित्रता और तृष्णाके दोष भी लगाये गये। बिशपोंने साफ कह दिया कि हम लोग उसकी आज्ञाका पालन न करेंगे और अब वह हम लोगोंका पोप न रहा। यों तो देखनेसे आश्चर्यसा जान पड़ता है कि हेनरीको गिरजोंके मुखियाके प्रतिकूल गिरजेवालोंको सहायता कैसे मिली। किन्तु विशेष बात यह थी कि बिशपोंको पद राजासे ही मिलता था, न कि पोपसे।

हेनरीने ग्रेगरीको एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा कि "आजतक मैं उत्सुकताके साथ कष्ट उठाकर पोपकी प्रतिष्ठाकी रक्षाका प्रयत्न करता आया हूँ, परन्तु पोपने हमारी इस नम्रताको भयका कारण मान लिया है।" पत्रके अन्तमें उसने ये वाक्य लिखे हैं कि 'ईश्वरसे प्राप्त इस राज्याधिकारके प्रतिकूल आँख उठाते हुए तुझे कुछ भी आशंका न हुई, तिसपर तू हम लोगोंसे यह अधिकार छीन लेनेकी धमकी देता है, मानों, यह राज्य तूने ही हमको दिया है। यह राज्य या साम्राज्य ईश्वरके हाथमें न होकर तेरे ही हाथमें है। मैं हेनरी राजा होकर अपने तमाम बिशपोंके साथ अब तुझे यह आज्ञा देता हूँ कि तू अपने पदसे उतर जा और समग्र जातिसे घृणित और गर्हणीय हो।"

ग्रेगरीने हेनरी और उन बिशपोंको, जो उसे पदच्युत करना चाहते थे, बड़ी दृढ़ताके साथ शीघ्र ही यह जवाब दिया कि "माननीय महात्मा पीटर, मेरी बात सुनिये, आपकी कृपासे आपका ही प्रतिनिधि बनाकर स्वर्ग तथा मृत्युलोकमें बन्धन और मुक्तिका अधिकार ईश्वरने मुझे दिया है। इसके सहारेसे आपके गिरजोंके यश तथा प्रतिष्ठाके लिए ईश्वरके नामपर आपकी शक्तिके द्वारा बादशाह हेनरीके पुत्र राजा हेनरीसे मैं जर्मनी और इटलीके समस्त राज्यका अधिकार छीन लेता हूँ, क्योंकि वह आपके गिरजेके प्रतिकूल प्रबल उद्दण्डतासे खड़ा हुआ है। मैं तमाम ईसाइयोंको जो इसके संसर्गमें हैं या आवें, इससे अलग करता हूँ तथा आज्ञा देता हूँ कि इसको कोई भी राजा न माने। चूँकि इसने अधिकतर निकाले हुए लोगोंके साथ सम्बन्ध रखा है और बहुत अन्याय भी किया है, इसलिए वह घृणाके साथ निकाला जाता है।"

पोप द्वारा राजगद्दीसे उतारे जानेके कुछ समयके उपरान्ततक सब बातें हेनरीके प्रतिकूल होती रहीं, यहांतक कि सब गिरजेवाले भी उससे अलग हो गये। सेक्सन वालोंने भी यह समय उपयोगी समझा। वे लोग पहलेसे असंतुष्ट तो थे ही, पोपके हस्तक्षेपपर अप्रसन्नता न प्रकट कर वे लोग हेनरीको पदच्युत कर एक अच्छे शासकको राजगद्दीपर बैठानेका प्रयत्न करने लगे। उन सब लोगोंने मिलकर एक बड़ी भारी सभा की और उसमें उसे एक मौका और देनेका निश्चय किया। लेकिन जब-

तक वह पोपसे सुलह न कर ले, राजकार्योंमें हाथ नहीं लगा सकता था। यदि वह एक वर्षके भीतर ही भीतर पोपसे सुलह न कर लेगा तो उसे राज्यसे हाथ धोना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह निर्णय करनेके लिए कि हेनरीको ही पुनः अधिकार-पदपर बैठाया जाय या दूसरा कोई राजा चुना जाय, पोपको आसबर्ग बुलाया गया। देखनेसे यह जान पड़ता था कि अब राज्यकार्य भी पोपके हाथमें रहेगा।

हेनरीने पोपके वापस आनेतक चुपचाप बैठे रहना निश्चय किया था। पोप महोदय आसबर्ग आये और कानोसाके प्रासादमें उतरे। उनका आगमन सुन हेनरी घोर जाड़ेमें आल्प्स पर्वतको पार कर वहांपर पहुंचा और प्रासादके सामने विनीत भावसे हाथ जोड़ खड़ा हुआ। वह नंगे पैर, मोटे कपड़े पहिने, तपस्वीके वेशमें यात्रियों-की तरह तीन दिनतक बराबर प्रासादके बन्द फाटकतक जाता रहा, परन्तु इतनेपर भी ग्रेगरीने उस विनीत राजाको अपने पास न फटकने दिया। जब उसके घनिष्ठ साथियोंने उसे बहुत समझाया, तो उसने हेनरीको आनेकी आज्ञा दी। जिस समय वह प्रभावशाली राजा उस मनुष्यके सामने, जो अपनेको ईश्वरके दासोंका दास कहता था, उपस्थित हुआ है, उस समयका दृश्य गिरजेके अधिकारकी शान्तिका और उनकी प्रबल बुराइयोंका आदर्शभूत है। भूमण्डलभरमें सिवा मौनके इनकी रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं मालूम होता।

कनोसामें हेनरीके सब अपराध क्षमा किये गये। इससे जर्मनीके राजा लोग प्रसन्न एवं सन्तुष्ट न थे; क्योंकि पोपसे सुलह करनेके लिए कहनेमें उनकी भीतरी इच्छा उसे और दुःख देनेकी थी। इसलिए वे लोग अब दूसरा राजा बनानेपर उताह हुए। उसके पश्चात् तीन या चार वर्षका समय केवल भिन्न-भिन्न राजाओंके साथियों-के कलहमें व्यतीत हुआ। ग्रेगरी सं० ११३७ (सन् १०८०) तक चुपचाप रहा। उसके बाद पुनः उसने राजा हेनरी और उसके अनुयायियोंको शापकी बेड़ीमें बाँधा। पुनः घोषणा करा दी कि उसके सब अधिकार छीन लिये गये, और सब ईसाइयोंको उसका आज्ञापालन करनेको मना कर दिया।

इस दूसरी बारके हटाये जानेका प्रभाव बिलकुल उलटा ही हुआ। हेनरीके मित्रोंका दल घटनेके बदले बढ़ता ही गया। जर्मनीके पादरी पुनः उत्तेजित किये गये, और उन्होंने पुनः इस हिल्डब्रैंडको पदच्युत किया। हेनरीके सब शत्रुवर्ग लड़ाईमें मारे गये और हेनरी पोपके एक शत्रुके साथ इटली गया। वहाँ जानेके दो तात्पर्य थे, एक तो अपने पोपको पदपर बैठाना और दूसरे सम्राट्-पदको जीतना। ग्रेगरी दो वर्षतक सँभालता रहा, पर अन्तको रोम हेनरीके हाथ चला गया। तब ग्रेगरीने मुंह मोड़ लिया, तत्पश्चात् वह थोड़े ही दिनोंमें मर गया। उसने मरते समय ये शब्द कहते थे—"मैं न्यायका प्रेमी और अन्यायका विरोधी था और

यही कारण है कि मैं विदेशमें प्राणत्याग कर रहा हूँ। पाठकगण इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह न करेंगे।"

ग्रेगरीकी मृत्युसे ही हेनरीकी कठिनाइयोंका अन्त न हुआ। आल्प्स पर्वतके दोनों तरफकी प्रजा बलवाई थी जिसमें बीस वर्षका समय केवल जर्मनी और इटली-के राज्यपर अधिकारस्थापन करनेमें ही बीत गया। जर्मनीमें उसके मुख्य शत्रु सैक्सनवाले और उमराव लोग थे। इटलीमें स्वयं पोप महाराज ही अपनी राज्य-स्थिति करनेके प्रयत्नमें लगे थे और वे सदैव लम्बार्ड शहरके रहनेवालोंको बाद-शाहका प्रतिरोध करनेके लिए उभाड़ते रहे, क्योंकि लम्बार्डवाले स्वयं शक्तिमान होते जाते थे और राज्याधिकार नहीं मानना चाहते थे।

सं० ११४७ (सन् १०९०)में इटलीवालोंने फिर उनके प्रतिकूल दल बाँधा। इस समय वह जर्मन-वर्गियोंका दमन कर रहा था। उसको विवश हो वहाँका काम अधूरा छोड़ इटली जाना पड़ा। वहाँ उसकी गहरी हार हुई, यह अवसर लम्बार्ड-वालोंके हाथ आया। उन लोगोंने अपने विदेशीय राजाके प्रतिकूल संघ बना लिया। सं० ११५० (सन् १०९३)में मिलन, क्रिमना, लोडी और पियासेंजावालोंने आत्मरक्षार्थ आपसमें संधि कर ली। सात वर्षतक रहकर अन्तमें उस देशको शत्रुओंके हाथमें छोड़ निराश हो दुःखित हृदय हेनरी आल्प्स पर्वत पार कर लौट आया, पर उसे घरपर भी शान्ति न मिली। उसके असन्तुष्ट उमरावोंने उसके प्रति-कूल उसके लड़केको उभाड़ा जिसे वह स्वयं अपना उत्तराधिकारी बना देता। इससे और भी अशान्ति फैली। आपसमें अनेक लड़ाइयाँ होती रहीं। सं० ११६३ (सन् ११०६) में उसकी मृत्यु हुई, इसके साथ ही साथ इतिहासके सबसे दुःखमय शासनकालका अन्त हुआ।

चतुर्थ हेनरीका पुत्र राज्याधिकारी हुआ और उसने अपना नाम पञ्चम हेनरी रखा। उसके राज्यकालमें अधिकार-पददानकी समस्या पूरी हुई। उस समय पास्कल द्वितीय पोप था। उसने कहा कि आजतक जितने बिशप राजासे नियुक्त हैं, यदि वे योग्य पुरुष हैं तो स्वीकार किये जा सकते हैं, पर भविष्यमें ग्रेगरीके घोषणा-नुसार कार्य किया जायगा। आजसे पादरी लोग राजाओंकी उपासना न करें और उनसे संसर्ग न रखें, क्योंकि इनका काम धर्मका है और उनका काम खूनखराबीका है। पंचम हेनरीने यह घोषणा करा दी कि जबतक पादरी लोग प्रभुमें भक्ति करनेकी शपथ न लेंगे तबतक बिशपोंको गिरजेसे सम्बन्ध रखनेवाली मिलकीयत नहीं मिलेगी।

कुछ कठिनाइयोंके बाद सं० ११७९ (सन् ११२२)में वर्मके कान्कोर्डटमें सुलहनामा हुआ जिससे कि जर्मनीमें अधिकारपदके दानका झगड़ा मिटा। राजाने

वचन दिया कि अबसे बिशप और एबटकी नियुक्तिका काम चर्चको दिया जाता है। और मैंने इससे अपना सम्बन्ध हटा लिया, परन्तु चुनाव राजाके समक्ष हुआ करेगा। उसे यह भी अधिकार मिला कि वह स्वयं नये नियुक्त किये हुए बिशपों और एबटोंको अपने राजदंडसे स्पर्श करके गिरजेका अधिकार दे। इस प्रकार गिरजेका धार्मिक अधिकार बिशपोंको गिरजेवालोंसे मिलता था। वे उन्हें चुनते थे और इस समय राजा यदि चाहे तो अपने राजदंडसे छूनेसे इनकार कर किसी भी बिशपका चुनाव रद्द कर सकता था, परन्तु बिशपकी नियुक्तिका कार्य उसके हाथमें न रहा। पोपके चुनावमें तो इस-स्वीकृतिकी कोई आवश्यकता ही न रही, क्योंकि हेनरी चतुर्थके आगमन-कालसे कई एक पोप बादशाहकी स्वीकृतिके बिना ही चुने गये थे और उनका चुनाव ठीक भी माना गया था।

अध्याय १३

होहेन्स्टाफेन बादशाह और पोप लोग

प्रथम फ्रेडरिक सं० १२०९ (सन् ११५२)में जर्मनीका बादशाह हुआ। इसका शासनकाल जर्मनीके सब राजाओंसे मनोरंजक है और इसके शासनकालके लेखप्रमाणसे हमें तेरहवीं शताब्दीके मध्यकालिक यूरोपकी स्थितिका पूरा पता चलता है। इसके अधिकारपदपर आनेके साथ-ही-साथ हम लोग उस अन्धकारमय समयसे अलग होते हैं। सातवीं शताब्दीसे लेकर तेरहवीं शताब्दीतकका यूरोपीय इतिहास हमें पादरियोंसे ही मिलता है। वे अधिकांश अनभिज्ञ और लापरवाह थे। वे जिन बातोंका उल्लेख करते थे, उनसे बहुत दूर रहते थे। इससे वे सब वृत्तान्त अपूर्ण तथा अविश्वसनीय हैं। तेरहवीं शताब्दीके अगले भागोंमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर अधिकाधिक विज्ञापन मिलने लगे, जिनसे हमको अब शहरकी हालतोंका पता मिलने लगा है, जिससे हम लोग केवल पादरियोंके उल्लेखोंके भरोसे नहीं रह सकते हैं। पहला इतिहासवेत्ता फ्रीसींग-निवासी ओटो था जो कुछ फिलासफी भी जानता था। उसने फ्रेडरिकका जीवनचरित्र लिखा है, जिसमें संसार भरका इतिहास भी उल्लिखित है। इससे उस समयकी दशाका अमूल्य वृत्तान्त ज्ञात होता है।

फ्रेडरिककी बड़ी अभिलाषा थी कि वह रोमको अपनी असली हालतपर पहुँचा दे। वह अपनेको सीजर, जस्टीनियन, शार्लमेन और ओटोकी समतापर मानता था। उसे इसका भी ज्ञान था कि हमारा अधिकार पोपके अधिकारकी भाँति ईश्वरसे स्थापित है। राजगद्दीपर बैठनेके समय उसने पोपसे कहा था कि यह राज्य मुझको परमेश्वरने स्वयं दिया है और उसने अपने पुरखोंकी तरह पोपकी स्वीकृति नहीं चाही, परन्तु सम्राट्के अधिकारोंकी रक्षा करनेमें यावज्जीवन उसे उन्हीं प्राचीन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। साथ ही उसे अपने बागी उमरावोंका सामना भी करना पड़ा जो कि पोपके अधिकारकी रक्षा करनेके लिए सन्नद्ध थे। इसके अतिरिक्त लम्बार्डमें उसे बहुत अजेय शत्रु मिले जिनसे उसे गहरी हार भी खानी पड़ी।

फ्रेडरिकके पहले तथा पीछेके समयमें बड़ा अन्तर था। अर्थात् उसके पश्चात्का समय सम्पूर्ण शहरोंकी उन्नति एवं उनकी वृद्धिसे परिपूर्ण है। इस समयतक हम लोग केवल सम्राट्, पोप, बिशप तथा प्रतिवादी राजाओंका ही नाम सुनते थे। अबसे

हमको शहरका भी ध्यान करना पड़ेगा। फ्रेडरिकको यह नयी उन्नति देखकर एक प्रकारका शोक हो गया था।

शार्लमेनके शासनके पश्चात् लम्बार्डके शहरोंका शासन वहाँके बिशपोंके हाथमें आया जो कि काउंटोंके अधिकारका उपभोग करते आते थे। बिशपोंके हाथसे शहरोंकी विशेष उन्नति हुई। वे अपने पड़ोसके शहरोंपर भी अपना अधिकार जमाये हुए थे। धीरे-धीरे कारीगरी तथा व्यवसायकी भी उन्नति होने लगी थी, अब वहाँकी समृद्ध प्रजा तथा दीन लोग भी शासनमें कुछ न कुछ भाग लेनेकी अभिलाषा प्रकट करने लगे। प्रारम्भ में ही क्रिमनाके बिशप निकाल दिये गये। उनका प्रासाद जला दिया गया और उनकी सम्पूर्ण वृत्ति बन्द कर दी गयी। तत्पश्चात् चतुर्थ हेनरीने ल्यूका-निवासियोंको वहाँके बिशपके प्रतिकूल उभाड़ा और उन लोगोंको वचन दिया कि आजसे उनकी स्वतन्त्रतापर बिशप, ड्यूक वा काउंट कोई भी हस्तक्षेप न करेगा। इसी प्रकार प्रायः और नगरवालोंने भी धर्माध्यक्षोंकी शासन-शृंखलाको तोड़ दिया। अन्ततोगत्वा नगरका सम्पूर्ण शासन म्युनिसिपल सदस्योंके हस्तगत हुआ। ये सदस्य प्रजाके उन लोगोंमेंसे थे जिनको शासनमें कुछ अधिकार था।

सामान्य शिल्पकारोंको नगरके प्रबन्धमें कोई भी अधिकार नहीं मिलता था। कभी-कभी वे लोग राजद्रोह कर बैठते थे। कभी-कभी वे सामन्त लोग ही जो अपना-अपना राज छोड़कर नगरोंमें आ बसे थे, लड़ जाते थे, जिसके कारण एक प्रकारका विप्लव हो जाता था। यदि वह आजकलके शान्त नगरोंमें होता तो असह्य हो जाता। इसका परिणाम यह होता था कि आस-पासके नगरोंसे भी लड़ाई छिड़ जाती थी, तब यह उपद्रव बहुत ही भयानक हो जाता था। चारों ओर इतनी अशान्ति होनेपर भी इटलीके नगर शिल्पविद्या और कलाकौशलके केन्द्र बन गये। यूनानके नगरोंको छोड़ इसकी बराबरी करनेवाला इतिहासमें कोई दूसरा नगर ही नहीं था। इसके अतिरिक्त वे लोग अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा भी कई शताब्दी-तक करते रहे। इधर फ्रेडरिक इटलीका सम्राट् बनना चाहता था परन्तु इसकी कठि-नाइयाँ कुछ कारणोंसे विशेष बढ़ गयी थीं। लम्बार्ड नगरवालोंने प्रबल प्रतिरोध कर रखा था और वे सर्वदा पोपके सहगामी होते थे। दोनोंकी मानसिक इच्छा यही थी कि सम्राट्का अधिकार आल्प्स पर्वतके इस ओर केवल नाममात्रका रहे।

लम्बार्डके नगरोंमें मिलन सबसे शक्तिशाली था। उसके आसपासवाले नगरके लोग भी उससे घृणा करते थे, क्योंकि वह उनपर अपना अधिकार जमानेका अनेक बार प्रयत्न कर चुका था। कुछ मनुष्य लोडीसे भागकर आये और उन्होंने नये सम्राट्को मिलनकी क्रूरता तथा अत्याचारोंका समाचार दिया। फ्रेडरिकने यह सुनकर अपने कुछ भृत्य वहाँ भेजे। मिलनवालोंने उनका बड़ा तिरस्कार किया और राज-

कीय मुद्राको अपने पैरोंतले कुचल डाला। दूसरे नगरोंकी भाँति मिलन भी सम्राट्के आधिपत्यको तभीतक स्वीकार करना चाहता था जबतक सम्राट् किसी प्रकारका विरोध न खड़ा करे। फ्रेडरिकको इटलीके सम्राट् बननेकी इच्छा तो पहिलेसे ही थी, अब वह मिलनेवालोंके इस असह्य व्यवहारसे बिगड़कर सं० १२११ (सन् ११५४ ई०)में मिलनपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे चढ़ा। वह मिलन नगरपर बराबर छः चढ़ाइयाँ करता रहा और उसके शासनकालका बहुतसा समय इस कार्यमें नष्ट हुआ।

फ्रेडरिकने अपना डेरा रोनकालियाके मैदानमें खड़ा किया। उसके पास लम्बार्ड नगरके बहुतसे प्रतिनिधि आये और उन लोगोंने सम्राट्से अपने पड़ोसियों और विशेषतः मिलनेवालोंकी धृष्टता और अत्याचारकी बड़ी शिकायत की। उस समयका इतिहास पढ़नेसे हमें यह भी मालूम होता है कि उस समय सामुद्रिक व्यवसाय भी दूर-दूरके नगरोंसे होता था, क्योंकि जेनोवाने शुतुर्मुर्ग, सिंह और सुग्गोंका पुरस्कार सम्राट्के पास भेजा था। पेवियासे टार्टोना नगरकी निन्दा सुन फ्रेडरिकने उसपर घेरा डालकर उसका नाश कर दिया। इसके पश्चात् वह रोमको लौट गया। इसके लौटते ही मिलनवालोंने पुनः साहस कर अपने दो-तीन पड़ोसियोंको अधिक दण्ड दिया; क्योंकि उन लोगोंने बड़ी वीरताके साथ सम्राट्को सहायता दी थी। मिलनवालोंने टार्टोनाकी असहाय प्रजाको अपने नगरकी अवस्था सुधारनेमें बड़ी सहायता दी।

जब सम्राट् और पोप चतुर्थ हैड्रियनका प्रथम संयोग हुआ तो दोनोंमें बड़ा मतभेद हो गया; क्योंकि पहले सम्राट् पोपके घोड़ेकी रकाब थामनेमें आगा-पीछा करने लगा, परंतु जब उसने देखा कि यह प्रथा प्रचलित है तब उसे कुछ भी बाधा न रह गयी। उस समय रोम एक भीषण बलवेकी दशामें था, अतः हेड्रियनको आशा थी कि सम्राट् उसको सहायता अवश्य करेगा। उस समयके अनुसार जब कि रोमन लोगोंका सभ्य संसारपर आधिपत्य था, अब भी रोमवाले उसी प्रकारका आधिपत्य जमाना चाहते थे और इस कार्यका प्रयत्न ब्रेसियाके आर्नेल्डकी अध्यक्षतामें हो रहा था। यद्यपि फ्रेडरिक बलवाई आर्नेल्ड और रोमवालोंके प्रतिकूल पोपको विशेष सहायता न दे सका, तथापि रोमवाले सफल न हो सके। सम्राट्-पद पाकर वह जर्मनी लौट गया और हेड्रियनको असन्तुष्ट छोड़ दिया कि वह जैसा चाहे वैसा वर्त्ताव अपनी दुःशील प्रजाके साथ करे। इस परित्याग और पश्चात्के मतभेदके कारण पोप और फ्रेडिरकमें बड़ा वैमनस्य पैदा हो गया।

संवत् १२१५ (सन् ११५८ ई०)में फ्रेडरिक पुनः इटली गया और उसने रोन्कालियामें पुनः एक महती सभा की। यह निर्धारित करनेके लिए कि सम्राट्के क्या-क्या अधिकार हैं, उसने बोलोनासे कुछ रोमन न्याय-वेत्ताओंको और नगरोंके

प्रतिनिधियोंको एकत्र किया। इसकी किञ्चित्मात्र भी संभावना न थी कि वे लोग उसे समाट्के पूर्ण अधिकार न दे देगें; क्योंकि वे लोग जिस न्यायको जानते थे उसके अनुसार राजाका वचन ही न्याय था। उन लोगोंने उसके निम्नलिखित अधिकार निर्धारित किये:—

भिन्न-भिन्न डचीज और कौन्टीजपर आधिपत्य तथा न्ययाधीश नियुक्त करना, कर एकत्र करना, युद्धके समय विशेष कर लगाना, मुद्रा निर्माण करना, नमक और चांदीकी खानोंसे जो कर संग्रह हो उसका उपभोग करना।

परन्तु जो मनुष्य या नगर यह पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर देगा कि ये अधिकार उसे दे दिये गये हैं, वह भी इनका उपभोग कर सकेगा, नहीं तो ये सब अधिकार राजाके हस्तगत हो जायँगे। कुछ नगरोंको बिशपके अधिकार मिल गये थे, पर वे यह प्रमाणित नहीं कर सकते थे कि ये अधिकार इनको समाट्ने दिये हैं। अब इस निर्द्धारणसे उनकी स्वतंत्रताके छीने जानेका भय था। कुछ समयपर्य्यन्त तो सम्राट्ने अपनी आमदनी खूब ही बढ़ायी, परन्तु इसका अन्तिम परिणाम राजद्रोह था। इसका कारण यह था कि ये प्रतिक्रियाएँ अत्यन्त पराकाष्ठापर थीं और जिन शासकोंको वह अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजता था उनसे लोग घृणा करते थे। नगर निवासियोंने यह स्थिर कर लिया कि या तो प्राण ही जायंगे या सम्राट्के शासक तथा कर एकत्र करनेवालोंसे मुक्ति ही होगी।

सम्राट्ने क्रेमाके लोगोंके पास यह आज्ञापत्र भेजा कि तुम लोग नगररक्षक दीवार ढहा दो। उन लोगोंने यह आज्ञा न मानी। इसपर सम्राट्ने उसपर घेरा डाल दिया और अन्तमें उसको मटियामेट करके छोड़ा। वहाँकी प्रजाको आज्ञा मिली थी कि तुम लोग केवल अपने-अपने प्राण लेकर नगरसे निकल जाओ। इसके बाद नगरमें लूटमार आरंभ करा दी। तब मिलनवालोंने सम्राट्के प्रतिनिधियोंको अपने यहांसे भगा दिया। इसपर सं० १२१९ (सन् ११६२ ई०)में इस नगरपर भी घेरा डाला गया और यह भी अधिकारमें कर लिया गया। यद्यपि यह नगर राजनीति तथा व्यवसायमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था, तथापि इसका नाश करनेकी आज्ञा देनेमें सम्राट् किंचित्मात्र भी न हिचका। उस समय एक नगरका उसके पड़ोसी नगरसे जैसा सम्बन्ध था उसका वृत्तान्त पढ़कर शोक और क्षोभ होता है, क्योंकि मिलनके स्वयं पड़ोसियोंने उसका नाश करनेके लिए सम्राट्से आज्ञा माँगी थी। वहाँकी प्रजाको उसी नष्ट नगरके पास रहनेका स्थान मिला। वे लोग वहाँ बसे और अपने नगरके पुनरुत्थानमें लगे। जितनी शीघ्रताके साथ उन्होंने उसकी दशा सुधारी, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि इस नगरका नाश इतना अधिक नहीं किया गया था जितना कि इतिहासमें लिखा गया है।

अब लम्बार्डवालोंकी सम्पूर्ण आशा केवल एकतामें रह गयी, लेकिन सम्राट्ने उसे स्पष्टतया रोक दिया था। मिलनके नाशके पश्चात लम्बार्डसंघ बनानेका प्रयत्न गुप्त रूपसे होने लगा। क्रिमोना, ब्रेसिया, मान्टुआ और बर्गामो सम्राट्के प्रतिकूल संगठित हुए। कुछ पोपके उत्तेजित करनेसे और कुछ संघकी सहायतासे मिलन नगर अति शीघ्र खड़ा हो गया। अबतक फ्रेडरिक रोम-विजय करनेमें लगा था; क्योंकि उसकी आन्तरिक अभिलाषा महात्मा पीटरके पदपर एक प्रतिवादी पोपके बैठानेकी थी। अब वह प्रसन्नचित्त संवत् १२२४ (सन् ११६७ ई०) में जर्मनी लौट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रोम अनेक बीमारियों तथा नगरवालोंकी कोपाग्नि दोनोंसे बच गया। इसके अनन्तर बेरोना, पियासेन्जा और पार्मा भी संघमें सम्मिलित हुए। अब यह निश्चय हुआ कि एक नया नगर बनाया जाय जिसमें सम्राट्का प्रतिरोध करनेके लिए सेना इकट्ठी की जाय। इसी कारण संघने अलक्-जेन्ड्रियाका नगर बनाया जो अबतक वर्तमान है। इसका नाम पोप तृतीय अलक्जेण्डर-के नामपर है। वह संघवालोंका परम मित्र और जर्मनीके सम्राटोंका विकट शत्रु था।

कई वर्ष जर्मनीमें रहकर राज्यकार्यका संविधान कर फ्रेडरिक पुनः लम्बार्ड आया। यद्यपि इसके पक्षपाती इस नये नगरमें बहुत थोड़े थे; तथापि सम्राट्ने इनको जीतना अपनी शक्तिके बाहर समझा। संघने अपना सब सैन्य एकत्र किया और संवत् १२३३ (सन ११७६ ई०) में लेनानोमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ। ऐसी लड़ाई मध्ययुगमें बहुत कम देखनेमें आयी। फ्रेडरिककी कुछ सेना आल्प्स पर्वतके दूसरी तरफ थी और वह उनकी सहायता भी लेना चाहता था, परन्तु अभाग्यवश उसे सहायता न मिल सकी, जिसका परिणाम यह हुआ कि मिलनके नेतृत्वमें संघने सम्राट्को समान रूपसे पराजित किया और लम्बार्डका आधिपत्य कुछ समयके लिए स्थिर हो गया।

तत्पश्चात् वेनिसमें एक महती सभा हुई। उस सभामें पोप तृतीय अलक्जेण्डर भी उपस्थित था। वहाँपर सुलह हुई, जिसे संवत १२४० (सन् ११८३ ई०) में स्थायी रूप दे दिया गया। नगरवालोंको करीब-करीब अपने सब अधिकार मिल गये। सम्राट्का आधिपत्य नाममात्रका मान लेनेपर सब स्वतन्त्र कर दिये गये। फ्रेडरिकको विवश होकर उस पोपको अंगीकार करना पड़ा जिसकी आज्ञा न माननेकी उसने शपथ उठायी थी। नगरनिवासियोंने और पोपने एक ही मन्तव्यसे पैर बढ़ाया था, इससे वे समान विजयके भागी हुए।

इस समयसे सम्राट्के विरोधी दलने अपना नाम "गेल्फ" रखा। यह केवल उन वेल्फ वंशवालोंका ही दूसरा नाम है, जिन्होंने जर्मनीमें ही "होहेन्स्टाफेन"को बहुत दुःख दिया था। सं० १२२७ (सन् १०७० में चतुर्थ हेनरीने किसी

वेल्फको बावेरियाका ड्यूक बना दिया था। उसके लड़केने उत्तर जर्मनीके किसी धनीकी लड़कीसे विवाह करके अपनी सम्पत्तिको खूब बढ़ाया। उसका पौत्र हेनरी, जिसे अभिमानी हेनरी कहते हैं, उच्च होनेका अभिलाषी था और वह सेक्सनी के ड्यूककी लड़कीसे शादी कर उसकी डचीका उत्तराधिकारी बन बैठा। इससे उसका अधिकार बहुत बढ़ गया। वह होहेन्स्टाफेनके सामन्तोंमें सबसे बड़ा शक्ति शाली और भयावह हुआ।

लम्बार्ड नगरकी दारुण युद्ध भूमिसे लौटनेपर फ्रेडरिकको बारबरोसाके अभिमानी हेनरीके पुत्र सिंह हेनरीके साथ जो गेल्फ लोगोंका नेता प्रसिद्ध था, युद्धमें प्रवृत्त होना पड़ा; क्योंकि उसने लिनानोके युद्धमें सम्राट्की सहायताके लिए आनेसे इन्कार किया था। हेनरी निर्वासित कर दिया गया। सेक्सनीकी डची विभाजित कर दी गयी। प्राचीन डचीको विभाजित करनेमें उसकी एक युक्ति थी, क्योंकि उसने भली भाँति देख लिया था कि प्रजाके अधिकारमें भी सम्राट्के बराबर राज्य छोड़ देनेसे क्या परिणाम होता है।

उसके क्रूसेडकी यात्रापर जानेके पहले जिसमें कि वह मारा गया, उसका लड़का छठाँ हेनरी इटलीका राजा बनाया गया। इटलीके दक्षिणी नगरोंपर होहेन्स्टाफेनकी शक्ति फैलानेकी इच्छासे उसने हेनरीकी शादी कान्स्टेन्ससे कर दी। वह नेपल्स और सिसलीके राज्योंकी मालकिन थी। इस प्रकार इटली और जर्मनीके राज्योंको एक ही आधिपत्यमें रखनेका असम्भावित प्रयत्न पूरा हुआ, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि पोपसे पुनः विद्वेष हुआ क्योंकि वे सिसलीके राज्योंके अधिपति थे। यहीं-पर होहेन्स्टाफेनका वंश मटियामेट हुआ।

छठें हेनरीका शासनकाल भी कठिनाइयोंसे भरा पड़ा है, लेकिन वह उन्हें प्रबलतासे दबाता है। गेल्फके नेता सिंह हेनरीने फ्रेडरिकके समक्ष शपथ उठायी थी कि अब वह जर्मनीमें कभी न आवेगा, पर वह शपथ तोड़कर पुनः जर्मनीमें आया और आते ही उसने विप्लव खड़ा कर दिया। हेनरीने गेल्फवालोंका पुनः दमन किया और शान्ति-स्थापना की, परन्तु इसकी समाप्ति करते ही उसे सिसलीमें जाना पड़ा, क्योंकि वह राज्य भी उस समय संकटमें पड़ा था। वहाँपर टांक्रेड नामका कोई नार्मन काउंट जर्मनीके हकदारोंके प्रतिकूल राष्ट्रीय विद्रोह चला रहा था, पोपने सिसलीको अपनी स्वकीय भूमि मान लिया था। अतः उसने समस्त जर्मन प्रजाको सम्राट्के प्रभुत्वसे स्वतन्त्र कर दिया। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्डका वीर रिचर्ड "होलीलैण्ड"की यात्रा करता हुआ वहाँ उतर पड़ा था और वहीं उसने ही टांक्रेडसे मित्रता कर ली थी।

छठे हेनरीकी इटली-यात्रा सर्वथा निष्फल हुई। टांक्रेडवालोंने उसकी साम्राज्ञीको वन्दी कर लिया, उसकी समग्र सेना बीमारीके कारण मर गयी और सिंह हेनरीका पुत्र जिसको उसने वन्दी किया था, भाग गया। अब उसकी कठिनाइयोंका पारावार न रहा, क्योंकि ज्योंही वह जर्मनीमें पहुँचा त्योंही संवत् १२४९ (सन् ११९२ ई०) में पुनः एक बड़ा भारी राजद्रोह खड़ा हो गया। उसके भाग्यसे जब रिचर्ड अपनी क्रुसेडकी यात्रासे लौट जर्मनीसे होकर अपने देशमें आ रहा था, इसके हाथ वन्दी हो गया। उसने गेल्फ़के मित्र अंग्रेज सम्राट्को तबतक वन्दी रखा जबतक उसे जर्मनी तथा इटली दोनों स्थानोंके शत्रुओंके साथ लड़नेके लिए प्रचुर धन नहीं मिल गया। टांक्रेडकी मृत्युसे उसे अपनी दक्षिण इटलीकी राजधानी हस्तगत करनेका अवसर मिला। उसने बहुत प्रयत्न किया कि जर्मनीके राजा लोग इटली और जर्मनीके राज्योंका संघ स्थायी रूपसे मान लें या सम्राट्-पदको उसके वंशमें स्थायी कर दें, पर वह अपने प्रयत्नोंमें विफलमनोरथ रहा।

बत्तीस वर्षकी अवस्थामें जब वह संसारभरमें एक साम्राज्य-स्थापन करनेका उपाय सोच रहा था, हेनरी इटालियन-ज्वरसे मर गया। उसने होहेन्स्टाफ़ेन-वंशके भाग्यका निर्णय अपने छोटे बच्चेके हाथमें छोड़ दिया जो द्वितीय फ्रेडरिकके नामसे प्रसिद्ध हुआ। छठे हेनरीके मरते ही पीटरके पदपर सबसे बड़ा पोप आया जो प्रायः बीस वर्षतक पश्चिमीय यूरोपकी राजनैतिक अवस्थाका अधिपति रहा। कुछ समयके लिए पोपका राजनैतिक अधिकार शार्लमेन तथा नेपोलियनके अधिकारसे भी बढ़ जाता है। आगेके किसी अध्यायमें एक धर्मसंस्थाका वर्णन किया जायगा, जिससे मालूम होगा कि तृतीय इन्नोसेण्ट किस प्रकार उस पदपर बैठकर राजाकी भाँति शासन करता था। इसके प्रथम यह अच्छा होगा कि द्वतीय फ्रेडरिकके राजत्वकाल-में जो झगड़ा पोप और होहेन्स्टाफ़ेनके वंशसे खड़ा हुआ, उसीका कुछ वृत्तान्त जान लें।

छठे हेनरीके मरते ही जर्मनीकी अवस्था पुनः चञ्चल हो गयी। उसमें अराज-कताका इतना प्रबल वेग था कि उसकी अवस्था स्थिर न थी। कोई भी दूरदर्शी मनुष्य यह नहीं कह सकता था कि इसमें कभी शान्ति होगी। प्रथम तो फ़िलिप-की ही इच्छा अपने भतीजेका पालक बनकर रहनेकी थी। लेकिन ऐसा होनेके पहिले ही वह रोमका सम्राट् चुना गया और उसने सब अधिकार अपने हाथमें ले लिया, पर कोलोनके आर्कविशपने एक सभा की और उसमें सिंह हेनरीके लड़के ओटो ब्रन्जविकको सम्राट् बनाया।

इसका परिणाम यह हुआ कि गेल्फ़ और होहेन्स्टाफ़ेनका पुराना युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। दोनों सम्राटोंने पोप तृतीय इन्नोसेण्टकी सहायता मांगी। उसने

प्रकट रूपसे कह दिया कि इसका निर्णय करना हमारे हाथ है। इधर ओटो पोपके लिए सर्वस्व त्याग करनेको सन्नद्ध था, उधर पोपको भी भय था कि यदि फिलिपको सम्राट्-पदपर नियुक्त कर दिया जायगा तो होहेन्स्टाफ़ेनके वंशका पुनः उत्थान हो जायगा। अतः उसने गेल्फ़वंशियोंको संवत् १२५८ (सन् १२०१ ई०)में सम्राट्-पद दे दिया। कृतकार्य ओटोने उसके पास यों लिख भेजा, "मेरा राज-पद धूलमें मिल गया होता, यदि आपने स्वयं हमें नियुक्त न किया होता।" अन्य अवसरोंकी तरह यहाँ भी इन्नोसेन्ट पक्षकी तरह प्रकट होता है।

इसीके पश्चात् जर्मनीमें आपसमें लड़ाई छिड़ गयी जो बहुत दिनोंतक चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि ओटोके सब मित्र उससे अलग हो गये। इसके प्रतिवादीका भविष्य अत्यन्त आशापूर्ण था, परन्तु वह संवत् १२६५ (सन् १२०८ ई०)में किसी शत्रुसे मारा गया। उसके पश्चात् पोपने समस्त बिशपों तथा राजाओंको धमकी दी कि, यदि वे ओटोके अधिकारका समर्थन न करेंगे तो निकाल दिये जाँयगे। दूसरे वर्ष ओटो सम्राट्पदपर आरूढ़ होनेके लिए रोम गया, लेकिन उसी समय उसकी पोपसे शत्रुता हो गयी क्योंकि वह अपनेको इटलीका भी सम्राट् कहने लगा। पोपसे रक्षित छठे हेनरीके पुत्र फ्रेडरिकने सिसलीकी राजधानीपर आक्रमण कर दिया।

अब इन्नोसेन्टने ओटोका परित्याग कर दिया, परित्याग करते समय कहा कि 'जैसे खुदाने "साल"के बारेमें धोखा खाया था उसी प्रकार ओटोके बारेमें मैंने भी धोखा खाया।' अब उसने स्थिर किया कि फ्रेडरिक सम्राट् बनाया जाय, पर उसने इस बातका ध्यान रखा कि कहीं वह भी अपने पिता और पितामहकी भाँति पोप-का शत्रु न हो जाय। संवत् १२६९ (सन् १२१२ ई०)में जब फ्रेडरिक राजा बनाया गया तो उसने इन्नोसेन्टके प्रति की हुई सब प्रतिज्ञाओंका यथावत् पालन किया।

राज्यप्रबन्धमें लगे रहनेपर भी पोप अपने दूसरे कार्य—विशेषतः इंग्लैंडको, किसी प्रकार भूल नहीं गया था। संवत् १२६२ (सन् १२१५ ई०)में केन्टबरीके महन्तोंने बिना राजाकी अनुमति लिये अपने एवटको अपना आर्कबिशप बना लिया। उनका नियोक्ता रोममें पोपके पास अपनी नियुक्ति दृढ़ करानेको आया। उधर जानने जल-भुनकर महन्तोंका दूसरा चुनाव करने और अपने कोशाध्यक्षको आर्कबिशप बनानेके लिए कहा। इन्नोसेन्टने इन दोनोंको निकाल दिया और केन्टरबरीके नये महन्तोंका एक नया नियोजन बुलवाकर उनसे कहा कि स्टीफन लैंगटनको आर्क-बिशप बनाओ; क्योंकि वह बहुत पण्डित और विचक्षण है। इसपर क्रुद्ध होकर जानने केन्टरबरीके समस्त महन्तोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया। इन्नोसेन्टने इसका

प्रत्युत्तर 'निषेध-आज्ञा' (इन्टर्डिक्ट)से दिया अर्थात् उसने समस्त पादरियोंको आज्ञा दी कि गिरजे बन्द कर दो और प्रार्थना मत करो। उस समय बड़ी कठिनाई पड़ने लगी। जान निकाल दिया गया और पोपने उसे यह धमकी दी कि यदि तुम हमारी इच्छाके अनुसार काम न करोगे तो हम तुम्हें राजगद्दीसे उतारकर फ्रांसके राजा फिलिप आगस्टसको राजगद्दी दे देंगे। इधर जानने देखा कि इंगलैंड जीतनेके हेतु फिलिप सैन्य एकत्र कर रहा है, तो उसने संवत् १२७० सन् १२१३ ई०)में पोपका आधिपत्य मान लिया। उसने यहाँतक किया कि इंगलैंडका राज्य तृतीय इन्नोसेन्टको सौंप दिया। पुनः उसने उस राज्यको उसका सामंत बनकर ग्रहण किया। उसने रोममें सालाना कर भेजनेकी भी प्रतिज्ञा की।

आपत्तियोंके होते हुए भी अन्तको इन्नोसेन्टके सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध हुए। सम्राट् द्वितीय फ्रेडरिक उसकी रक्षामें था और सिसिलीका राजा होनेसे इंगलैण्डके राजाके समान उसका सामन्त भी था। यूरोपीय राज्यके शासन-प्रबन्धमें हस्तक्षेप करनेके अधिकारको केवल उसने उद्घोषित ही नहीं किया, परन्तु उसका प्रयोग भी किया। संवत् १२७२ (सन् १२१५ ई०)में एकराष्ट्रीय सभा उसके प्रासादमें हुई जो चतुर्थ लेटरनकी सभा कहाती है। इस सभामें सहस्रों बिशप, एबट तथा राजाओं, सामन्तों और नगरोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। सभामें चर्चकी बुराइयाँ और नास्तिकताकी वृद्धिपर भली प्रकार परामर्श किया गया। क्योंकि ये दोनों बातें पादरियोंके अधिकारपर आघात करनेवाली थीं, अतः यहाँ भी द्वितीय फ्रेडरिककी नियुक्ति और ओटोके निकालनेकी पुष्टि की गयी।

दूसरे ही वर्ष इन्नोसेन्टकी मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारियोंको विकट कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। क्योंकि द्वितीय फ्रेडरिक जो प्रथमसे ही पोपके आधिपत्यको नहीं मानना चाहता था, अब उनको दुःख देने लगा। फ्रेडरिक सिसिलीका पालित-पोषित था, इससे उसका संस्कार अरबवालोंके सदृश था, क्योंकि उस समय सिसिलीमें अरबकी प्रथा प्रचलित थी। उसने उस समय अधिकतर प्रचलित प्रथाओंका त्याग किया। उसके शत्रुओंका कथन है कि वह इसाई भी नहीं था, क्योंकि उसके मतानुसार इसू, मूसा और मुहम्मद सभी कपटी थे। उसका डीलडौल छोटा था, शिर गंजा था और देखनेमें अधिक शक्तिशाली नहीं मालूम पड़ता था, परन्तु अपने सिसलीके राजसंघटनमें उसने बहुत उत्साह दिखलाया था, क्योंकि वह राज्य उसको जर्मनीसे कहीं अधिक प्रिय था। उसने अपने दक्षिणी राज्योंके लिए उदार नीतियोंका संग्रह किया था। इतिहासमें पहली बार ऐसा सुरक्षित राज्य देखनेमें आता है जिसका अधिपति राजा हो।

अब यहींसे पोप और राजाके कलहका पुनः आरम्भ होता है। उन लोगोंने

देखा कि फ्रेडरिकका प्रयत्न दक्षिणमें एक प्रभावशाली राज्य स्थापित करनेका है और वह अपना अधिकार लम्बार्ड नगरपर भी जमाना चाहता है, जिसका परिणाम यह होगा कि पोपका अधिकार पराधीन हो जायगा। ये लोग ऐसा कभी नहीं होने देना चाहते थे। फ्रेडरिकका प्रत्येक उपचार उनको खटकने लगा, इससे वे लोग उसका विरोध करने लगे। उनका प्रयत्न उसके वंशका नाश करना था।

तृतीय इन्नोसेन्टकी मृत्युके पहले उसने क्रूसेडकी यात्राकी प्रतिज्ञा की थी। इसके और पोपके कलहमें इस प्रतिज्ञाका बड़ा असर पड़ा।

फ्रेडरिक अपने व्यवसायोंमें इतना व्यस्त था कि वह पोपके लगातार अनुशासन-पर भी यात्राका समय बराबर टालता रहा। यहाँतक कि पोपने उसे घबड़ाकर निकाल दिया। अन्तको बहिष्कृत होकर उसने पूर्वकी यात्रा की। इस यात्रामें उसे विजय-लाभ हुआ और होली सिटी जेरूसलमको उसने पुनः ईसाइयोंके अधीन किया और स्वयं उसका राजा बना।

इतना होनेपर भी पोप लोग फ्रेडरिकसे बराबर अपमानित होते ही रहे। तब पोप लोगोंने एक सभा संगठित कर उसमें सम्राटकी निन्दा की। अब उन लोगोंने जर्मनीमें फ्रेडरिकके प्रतिकूल एक दूसरा राजा नियुक्त किया और फ्रेडरिकको राज-गद्दीसे उतार दिया। संवत् १३०७ (सन् १२५० ई०)में फ्रेडरिककी मृत्यु हुई। उसके पुत्रोंने कुछ कालतक सिसलीका राज्य अपने अधीन रखा, परन्तु अन्त-में उन्हें राज्य छोड़ना पड़ा। कारण यह था कि पोपने होहेन्स्टाफ़ेनके दक्षिणी राज्यको अन्जारूके सेन्ट लूई चार्ल्सको दे दिया। ये लोग उसके प्रबल सैन्यका सामना नहीं कर सके।

फ्रेडरिककी मृत्युके साथ ही साथ मध्यराज्यका भी अन्त हो गया। कुछ समयके पश्चात् कहते हैं कि संवत् १३३० (सन् १२७३ ई०)में जर्मनीमें हैप्सबर्गका रोडल्फ जिसको जर्मनीके लोग "फिस्ट-ला" कहते थे, राजा बनाया गया। जर्मनीके राजा लोग तबतक अपनेको सम्राट्पदसे भूषित करते रहे, परन्तु उनमेंसे किसी विरलेने ही रोममें जाकर अपनी नियुक्ति पोपसे करायी होगी। इटलीके जिस राज्यको जीतनेके लिए ओटो फ्रेडरिक, बारबरोसा, उसके पुत्र और पौत्रोंने इतनी अधिक क्षति उठायी थी, उसके पुनः जीतनेका कोई भी प्रबन्ध नहीं किया गया। जर्मनीमें भयानक विच्छेद था और वहाँके राजा केवल नाममात्रके राजा थे। न तो उनकी कोई राजधानी थी और न कोई शासनप्रणाली ही।

तेरहवीं शताब्दीके मध्यमें यह स्पष्ट रूपसे ज्ञात होने लगा कि जर्मनी और इटलीके राज्योंको इंग्लैण्ड और फ्रान्सके राज्योंके समान पुष्ट और शक्तिशाली बनाना सहसा असम्भव है। जर्मनीका चित्र देखनेसे स्पष्ट होता है कि उसका

राज्य छोटे-छोटे डचियों, काउन्टियों, आर्कबिशपरियों और एबटियोंमें विभक्त है। सम्राट् तथा राजाको दुर्बल पाकर प्रत्येक अपनेको स्वतन्त्र समझ रहा है।

यही दशा इटलीमें भी वर्तमान थी। उसके कुछ उत्तरीय प्रान्त अपने आस-पासके कुछ नगरोंको अपनेमें मिलाकर स्वतन्त्र हो गये थे और अपने पड़ोसके प्रान्तोंसे बराबर स्वतन्त्रताका व्यवहार करते थे, परन्तु हमारे आधुनिक संस्कारका जन्मदाता १४ वीं तथा १५ वीं शताब्दीका इटली ही था। यद्यपि वेनिस और फ्लोरेन्स नगर बहुत छोटे थे, तथापि उस समय वे यूरोपमें सबसे प्रतिष्ठित समझे जाते थे। द्वीप कल्पके मध्य देशमें पोपने अपना अधिकार स्थिर कर रखा था, परन्तु कभी-कभी वह अपने आधिपत्यके नगरोंको वशमें करनेमें फलीभूत नहीं होता था। दक्षिणमें नेपल्स कुछ समयतक फ्रांसके अधीन रहा, जिसको स्वयं पोपने निमन्त्रित किया था। परन्तु सिसलीका द्वीप स्पेनवालोंके अधिकारमें हो गया।

अध्याय १४

क्रूसेडकी यात्रा

मध्ययुगकी घटनाओंमें सबसे अद्भुत और मनोहर क्रूसेडकी यात्रा है। सारियाकी यह अद्भुत यात्रा राजा और वीर भटोंने ही की थी। इस यात्राका अभिप्राय "पवित्र भूमि"को नास्तिक तुर्कोंके हाथसे सदाके लिए स्वतन्त्र करना था। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दीमें प्रायः सभी सन्ततियोंने कमसे कम एक बार क्रूसेडकी सेनाको पश्चिममें एकत्र होकर पूरब जाते देखा होगा। प्रायः सभी वर्ष यात्रियोंके छोटे-छोटे दल या धर्मयुद्धके कामके अकेले-दुकेले सिपाही यात्राको रवाना होते थे। दो सौ वर्षतक प्रायः सभी प्रकारके यूरोपनिवासी पश्चिमीय एशियाकी यात्रा करते रहे। जो यात्राकी अनेक आपत्तियोंसे बचकर वहाँतक पहुँच जाते थे या वहीं बसकर युद्ध या व्यवसायमें लग जाते थे, अथवा नये-नये मनुष्योंका कुछ अनुभव प्राप्त कर अपने देशमें लौट आते थे, लौटते समय वे वहाँके कला-कौशल और विलासिताका भी कुछ अनुभव कर जाते थे जो यूरोपमें अप्राप्य था।

क्रूसेडकी यात्राका वृतान्त हम लोगोंको बहुतायतसे मिलता है। यह वृतान्त इतना रोचक है कि लेखकोंने इन यात्राओंका विवरण बहुत विस्तारपूर्वक दिया है। वास्तवमें ये कार्य अत्यन्त आश्चर्यजनक थे जिनको यूरोपियन यात्री समय-समयपर करते थे। इनका प्रभाव पश्चिमीय यूरोपपर अधिक पड़ा, जैसे अंग्रेजोंकी भारत विजय और अमेरिकाका अन्वेषण। परन्तु इसका पश्चिमीय यूरोपके इतिहाससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

मुहम्मदकी मृत्युके थोड़े ही दिनोंके पश्चात् अरबोंने सीरियापर आक्रमण किया और जेरूसलमका पवित्र तीर्थ ले लिया। इतना होनेपर भी अरब-वालोंने ईसाइयोंकी भक्ति की, जो ईसामसीहकी जन्मभूमिके प्रति उनमें थी, उन्होंने प्रतिष्ठा की और जो ईसाई वहाँतक पहुँच जाते थे, उन्हें वे बेखटके पूजा करनेकी आज्ञा दे देते थे। ग्यारहवीं शताब्दीमें सेलजुकके तुर्कोंकी उत्पत्ति हुई। ये लोग बड़े ही असभ्य थे। अब यात्रियोंके सताये जानेका भी संवाद मिलने लगा। इसके अतिरिक्त पूर्वीय सम्राट्को तुर्कोंने संवत् ११२८ (सन् १०७१ ई०)में हराया और एशियामाइनर छीन लिया। कुस्तुन्तुनियाके ठीक सामने नेसियाका दुर्ग था। वह तुर्कोंके हाथमें था। यह पूर्वीय

साम्राज्यके लिए घातक था। संवत् ११३८—११७५ (सन् १०८१—१११८ ई०)में सम्राट् अलेक्शियस गद्दीपर बैठा। उसने नास्तिकोंके निकालनेका प्रयत्न किया। उसने अपनेको असमर्थ समझ चर्चके अधिपति द्वितीय अर्बनसे सहायता माँगी। अर्बनने संवत् ११५२ (सन् १०९५ ई०)में फ्रांसके क्लेर्मेन्ट स्थानपर एक सभा की और सब लोगोंसे सन्नद्ध होनेकी प्रार्थना की जिससे क्रूसेडमें विशेष शक्ति आ गयी।

पोपने एक उत्तम आमन्त्रण-पत्रमें, जिसका परिणाम इतिहासमें सबसे अच्छा हुआ, वीर भटों और पैदल सिपाहियोंको आपसके निजी कलहसे अपने ईसाई भाइयोंका नाश करनेके कारण निर्भर्त्सना की और पूरबमें अपने पीड़ित भाइयोंकी रक्षाके लिए आयोजना की। उसने कहा कि "यदि ऐसा न किया जायगा तो गर्वित तुर्क अपना अधिकार बढ़ाते ही जायँगे और ईश्वरके सच्चे सेवकोंको अधिक दुःख देंगे। मैं हृदयसे प्रार्थना करता हूँ कि हमारे भगवान्‌का वह पवित्र समाधिस्थान जो कि अपवित्र नास्तिकोंके हाथ पड़ गया है, जिसकी वे लोग अवज्ञा करके अपवित्र कर रहे हैं, तुम लोगोंको शक्ति दे। इसके अतिरिक्त फ्रांस अधिक निर्धन हो रहा है। यहाँतक कि वह वहाँके निवासियोंका पालन भी भली भाँति नहीं कर सकता। पवित्र भूमि दूध और शहदसे भरी पड़ी है। पवित्र मन्दिरकी यात्राका मार्ग पकड़ो। दुष्टोंके हाथसे उसे छुड़ाकर अपने अधीन कर लो।" जब पोपने अपनी वक्तृता बन्द की तब वहाँके सम्पूर्ण उपस्थित जन एक वाक्यसे चिल्ला उठे कि परमेश्वरकी यही अभिलाषा है। इसपर पोपने कहा कि जो लोग क्रूसेडकी यात्रा करना चाहते हैं, उन्हें जाते समय एक 'क्रास' छातीपर बाँधना पड़ेगा। यह दिखलानेके लिए कि अपना पवित्रकार्य समाप्त करके आ रहे हैं, उसी क्रासको लौटते समय पीठपर बाँधना होगा। ऐसे लोगोंके एकत्र होनेके लिए यही शब्द पर्याप्त होंगे कि "परमेश्वरकी यही अभिलाषा है।"

साधारणतः मध्ययुगमें क्रूसेड दीन तथा धार्मिक उत्साहका उत्कट बोधक था। इसने भिन्न-भिन्न अवस्थाके लोगोंपर अपना प्रभाव डाला। इसका प्रभाव केवल भक्त आश्चर्यान्वेषी तथा साहसी जनोंपर ही नहीं पड़ा, किन्तु सीरियामें असन्तुष्ट सामन्तोंको जिन्हें पूर्वमें स्वतन्त्र राज्यस्थापनकी आशा थी, व्यवसायियोंको, जो नये-नये उद्यम करना चाहते थे, उन उद्विग्न जनोंको, जो घरके भारसे जी छुड़ाना चाहते थे और उन अपराधियोंको भी, जिन्हें यह आशा थी कि कदाचित् अपने पूर्व कुकर्मोंके दण्डसे बच जायें, नये प्रलोभन मिले। यह ध्यान देनेकी बात है कि अर्बनने केवल उन्हीं लोगोंको उत्तेजित किया था जो लोग अपने स्वजातीय भाई-बन्धुओंसे लड़ रहे थे और जो डाकू-पेशा थे। इन लोगोंने पोपकी बातपर विशेष ध्यान दिया और बहुत-

से क्रूसेडर (धर्मयोद्धा) हो गये। परन्तु साहस-प्रियता और जय की आशाके अतिरिक्त और भी कारण उपस्थित हुए जिनके कारण लोग जेरूसलमको गये। बहुतसे लोग सत्कारकी और लाभकी आशासे नहीं गये थे, वे केवल भक्तिके कारण पवित्र मंदिरको नास्तिकोंके हाथसे छुड़ानेकी ही नियतसे गये थे।

इन लोगोंके लिए पोपने कहा था कि केवल यात्रा ही पापोंका प्रायश्चित्त है। जैसी कि मुसलमानोंको आशा दिलायी गयी थी, उसी प्रकार इन्हें भी आशा दिलायी गयी, यदि वे इस शुभकार्यमें पश्चात्तापसे मर जायँगे तो उन्हें स्वर्ग मिलेगा। इसके पश्चात् चर्चने व्यवसायमें हस्तक्षेप करके अपनी अनन्त शक्तिका परिचय दिया। जो लोग शुद्ध हृदयसे इस धर्मयुद्ध-यात्रामें सम्मिलित हुए, उन्हे अपने महाजनोंके प्रति ऋणका सूद देनेसे बरी कर दिया और उन्हे अपने स्वामीकी आज्ञाके विरुद्ध क्षेत्रोंको रेहन रखनेकी आज्ञा दी। इन धर्मयुद्धयात्रियोंकी सम्पत्ति, स्त्री, बाल-बच्चे सब चर्चकी रक्षामें ले लिये गये। जो कोई उन्हें पीड़ा देता था, वह बहिष्कृत किया जाता था। इन सब बातोंसे जाना जाता है कि इतना कष्टमय और असन्तोषजनक होनेपर भी यह कार्य इतना प्रसिद्ध और विख्यात क्योंकर हुआ।

क्लेर्मोण्टकी बैठक कार्तिक (नवम्बर) मासमें हुई थी। संवत् ११५३ (सन् १०९६ ई०)की वसन्त ऋतुके पूर्व ही जो लोग क्रूसेडपर व्याख्यान देनेको रवाना हुए थे उन्होंने फ्रांस और रोइनमें साधारण लोगोंकी एक बड़ी भारी सेना एकत्र की। इन लोगोंमें सबसे अधिक काम यति पीटरने किया था जो क्रूसेडका मुख्य संचालक था। किसान, कारीगर, बहेतू (बदचलन) स्त्रियाँ तथा बालक भी दो सहस्र मील जाकर 'पवित्र मन्दिर'की रक्षा करनेके लिए तत्पर और सन्नद्ध हो गये। उन लोगोंको पूर्ण विश्वास था कि इस यात्राके दुःखसे ईश्वर हम लोगोंकी रक्षा अवश्य करेगा और नास्तिकोंपर हम लोगोंको विजयी करेगा। यह सेना कई भागोंमें विभाजित होकर यति पीटर, वाल्टर और अनेक विनीत भटोंके नेतृत्वमें चली। बहुतसे धर्मयुद्ध-यात्री हंगेरीवालोंके इन समूहोंके नाना प्रकारके उपद्रवोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए उठे और मारे गये। कुछ नीसियातक पहुँचे और तुर्कोंसे मारे गये। पहली आपत्तिके बाद जो कुछ एक शताब्दी-पर्यन्त हुआ उसका यह वृत्तान्त केवल उदाहरणमात्र है। कभी-कभी एकाकी यात्री और कभी-कभी सहस्रों क्रूसेडर "पवित्र भूमि"तक पहुँचनेके उद्योगमें अनेक प्रकारकी आपत्तियोंके कवल हो जाते थे।

क्रूसेडके सम्पूर्ण समयकी उत्कृष्ट मूर्त्तियाँ यति पीटरके शान्त अनुयायियोंमें ही नहीं थीं, किन्तु कवच धारण किये हुए वीर भट भी थे। क्लेर्मन्टकी घोषणाके एक वर्ष पश्चात् पश्चिममें माननीय नेताओंके नेतृत्वमें प्रायः ३० लाख सेना एकत्र हो

गयी थी। उन लोगोंमें जो कुस्तुन्तुनियाँमें जुटनेवाले थे, ये ही विशेष योग्य थे। (१) जर्मनीके प्रान्तोंके, विशेषतः लरेनके स्वेच्छा-सेवक जो पोप और टोलोसके काउंट रेमन्डके अधीन थे, (२) जो कि बोलोनके गाडफ्रे और उसके भ्राता बाल्डविन-के जो भविष्यमें जेरूसलमके राजा हुए, अधीन थे और (३) दक्षिण इटली, फ्रांस और नार्मन्सकी सेना जो बोहेमान्ड और टान्क्रेड्के अधीन थी।

जिन वीरोंका वर्णन ऊपर किया गया है वे लोग यथार्थमें नेतृपदपर नियुक्त नहीं किये गये थे। हर एक धर्म-योद्धा स्वयं यात्रापर रवाना हुआ था और अपने इच्छा-नुसार वह किसी वीरका आधिपत्य न मान सकता था। ये वीर और सैनिक लोग स्वभावतः किसी विख्यात नेताके नेतृत्वमें हो जाते थे। परन्तु अपने इच्छानुसार नेता बदलनेमें स्वतन्त्र थे। नेताओंका भी यह अधिकार था कि वे अपने लाभपर ध्यान दें, न कि यात्राकी भलाईके लिए अपने लाभका ध्यान छोड़ दें।

जब ये लोग कुस्तुन्तुनियाँमें पहुँचे तो यह प्रकट हो गया कि तुर्कोंकी तरह ग्रीसवालोंकी इनसे सहानुभूति नहीं है। गाडफ्रेकी सेना राजधानीके निकट ठहरी थी। वहाँके सम्राट् अलेक्सियसने अपनी सेनाको उनपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी, क्योंकि उसने उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। सम्राट्की पुत्रीने अपने उस समयके इतिहासमें धर्मयोद्धाओंके उग्र व्यवहारका दारुण चित्र खींचा है। इधर धर्मयोद्धाओंके पक्षवाले ग्रीसवालोंको धोखेबाज, डरपोक और झूठा कहकर धिक्कारते हैं।

उधर पूर्वीय सम्राट्ने सोचा था कि हम अपने पश्चिमीय मित्रोंकी सहाय-तासे एशियामाइनरको जीतकर तुर्कोंको निकाल देंगे। इधर मुख्य वीरोंने यह सोचा था कि सम्राट्के पूर्व राज्यको जीतकर छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य बनावेंगे और विजयके नियमोंसे उनपर अपना अधिकार जमावेंगे। अब क्या देखते हैं कि ग्रीस और पश्चमीय ईसाई दोनों निर्लज्जताके साथ एक दूसरेपर विजय पानेके लिए मुसलमानोंसे मिल जाते हैं। धर्मयोद्धा नीसिया नगरका प्रथम बार अवरो-धन करते हैं तो मुसलमानोंके पश्चिमीय एवं पूर्वीय शत्रुके सम्बन्धका पूरा पता चलता है। जिस समय यह आशा की जाती थी कि अब यह नगर हाथमें आ जायगा ठीक उसी समय ग्रीसवालोंने शत्रुओंसे यह समझौता किया कि प्रथम उनकी सेना प्रवेश करे। प्रविष्ट होते ही उन लोगोंने नगरका द्वार बन्द कर दिया और अपने पश्चमीय सहकारियोंसे आगे बढ़नेके लिए कहा।

यदि कोई सच्चा मित्र क्रूसेडर्सको पहले पहल मिला तो वे आर्मेनियाके ईसाई थे जिन्होंने उनको एशियामाइनरकी भयानक यात्राके पश्चात् सहायता पहुँचायी थी। उन्हींकी सहायतासे बाल्डविनने एडेसापर अधिकार किया और उसका राजा बन

बैठा। उनके नायकोंने क्रूसेडर्सकी जरुसलमको यात्रा रोक दी और एक वर्ष अन्टियोक-के प्रधान नगर जीतनेमें लगा। इस जयलाभके पश्चात् जर्मन बोहेमन्ड और टोलोश-के काउंटके बीच इस बातका झगड़ा चला कि इन जीते हुए नगरोंका अधिपति कौन होगा। अन्तको बोहेमन्डकी विजय हुई। रेमन्ड अपने लिए ट्रिपोलीके किनारेपर एक स्वतन्त्र राज्य-स्थापन करनेका यत्न करने लगा।

संवत् ११५६ (सन् १०९९ ई०)की वसन्त ऋतुमें प्रायः बीस सहस्र योद्धाओंने जेरुसलमको प्रस्थान किया। उन लोगोंने देखा कि नगर विधिवत् सुरक्षित है और वहाँकी उजाड़ मरुभूमिमें न तो उन्हें अन्न-पानी और न किसी प्रकारका सामान ही मिल सकता था, जिससे वे उस नगरके जीतने और घेरनेका उपाय कर सकते। ठीक उसी समय जिनोआ नगरसे जाफामें पहुंच गये। वहांसे अवरोधकोंको बड़ी सहायता मिली और सब कठिनाइयोंके होते हुए भी दो महीनेमें वह नगर जीत लिया गया। क्रूसेडर्सने अपनी स्वाभाविक निष्ठुरताके कारण वहाँके निवासियों-को मार डाला। बुइलनका गाडफ्रे जेरुसलमका शासक नियुक्त किया गया और उसने अपना नाम 'पवित्र मंदिरका रक्षक' रखा। उसकी मृत्यु शीघ्र ही हुई और उसका भाई बाल्डविन उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने जेरुसलमका राज्य बढ़ानेके लिए संवत् ११५७ (सन् ११०० ई०)में एडसा छोड़ दिया।

मुसलमानोंने समस्त पश्चिमीय लोगोंको "फ्रैंक"के नामसे प्रसिद्ध किया था। इन फ्रैंकोंने चार राष्ट्रोंकी नींव डाली। वे क्रमसे १ एडेसा, २ अन्टियोक, ३ रेमाण्डके जीते हुए ट्रिपलीके पासके प्रदेश और ४ जेरुसलम नगर हैं। बाल्डविनने जेरुसलम नगरको बड़ी शीघ्रतासे बढ़ाया था। जिनोआ और वेनिस नगरकी सामुद्रिक शक्तियोंकी सहायतासे उसने अर्क, सीडान और किनारेके अनेक नगरोंपर अपना अधिकार कर लिया।

ईसाइयोंकी यह विजयवार्ता पश्चिममें शीघ्रतासे पहुँची और पूर्वके लिए संवत् ११५८ (सन् ११०१ ई०)में प्रायः दस सहस्र नये क्रूसेडर्सने प्रस्थान किया। इनमेंसे अधिकांश तो एशियामाइनर पार करनेपर नष्ट हो गये या भगा दिये गये। उनमेंसे बहुत कम अपने निर्दिष्ट स्थानतक पहुंचे। इसका परिणाम यह हुआ कि सारसेनसे जीते हुए उन नगरोंकी रक्षा तथा उनकी समृद्धिका भार उनके प्रथम जीतनेवालों-पर ही निर्भर रहा।

फ्रैंक लोगोंके हस्तगत भूमध्य समुद्रके किनारेके नगरोंकी स्थितिका भार उन प्रदेशोंकी शक्तिपर निर्भर था जिनको उनके सामन्तोंने बचाया था। यह निश्चय रूपसे निर्धारित नहीं किया जा सकता कि कितने पश्चिमसे आये और कितनोंने लैटिनके प्रदेशमें अपना स्थिर गृह बनाया। इतना निश्चय है कि जेरुसलममें आये

हुओंमेंसे अधिकतर पवित्र मंदिरके दर्शन करनेके संकल्पको पूरा कर अपने देशको लौट गये। इतनेपर भी राजा लोग उन सिपाहियोंपर जो यहाँ रहकर मुसलमानोंसे युद्ध करनेको सन्नद्ध थे, पूर्ण भरोसा रखते थे। इसके अतिरिक्त उस समय अरबवाले आपसके युद्धमें इस प्रकार तत्पर थे कि उन्हें अवकास ही नहीं मिलता था कि वे इन थोड़ेसे फ्रैंकोंको उन नगरोंसे मार भगावें।

इस क्रूसेडके आन्दोलनका परिणाम यह हुआ कि कितनी ही विचित्र-विचित्र संस्थाएँ स्थापित हुईं जिनके नाम इस प्रकार हैं—(रोगिसेवक) हास्पिटलर्स, (मन्दिर-वासी) टेम्पलर्स ट्यूटानिक नाइट्स (वीरयोद्धा)। इन संस्थाओं में सिपाही और महन्त दोनोंके ही हितोंका सम्मेलन था। एक ही मनुष्य एक साथ ही दोनों हो सकता था। वह सिपाही भी हो सकता था और अपने कवचके ऊपर महन्तीका चोगा भी धारण कर सकता था। हास्पिटलरों (रोगिसेवक) की उत्पत्ति वैखानसोंके संघसे हुई जिनकी स्थापना प्रथम क्रूसेडके पहले ही निर्धन और बीमार यात्रियोंकी रक्षाके लिए हुई थी। तत्पश्चात् इस सभाके सभासद सज्जन नाइट (वीरयोद्धा) भी होने लगे और साथ ही साथ यह संघ सिपाहियोंका भी काम करने लगा। इस धर्म-संघने प्राचीन मठोंके समान पश्चिमीय यूरोपमें बहुतसी जागीरें पुरस्कार में पायीं और स्वयं इसने पवित्र भूमिमें अनेक पक्के मठ बनवाये और उनकी देखभाल भी अपने हाथोंमें ली। तेरहवीं शताब्दीमें सीरियाके परित्यागके पश्चात् हास्पिटलर लोग अपने केन्द्र-स्थानको रोड द्वीपमें ले गये और पश्चात् वहाँसे माल्टा द्वीपमें ले गये। यह संघ अबतक वर्त्तमान है और अबतक भी माल्टाका क्रास धारण करना एक प्रकारकी विशेषताका द्योतक समझा जाता है।

हास्पिटलरों (रोगिसेवकों)के सिपाहियाना अधिकार लेनेके पूर्व ही संवत् १११६ (सन् १०५९ ई०,में फ्रांसके कुछ नाइटोंने जेरुसलमके यात्रियोंकी नास्तिकोंके अवरोध-से रक्षाकरनेके निमित्त एक संघ बनाया। उन्हें जेरुसलममें सुलेमानके प्रथम मन्दिरके स्थानपर राजाके मन्दिरमें निवासस्थान मिला था, यही कारण था कि वे टेम्पलर (मन्दिर-वासी)के नामसे प्रसिद्ध हुए। मन्दिरके दरिद्र सिपाहियोंकी चर्चासे बड़ी प्रतिष्ठा होती थी। वे लोग लाल क्रासवे सुसज्जित एक लम्बा चोगा धारण करते थे और उन्हें मठोंके कठिन नियमोंका पालन करना पड़ता था। इसके अनुसार उन्हें आज्ञा-कारिता, दरिद्रता और अविवाहित रहनेकी शपथ भी लेनी पड़ती थी। इस संस्थाकी प्रशंसा सारे यूरोपभरमें फैल गयी और बड़े बड़े प्रतिष्ठित ड्यूक तथा राजा भी संसारको त्याग कर ईसामसीहकी श्वेत और काली पताकाके नीचे रहकर उसकी सेवा करना चाहते थे।

यह संस्था प्रारम्भसे ही उच्चकुलीन घरानेकी थी। अब यह अपरिमित धनी और

स्वतन्त्र हो गयी। इसके संग्राहक यूरोपके सब नगरोंमें थे और "कर या भिक्षा" एकत्र करके जेरुसलम भेजा करते थे। अनेक लोगोंने इस संस्थाको नगर, चर्च तथा रियासतें भी प्रदान की थीं। इनके अतिरिक्त इसे अनेक लोगोंने प्रचुर द्रव्य भी प्रदान किया था। अरागनके राजाकी इच्छा अपने राज्यका तृतीयांश इन संस्थावालोंको दे देनेकी थी, पोपने टेम्पलर्स (मन्दिरवासियों)को बहुतसे अधिकार दिये। ये लोग कर देनेसे बरी कर दिये गये थे। पोपने इन लोगोंको अपने अधिकारमें ले लिया था। ये लोग विपक्षियोंके भारसे निर्मुक्त कर दिये गये थे और उन्हें बहिष्कृत करनेका अधिकार बिशपको भी नहीं दिया गया था।

इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि ये लोग उद्दण्ड हो गये और राजा तथा दूत दोनोंकी स्पर्धाके पात्र हो गये। यहाँतक कि इनोसेन्ट भी इन लोगोंकी इस बातपर निभर्त्सना किया करता था कि इन लोगोंने अपनी संस्थामें दुष्टोंको भी स्थान दे रखा है और ये दुष्ट लोग भी चर्चके सम्पूर्ण अधिकारका उपभोग करते हैं। १४ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें पोप और फ्रांसके फिलिपके प्रयत्नसे यह संस्था उठा दी गयी। इनके सभासदोंपर निन्दनीय अभियोग लगाया गया कि ये लोग नास्तिक, मूर्त्तिपूजक हैं और वे ईसामसीह और उनके चर्चकी अवहेलना करते हैं। बहुतसे प्रतिष्ठित टेम्पलर्स नास्तिकताके अपराधमें जीते-जी जला दिये गये और बहुतसे कठोर दुःख सहकर वन्दीगृहमें मरे। अन्तमें यह संस्था उठा दी गयी। इसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपहृत कर ली गयी।

तृतीय संस्थाका नाम ट्यूटनिक नाइट था। इसका महत्त्व क्रूसेडके समाप्त होनेपर मूर्त्तिपूजक प्रथावालोंपर विजयलाभका था। इन लोगोंके प्रयत्नसे बाल्टिकके किनारेपर एक खृष्टीय राज्य स्थापित किया गया जिसमें कानिग्सवर्ग और डैन्टजिग प्रधान नगर थे।

प्रथम क्रूसेडके ५० वर्ष पश्चात् संवत् १२०१ (सन् ११४४ ई०)में ईसाइयोंके प्रसिद्ध पूर्वीय राज्य ऐडसाका पतन हुआ। इससे इन लोगोंका द्वितीय आक्रमण आरम्भ हुआ। इसके संचालक महात्मा बर्नर्ड थे। ये सर्वत्र भ्रमण कर अपने वाणीबलसे लोगोंको क्रास लेनेके लिए उत्तेजित करते थे। उन्होंने टेम्पलर्स नाइटके समक्ष एक रोमांचकारी युद्ध-गीत गाया था जिसका अभिप्राय यह था कि "जो ईसाई नास्तिकोंको धर्मयुद्धमें मारता है उसे स्वर्ग अवश्य मिलता है और यदि वह स्वयं मारा जाय तो क्या पूछना है। मूर्त्तिपूजकोंकी मृत्युसे ईसामसीह प्रसन्न होते हैं और यह ईसाई-धर्मकी भी प्रसन्नताका कारण है।" जब महात्मा बर्नर्डने अन्त दिवसका भय दिखलाकर उपदेश दिया था तब फ्रांसके राजा तीसरे कानराडने तुरन्त ही क्रास लेना भी स्वीकार कर लिया था।

सामान्य सैनिकोंके बारेमें फ्रीसिंग ओटो यों लिखता है—"इस संस्थामें चोर और डाकू इतने सम्मिलित हुए कि उनके उत्साहको देखकर सर्वसाधारणको भी उनमें ईश्वरीय शक्तिका अनुभव होता था।" इस यात्राके प्रधान नेता महात्मा बर्नर्डने "धर्म सेना"का यथार्थ वर्णन यों किया है—"उस अनन्त समूहमें दुष्टों और घोर पापात्माओंके अतिरिक्त इतर अच्छे जन बहुत ही कम हैं और इन पापी पुरुषोंके निकल जानेसे द्विगुण लाभ था, क्योंकि इनके निकल जानेसे जितना यूरोपको लाभ हुआ उतना ही इनकी प्राप्तिसे पेलेस्टाइनको भी लाभ हुआ। धर्म-यात्रियोंके कार्योंका वर्णन करना सर्वथा निष्प्रयोजन है। केवल इतना ही कहना उचित है कि संग्रामके अभिप्रायसे यह द्वितीय क्रूसेड सर्वथा निष्फल रहा।"

इसके ४० वर्ष पश्चात् सलादीनने संवत् १२५४ (सन् ११९७ ई०)में जेरुसलमपर अधिकार कर लिया। यह सारसेनके राजाओंमें सबसे प्रसिद्ध योद्धा था। धर्म भूमिके हाथसे निकल जानेसे लोगोंने बड़े समारोहके साथ युद्धयात्रा की थी। इस यात्रामें फ्रेडरिक, बारबरोसा, वीरहृदय रिचर्ड और उसके प्रतिवादी फ्रांसके फिलिपने भी साथ दिया था। इस यात्राके वर्णनसे यह प्रकट होता है कि इसके पहले कितने ही ईसाई नेता आपसमें घृणा करते थे, पर अब ईसाई लोग और सारसेन लोग एक दूसरेकी प्रतिष्ठा करने लगे। इस वर्णनमें ऐसे-ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें इन भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंका आपसमें प्रेम और परस्पर सम्बन्धकी घनिष्ठता दिखलायी देती है। संवत् १२४९ (सन् ११९२ ई०)में रिचर्डने सलादीनसे सन्धि कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि ख्रीष्टीय यात्री धर्म-भूमिके दर्शनको आराम और सुखसे जाने लगे।

तेरहवीं शताब्दीमें क्रूसेडर लोगोंने इजिप्टको प्रस्थान किया, जो सारसेन राज्यकी मध्यभूमि थी। इनमेंसे प्रथम प्रस्थान वेनिसवालोंने विचित्र प्रकारसे किया था। अपने लाभके लिए इन लोगोंने धर्मयात्रियोंको कुस्तुन्तुनियाँ जीतनेके लिए उत्तेजित किया। द्वितीय फ्रेडरिक और महात्मा लूईके आगेकी यात्राओंके वर्णनसे यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं है। जेरुसलमका निश्चित रूपसे पतन संवत् १३०१ (सन् १२४४ ई०)में हुआ और यद्यपि उसके पुनः उद्धारका साधन बहुत पहले ही सोच लिया गया था; तथापि क्रूसेडका अन्त तेरहवीं शताब्दीके प्रथम ही हो गया था।

इटलीके और विशेषतः जिनोआ, वेनिस और पिसाके व्यवसायियोंके लिए धर्मभूमिमें विशेष आकर्षण था। केवल इनके अनुराग और नाविक-सामग्रीके कारण धर्मभूमिके जीतनेका कार्य सुगम हुआ। ये लोग सर्वदा इस बातका ध्यान रखते थे कि हमको अपने प्रयत्नोंके लिए एक अच्छा वेतन मिलता है। जब कभी वे किसी नगरके घेरोंमें सहायता देते थे तो उनको इस बातका अवश्य ध्यान रहता था

कि जीतनेपर इस नगरमें उन्हें एक विशेष स्थान मिलेगा, जहाँ वे लोग अपने व्यवसायके लिए बन्दरगाह तथा संस्था स्थापित करेंगे। यह देश उसी नगरका हो जाता था जिसके वहाँ व्यवसाय होनेवाले थे। वेनिसवालोंने तो जेरुसलमके राज्यमें अपने निवासियोंके लिए निर्धारित स्थानोंके निमित्त अपने यहाँसे शासकगण भी भेजे थे। मार्सलीजवालोंके लिए जेरुसलममें स्वतन्त्र स्थान था और जिनोआने अपना भाग ट्रिपोलीमें ले लिया था।

इस व्यवसायका यह परिणाम हुआ कि पूर्व और पश्चिममें बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध पैदा हो गया। भारत ऐसे देशोंमें उत्पन्न किये हुए रेशम, मसाले, कपूर, कस्तूरी, मोती, हाथीके दाँत आदि वस्तुओंको मुसलमान लोग पूरबसे पेलेस्टाइन और सीरिया सदृश व्यावसायिक स्थानोंमें ले जाते थे। इटलीके व्यवसायी वहाँसे उन पदार्थोंको फ्रांस और जर्मनीतक पहुँचाते थे। इन सब पदार्थोंसे ये लोग ऐसी विलासिताका परिचय देते थे जिसका फ्रैंक लोगोंने कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं किया होगा।

क्रूसेडकी यात्राका पश्चिमीय यूरोपमें जो प्रभाव पड़ा है उसका कुछ थोड़ा परिचय इस वृत्तान्तसे मिलता है। सहस्रों फ्रान्सीसी, जर्मन तथा अँग्रेजोंने स्थल तथा जलसे पूर्वकी ओर यात्रा की। उनमेंसे कुछ तो गाँवोंके और कुछ प्रासादों-के रहनेवाले थे। इससे वे अपने गाँव या नगरके वृत्तान्तके सिवा और कुछ नहीं जानते थे। अब उन्हें एकाएक बड़े-बड़े नगरोंमें उन लोगोंके साथ रहना पड़ा जिनसे और जिनकी प्रथासे वे लोग सर्वथा अनभिज्ञ थे। इनके संसर्गसे उन्हें नयी-नयी बातें मालूम हुईं। क्रूसेडवालोंने सरल शिक्षाका भी भार लिया। धर्मयात्रियोंका संसर्ग अरबवालोंसे हुआ। ये उनसे कहीं अधिक विज्ञ थे और इनसे उन लोगोंने नये-नये विलासिताके भाव ग्रहण किये।

पश्चिमीय यूरोपपर क्रूसेडके ऋणकी गणना करनेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि नये आगन्तुक विषयोंमें कितनी बातें कुस्तुन्तुनियाँ, सिसिली और स्पेनके सारसेन लोगोंसे मिली हैं, जिनसे सीरियाके सशस्त्र आक्रमणका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त बारहवीं और तेरहवीं शताब्दीमें यूरोपके नगरोंकी वृद्धि अति शीघ्रतासे हो रही थी। व्यवसायियोंकी भी वृद्धि हो रही थी। पाठशालयोंका प्रादुर्भाव हो रहा था। यह मान लेना कि विना क्रूसेडकी यात्राके वह सब न हुआ होता, सर्वथा हास्यजनक है। इस उन्नतिकी आशा तो क्लेमेण्टके उर्वान भाषणके पूर्वसे ही दिखलाई दे रही थी। उपर्युक्त यात्राओंसे केवल इसका मार्ग सरल अवश्य हो गया था।

सामान्य सैनिकोंके बारेमें फ्रीसिंग ओटो यों लिखता है—"इस संस्थामें चोर और डाकू इतने सम्मिलित हुए कि उनके उत्साहको देखकर सर्वसाधारणको भी उनमें ईश्वरीय शक्तिका अनुभव होता था।" इस यात्राके प्रधान नेता महात्मा बर्नर्डने "धर्म सेना"का यथार्थ वर्णन यों किया है—"उस अनन्त समूहमें दुष्टों और घोर पापात्माओंके अतिरिक्त इतर अच्छे जन बहुत ही कम हैं और इन पापी पुरुषोंके निकल जानेसे द्विगुण लाभ था, क्योंकि इनके निकल जानेसे जितना यूरोपको लाभ हुआ उतना ही इनकी प्राप्तिसे पेलेस्टाइनको भी लाभ हुआ। धर्म-यात्रियोंके कार्योंका वर्णन करना सर्वथा निष्प्रयोजन है। केवल इतना ही कहना उचित है कि संग्रामके अभिप्रायसे यह द्वितीय क्रूसेड सर्वथा निष्फल रहा।"

इसके ४० वर्ष पश्चात् सलादीनने संवत् १२५४ (सन् ११९७ ई०)में जेरुसलमपर अधिकार कर लिया। यह सारसेनके राजाओंमें सबसे प्रसिद्ध योद्धा था। धर्म भूमिके हाथसे निकल जानेसे लोगोंने बड़े समारोहके साथ युद्धयात्रा की थी। इस यात्रामें फ्रेडरिक, बारबरोसा, वीरहृदय रिचर्ड और उसके प्रतिवादी फ्रांसके फिलिपने भी साथ दिया था। इस यात्राके वर्णनसे यह प्रकट होता है कि इसके पहले कितने ही ईसाई नेता आपसमें घृणा करते थे, पर अब ईसाई लोग और सारसेन लोग एक दूसरेकी प्रतिष्ठा करने लगे। इस वर्णनमें ऐसे-ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें इन भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंका आपसमें प्रेम और परस्पर सम्बन्धकी घनिष्ठता दिखलायी देती है। संवत् १२४९ (सन् ११९२ ई०)में रिचर्डने सलादीनसे सन्धि कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि ख्रष्टीय यात्री धर्म-भूमिके दर्शनको आराम और सुखसे जाने लगे।

तेरहवीं शताब्दीमें क्रूसेडर लोगोंने इजिप्टको प्रस्थान किया, जो सारसेन राज्यकी मध्यभूमि थी। इनमेंसे प्रथम प्रस्थान वेनिसवालोंने विचित्र प्रकारसे किया था। अपने लाभके लिए इन लोगोंने धर्मयात्रियोंको कुस्तुन्तुनियाँ जीतनेके लिए उत्तेजित किया। द्वितीय फ्रेडरिक और महात्मा लूईके आगेकी यात्राओंके वर्णनसे यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं है। जेरुसलमका निश्चित रूपसे पतन संवत् १३०१ (सन् १२४४ ई०) में हुआ और यद्यपि उसके पुनः उद्धारका साधन बहुत पहले ही सोच लिया गया था; तथापि क्रूसेडका अन्त तेरहवीं शताब्दीके प्रथम ही हो गया था।

इटलीके और विशेषतः जिनोआ, वेनिस और पिसाके व्यवसायियोंके लिए धर्मभूमिमें विशेष आकर्षण था। केवल इनके अनुराग और नाविक-सामग्रीके कारण धर्मभूमिके जीतनेका कार्य सुगम हुआ। ये लोग सर्वदा इस बातका ध्यान रखते थे कि हमको अपने प्रयत्नोंके लिए एक अच्छा वेतन मिलता है। जब कभी वे किसी नगरके घेरेमें सहायता देते थे तो उनको इस बातका अवश्य ध्यान रहता था

कि जीतनेपर इस नगरमें उन्हें एक विशेष स्थान मिलेगा, जहाँ वे लोग अपने व्यवसायके लिए बन्दरगाह तथा संस्था स्थापित करेंगे। यह देश उसी नगरका हो जाता था जिसके वहाँ व्यवसाय होनेवाले थे। वेनिसवालोंने तो जेरुसलमके राज्यमें अपने निवासियोंके लिए निर्धारित स्थानोंके निमित्त अपने यहाँसे शासकगण भी भेजे थे। मार्सलीजवालोंके लिए जेरुसलममें स्वतन्त्र स्थान था और जिनोआने अपना भाग ट्रिपोलीमें ले लिया था।

इस व्यवसायका यह परिणाम हुआ कि पूर्व और पश्चिममें बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध पैदा हो गया। भारत ऐसे देशोंमें उत्पन्न किये हुए रेशम, मसाले, कपूर, कस्तूरी, मोती, हाथीके दाँत आदि वस्तुओंको मुसलमान लोग पूरबसे पेलेस्टाइन और सीरिया सदृश व्यावसायिक स्थानोंमें ले जाते थे। इटलीके व्यवसायी वहाँसे उन पदार्थोंको फ्रांस और जर्मनीतक पहुँचाते थे। इन सब पदार्थोंसे ये लोग ऐसी विलासिताका परिचय देते थे जिसका फ्रैंक लोगोंने कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं किया होगा।

क्रूसेडकी यात्राका पश्चिमीय यूरोपमें जो प्रभाव पड़ा है उसका कुछ थोड़ा परिचय इस वृत्तान्तसे मिलता है। सहस्रों फ्रान्सीसी, जर्मन तथा अँग्रेजोंने स्थल तथा जलसे पूर्वकी ओर यात्रा की। उनमेंसे कुछ तो गाँवोंके और कुछ प्रासादोंके रहनेवाले थे। इससे वे अपने गाँव या नगरके वृत्तान्तके सिवा और कुछ नहीं जानते थे। अब उन्हें एकाएक बड़े-बड़े नगरोंमें उन लोगोंके साथ रहना पड़ा जिनसे और जिनकी प्रथासे वे लोग सर्वथा अनभिज्ञ थे। इनके संसर्गसे उन्हें नयी-नयी बातें मालूम हुईं। क्रूसेडवालोंने सरल शिक्षाका भी भार लिया। धर्मयात्रियोंका संसर्ग अरबवालोंसे हुआ। ये उनसे कहीं अधिक विज्ञ थे और इनसे उन लोगोंने नये-नये विलासिताके भाव ग्रहण किये।

पश्चिमीय यूरोपपर क्रूसेडके ऋणकी गणना करनेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि नये आगन्तुक विषयोंमें कितनी बातें कुस्तुन्तुनियाँ, सिसिली और स्पेनके सारसेन लोगोंसे मिली हैं, जिनसे सीरियाके सशस्त्र आक्रमणका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त बारहवीं और तेरहवीं शताब्दीमें यूरोपके नगरोंकी वृद्धि अति शीघ्रतासे हो रही थी। व्यवसायियोंकी भी वृद्धि हो रही थी। पाठनालयोंका प्रादुर्भाव हो रहा था। यह मान लेना कि विना क्रूसेडकी यात्राके यह सब न हुआ होता, सर्वथा हास्यजनक है। इस उन्नतिकी आशा तो क्लेमेण्टके उर्बान भाषणके पूर्वसे ही दिखलाई दे रही थी। उपर्युक्त यात्राओंसे केवल इसका मार्ग सरल अवश्य हो गया था।

अध्याय १५

मध्ययुगकी धर्म-संस्थाकी उन्नत अवस्था

विगत पृष्ठोंमें अनेकशः धर्म-संस्थाओं और पादरियोंके उल्लेखकी आवश्यकता हुई थी। वास्तवमें उनके उल्लेखके बिना मध्ययुगका इतिहास शून्य प्रतीत होता है, क्योंकि उस समयमें यही लोग सबसे विख्यात थे और उसके अधिकारी लोग समस्त उद्यमोंके मूल कारण थे। पूर्व अध्यायोंमें धर्मसंस्थाओंका और उनके मुख्य अधिकारी पोप तथा महन्तोंका जो कि सारे यूरोपमें फैल गये थे, उल्लेख किया जा चुका है। अब इस अध्यायमें हम उन धर्म-संस्थाओंके विषयमें कुछ विचार प्रकट करेंगे जो बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें उन्नतिके शिखरपर पहुँच गयी थीं।

हमने अभी देखा है कि मध्ययुग तथा आधुनिक धर्म-संस्थाओंमें चाहे वे कैथलिक हों या प्रोटेस्टेण्ट, बड़ा भारी अन्तर पड़ा है।

प्रथमतः, जैसे आधुनिक समयमें प्रत्येक मनुष्यको राजासे सम्बन्ध रखना पड़ता है उसी प्रकार प्राचीन समयमें प्रत्येक मनुष्यको धर्म-संस्थासे सम्बन्ध रखना पड़ता था। यद्यपि कोई मनुष्य धर्म-संस्थामें उत्पन्न नहीं होता था, तथापि कार्यारम्भके प्रथम ही उसका बपतिस्मा कर दिया जाता था। समस्त पश्चिमीय यूरोपका एक ही धर्म था और उससे विरोध करना महापाप समझा जाता था। धर्म-संस्थासे सम्बन्ध न रखना, उसकी शिक्षा और अधिकारका विरोध करना परमेश्वरसे विरोध करना समझा जाता था और ऐसे विरोधी मनुष्यको मृत्युका दण्ड दिया जाता था।

मध्ययुगकी धर्मसंस्थाएँ आधुनिक धर्मसंस्थाओंकी भाँति अपने पोषणके लिए सभासदोंकी इच्छित सहायताके भरोसे नहीं रहती थीं। भूमिकरके अतिरिक्त इन्हें शुल्क तथा टाइथ नामके करसे प्रचुर द्रव्य मिलता था। जैसे आजकल राजाको कर देना आवश्यक है, उसी प्रकार उस समयमें धर्मसंस्थाको कर देना आवश्यक था।

यह तो स्पष्ट ही प्रकट है कि आधुनिक धर्मसंस्थाओंकी भाँति मध्ययुगकी संस्थायें केवल धर्मसंस्थाएँ ही न थीं। पूजाके स्थानोंकी रक्षा करना, मोक्ष-पथको दिखलाना तथा आध्यात्मिक जीवनका अभ्यास करना ही केवल इनका कार्य न था। परन्तु इनके अतिरिक्त वे और कार्य भी किया करती थीं। वे एक प्रकारकी राज्य-सत्ता थीं, क्योंकि इनके निमित्त न्याय और वे न्यायालय थे, जिनमें कि वे लोग

उन अभियोगोंपर भी विचार किया करते थे, जो आधुनिक समयमें न्यायालयोंके हाथमें हैं। इनके अपने बन्दीगृह भी थे जिनमें ये लोग जन्मभर अभियुक्तोंको रख सकते थे।

धर्मसंस्थाएँ केवल राजकार्यका सम्पादन ही नहीं किया करती थीं, किन्तु राज्यका निर्माण भी किया करती थीं। आधुनिक प्रोटेस्टेण्ट धर्मसंस्थाओंके प्रतिकूल मध्ययुगकी संस्थाएँ एक मुख्य अधिपतिके अधीन थीं। वह समस्त संस्थाओंके लिए नियम बनाता था और समस्त धर्माध्यक्षोंपर चाहे वे इटली वा जर्मनी, स्पेन वा आयर्लैण्ड कहींके रहनेवाले हों, सबपर अधिकार रखता था। सम्पूर्ण धर्मसंस्थाओंके लिए केवल लैटिन ही एक भाषा थी जिसमें समस्त संवाद भेजे जाते थे और प्रार्थनाएँ होती थीं।

इन सब बातोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि मध्ययुगकी धर्मसंस्थाएँ एक प्रकारकी राज्यसंस्थाएँ थीं। पोप सर्वशक्तिमान और सर्वेश्वर था, वह अपनेको सम्पूर्ण आध्यात्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी अधिकारोंका अधिपति समझता था। वह मुख्य नियमदाता था। धर्मकी कोई भी संस्था चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, इसकी इच्छाके प्रतिकूल कोई भी नियम नहीं बना सकती थी, क्योंकि इसके अनुमोदनके बिना कोई भी नियम प्रमाणित नहीं समझा जा सकता था।

इसके अतिरिक्त पोपको यह अधिकार था कि वह जिस नियमको चाहे वह कितना ही प्राचीन क्यों न हो, यदि धर्मपुस्तक या प्रकृतिसे नियमित नहीं है, तो तोड़ सकता था। यदि वह चाहता तो समस्त मानुषिक नियमोंमें विशेषता लगाकर पैतृक भाई-बहिनोंको परस्पर विवाहकी आज्ञा दे सकता और महन्तोंको उनकी प्रतिज्ञाके बन्धनसे मुक्त भी कर सकता था। इन विशेष नियमोंको "डिस्पेन्सेशन" कहते हैं।

पोप केवल मुख्य नियमनिर्माता ही न था, किन्तु वह मुख्य शासक भी था। किसी विख्यात नीतिलेखकने कहा है कि सम्पूर्ण पश्चिमीय यूरोप अन्ततोगत्वा केवल एक शासकके अधिकारमें था और वह रोमका पोप था। बड़े-बड़े अभियोगोंमें कोई भी पादरी या सामान्य जन चाहे वह यूरोपके किसी प्रान्तका रहनेवाला हो, किसी भी अवस्थामें अपने अभियोगकी अपील पोपके पास कर सकता था। परन्तु इस प्रथामें बहुत-सी बुराइयाँ थीं। जिन अभियोगोंका निर्णय एडिनबर्ग या कोलीनमें जहाँपर उनकी सब बातें हुई हों, भली भाँति हो सकता था, उनका रोममें भेजना महान् अन्याय था। इसके अतिरिक्त इससे केवल धनिक ही लाभ उठा सकते थे, क्योंकि केवल वही इतनी दूरतक अपना अभियोग भेज सकते थे।

पादरियोंके ऊपर पोपके अधिकारकी उत्पत्ति कई प्रकारसे हुई थी, कोई भी

नवीन नियुक्त आर्क-बिशप पोपके अधिपतित्वकी शपथ उठाये और उससे अधिकार-पट्ट (वैज्) जिसे "पालियम" कहते थे, लिये बिना अपने अधिकारका कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता था। यह पालियम एक छोटासा ऊनका बना हुआ दुपट्टा होता था जिसे कि रोमके सेंट अनिसके धर्मसंघकी धर्म-प्रचारिकाएँ बनाती थीं। बिशप और एबटको भी अपनी नियुक्तिका अनुमोदन बिशपसे करवाना पड़ता था। संस्थाओंके अधिकारीके चुनावके झगड़े तय करनेका भी अधिकार उसे ही था। वह दोनों प्रतिवादियोंको हटाकर स्वयं किसीको अधिकारी नियुक्त कर सकता था, जैसा कि तृतीय इन्नोसेन्टने किया था। उसने केन्टरबरीके महन्तोंके चुने हुए दोनों प्रतिवादियोंको निकालकर स्टीफन लैङ्गटनका निर्वाचन कराया था।

सप्तम ग्रेगरीके समयसे ही पोपने बिशपको निकालने और बदली करानेका अधिकार ले लिया था। इधर दूतोंके कारण पोपका अधिकार ईसाई गिरजोंपर विशेष बढ़ गया था। पोपके इन दूतोंको बहुत अधिकार दिया गया था। इन दूतोंके उद्दण्ड व्यवहारसे समस्त राजा तथा धर्माध्यक्ष जिनके पास ये पोपके अधिकारकी वार्त्ता लेकर जाते थे, चिढ़ जाते थे, जैसा कि पोपके दूत पैन्डाल्फने इङ्गलैण्डके राजा जानकी प्रजाको उसके समक्ष ही सम्बन्धकी शपथ ग्रहण करनेसे मुक्त कर दिया था।

पश्चिमीय देशका शासन करनेका जो भार पोपने अपने ऊपर लिया था, उससे उसे रोममें बहुतसे अधिकारी नियुक्त करने पड़े थे। उनके द्वारा वह समस्त राज-कार्य सम्पन्न कराता तथा सम्पूर्ण आज्ञापत्र प्रचारित कराता था। धर्माध्यक्ष और पोपके अधिकारीवर्गसे पोपका दर्बार सुसज्जित था।

राज्यका प्रबन्ध तथा आश्रितोंका भरण-पोषण करनेके लिए पोपको अधिक आमदनीकी आवश्यकता रहती थी, जिसकी प्राप्ति उसे भिन्न-भिन्न रूपसे हो जाया करती थी। जो लोग इसके न्यायालयमें अभियोगके निर्णयार्थ आते थे उनसे अधिक शुल्क लिया जाता था। आर्कबिशप अपना अभिषेक-पद (पालियम) पानेपर पोपको अधिक धन भेंटमें देता था। इसी प्रकार बिशप और एबट अपनी नियुक्तिके अनुमोदनपर अधिक धन भेंटमें दिया करते थे। तेरहवीं शताब्दीमें कितने ही पदोंपर पोप स्वयं नियुक्ति करता था और इन लोगोंसे उस वर्षका आधा लाभ ले लेता था। पोपके अधिकारको प्रोटेस्टेन्टोंके अधिक्षेप करनेके कई शताब्दी पूर्व, चारों ओरसे पादरियों और सामान्य जनोंकी यही शिकायत होती थी कि पोप सरकार (क्यूरिया) ने कर तथा शुल्क कहीं अधिक लगा दिया है।

संस्थाओंमें पोपके नीचेका पद आर्क-बिशपोंका था। आर्क-बिशप वे बिशप कहाते थे जिनका अधिकार अपनी संस्थाकी सीमाके बाहरतक होता था और जो अपने प्रान्तके अन्य बिशपोंके ऊपर कुछ न कुछ अधिकार रखते थे। आर्क-बिशप-

का एक मुख्य अधिकार यह भी था कि वह अपने प्रान्तके समग्र बिशपोंको प्रान्तीय सभामें बुलाता था। बिशपके निर्णय किये हुए अभियोगोंकी अपील इसके यहाँ होती थी। आर्कबिशप और बिशपमें केवल इतना ही अन्तर था कि उसका मान-पद बड़ा था, वह बड़े-बड़े नगरोंमें रहता था और उसको शासनकार्यमें अधिक अधिकार प्राप्त था।

मध्ययुगके समग्र पुरुषोंमें बिशपके अधिकारका पूर्ण परिचय रखना अत्यावश्यक है। वे अपासलोंके उत्तराधिकार समझे जाते थे और उनमें ईश्वरीय शक्ति मानी जाती थी। उनके अधिकारके चिह्न माइटर तथा एक क्रोजियरसे विदित हैं। प्रत्येक बिशपकी अलग-अलग अपनी विशेष संस्था होती थी जिसको "कैथड्रल" कहते हैं। साधारणतः और संस्थाओंकी अपेक्षा यह परिमाण और सौन्दर्यमें भी बढ़-चढ़कर थी।

नये पादरी नियुक्त करने तथा प्राचीन पादरियोंको पदसे च्युत करनेका अधिकार केवल बिशपको ही था। वही केवल धर्म-संस्थाओंका निर्माण और राजाओंका अभिषेक कर सकता था। अभिषेक-संस्कारोंको दृढ़ करनेका अधिकार उसीको था। यद्यपि पुरोहित होनेसे वह उन संस्कारोंको स्वतः भी करा सकता था, तथापि धार्मिक कार्योंके अतिरिक्त वह अपनी संस्थामें सम्पूर्ण अध्यक्षोंका अधिष्ठाता था। उसका अपना न्यायालय होता था जिसमें वह अनेक प्रकारके अभियोगोंका निर्णय करता था। यदि कोई न्यायपरायण बिशप हुआ तो वह अपनी संस्थाके समस्त धर्मचक्र (पेरिस) के गिरजों और मंदिरोंकी यात्रा करता था जिसका अभिप्राय यह निरीक्षण करना होता था कि पुरोहित लोग अपना कार्य उचित रीतिसे सम्पन्न करते हैं या नहीं और महन्तोंका व्यवहार भी ठीक प्रकारसे होता है या नहीं।

अपनी संस्थाके कार्यावलोकनके अतिरिक्त वह बिशपोंसे सम्बन्ध रखनेवाली शेष भूमिका प्रबन्ध भी करता था, इसके अतिरिक्त उसको राज्यप्रबन्ध भी देखना पड़ता था, जिसको जर्मनीके सम्राट्‌ने उसके ऊपर छोड़ दिया था। वह राजाके सभासदोंमें सबसे उत्कृष्ट समझा जाता था। सारांश यह कि बिशप राजाका सामंत था और सामंतों-के समस्त धर्मोंसे नियन्त्रित था। कितने ही लोग उसके आश्रित थे और वह स्वयं किसी राजा या पार्श्ववर्त्ती सामन्तके आश्रित होता था। बिशपरियोंके वृत्तान्तोंको पढ़नेसे यह नहीं निश्चय किया जा सकता कि बिशपोंकी गणना धर्माध्यक्षोंमें की जाय या सामन्तोंमें। बिशपोंके अधिकार मध्य-युगकी धर्म-संस्थाओंकी भाँति बहुत अधिक थे। सप्तम ग्रेगरीके सुधारके अनुसार बिशपोंकी नियुक्तिका अधिकार कैथेड्रलके "चेप्टर"को दे दिया गया था। अर्थात् यह अधिकार उन पादरियोंको दे दिया गया जो कैथेड्रल चर्चसे सम्बन्ध रखते थे। परन्तु इससे राजाके प्रस्तावके कार्यमें तनिक-

भी विघ्न न पड़ा क्योंकि चेप्टर लोग राजासे अनुमोदन-पत्र लिये बिना यह कार्य नहीं कर सकते थे। यदि वे उसकी सम्मति न लें तो वह उनसे नियुक्त किये हुए लोगोंको उनके पदसे सम्मिलित भूमि और अधिकारपदसे वंचित रख सकता था।

गिरजेका सबसे छोटा भाग पेरिश (धर्मचक्र) होता था। इसकी परिमित सीमा थी, यद्यपि इसके आश्रयमें कुछ गृहोंसे लेकर कभी-कभी नगरतक रहता था, तथापि इसका अधिकारी पुरोहित होता था जो पेरिशके गिरजोंमें प्रार्थना किया करता था और अपने आश्रितोंके बपतिस्मा, विवाह और मृत्यु-क्रिया भी कराया करता था। इन लोगोंकी जीविका पेरिशके गिरजेसे सम्बन्ध रखनेवाली भूमि तथा टाइथ नामी करसे चलती थी। कभी ये दोनों वृत्तियाँ सामान्य जनों या पार्श्ववर्ती मंदिरोंके अधिकारमें रहतीं थीं और पेरिशको थोड़ा-बहुत उदर-पालनार्थ मिल जाता था।

पेरिसका गिरजा गाँवका केन्द्रस्थान था। उसके पुरोहित भी जनताके प्रतिपालक थे। यह देखना भी इसका धर्म था कि गाँवमें कोई इतर अप्रिय मनुष्य तो नहीं आता-जाता है। उनके मानसिक बलपर ध्यान देते हुए उनकी शारीरिक रक्षा करनेका भार भी पुरोहितका धर्म था। वह गाँवमें किसी ऐसे रोगी पुरुषोंको न आने दे जिसकी उपस्थितिसे गाँवभरमें रोग फैल जानेका भय हो, क्योंकि मध्य-युगमें छुआछूतका बड़ा विचार किया जाता था।

मध्ययुगके गिरजोंका विस्मयावह सन्निधान देखनेसे उसके अद्वितीय अधिकारका केवल अंशतः ज्ञान होता है। उसका प्रभाव जो जनताके ऊपर था, उसके समझनेके लिए हम लोगोंको पहिले पादरियोंके उच्च पदका तथा गिरजोंमें संसारके दुःखोंसे मुक्त होनेकी शिक्षाका ध्यान रखना चाहिये क्योंकि इन विषयोंका यह पूरा प्रतिनिधि समझा जाता था।

पादरियोंको कई प्रकारसे सांसारिक विषयोंसे अलग रखा जाता था। उच्च पदवाले बिशप, पुरोहित, डीकन, और सब-डीकन आदिको अविवाहित रहना पड़ता था और वे इस प्रकारसे गृहस्थीके झगड़े तथा हर प्रकारकी चिन्तासे परे रहते थे। इसके अतिरिक्त गिरजेने यह भी आयोजना कर दी थी कि यदि उच्च पदका पादरी विधिवत् नियुक्त किया जाय तो उसमें केवल नियुक्तिमात्रसे ही एक प्रकारका महत्त्व आ जाता था जो अविनाशी था। इसका परिणाम यह होता था कि यदि वह अपना कार्य करना छोड़ दे या किसी अपराधके कारण निकाल भी दिया जावे तो भी उसकी गणना साधारण जनोंमें नहीं हो सकती थी और गिरजाघरका कानून जिसपर सबकी दृष्टि निर्भर थी, पादरियोंके ही हाथमें था।

[illegible] यह विश्वास था कि सकल संस्कार-पद्धतियाँ ईसामसीहने ही प्रचलित की थीं, तथापि बारहवीं शताब्दीके मध्यतक इन बातोंने इतनी नहीं

न की थी। संवत् १२२१ (सन् ११६४ ई०) में पारिस नगरके धर्म-शिक्षक पीटर लम्बर्डने क्रिस्तान मन्तव्योंका एक संक्षिप्त ग्रंथ तैयार किया जो कि उस धर्म-पुस्तक तथा धर्माधिष्ठाताओंके विशेषतः अगस्टाइनके लेखोंमें मिले। पीटरके इन मतोंका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इनका प्रादुर्भाव ऐसे समयमें हुआ था जब लोगोंको धर्ममें एक नये प्रकारका अनुराग उत्पन्न हो रहा था, विशेषकर पारिस नगरमें जहाँ कि धर्म विद्यापीठकी उत्पत्ति हो रही थी।

पहले पहल पीटर लम्बर्डने ही सप्त संस्कारके नियम निकाले थे। उसकी शिक्षामें केवल उन्हीं विषयोंका विन्यास था जो उसे धर्म-पुस्तक तथा धर्माधिष्ठाताओंके लेखोंमें मिले थे, परन्तु उसके विन्यास तथा व्याख्याने मध्ययुगके लिए नयी स्थिति प्रदान की। उसके समयके पूर्व "संस्कार" शब्दसे अनेक पवित्र वस्तुओंका बोध होता था, अर्थात् बपतिस्मा, क्रास, लेन्ट (४० दिनका वार्षिक उपवास) और पवित्र जल। परन्तु उसका मन्तव्य था कि "संस्कार" शब्दसे केवल सात विषयोंका बोध होता है, अर्थात् बपतिस्मा (दीक्षा), अनुमति, अनुलेप, विवाह, तप, नियोग और भगवद्भोग। इन्हीं संस्कारोंसे सब धर्मकार्य प्रारम्भ होकर वृद्धि पाते हैं और यदि नष्ट हो गये हैं तो पुनः उद्भूत होते हैं। मुक्तिके लिए ये अति आवश्यक हैं और इनके बिना किसीकी भी मुक्ति नहीं हो सकती।

संस्कारोंके ही द्वारा गिरजेने सच्चे-सच्चे श्रद्धालुओंका साथ दिया। बपतिस्मासे आदमके स्वर्गसे गिरनेके पापका नाश हुआ था, क्योंकि केवल उसी मार्गसे आत्मा आध्यात्मिक जीवन पा सकती थी। पवित्र तैल तथा विलेपनको सुशीलताका परिमल मानकर अनुमतिके समय लड़कों तथा लड़कियोंके मस्तकमें लेपन किया जाता था, जिससे कि वे ईश्वरका नाम सदा स्मरण रखा करें। यदि कोई भी धर्मावलम्बी बीमार हो जाता था तो पुरोहित परमेश्वरका नाम लेकर उसके शरीरमें तैल या चन्दनका लेप करते थे और इस अनुलेपनके संस्कारसे उसके प्राचीन पापोंके अंश दूर करके उसकी आत्माको पवित्र कर देते थे। वैवाहिक कार्य भी केवल पुरोहित ही सम्पन्न करा सकते थे और जब एक सम्बन्ध स्थिर या नियमबद्ध हो जाता था तब वह पुनः तोड़ा नहीं जा सकता था। पापवासनाको बपतिस्मा घटा तो देता था, पर मिटा नहीं सकता था। यदि कोई ईसाई उस पापवासनासे घोर पाप कर बैठे तो तपके संस्कारसे उसको परमेश्वरसे एक बार पुनः क्षमा मिल जाती थी। वह नरकके मुखसे खींचकर बचा लिया जाता था। नियुक्तिके संस्कारसे पुरोहितको पापियोंको क्षमा करनेका अधिकार मिलता था। उसको एक मासकी अलौकिक क्रिया करनेकी शक्ति थी अर्थात् पापियोंके अपराधोंको निर्मूल करनेके लिए वह ईसामसीहका पुनरुत्थापन करता था।

'मास'के साथ तप-संस्कारका विशेष महत्त्व है। नियुक्तिके समय पुरोहितसे विशप कहता था—"तुममें परमेश्वरकी पवित्र आत्माका निवास हो, जिसके अपराध तुम क्षमा करोगे वे क्षमा हो जायँगे और जिनके पापोंको तुम स्थायी रखोगे वे स्थायी रहेंगे।" इस प्रकारसे पुरोहितको ही स्वर्गद्वारकी ताली मिली थी। घोर पापमें पड़ा हुआ मनुष्य जबतक अपने पापोंका प्रक्षालन पुरोहितजीसे न करा लेता था तब-तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती थी। जो कोई पुरोहितकी शिक्षाकी निन्दा करता था उसकी मुक्ति कठिनसे कठिन पश्चात्ताप और प्रार्थना करनेपर भी नहीं हो सकती थी। पुरोहितके क्षमा-प्रदानके पूर्व पापीको पुरोहितके समक्ष अपने पाप स्वीकार (कानूफेस) करने पड़ते थे, उनकी ओर घृणा दिखलानी पड़ती थी और पुनः पाप न करनेकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। जबतक पुरोहित पापको जान न लें वे उसका कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते थे। जबतक पापीको अपने पापके लिए पश्चात्ताप न हो तबतक उसको क्षमा-प्रदानका अधिकार भी नहीं था। इससे प्रकट होता है कि मुक्तिके लिए स्वीकृति और पश्चात्ताप बहुत आवश्यक है।

क्षमा-प्रदानसे अनुतापी पापीकी मुक्ति अपने पापोंके सम्पूर्ण फलोंसे नहीं होती थी, केवल उसकी आत्मा उन घोर पापोंसे मुक्त हो जाती थी जिसके कारण उसे आजन्म दुःखका दण्ड मिलता था, परन्तु पुरोहित अनुतापीको लौकिक दुःखसे नहीं बचा सकता था। यह दंड चाहे पुरोहित इसी जन्ममें दे दें या मृत्युके पश्चात् जब स्वर्ग-प्रदानके लिए आत्मा अग्निमें पवित्र की जाती है उस समय दें।

पुरोहितके दण्डको "तप" कहते थे। यह कई प्रकारका होता था। जैसे उप-वास करना, प्रार्थना करना, धर्मभूमिमें जाना (तीर्थयात्रा), अपनेको विषयसुख एवं वैवाहिक वस्तुओंसे वंचित रखना इत्यादि। धर्मभूमिकी यात्रा अर्थात् तीर्थ करना सब तपोंसे उत्तम समझा जाता था। प्राचीन समयमें गिरजेने यह स्थिर किया था कि पापी मनुष्य, यात्रा इत्यादि न करके अर्थ-प्रदान कर सकता है जिसका उपयोग किसी धर्म-कार्योंमें किया जायगा, जैसे गिरजा-निर्माण, बीमार तथा निर्धनोंकी सहायता इत्यादि।

पुरोहित केवल क्षमा-प्रदान ही नहीं करते थे, किन्तु "मास"की विस्मयावह [illegible] करनेकी आज्ञा भी देते थे। प्राचीन समयके ईसाई लोगोंने "भगवद्भोग" [illegible] बड़े आदरसे लिया था और उसके विधान तथा रहस्यके कतिपय कार्य [illegible] जाते थे। [illegible] यह बात सब लोगोंमें प्रचलित हो गयी कि रोटी और [illegible] समझा जाता है वह ईसामसीहके शरीरको पुष्ट करता है, क्योंकि [illegible] और रक्त [illegible] हो जाता है। इसीसे पदार्थका रूपान्तर [illegible] है। [illegible] यह विश्वास है कि इस संस्कारसे ईसाके समयकी भाँति

पुनः ईसामसीह परमेश्वरको बलिरूपसे समर्पित किया जाता है। यह बलि उपस्थित, अनुपस्थित, अतीत तथा वर्तमान सभी प्रकारके पापोंके लिए की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ईसामसीहकी पूजा अन्न-बलिकी शकलमें होती थी। यह पूजाका सबसे उत्तम प्रकार माना जाता था। जब कभी अकाल या महामारीके समयमें परमेश्वरको प्रसन्न करनेकी आवश्यकता होती थी तो अन्नबलिकी भक्तिपूर्वक सवारी निकाली जाती थी।

"मास"की क्रियाको बलिका रूप देनेमें कुछ व्यावहारिक परिणाम भी निकलता था। यह पुरोहितके कार्योंमें सबसे उत्तम कार्य समझा जाता था और धर्म-संस्थाका मुख्य कर्तव्य था। सर्वसाधारणके रक्षार्थ प्रार्थनाओंके अतिरिक्त विशेष जनों तथा विशेषकर मृतकोंकी रक्षाके लिए प्रार्थनाएँ की जाती थीं। ऐसे गृहोंका निर्माण किया गया जिनकी आमदनीसे पुरोहितका प्रतिपालन होता था और वह दाताओं और उनके कुटुम्बियोंकी आत्माकी शांतिके लिए नित्य गिरजेमें प्रार्थना किया करता था। गिरजों तथा मठोंमें दान देनेवालोंके लिए सालाना या वर्षभरमें नियमित समयपर प्रार्थना करनेके लिए पुरस्कार दिया जाता था।

गिरजेके अत्युत्कृष्ट अधिकारने अद्वितीय शासनप्रणाली तथा असंख्य धनप्राप्तिने पादरियोंको मध्ययुगमें सर्वशक्तिमान और सामाजिक बना दिया। स्वर्गके द्वारकी ताली उन्हींके पास रहती थी और उनकी सहायताके बिना कोई भी वहाँ प्रवेश नहीं पा सकता था। किसी अपराधीको बहिष्कृत कर वह उन गिरजोंसे केवल निकाल ही नहीं देता था किन्तु उसे शैतानका मित्र बना उसके सहवासियोंसे भी परस्पर मिलनेसे रोक देता था। वह घोषणापत्र निकालकर सम्पूर्ण नगर या गाँवमें गिरजोंका द्वार बन्द करवाकर और समस्त पूजा बन्द करवाकर धर्मकी सान्त्वनासे भी उसको वञ्चित कर सकता था।

केवल यही लोग पढ़े-लिखे भी होते थे इसीसे इनका प्रभाव विशेष हो गया था। पश्चिममें रोम राज्यके पतनके ६ या ७ शताब्दी-पर्यन्त पादरियोंके अतिरिक्त इतर लोगोंने लिखने-पढ़नेपर किञ्चित् मात्र भी ध्यान नहीं दिया था, यहाँतक कि तेरहवीं शताब्दीमें भी यदि कोई अपराधी गिरजेके न्यायालयसे अपना अपराध निर्णय करानेके लिए अपनेको पादरी निर्धारित करना चाहता था, तो उसे केवल एक पंक्ति पढ़ देनी पड़ती थी क्योंकि न्यायाधीशोंने यह निश्चय किया था कि सिवा गिरजे-वालोंके दूसरे किसीका पढ़ने-लिखनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

इन सब बातोंसे यह निर्विवाद है कि सब प्रकारकी पुस्तकें केवल पुरोहित और महन्त ही लोग लिखा करते थे और समस्त मानसिक कला तथा साहित्यके विषयमें वे ही प्रधान थे अर्थात् वे समस्त सभ्यताके प्रतिपालक तथा परिवर्तक समझे जाते थे। इसके अतिरिक्त शासकोंको भी घोषणा तथा लेख्यपत्र लिखवानेके लिए गिरजे-

वालों ही पर निर्भर रहना पड़ता था। पुरोहित और महन्त राजाके स्थानपर लिखने-पढ़नेका कार्य किया करते थे। पादरियोंके प्रतिनिधि राजाओंकी सभामें बराबर रहते थे और मन्त्रीका भी काम करते थे। यथार्थमें शासनका अधिकतर भार इन्हीं लोगोंके ऊपर रहता था।

कितने ही गिरजोंका पद सर्वसाधारणके लिए था और साधारण मनुष्य पोपके पदपर भी पहुँचे थे। इस प्रकार गिरजोंमें प्रायः सर्वदा नये-नये मनुष्य आया-जाया करते थे। राजकार्यकी भाँति किसी मनुष्यको गिरजोंमें कोई भी पद इस कारणसे नहीं मिलता था कि पूर्वमें उसके पूर्ववंशज इस पदपर आरूढ़ रह चुके हैं।

जो मनुष्य गिरजेमें किसी पदपर आरूढ़ हो जाता था उसकी गृहस्थीके झगड़ों तथा कुटुम्बके बन्धनोंसे मुक्ति हो जाती थी। गिरजा ही उसका नगर, गृह तथा सर्वस्व हो जाता था। आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक बल जो साधारण जनोंमें देशानुरागके अभिमान, स्वार्थसाधनके लिए कलह और पुत्र-कलत्रोंके लिए उत्पादनके कार्यमें विभाजित थे, गिरजेमें सर्वसाधारणके हितके लिए एकत्र हो गये थे। गिरजेकी सफलतामें सब कोई भाग ले सकता था। अस्तित्वकी आवश्यकता सबको बतलायी जाती थी, पर भविष्यके लिए भी चिन्तित न होनेके लिए कहा जाता था। इस प्रकार धर्म-संस्था भी एक प्रकारका सैन्य-समूह था जो कि ईसाई-मतकी स्थलपर अधिवेशित था। इसके स्तम्भ सर्वत्र वर्त्तमान थे और इसकी व्यवस्था अत्यन्त विलक्षण थी। सब एक उद्देश्यसे उत्तेजित थे और समस्त सैन्य-समूह अभेद्य सर्वांग कवच धारण किये हुए आत्माको नाश करनेवाले भयानक शस्त्रको धारण किये हुए थे।

अध्याय १६

नास्तिकता और महन्त

अब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इस गिरजेकी बड़ी सेनाके अध्यक्ष पापोंके विरुद्ध युद्ध करनेमें शक्तिशाली नेता हुए कि नहीं? वे लोग उन प्रलोभनोंको जो कि उनके अनन्त अधिकार या असीम सम्पत्तिसे सर्वदा उनके मार्गमें उपस्थित हुआ करते थे, दमन कर सके या नहीं? क्या उन लोगोंने अपनी विपुल आयको अपने उस नेताके कार्योंकी उन्नतिमें लगाया जिसके वे लोग विनीत अनुयायी तथा दास बनते थे? अथवा वे लोग उलटे स्वार्थी कलुषित थे और गिरजेकी शिक्षासे अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे और अपने स्वकीय दुष्प्रबन्ध तथा दुष्टतासे जनताकी आँखोंमें उनके मन्तव्योंका निरादर करते थे?

इन प्रश्नोंका कोई सरल उत्तर नहीं हो सकता। जो मनुष्य जानता है कि मध्ययुगमें जीवनके प्रत्येक विभागपर तथा जनसाधारणके समस्त लाभोंपर धर्मसंस्था-का कितना अधिक प्रभाव था, उसको उनके गुण तथा दोषोंकी तुलना करना कठिन कार्य है; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि चर्चसे पश्चियीय यूरोपको अकथनीय लाभ पहुँचा है। उसके मुख्य कर्तव्य अर्थात् ईसाई-धर्म द्वारा लोगोंके आचारकी उन्नतिके सम्बन्धमें न कहकर हमको केवल यही देखना है कि इसकी छाया तले रहकर असभ्य लोग किस प्रकार सभ्य बने? इनके जातीय वंश किस प्रकार स्थापित हो गये, ईश्वरीय शान्तिकी शिक्षा देकर उनका कलह किस प्रकार रोका गया और ऐसे समयमें जब कि बहुत ही कम लोग पढ़ते-लिखते थे, किस प्रकार एक शिक्षित समाज स्थापित हुआ? उसके ये कुछ स्पष्ट सुधार थे। इसके अतिरिक्त चर्चने जो आश्वासन तथा रक्षा-स्थान दुर्बलों, दुःखियों तथा हृदय-पीड़ितोंको दिया था, उसका निरूपण तो कोई कर ही नहीं सकता।

उक्त चर्चका इतिहास पढ़नेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि उसमें ऐसे दुराचारी पादरी भी थे, जो अपने अधिकारोंका दुरुपयोग किया करते थे। जैसे आधुनिक समयमें भी अनेक सरकारी पदाधिकारी ऐसे अयोग्य हैं जिन्हें इतने भारी पदका भार कभी भी न मिलना चाहिये उसी प्रकार उस समयमें भी अनेक चर्चके कर्मचारी अपने पदके सर्वथा अयोग्य होते थे।

इतना होते हुए भी जब कभी हम लोग पादरियोंके दुष्कर्मोंको, जो प्रायः प्रत्येक

उनके इतिहासमें पाये जाते हैं, कठिन आलोचनाएँ पढ़ें, तो हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि समालोचक अच्छी बातोंको सत्य रूपसे मान लेता है और केवल बुरी बातोंकी ही समालोचना किया करता है। विशेषतः उन बड़ी-बड़ी धर्मसंस्थाओंके सम्बन्धमें दुराचारकी अधिकता आदि बातोंका उल्लेख समस्तरूपेण सत्य है। एक दुरात्मा बिशप अथवा किसी दुराचारी, दुष्कर्मी पादरीके दुष्कर्म या दुराचारोंका प्रभाव सैकड़ों धर्मात्मा तथा ईश्वरभक्त पुरोहितोंके सत्कर्मोंके प्रभावसे कहीं अधिक होगा। यदि हम लोग यह बात मान भी लें कि बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीके लेखकोंने धर्माधिकारियोंके सत्कर्मोंपर किंचित्‌मात्र भी ध्यान नहीं दिया तो भी हम-लोगोंको यह मानना ही पड़ेगा कि उन लोगोंने पादरी, पुरोहित तथा महन्तोंके जीवनका और गिरजोंकी बुराइयोंका अत्यन्त कलंकित चित्र खींचा है।

सप्तम ग्रेगरीका कहना था कि चर्चके दुराचारोंके वास्तवमें वे राजा-महाराजा कारण थे जो अपने-अपने प्रिय पार्श्ववर्तीको चर्चके अधिकार-पदपर नियुक्त करते थे। परन्तु सम्पूर्ण कठिनाइयोंका कारण चर्चकी प्रचुर सम्पत्ति तथा अधिकार था जिसके कर्त्ता-धर्त्ता पादरी लोग थे। उनको सदुपयोगमें लाने और प्रलोभनोंके दमन करनेके लिए वस्तुतः सन्तों तथा महात्माओंकी आवश्यकता थी। किसी धनी पादरीके अधिकारपर ध्यान देनेसे उसके दुराचारोंको देखकर किंचित्‌मात्र भी आश्चर्य नहीं होता। आधुनिक शासनपदोंके समान, उस समयमें चर्च-पद भी धन कमानेके साधन समझे गये थे। अथवा यों कहिये कि जिस प्रकार आजकल अमरीकामें साधारण गृह नियामक हैं, उसी प्रकार चर्चके अधिकारी भी थे। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीके चर्चोंके वर्णनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि चाहे वे कैथलिक हों या प्रोटेस्टेन्ट, इनके अधिकारीवर्ग आधुनिक पादरियोंके समान ही पेशेदार राजनीतिक थे।

लोगोंमें नास्तिकता तथा चर्चकी ओरसे घृणा क्यों उत्पन्न हुई यह दिखलानेके लिये यहां पादरियोंके अति विकट तथा घोरतम दुराचारोंका संक्षेपतः वर्णन करना आवश्यक है। बारहवीं शताब्दीमें वे लोग चर्चके अधिकारोंपर आक्षेप करने लगे जिसका परिणाम सोलहवीं शताब्दीमें प्रोटेस्टेन्टोंका घोर विद्रोह है। पादरियोंके दुराचारोंसे ही भिक्षुक महन्त फ्रांसिस्कन् तथा डोमिनिकन लोगोंका आविर्भाव हुआ और वे ही तेरहवीं शताब्दीके सुधारोंके कारण हैं।

इनोसेंट तृतीय (धर्माधिकारी-सम्राट) का पाप इतना बढ़ गया था कि [illegible] अत्याचार [illegible] था। इसका वर्णन पिछले परिच्छेदमें हो चुका है। [illegible] और [illegible] थे। [illegible] विरक्त तथा [illegible] क्योंकि [illegible] उनके

ज्येष्ठ पुत्र ही हुआ करते थे। बिशप और एबट सामन्तोंके समान जीवन व्यतीत करते थे। यदि कोई पादरी युद्धप्रिय हुआ तो वह युद्धयात्रा करनेके लिए सैन्य एकत्र करता था या अपने किसी पड़ोसीको दुःख देने वा अपनी ईर्ष्या मिटानेके हेतु उसपर चढ़ाई कर बैठता था।

धर्माधिकार-विक्रय (साईमनी) और पादरियोंके दुराचारोंके अतिरिक्त और भी अनेक बुराइयाँ थीं जिनके कारण चर्चकी निन्दा होती थी। यद्यपि बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीके पोप स्वयं बड़े सज्जन तथा नीतिज्ञ थे और प्रायः वे उस संस्थाकी जिसके वे अधिपति थे, उन्नतिका ध्यान रखते थे। पोपके न्यायालयमें अभियोगों-पर विचार करनेवाले अधिकारी-वर्ग अत्यन्त दुराचारी होते थे। सब लोगोंमें प्रचलित था कि अभियोगका निर्णय उसीके अनुकूल होगा जो अधिक रुपया दे सकेगा। उस समय निर्धनोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था। बिशपके न्यायालयमें तो बड़ी क्रूरता दिखलायी जाती थी, क्योंकि सामन्तोंके समान बिशपोंकी भी आम-दनी उसी अर्थदण्डसे हुआ करती थी जो उनके अधिकारी-वर्ग अभियुक्तोंपर लगाते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि एक ही मनुष्य एक ही समयमें राजाज्ञा द्वारा भिन्न भिन्न न्यायालयोंमें बुला लिया जाता था और जब वह किसी एकमें उपस्थित नहीं हो सकता था तो उसे अर्थ-दण्ड कर दिया जाता था।

इसी प्रकार पुरोहित भी अपने अध्यक्षोंके दुष्कर्मोंका अनुकरण करते थे। चर्चके सभी कार्योंसे विदित होता है कि कभी-कभी पुरोहित दुकानोंमें बैठकर मद्यादि वस्तुएँ भी बेचा करते थे, जैसा कि हम पहले लिख आये हैं कि ये बपतिस्मा, विवाह और अन्त्येष्टि क्रियासे अपनी विशेष आय बढ़ाते थे।

बारहवीं शताब्दीके महन्तोंने भी अधिक अंशोंमें पादरियोंकी न्यूनताकी पूर्तिका प्रयत्न कभी नहीं किया था। वे लोग भी जनताको न तो कभी उत्तम शिक्षा ही देते थे और न सच्चरित्रता ही सिखलाते थे, परन्तु स्वयं पादरियों और बिशपोंकी भाँति आनन्द किया करते थे। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दीमें महन्तोंके सुधारनेका प्रयत्न किया गया।

उस समयके यात्रियोंके लेख पढ़नेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समयके समस्त धर्माधिकारीगणोंमें स्वार्थपरता और दुश्चरित्रता सर्वव्यापक हो गयी थी। इस बातका परिचय विशेषतः पोपोंके पत्रोंमे, महात्मा बर्नर्ड जैसे महात्माओंकी निर्भर्त्सनाओंमें, समितियोंके कानूनोंमें, उत्तेजक प्रतिभावान कवियोंकी प्रहसनपूर्ण सर्वप्रिय कविताओंमें और प्रत्युत्पन्नमति आशुकवियोंके पद्योंमें मिलता है। पाद-रियोंके अन्याय, उनके प्रलोभन तथा धर्मकार्यकी अवहेलनाके लिए सर्वसाधारण भी उनकी निन्दा करते थे। महात्मा बर्नर्ड शोकसे प्रश्न करते हैं, 'क्या कोई भी पादरी

ऐसा बनाया जा सकता है जो कि अपने आश्रितोंका धन न चूसकर उसके दुष्कर्मोंके दूर करनेका प्रयत्न करता हो ?"

धर्माध्यक्षोंके अवगुण सामान्य जनको भली-भाँति विदित हो थे और वे उसकी समालोचना भी किया करते थे। पादरियोंमें सच्चे हृदयवालोंके स्थायी दोषोंके सुधार करनेका प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। परन्तु धर्माध्यक्षोंमें कोई भी ऐसा न था कि जो गिरजेके मन्तव्योंकी सत्यता तथा संस्कारोंकी अमोघतापर विश्वास न करता हो। सामान्य जनोंमें कुछ ऐसे सर्वप्रिय नेता निकले जिन्होंने व्यक्त शब्दोंमें उद्घोषित किया कि गिरजा शैतानका सभागृह है और अबसे मुक्तिके लिए किसीको उसपर भरोसा नहीं करना चाहिये। इसके समस्त संस्कार निरर्थक और हानिकारक हैं। इसका भगवद्भोग, पवित्र जल और धर्मचिह्न केवल दुराचारी पुरोहितोंके द्रव्योपार्जनका उपायमात्र हैं और इससे कोई भी स्वर्गकी आशा नहीं कर सकता। जिन लोगोंको पूरा विश्वास था कि दुश्चरित्र पादरियोंका शासन पापियोंका कुछ भी उद्धार नहीं कर सकता और जिनपर टाइथ नामक कर तथा अन्यान्य करोंका बोझ था उन लोगोंमें चर्चके विरुद्ध उठे घोर आन्दोलनके बहुतसे समर्थक हो गये।

गिरजेके मतका खण्डन करनेवालों तथा उसके अधिकारपर आक्षेप करनेवालोंपर उस समयके अनुसार घोर नास्तिकताका दोष लगाया गया। जिस धर्मका उपदेश ईश्वरके पुत्र (ईसा)के द्वारा अपने अनुयायीवर्ग रोमके गिरजेने किया उस धर्मकी अवहेलना कर ईश्वरसे विद्रोह करनेके पापसे बढ़कर किसी कट्टर धर्मावलम्बीकी आँखोंमें दूसरा कोई भी पाप नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सन्देह और अविश्वास करना केवल पाप ही नहीं था, परन्तु उस समयकी प्रचलित धर्मप्रथा—जिसकी पश्चिमीय यूरोपमें बड़ी प्रतिष्ठा थी—के प्रतिकूल विद्रोह भी था, यद्यपि उसके कुछ अध्यक्ष दुराचारी थे। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें नास्तिकताकी वृद्धि तथा विकास और अग्निप्रकोप, असिबल और विचारालयोंकी कठोरतासे उसको दबानेके लिए गिरजेवालोंके घोरदमनका मध्ययुगके इतिहासमें अति दारुण तथा विचित्र वर्णन है।

नास्तिकोंके दो भेद थे। एक तो वे जो कैथलिक गिरजेके कुछ मन्तव्योंका त्याग कर चुके थे, पर ईसाई धर्मको मानते थे और यथाशक्ति ईसामसीह और अपासलोंके साधारण जीवनके अनुकरण करनेका प्रयास करते थे। दूसरे वे लोकप्रिय नेता थे जो इसाई धर्मको सर्वथा झूठा बतलाते थे। इनका मत था कि संसारमें केवल दो ही पदार्थ हैं, पाप और पुण्य। वे दोनों विजयके लिए आपसमें सदा लड़ा करते हैं। उनका कहना था कि प्राचीन "धर्म-व्यवस्था" (अंजील) का जहोवा पापात्मा है, अतएव कैथलिकका गिरजा पापात्माकी पूजा करता है।

यह नास्तिकता प्राचीन कालसे चली आती है। प्रारम्भिक अवस्थामें महात्मा अगस्टाइन भी इसमें फँस गये थे। ग्यारहवीं शताब्दीमें इटलीमें इसका आविर्भाव हुआ और बारहवींमें दक्षिण फ्रान्समें इसका बहुत प्रचार हुआ। इसके पक्षपातियोंने अपना नाम 'कथारी' (श्रेष्ठ) रखा, पर हम उन्हें अल्बि-गणोंके नामसे पुकारेंगे, क्योंकि इनकी संख्या दक्षिणी फ्रांसके अल्बि नगरमें बहुत अधिक थी।

जो लोग ईसाई धर्मको तो ग्रहण करते थे, पर दुराचारके कारण पादरियोंको नहीं मानते थे उनमें सबसे विख्यात वाल्डोपन्थी थे। ये लोग लीयन नगरके रहनेवाले पीटर वाल्डोके शिष्य थे जो अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति त्यागकर अपासलोंके समान तपस्वियोंका जीवन विताते थे। वे लोग देश-विदेशमें जाकर धर्मपुस्तकका लोगोंकी भाषामें अनुवाद करके उसकी शिक्षाका प्रचार करते थे। उन लोगोंने बहुतोंको अपने मतमें मिला लिया और बारहवीं शताब्दीके अन्ततक बहुतसे लोग पश्चिमीय यूरोपमें फैल गये।

जो लोग ईसामसीह तथा अपासलोंके साधारण जीवनका अनुकरण करना चाहते थे गिरजेने उनके प्रयासकी निन्दा नहीं की, परन्तु उन लोगोंकी स्थिति जनताके ऊपर गिरजेके प्रभावका नाशक थी, वे लोग इस विश्वासका खण्डन करते थे कि अखिल मुक्तिका मार्ग गिरजा ही है और उन्होंने शिक्षक तथा आचार्य-पदपर अपना अधिकार जमाकर खुल्लमखुल्ला इस बातकी शिक्षा दी थी कि प्रार्थना चाहे गिरजेमें की जाय या बिछौनेपर की जाय या अस्तबलमें की जाय, वह समान रूपसे गुणकारी होती है

बारहवीं शताब्दीके अवसानके पूर्व ही राजा लोग भी नास्तिकतापर ध्यान देने लगे। संवत् १२२३ (सन् ११६६ ई०) में तृतीय हेनरीने उद्घोषित किया कि इंग्लैण्डमें नास्तिकोंको कोई निवासस्थान न दे और जो उनको अपने घरमें ठहरायेगा उसका मकान जला दिया जायगा। संवत् १२५१ (सन् ११९४ ई०) अरागानके राजाने भी घोषणा की कि जो कोई वाल्डोपन्थियोंकी शिक्षा सुनेगा या उन्हें भोजनादि देगा, उसपर राजविद्रोहका अभियोग चलाया जायगा और उसकी सारी सम्पत्ति छीनकर राज्यमें मिला ली जायगी। इसी प्रकारकी अनेक निर्दयताकी घोषणाएँ बहुतसे व्युत्पन्न राजाओंने तेरहवीं शताब्दीमें उन सभीके प्रतिकूल निकाली जिन लोगोंपर अल्बिगण अथवा वाल्डोपन्थी होनेका अभियोग लगाया जा सकता था। राजा तथा धर्माध्यक्ष दोनोंने स्थिर किया कि लिए ये साधु लोग दोनोंके कुशलके लिए भयावह हैं और उन्हें इन अपराधोंके कारण जीते जी जला देना चाहिये।

आजकलके लोगोंको जो कि सहनशील युगमें वर्तमान हैं, उस समयकी नास्तिकताके सर्वव्यापार तथा हृदयस्थित रुद्रताको समझना कठिन हो जाता है जिसका

प्रचार केवल बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें ही नहीं, किन्तु अठारहवीं शताब्दी-में भी था। इस बातपर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि नास्तिकता उस धर्म-संस्थाका विद्रोह थी जिसकी स्थितिकी आवश्यकताको विद्वान् तथा मूर्ख लोग भी केवल मुक्तिके लिए ही नहीं, किन्तु सभ्यता तथा शान्तिके लिए भी आवश्यक समझते थे। पादरियों तथा पोपके दुराचारोंकी समालोचना खुल्लमखुल्ला होती थी, परन्तु इसको भी कोई नास्तिकता नहीं कहता था। यह पूरा विश्वास था कि पोप और अधिकांश पादरी दुराचारी थे तो भी गिरजेकी स्थिति तथा मन्तव्योंकी सत्यतामें किसीको भी सन्देह नहीं होता था। जैसे आधुनिक समयमें हम लोग किसी राज्य-कर्मचारीको मूर्ख या धूर्त कहते हैं, परन्तु इससे राजाके प्रतिकूल होनेके अभियोगी नहीं बन सकते, वैसे ही नास्तिक लोग मध्ययुगमें अराजकताके विस्तारक थे, क्योंकि वे गिरजेके अधिकारी-वर्गोंकी केवल निन्दा ही नहीं किया करते थे, किन्तु स्वयं गिरजेको व्यर्थ तथा हानिकारक बतलाते थे। उनका प्रयत्न लोगोंका गिरजेसे सम्बन्ध छुड़ाने तथा उसकी आज्ञा और नियमोंको भंग करानेका था। इन कारणोंसे राजा और धर्माध्यक्ष दोनों ही इनके ऐसे प्रतिकूल खड़े हो गये, मानों वे और जनता और शान्तिके शत्रु हैं। इसके अतिरिक्त नास्तिकता छूतसे बढ़नेवाले रोगके समान थी। इसकी वृद्धि इतनी अधिक और गुप्त रूपसे हो रही थी कि इससे रोकनेके लिए कठिनसे कठिन उपचारका प्रयोग न्यायानुकूल ज्ञात होता था।

नास्तिकताके दबानेके कई उपाय थे, उनमेंसे पहिला पादरियोंके चाल-चलनका सुधार और प्रधान संस्थाके दोषोंका दूर करना था, क्योंकि उस समयके लेखोंसे ज्ञात होता है कि इन्हीं कारणोंसे लोग असन्तुष्ट थे और नास्तिकता फैलाते थे। तृतीय इन्नोसेन्टने प्रधान संस्थाओंकी उन्नतिके लिए संवत् १२७२ (सन् १२१५ ई०) में रोममें एक सभा की, परन्तु वह प्रयत्न फलीभूत न हुआ। उसके उत्तराधिकारियोंका कथन है कि इससे और भी हानि हुई।

दूसरा उपाय द्रोहियोंके प्रतिकूल युद्धयात्रा कर उन्हें तलवारसे दबानेका था। इससे काफी सफलता प्राप्त हो सकती थी यदि एक ही नगरमें बहुतसे नास्तिक एकत्र मिल जाते। दक्षिण फ्रांसमें विशेषकर टोलोस नगरमें अल्बिजेन्स तथा वाल्डोपन्थी दोनोंके अनेक अनुयायी थे। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें इस प्रांतके लोग धर्म-संस्थासे बड़ी घृणा करते तथा नास्तिकताको शिक्षाकी बड़ी प्रशंसा करते थे।

संवत् १२६५ (सन् १२०८) में तृतीय इन्नोसेन्टने इस हरे-भरे देशपर भी धर्मयुद्ध-यात्राका आदेश किया। सीमन्डे मान्टफोर्टके नेतृत्वमें एक सेना उत्तर फ्रांससे इस निर्दिष्ट देशको रवाना हुई और अत्यन्त भयानक तथा रुधिरस्रावी युद्धके पश्चात् नास्तिकताका घोर नृशंसता-पूर्ण हत्याके बलसे दमन किया। इसका यह

परिणाम हुआ कि सभ्यताकी वृद्धि रुक गयी और फ्रांसके सबसे उन्नत प्रदेशकी सम्पत्तिका नाश हो गया।

नास्तिकताको रोकनेके लिए तीसरा उपाय यह किया गया कि पोपके अधिपतित्वमें न्यायालय स्थापित किये गये जिनका कार्य नास्तिकताके गुप्त अभियोगोंका अन्वेषण कर अपराधियोंको दण्डित करना था। इससे अधिक सफलता प्राप्त हुई। विज्ञोंके इन न्यायालयोंने अपना सम्पूर्ण समय नास्तिकोंके अन्वेषण करने और उनके अभियोग-निर्णय करनेमें ही लगा दिया था। और ये ही धर्मविचारालय बने, जिन्होंने शनैः-शनैः अविश्वासियोंके प्रति क्रूसेडका ढाँचा पकड़ा। विचारालय-स्थापनके दो सौ वर्ष पश्चात् स्पेनमें ये भी बहुत बदनाम हो गये। यहाँपर इनकी दशाका वर्णन करना असंगत है। इन लोगोंने इस आशासे कि नास्तिक लोग या तो अपने अपराधको स्वीकार करेंगे या दूसरे अपराधियोंका नाम बतलावेंगे, अभियोगोंके निर्णय करनेमें अन्याय करना प्रारम्भ किया। उनको बहुत दिनोंतक कारागारमें रखकर या शारीरिक वेदना देकर बहुत अधिक कष्ट दिया जाता था। इन्हीं कारणोंसे विचारालयका नाम भी कलंकित हो गया था।

जिन उपचारोंसे ये लोग काम लेते थे उनके सम्बन्धमें कुछ न कहकर यह कहना असंगत न होगा कि ये न्यायाधीश अधिकांश धार्मिक तथा न्यायशील होते थे और उनके विचार भी सत्रहवीं शताब्दीके डाकनियोंके अभियोगके निर्णय करनेवाले न्यायाधीशोंके समान ही होते थे। इन विचारालयोंके विधान भी उसी समयके अन्य सरकारी न्यायालयोंके विधानोंसे अधिक कठोर और क्रूर न थे।

यदि किसीपर नास्तिक होनेका सन्देह किया जाता और वह नास्तिक न होनेका प्रमाण देता तो उसपर ध्यान नहीं दिया जाता था, क्योंकि यह समझा जाता था कि आजकलके अपराधियोंकी तरह ये लोग भी अपने अपराधको स्वीकार नहीं करेंगे। अतः प्रत्येक मनुष्यके धर्मका ज्ञान उसके बाह्य कार्योंसे कर लिया जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि कभी-कभी कई मनुष्य केवल नास्तिकोंसे बातचीत करने, या किसी कारणवश संस्थाका यथार्थ सत्कार न करने तथा अपने पड़ोसियोंके विद्वेषके कारण भी अपराधी प्रमाणित किये जाते थे। वास्तवमें यह विचारालयों और उनके संविधानोंका बड़ा भयानक रूप था। ये लोग किंवदन्तीपर भी ध्यान देते थे। जो लोग अपने विचारों और मुख्य संस्थाके मन्तव्यों में किसी प्रकारका मतभेद हृदयसे स्वीकार नहीं करते थे वे उन लोगों के साथ भी अति निष्ठुर बर्ताव करते थे।

यदि किसीपर सन्देह हुआ और वह अपना अपराध, स्वीकार कर नास्तिकताको छोड़ देता था तो उसे माफी दे दी जाती थी और वह पुनः संस्थामें सम्मिलित कर लिया जाता था, परन्तु साथ ही साथ उसे आजन्म कारागारका दंड भी दिया जाता

था जिससे उसके असंख्य पापोंका नाश हो जाय। जिन अपराधियोंको अपने कृत्यपर पश्चात्ताप नहीं होता था उन्हें राज्याधिकारियोंके हाथ सौंप दिया जाता था, संस्थाको स्वतः रुधिर बहाना वर्जित था इसलिए वह उन अपराधियोंको राजयकर्मचारीके हाथ सौंप देती थी और वे उनको पुनः विचार किये विना जीवित जला देते थे।

अब हम यहाँपर संक्षेपतः उन व्यवस्थाओंका वर्णन कर देना चाहते हैं जिनका असीसीके महात्मा फ्रांसिसने चर्च-संस्थाके प्रतिवादियोंके प्रतिकूल उपयोगमें लानेके लिए आविष्कार किया था। उसकी शिक्षा और उसके सौम्य जीवनसे प्रभावित होकर लोगोंका मुख्य संस्थासे जो प्रेमसम्बन्ध बढ़ा, वह न्यायालयोंके घृणित नृशंस उपचारोंसे कहीं अधिक था।

यह पहिले लिखा जा चुका है कि वाल्डोंके अनुयायियोंने सरल जीवन व्यतीत किया और धर्म-पुस्तककी शिक्षा दी। इससे उन्होंने संसारको उन्नत करनेका बहुत प्रयत्न किया। मुख्य संस्थाके अधिकारी उनसे सहमत नहीं थे, इससे उन लोगोंने इनकी शिक्षाको मिथ्या और अनर्थकारी बतलाया, इन लोगोंको अपना धर्मकार्य प्रकटरूपमें करनेसे रोका। समस्त विवेकी मनुष्य वाल्डोपन्थियोंसे इस बातपर सहमत थे कि पादरियोंके कुकर्म तथा प्रमादके कारण समस्त देशकी अवस्था शोचनीय हो रही थी। महात्मा फ्रांसिस तथा महात्मा डमिनिकने इस कमीकी पूर्त्ति करनेके लिए एक नये प्रकारके पादरी नियुक्त किये जिनको 'भिक्षुक बन्धु' (फ्रायर) कहते थे। इन्हें वही कार्य समर्पित किया गया था जिसे बिशप तथा पुरोहित नहीं कर सके थे अर्थात् आत्मसमर्पणका पवित्र जीवन विताना, नास्तिकोंके आक्षेप तथा निभर्त्सनासे सच्चे धर्मकी रक्षा करना, नये आध्यात्मिक जीवनका लोगोंमें सञ्चार करना और यतियोंकी संस्थाका स्थापन करना। यही मध्ययुगका बड़ा विख्यात काम है।

महात्मा फ्रांसिससे बढ़कर इतिहासभरमें दूसरा ऐसा लोक-प्रिय तथा हृदयाकर्षक व्यक्ति नहीं हुआ। इन महात्माका जन्म संवत् १८४९ (सन् १७९२ ई०) मध्य इटलीके असीसी नामके एक छोटेसे ग्राममें हुआ था। आप एक धनिक व्यवसायीके पुत्र थे। युवावस्थामें आपने अपनी पैतृक सम्पत्तिको फूँककर जीवनका खूब आनन्द लिया था। आपने उस समय फ्रांसकी आख्यायिकाओंको पढ़ा था और जिन वीरोंका वृत्तान्त उसमें लिखा था उनके वीरताके कार्योंके अनुकरण करनेकी इच्छा आपमें वर्त्तमान थी। यद्यपि इनके संगी उद्दण्ड और प्रमत्त थे, तथापि इनके हृदयमें एक प्रकारका लावण्य तथा वीरता विद्यमान थी जिसके कारण वह अशिष्ट तथा क्रूर बातोंसे घृणा करते थे। पश्चात् जब वे भिक्षुक बने तब भी चिथड़ोंकी गुदड़ीके भीतर वही सच्चे कवि और वीरका हृदय छिपा था।

उन्हें अपने विलासयुक्त तथा निर्धनोंके दुःखमय जीवनकी तुलनासे बहुत

वेदना हुई। बीस वर्षकी अवस्थामें वे बहुत बीमार पड़े जिससे उनके सुखमय जीवनमें बाधा पड़ी, परन्तु इससे उन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ और अब इनका प्रेम पूर्वानुभूत विलासिताके सुखोंकी ओरसे हट गया। वे निराश्रयों और विशेषकर कोढ़ियोंका सहवास करने लगे। फ्रांसिसका पालन पोषण बहुत विलासितामें हुआ था। इसलिए वे स्वभावतः दीन जनोंसे घृणा करते थे, लेकिन उन्होंने इन लोगोंके सहवासके लिए अपनेको बाधित किया और उनको अपने घनिष्ठ मित्रोंके समान समझने लगे। वे स्वयं उनके घाव धोते थे। उन्हें अपने ऊपर बड़ा भारी विजयलाभ हुआ। पहिले जो कुछ उन्हें विषम तथा कठिन मालूम होता था, अब सरल तथा प्रिय प्रतीत होने लगा।

उनके पिताको गरीब भिखमंगोंसे कुछ भी प्रेम न था, इससे इन पिता-पुत्रका सम्बन्ध दिनपर दिन स्खलित होता गया, अन्तको इनके पिताने इन्हें सम्पत्तिके उत्तराधिकारसे च्युत कर देनेका भय दिखलाया। इन्होंने यह भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्होंने पहिने हुए वस्त्र भी उतारकर अपने पिताको लौटा दिये और किसी मालीके फटे वस्त्र पहिनकर गृहत्यागी यती हो गये और असिसीके समीपवर्ती विनष्ट देवालयोंके जीर्णोद्धारमें लग गये।

संवत् १२६६ (सन् १२०९ ई०) के फाल्गुन मासमें किसी दिन वह भगवद्-भोगके समय प्रार्थना सुन रहे थे, अचानक पुरोहितने उनकी ओर झुककर यों पढ़ना आरम्भ किया—"और जब तू यह शिक्षा बाहर देनेके लिए, निकलता है कि स्वर्ग-राज्य अब मिलनेवाला ही है तो अपनी गाँठमें न सोना, न चाँदी और न पीतल ही रख, अपनी यात्राके लिए वस्त्र भी न ले, अपने साथ कोट, जूते तथा दण्ड भी न ले, क्योंकि श्रमीको भोजन मिल ही जायगा।" (मैथ्यू १०–७–१०) फ्रांसिसने समझा कि स्वयं ईसामसीहने हमारी यात्राका मार्ग दिखलानेके हेतु ये शब्द कहला भेजे हैं। वहींपर उन्होंने अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम बना लिया। उन्होंने अपने दण्ड, वस्त्र तथा जूते फेंक दिये और उसी दिन अपासलोंके निर्धारित किये हुए जीवनके बितानेका संकल्प किया।

अब उन्होंने साधारण तौरसे शिक्षा देना प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनोंके बाद एक धनी नागरिकने अपनी सारी सम्पत्ति निर्धनोंको देकर उनका शिष्य बनना चाहा। बहुतोंने उनका साथ दिया। ये लोग प्रसन्नचित्त, अनुपाती, संसारके भारसे निर्मुक्त होकर अपनेको ईश्वरका दास कहते हुए नंगे पैर धनहीन मध्य इटलीके इधर-उधर घूमकर धर्मपुस्तककी शिक्षा देते थे। जिन लोगोंसे उनकी भेंट होती थी उनमेंसे कुछ तो उनके उपदेशोंको सुनते थे और कुछ उनको बनाते थे, अधिकतर लोग उनसे कितने ही प्रश्न किया करते थे—तुम्हारा आना कहाँसे हुआ?

तुम किस सम्प्रदायके अनुयायी हो ? इत्यादि। यद्यपि कभी-कभी तो प्रश्नोंका उत्तर देना भी कठिन हो जाता था, तथापि वे कहा करते थे कि हमलोग असिसीके रहनेवाले तपस्वी हैं।

संवत् १२६७ (सन् १२१० ई०) में फ्रांसिस अपने दस या बारह अनुयायियोंके साथ बड़े पोप तृतीय इन्नोसेन्टके पास गये और अपने मतको अवलम्बन करनेके लिए उससे कहा। इन्नोसेन्ट सुनकर विचारमें पड़ गया। उसे विश्वास ही नहीं होता था कि कोई भी मनुष्य अत्यन्त दरिद्रताका जीवन भी पालन कर सकता है। उसको इस बातकी आशंका होने लगी कि कहीं धीरे-धीरे ये चिथड़े पहने हुए स्वेच्छाचारी विलासी तथा धनिक पादरियोंसे भिन्न जीवन विताकर मुख्य संस्थाकी ही निन्दा न करने लगें। यदि वह इन भिक्षुकोंकी निन्दा करता तो मानों वह स्वयं ईसामसीहके वचनोंकी अवज्ञा करता, क्योंकि ये वचन स्वयं उन्होंने अपने अपासलोंको दिये थे। अन्तको उसने मौखिक अनुमोदन न देकर उन्हें अपने आन्दोलन और प्रचारको जारी रखनेका अधिकार देना निश्चय किया। तब उन्होंने मुण्डन करवाकर रोमन चर्चसे आध्यात्मिक अधिकार लिया।

सात वर्ष बाद जब फ्रांसिसके अनुयायियोंकी संख्या अधिक हो गयी तो उन्होंने शिक्षाका कार्य स्थूल रूपसे प्रारम्भ किया। सम्प्रदायने भिक्षुकोंको जर्मनी, फ्रांस, हंगरी, स्पेन और सीरियामें भी भेजा। इसके थोड़े ही दिनों पहिलेका एक अंग्रेज ऐतिहासिकका वर्णन बड़ा मनोरंजक है जिसमें उसने लिखा है कि "जिस समयमें नग्नपाद जीर्णवस्त्रवेष्टित रस्सी कमरमें बाँधे ईसाई धर्मके प्रचारक हमारे देशमें आने लगे उस समय इन्हें देखकर आश्चर्य होता था। इन्हें भविष्यकी किंचित्मात्र भी चिन्ता न थी और उन लोगोंको विश्वास था कि उनके स्वर्गीय पिता उनकी आवश्यकताओंको भली भाँति जानते हैं।"

इन दीर्घ-प्रचार-यात्राओंमें भिक्षुकोंको बहुत कुछ यातनाएँ भी झेलनी पड़ीं। इन लोगोंने पोपसे प्रार्थना की कि आप हम लोगोंको एक पत्र लिखकर दे दीजिये कि 'ये लोग बड़े विश्वासी कैथोलिक हैं, इसलिए प्रत्येक मनुष्यको इनके साथ सद्व्यवहार करना चाहिये।' यहींसे उन्हें पोपकी ओरसे अगणित अधिकारोंका मिलना आरम्भ होता है। एक छोटेसे सम्प्रदायसे इतनी बड़ी तथा शक्तिशाली संस्था बनते देख महात्मा फ्रांसिसको कुछ दुःख हुआ। उनको मालूम होने लगा कि शीघ्र ही वे लोग इस पवित्र जीवनको त्यागकर तृष्णालु तथा धनी हो जायेंगे। इस बातको समझकर उसने यों लिखा—"जिस क्राइस्टके बतलाये भिक्षुक-जीवनका मैं भी अनुसरण करना चाहता हूँ। इसलिए आपलोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि अपना जीवन इसी भिक्षुक-दशामें व्यतीत कीजिये और इस बातका ध्यान रखिये कि किसी

भी मनुष्यके उपदेशसे चाहे वह कैसा ही प्रभावशाली क्यों न हो, इस सम्प्रदायसे विचलित न होइये।"

फ्रांसिसकी धर्मपुस्तकके कुछ एक चुने हुए वाक्योंके स्थानपर नये तथा अधिक सारवान् आदेशोंकी व्यवस्थाका निर्माण करना पड़ा। संवत् १२८५ (सन् १२२८ ई०) में तृतीय होनोरियसने बहुत उलट-पलटके पश्चात् अपने तथा और अध्यक्षोंके आशयके अनुसार फ्रांसिसके नियमोंका अनुमोदन किया। उक्त नियमोंमें लिखा हुआ था कि "सम्प्रदायके लोग अपने लिए कुछ भी न लें, वे किसी नियमित स्थानमें न रहें, परन्तु यात्रियोंके समान परिव्राजक बनकर निर्धन तथा विनीत दशामें रहकर परमेश्वरकी सेवा करें। और भिक्षासे अपना जीवन-निर्वाह करें। इस बातसे उन्हें लज्जित भी न होना चाहिये, क्योंकि हम लोगोंके लिए ईश्वरने स्वयं अपनेको दरिद्र बनाया था। यदि धर्मकार्यसे अवकाश मिले और यदि काम करनेके योग्य हों तो इनको काम भी करना चाहिये। इनकी तथा सम्प्रदायके अन्य सदस्योंकी आवश्यकता-पर इस परिश्रमका इन्हें वेतन दिया जाय, परन्तु स्वयं भिक्षुकको रुपया-पैसा न ग्रहण करना चाहिये। यदि कोई बिना जूतोंके नहीं रह सकता तो जूता धारण कर ले, अपने वस्त्रोंका जीर्णोद्धार उन्हें टाटके चिथड़ोंसे करना चाहिये। उन्हें अपने अध्यक्षों-की अध्यक्षतामें रहना चाहिये। उन्हें विवाह नहीं करना चाहिये और सम्प्रदायसे सम्बन्ध भी नहीं तोड़ना चाहिये।"

संवत् १२८३ (सन् १२२६) में महात्मा फ्रांसिसका स्वर्गवास हुआ। इस समयतक इस सम्प्रदायके सहस्रों सदस्य हो चुके थे। इनमेंसे कुछ तो अभीतक भिक्षुकका जीवन विताना चाहते थे, पर दूसरोंका यह मत था कि लोग जो द्रव्य इस संस्थाको देना चाहते हैं उससे बहुत लाभ हो सकता है। उनका कहना था कि सम्प्रदायके अधीन सुन्दर-सुन्दर गिरजे तथा सुखकर मन्दिरोंके हो जानेपर भी यदि कोई सदस्य चाहें तो वह निर्धन रह सकते हैं। उनके जिस नेताने अपना जीवन निर्जन कुटीमें बिताया, उसका मृत शरीर (शव) गाड़नेके लिए असिसीमें एक उन्नत गिरजा बनवाया गया और दान एकत्र करनेके लिए गिरजेमें एक दानपात्र (Chest) रखा गया।

भिक्षुक सम्प्रदायके द्वितीय संस्थापक महात्मा डामिनिक फ्रांसिसके समान साधारण मनुष्य नहीं थे। वे स्वतः गिरजेके अध्यक्ष थे और उन्होंने स्पेनके धर्म-विद्यापीठमें दश वर्षतक विद्याभ्यास किया था। संवत् १२६५ (सन् १२०८ ई०) में वे अपने बिशपके साथ अल्बिगणोंके प्रतिकूल धर्मयुद्धयात्राके प्रारम्भमें दक्षिणी फ्रांसमें गये थे। वहाँपर नास्तिकताका प्रचार देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। टौलोस नगरमें जिसके घरपर वे अतिथि हुए थे वह स्वतः अल्बिगण था। डामिनिक

रातभर उसके मतपरिवर्त्तनका प्रयत्न करते रहे। उन्होंने वहींपर नास्तिकताके दूर करनेका संकल्प किया। उनके विषयमें हम लोग जो कुछ जानते हैं उससे विदित होता है कि वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। इसाई धर्ममें उनको प्रचण्ड उत्साह था, साथ ही वे बड़े मिलनसार थे।

संवत् १२७१ (सन् १२१४ ई०) में यूरोपके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंसे कुछ लोगोंने म० डोमिनिकसे सहानुभूति दिखलायी और उनके सहगामी हुए। उन लोगोंने तृतीय इन्नोसेन्टसे उस नयी संस्थाको प्रमाणपत्र देनेको कहा। पोप पुनः आगा-पीछा करने लगा, परन्तु उसने स्वप्नमें देखा कि "लैटरनका रोमन गिरजा जीर्ण होकर गिरनेवाला ही था कि म० डोमिनिकने अपने हाथसे उसे सँभाल लिया।" इससे उसने यह परिणाम निकाला कि किसी न किसी समय यह संस्था पोपको बड़ी सहायता देगी और यही समझकर उसने अपनी स्वीकृति दे दी। जिस समय फ्रांसिसके अनुयायी प्रथम धर्मयात्रा कर रहे थे उसी समय म० डोमिनिकने अपने सोलह अनुयायियोंको भी देश-विदेशमें धर्म-प्रचारके लिए भेजा। संवत् १२७८ (सन् १२२१ ई०) में डोमिनिकका सम्प्रदाय पूर्ण रूपसे स्थित हुआ और पश्चिमीय यूरोपमें उनके प्रायः साठ मन्दिर स्थापित हो गये। गर्मीकी धूप तथा जाड़ेके शीतमें वे लोग सारे यूरोपमें पैदल घूमा करते थे। वे धनकी भिक्षा न लेकर जो कुछ भी अच्छा या बुरा भोजन मिल जाता था उसे सहर्ष ग्रहण करते थे। वे भूखको धीरताके साथ सहन करते थे और भविष्यकी तनिक भी चिन्ता न करते थे। पापी आत्माका उद्धार करने उसकी बुराइयोंको दूर करने और उसके शून्य हृदयमें स्वर्गीय ज्योतिकी प्राप्ति करानेके लिए वे लोग अपना सारा समय व्यतीत कर देते थे। इस प्रकार प्राचीन समयोंमें म० फ्रांसिस और डोमिनिकके अनुयायी (फ्रान्सिस्कन्स और डोमिनिकन्स) भी लोगोंके प्रेम तथा आदरके पात्र बने।

बेनिडिक्टाइन * महन्तोंके समान इन भिक्षुकोंको केवल अपने प्रत्येक मठके अधिपतिके ही आधिपत्यमें नहीं, किन्तु सम्पूर्ण सम्प्रदायके मुखियाकी अध्यक्षतामें भी रहना पड़ता था। साधारण सैनिकके समान उनका अधिपति सम्प्रदायके आवश्यकतानुसार उन्हें हर यात्रापर भेज सकता था। ये लोग अपनेको स्वयं ईसामसीहके सैनिक समझते थे। प्राचीनकालके महन्तोंके समान अपने जीवनको एकान्त समाधिमें न बिताकर उन्हें सर्वसाधारणसे मिलना पड़ता था। अपनी तथा अपने साथियोंकी रक्षाके निमित्त दुःख उठानेके लिए उन्हें सदा तत्पर रहना होता था।

---

* इस पन्थके प्रवर्त्तक सन्त बेनेडिक्ट थे जिनका संक्षेपतः वर्णन पश्चिमी यूरोपके पृ० २९,३० पर किया गया है।

डोमिनिकन लोग "शिक्षक"के नामसे प्रसिद्ध थे, धर्मशास्त्रकी उन्हें प्रबल शिक्षा दी जाती थी जिससे वे नास्तिकोंके आक्षेपोंका भली भाँति प्रत्युत्तर दे सकें। पोपने अभियोगनिर्णयका कार्य इन्हें दे दिया था। आरम्भमें ही इनका प्रभाव विद्यापीठोंपर पड़ने लगा। तेरहवीं शताब्दीके मुख्य धर्मशिक्षक अल्वर्टस मेग्नस और टामस अक्विनस डोमिनिकन थे। डोमिनिकनोंके समान फ्रान्सिस्कनोंने भी दानमें प्राप्त हुए द्रव्योंको ग्रहण किया था। उन्होंने धर्म-विद्यापीठोंमें कई एक छात्र भेजे थे।

पोपको इन सम्प्रदायोंका लाभ शीघ्र ही विदित होने लगा। अब वह उनको क्रमशः विशेष अधिकार देने लगा। धीरे-धीरे बिशपोंका अधिकार उनपरसे हट गया। यहाँतक कि अन्तमें उसने घोषणा करा दी कि वे अपने लिए स्वयं नियम-निर्माण करें। इससे भी अधिक उसने उन्हें यह अधिकार दिया था कि यदि वे पुरोहित हैं तो सर्वत्र प्रार्थना पढ़ सकते हैं, शिक्षा दे सकते हैं और धर्मचक्र (पेरिश) के पुरोहितके सर्वसाधारण कार्य—जैसे स्वीकृति सुनना, मोक्ष कराना और मृत-संस्कार कराना आदि कार्य—कर सकते हैं। इन भिक्षुकोंने प्रत्येक धर्मचक्रपर आक्रमण किया और पुरोहितोंके स्थानापन्न हो गये। सर्वसाधारण उन्हें पादरियोंसे पवित्र मानते थे, इसलिए उनकी प्रार्थना तथा शिक्षाको विशेष गुणकारी समझते थे। ऐसा नगर कदाचित् ही कोई रहा होगा जिसमें फ्रान्सिस्कनों अथवा डोमिनिकनोंके गिरजे न हों और कदाचित् ऐसा कोई भी राजा न था जिसके यहाँ इनमेंसे एक भी पुरोहित न हो।

इस आक्रमणसे चर्चके पादरियोंको बड़ा क्रोध हुआ। वे बारबार इस सम्प्रदाय-को उठा देने अथवा पेरिशके पुरोहितोंको हानि पहुँचाकर धनी बननेसे रोकनेके लिए प्रार्थना करते रहे, परन्तु उन्हें विशेष लाभ न हुआ। एक समय पोपने पादरियों, बिशपों तथा पुरोहितोंके नियोजनके समय स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि आप लोग अपना जीवन व्यर्थ सांसारिक विषयोंमें व्यतीत करते हैं, इसीसे आप लोग इस सम्प्रदायसे इतनी ईर्ष्या करते हैं, क्योंकि इस सम्प्रदायवाले जो कुछ द्रव्य पाते हैं केवल परमेश्वरकी सेवामें व्यय करते हैं, आनन्दमें नहीं उड़ाते।

इस सम्प्रदायमें बड़े बड़े-बड़े विद्वान्, योग्य तथा प्रसिद्ध पुरुष सम्मिलित थे। टामस अक्विनस जैसे विद्वान् सवनरोला जैसे सुधारक, फ्रेअन्जेलिको तथा फ्रा-बार्टो-लोमियोके समान कलाकुशल, और रोजर बेकनके समान वैज्ञानिक लोग इसके सदस्य थे। तेरहवीं शताब्दीके व्याप्टत संसारमें भिक्षुकोंके अतिरिक्त भलाई करनेवाली कोई भी संस्था ऐसी जाग्रत अवस्थामें न थी, तथापि उनकी स्वतन्त्रता—जिससे कि वे लोग गिरजेके आधिपत्यसे भी मुक्त थे—तथा लोगोंके दिये हुए प्रचुर धनने जो प्रलोभन उन्हें दिये, उन्हें वे अधिक समयतक न दबा सके। संवत् १३१४

(१२५७ ई०) में बोना वेन्टरा फ्रान्सिस्कन सम्प्रदायका मुख्याधिकारी बनाय गया। उसने लिखा है कि इन भ्रष्ट सम्प्रदायवालोंके लोभ, आलस्य तथा बुराइयोंके कारण लोग इनसे घृणा करने लग गये थे और ये लोग भिक्षा माँगनेमें इतने आग्रही हो गये थे कि यात्रियोंको ठगोंसे भी अधिक दुःख देने लग गये थे। इतने पर भी सब लोग इन्हें पुरोहितोंसे अधिक चाहते थे। अब गावों तथा नगरोंमें आध्यात्मिक जीवनकी शिक्षा पादरी तथा पुरोहित नहीं देते थे, परन्तु ये ही लोग देते थे।

अध्याय १७

ग्राम तथा नगरनिवासी

अर्थशास्त्रके नवीन विज्ञानके प्रादुर्भावके साथ ही साथ इतिहासके लेखक अब इस बातपर अधिक ध्यान देते हैं कि मध्ययुगमें किसानों, व्यवसायियों तथा कारीगरोंकी क्या अवस्था थी। कितना ही निरूपण क्यों न किया जाय, पर जंगलियोंके आक्रमणके बादकी पाँच या छः शताब्दियोंमें लोगोंकी दशाका कुछ भी पता नहीं चलता। मध्ययुगके इतिहासलेखकको इस बातका कभी भी ध्यान न था कि वह अपने पार्श्ववर्त्ती परिचित वस्तुओंका— जैसे उस समयमें किसानोंकी क्या स्थिति थी और वह खेत इत्यादि किस प्रकार जोतते थे, इत्यादि बातोंका—वर्णन भी करता। उसने केवल विख्यातजनों तथा हृदयग्राही वृत्तान्तोंका ही वर्णन किया है। इतना होनेपर भी मध्ययुगके ग्रामों तथा नगरोंके सम्बन्धमें इतना तो अवश्य विदित है, जिससे सामान्य इतिहासका कार्य भली भाँति चल सकता है।

बारहवीं शताब्दीके पूर्व पश्चिमीय यूरोपके नगरोंमें जीवन ही न था। जर्मनीके आक्रमणसे रोमके नगर दिनपर दिन क्षीण हुए चले जाते थे। आक्रमणके बादके संग्राममें उनकी अवनति शीघ्र होने लगी और कितने नगर तो लापता हो गये। इतिहास बतलाता है कि जो कुछ नगर बचे-बचाये रह गये या जो उनके स्थानपर नये उत्पन्न हुए वे सब मध्ययुगके प्रारम्भकालमें प्रसिद्ध न थे। इससे विदित होता है कि थियोडरिकसे लेकर फ्रेडरिक बारबरोसाके समयतक इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा उत्तरीय और मध्य फ्रांसके अधिकतर निवासी गाँवोंमें या सामन्तों, एबटों तथा बिशपोंके राज्योंमें रहते थे।

मध्ययुगके इन ग्रामोंका नाम "विल या मेनर" था। ये पूर्ववर्णित रोमके "विला" के समान होते थे। राज्यका एक भाग तो राजा अपने लिए रखता था और शेष किसानोंको दे दिया जाता था और उसे वे लोग आपसमें लम्बे-लम्बे खण्डोंमें बाँट लेते थे। इनमेंसे प्रत्येक किसानके कई खण्ड गाँवके चारों ओर फैले होते थे। ये लोग प्रायः कृषकदास (Serfs) कहलाते थे। क्षेत्र स्वयं इनके न होते थे, किन्तु जबतक अपने स्वामीका कार्य किया करते थे और उसे कर देते रहते थे, वे भूमिसे निकाले नहीं जा सकते थे। उन लोगोंका सम्बन्ध भूमिसे रहता था और यदि वह भूमि एक स्वामीसे दूसरेके हाथ गयी तो वे भी

उसीकी अध्यक्षतामें हो जाते थे। इन कृषक दासोंको अपने स्वामीकी भी भूमि जोत-बोकर अन्न एकत्र करना पड़ता था। अपने स्वामीकी आज्ञाके बिना वे अपना विवाह भी नहीं कर सकते थे। उनकी स्त्रियाँ और बच्चे स्वामीके गृहका आवश्यक कार्य किया करते थे। महिलागृहोंमें इन कृषकोंकी लड़कियाँ कातने, बुनने, सीने, भोजन बनाने तथा मद्य निकालनेका काम करती थीं। कपड़े, भोजन तथा मद्य सर्व-साधारणके कार्यमें आते थे।

ग्रामोंके प्राचीन वर्णनसे हमें उस समयके कृषक दासोंकी अवस्थाका पूरा-पूरा पता चलता है। उसमें भली भाँति दिखलाया गया है कि प्रत्येक जातिको अपने स्वामीके लिए क्या-क्या करना पड़ता था। उदाहरणार्थ पिटरबरोके बिशपके पास एक ग्राम था जिसमें हफमिलर आदि सत्रह कृषक रहते थे। इन लोगोंको बड़ा दिन, ईस्टर तथा ह्विटसण्टाइडके सप्ताहोंको छोड़कर शेष प्रत्येक सप्ताहमें तीन दिन उसके लिए काम करना पड़ता था। प्रत्येक कृषकको वर्षभरमें एक बुशल गेहूँ, अट्ठारह पूल सनवा, तीन मुर्गियाँ तथा एक मुर्गा और ईस्टरमें पाँच अण्डे देने पड़ते थे। यदि वह अपने पशुओंको साढ़े सात रुपयेसे अधिक मूल्यपर बेचता था तो उसे अपने एबटको चार आना आयकर देना पड़ता था। इसी प्रकार पाँच अन्य कृषकोंने भी हफकी भूमिकी अपेक्षा आधी भूमि आधे ठेकेपर उससे आधे कार्यके लिए ली थी।

कभी-कभी किसी ग्राममें ऐसे भी लोग रहते थे जो कृषक नहीं थे। प्रायः ग्राम (मेनर) और धर्मचक्रकी सीमा समान ही होती थी। ऐसी दशामें उस ग्राममें ही पुरोहित रहता था। उसे भी कुछ एकड़ भूमि मिल जाती थी। उसकी प्रतिष्ठा साधारण लोगोंसे अधिक होती थी। इससे उतरकर पिसनहारोंकी गणना है। उनके पास ग्राममें चक्की रहती थी। उसमें सर्वसाधारणका आटा पीसा जाता था और उन्हें भी ग्रामाध्यक्षको कुछ कर देना पड़ता था। इनकी दशा इनके पड़ोसियोंसे कुछ अच्छी थी। यही दशा ग्रामके लोहारोंकी भी थी।

ग्रामकी बड़ी विशेषता यह थी कि वह शेष संसारसे स्वतन्त्र रहता था। उसमें ग्रामवासियोंकी आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ उपजती थीं और कदाचित् अनन्तकाल-तक ग्रामवासी इसी प्रकार अपनी सीमाके बाहर रहनेवालोंसे अपरिचित रह सकता था, रुपयेकी वहाँ आवश्यकता ही न पड़ती थी, क्योंकि कृषक लोग अपने स्वामीका कर भी श्रम तथा उपजके रूपमें दे देते थे। वे अपने साथियोंके आवश्यकतानुसार सहायता भी करते थे। उन्हें बेचने तथा खरीदनेके अवसर ही न पड़ते थे।

ग्रामोंमें किसीको अपनी दशा सुधारनेका अवसर ही न मिलता था। ग्रामोंके अधिक हिस्सोंमें तो जीवन पीढ़ियोंतक एक ही प्रकारसे व्यतीत हुआ करता था। जीवन केवल समान रूप ही न था, प्रत्युत बहुत कष्टप्रद भी था। भोजनके लिए मोटी

अन्न मिलता था। भोजनमें भिन्न-भिन्न नवीनताएँ नहीं होती थीं, क्योंकि कृषक लोग शाक इत्यादि उपजानेका कष्ट नहीं उठाते थे। घरमें केवल एक ही कमरा होता था जिसमें एक ही खिड़की रहती थी। अतः इसमें अधिक प्रकाशका भी प्रवेश नहीं होता था, इसमें धुआँ निकलनेके लिए चिमनी भी नहीं होती थी।

एकके दूसरेपर निर्भर रहनेके कारण आपसमें भ्रातृ-भाव तथा परस्पर सहायताका भाव अधिक था। वह बाह्य संसारसे पृथक् था। पर क्षेत्रोंके समीप होने, एक ही गिरजेमें एकत्र होने तथा एक ही स्वामीके अधीन होनेसे उन लोगोंमें प्रायः प्रेम रहता था। गाँवमें एक विचारालय था, उसमें ग्रामपतिके एक प्रतिनिधिकी अध्यक्षतामें ग्रामके सम्पूर्ण कार्योंका निर्णय होता था। ग्रामके सभी लोग इस न्यायालयमें उपस्थित रहते थे। यहाँपर आपसके झगड़े तय किये जाते थे। ग्रामकी प्रथाका उल्लंघन करनेवालोंको अर्थदंड दिया जाता था और ग्रामकी भूमिका बँटवारा होता था।

साधारणतः दास कोई अच्छे कृषक नहीं होते थे। वे क्षेत्रोंको ठीक प्रकारसे नहीं जोतते थे और इसी कारण उनकी फसलें भी थोड़ी और घटिया दर्जेकी होती थीं। जबतक भूमिकी अधिकता थी तबतक दासता भी रही। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें पश्चिमी यूरोपकी जनसंख्या शनैः-शनैः बढ़ने लगी। अब कृषकोंकी दासता धीरे-धीरे लुप्त होने लगी, क्योंकि जनसंख्या अब इतनी अधिक हो गयी कि क्षेत्रोंको बेपरवाहीसे जोतकर उत्पन्न किया हुआ अन्न लोगोंकी बढ़ी हुई जनसंख्याके लिए पर्याप्त नहीं होता था।

बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें व्यवसायकी जागृति हुई। धीरे-धीरे रुपयेका प्रयोग बढ़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामके जीवनका भी विध्वंस होने लगा। अब एक वस्तुके लिए दूसरी वस्तुके बदलनेकी प्रथा उठने लगी। शार्लमेनके समयकी सब पुरानी प्रथाएँ समयके परिवर्त्तनके साथ-साथ लोगोंको अप्रिय मालूम होने लगीं। कृषक दास लोग समीपके बाजारमें अपनी वस्तुएँ बेचकर रुपया जोड़ने लगे। अपने स्वामीको श्रमरूपसे कर देनेके बदले रुपया देना उन्हें सुविधाजनक विदित होने लगा, क्योंकि ऐसी दशामें वे लोग अपना सम्पूर्ण परिश्रम अपने क्षेत्रोंमें लगाते थे। ग्रामपतियोंने भी अपनी प्रजासे श्रम तथा सेवाके स्थानमें रुपया लेना ही अधिक अच्छा समझा। वे वेतनपर नौकर रख अपने क्षेत्रका कार्य कराते थे और व्यवसायकी वृद्धिके कारण विलासिताके नये-नये अभिलषित पदार्थ भी रुपयेसे ही खरीद लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामपतियोंका कृषकोंके ऊपरसे अधिकार हट गया और अब कृषक दास तथा स्वतन्त्र रूपसे नियत कर देनेवाले व्यक्तिमें कोई भेद नहीं ज्ञात होता था। कृषक दास नगरोंमें भागकर स्वतन्त्र

हो सकते थे। यदि एक साल एक दिन बादतक उसका पता नहीं लगता था या उसका स्वामी उसपर कोई अधिकार नहीं दिखाता था तो वह स्वतन्त्र ही हो जाता था।

बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही पश्चिमी यूरोपमें कृषक दासता धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी। तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें फ्रांस देशमें और इसके कुछ समय बाद इंग्लैण्डमें भी कृषकदासताका सम्पूर्ण लोप हो गया; यद्यपि फ्रान्समें कुछ न कुछ कृषक दासताकी प्रथा क्रांतिके समयतक, संवत् १८४६ (सन् १७८९ ई०) पर्यन्त भी रही। इस सम्बन्धमें जर्मनी कहीं पीछे था। वहाँ लूथरके समयमें कृषक लोग अपने दौर्भाग्यका घोर विरोध कर रहे थे और प्रशियामें तो उन्नीसवीं शताब्दीमें कृषक दासोंको स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी थी।

पश्चिमीय यूरोपमें धीरे धीरे नगरोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसका वृत्तान्त इतिहासके छात्रोंके लिए बड़ा मनोरंजक है। यूनान तथा रोमकी सभ्यताओंके केन्द्र नगर ही थे और आधुनिक समयमें संसारका उच्च जीवन, उन्नत व्यवसाय तथा सभ्यता नगरोंमें ही है। यदि नगरोंका लोप हो जाय तो हम लोगोंके ग्रामके जीवनमें भी परिवर्त्तन हो जायगा और हम लोग पुनः शार्लमेनके समयकी प्राथमिक दशामें आ जायँगे।

मध्ययुगमें नगरोंके दृश्य हम लोगोंको प्रायः संवत् १०५७ (सन् १००० ई०) से दीखने लगते हैं। ये नगर अधिकांशमें सामन्तोंकी ग्राम-भूमियों या मन्दिरों तथा दुर्गोंके समीप उत्पन्न हुए थे। फ्रांसमें नगरको (विला) कहते हैं और इस शब्दकी उत्पत्ति (विल) शब्दसे हुई है जिसका अर्थ ग्राम है। नगरोंके स्थापनके लिए, उसकी रक्षाके निमित्त उसके चारों ओर कोटकी आवश्यकता थी, जिससे अवसर पड़नेपर समीपके ग्रामवासी लोग उसमें बाह्य आक्रमणोंसे अपनी रक्षा कर सकें। मध्ययुगके ग्रामोंकी बनावट देखकर यही परिणाम निकलता है। यदि इनसे प्राचीन रोमके विलासी नगरोंकी तुलना की जाय तो ये बड़े घने अबाद ज्ञात होते हैं। बाजारके अतिरिक्त इनमें कोई भी खुले हुए मैदान नहीं थे। रोमके नगरोंके समान न तो इनमें अखाड़े ही थे और न स्नानागार ही बने थे। मार्ग बड़े संकीर्ण थे और उन्हींपर बड़ी-बड़ी हवेलियाँ बनी थीं जिनके ऊपरके भाग आपसमें आलिङ्गन करते थे। चौड़ी तथा मोटी भीतसे घिरे रहनेके कारण आधुनिक नगरोंके समान उनका सुगमतासे विस्तृत होना असम्भव था।

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दीमें इटलीके नगरोंके अतिरिक्त सभी नगर अत्यन्त छोटे-छोटे थे और जिन ग्रामोंके आधारपर उनकी वृद्धि हुई थी उनके समान ही उनका भी बाहरसे बहुत ही थोड़ा व्यवसाय था। वहाँके निवासियोंकी

आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ वहीं बनायी जाती थीं। केवल अनाज, सब्जी आदि ही उनके लिए पड़ोसके ग्रामोंसे आती थी। जबतक कि ये नगर सामन्तों तथा मठोंके अधीन थे तबतक इनकी वृद्धिकी भी बहुत आशा न थी। नगरके लोग यद्यपि कोटोंसे रक्षित स्थानोंमें रहते थे और खेती न करके केवल व्यवसायमें लगे रहते थे; तथापि वे लोग कृषक दासोंसे किसी प्रकार अच्छे न थे। उन्हें तबतक सिंचाईका कर देना ही पड़ता था, मानों तबतक भी वे लोग कृषक सम्प्रदायके भाग ही थे। नगरके जीवनको स्वतन्त्र करनेके लिए इन दो बातोंकी बड़ी आवश्यकता थी—एक तो नागरिकोंको उनके स्वामीसे स्वतन्त्र कर दिया जाता और दूसरे उन नगरोंके लिए उचित राज्यपद्धति बनायी जाती।

ज्यों-ज्यों व्यवस्थाकी वृद्धि होने लगी त्यों-त्यों स्वतन्त्रताकी चाह बढ़ने लगी। जैसे-जैसे पूर्व तथा दक्षिणसे नयी तथा मनोहर वस्तुएँ आने लगीं वैसे-वैसे ही नागरिकोंको वस्तुओंके बनानेकी अभिलाषा होने लगी, जिन्हें वे पार्श्ववर्त्ती हाटोंमें वेचकर दूरसे आयी हुई वस्तुओंके लिए द्रव्य एकत्र कर सकें। ज्योंही उन लोगोंने शिल्पनिर्माण करना आरम्भ किया त्योंही उन्हें ज्ञात हुआ कि हम लोग दासताके बन्धनोंसे वँधे हुए हैं। जो कर हम लोगोंसे बलात्कारेण लिया जाता है और जो बन्धन हम लोगोंके ऊपर है उससे हम लोगोंकी उन्नति नहीं हो सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि बारहवीं शताब्दीमें नागरिक लोगोंने अपने स्वामियोंके प्रतिकूल विद्रोह खड़ा किया और उनसे ऐसा (चार्टर) शासनपत्र माँगने लगे जिसमें नागरिक तथा स्वामी दोनोंके अधिकारोंका पूर्णतया विवरण किया गया हो।

स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए फ्रांसके नागरिकोंने लोक-संघ या कम्यून स्थापित किया। सामन्तोंकी दृष्टिमें यह कम्यून शब्द नवीन था। वे उसे घृणासे देखते थे। उनकी सम्मतिमें यह शब्द उस संघका दूसरा नाम है जिसे कृषक दासोंने ग्रामपतियोंके प्रतिकूल स्थापित किया था। ये सामन्त कभी-कभी इन विद्रोहियोंका बड़ी क्रूरताके साथ दमन करते थे। कुछ सामन्त यह भी सोचते थे कि यदि नागरिकोंको अन्य असंगत करोंसे मुक्त कर दिया जाय और स्वयं शासनका अधिकार भी दे दिया जाय तो इनकी दशा सुधर जायगी। इङ्गलैण्डमें नागरिकोंने धीरे-धीरे सामन्तोंसे सम्पूर्ण भूमि क्रय कर ली और इस प्रकारसे अपना स्वत्व भी पा लिया।

नगरका शासन-पत्र नागरिक व्यवसायियों तथा सामन्तोंमें एक लिखित नियमपत्र था। शासन-पत्र नगरकी उत्पत्ति तथा रचनाका प्रमाणपत्र था। इस शासन-पत्रमें सामन्तोंने व्यवसायी संस्थाको स्वीकार करनेका वचन दिया था। सामन्तोंके अधिकार कम किये गये थे, क्योंकि उन्हें नागरिकोंको अपने दर्बारोंमें बुलाकर जुर्माना भरनेका अधिकार नहीं था और जो-जो कर वे लोग नागरिकोंसे

लेना चाहते थे उनका भी उसमें उल्लेख कर दिया गया था। पहलेके शेष कर या श्रम या तो छोड़ दिये गये या उनका द्रव्यमें चुका देना स्वीकार किया गया था।

इङ्गलैण्डके राजा द्वितीय हेनरीने वेलिंगफोर्डके निवासियोंको वचन दिया था कि "हमारे इङ्गलैण्ड, नारमण्डी, अक्विटेन, तथा आन्जू राज्योंमेंसे जो व्यापारी व्यवसाययात्राके लिए जल या स्थल, जंगलों या नगरों द्वारा जहाँ कहीं जावेंगे उन्हें मार्गकर नहीं देना पड़ेगा और यदि इस विषयमें उन्हें कोई दुःख देगा तो उसे १५० रु० (१० पौ०) का अर्थदण्ड देना होगा।" उसने साउथम्पटन नगरमें यह घोषणा करायी थी कि "हमारे हम्पटनके निवासी जल या स्थलमें शान्ति, न्याय, सुख तथा आदर-योग्य उपायोंसे अपनी संस्थाके स्थापन करने और अपनी प्रथाका अनुकरण करनेमें वैसे ही स्वतन्त्र हैं जैसे मेरे पितामह राजा हेनरीके समयमें थे और इस विषयमें उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा सकेगा।"

शासनपत्रोंमें जो उस समयकी प्रथाका विवरण दिया गया था वह हमें सर्वथा प्रारम्भिक ज्ञात होता है। संवत् १२२५ (सन् ११६८ ई०)में फ्रांसके सेन्ट ओमर नामके नगरके शासन-पत्रमें ऐसा विधान है कि "जो कोई हत्या करेगा उसे नगरमें कहीं भी आश्रय न मिलेगा। यदि वह भागकर दंडसे बचना चाहेगा तो उसका मकान गिरा दिया जायगा और उसकी सम्पत्ति जब्त करके राजकोषमें मिला ली जायगी। यदि वह नगरमें पुनः आना चाहेगा तो प्रथम उसे मृतकके सम्बन्धियोंसे सन्धि कर लेनी होगी और उसे १५०) रु० अर्थदंड देना होगा, जिसमेंसे आधा तो राजाके प्रतिनिधि लोग ले लेंगे और आधा नगरसंस्थाको दे दिया जायगा और यह आय नगरकी रक्षाकी मरम्मतमें व्यय होगी, यदि कोई किसीको मारेगा तो उसे सौ साउस * तथा दूसरेके केश खींचनेवालेको चालीस साउस अर्थदण्ड देना पड़ेगा।"

कितने ही नगरोंमें स्वतन्त्रताका चिह्न एक घंटाघर था। वहाँपर रात-दिन एक रक्षक रहता था। वह संकटके समयपर इस घंटेको बजा देता था। इसमें एक सभाभवन होता था जिसमें नागरिक लोगोंके संघका अधिवेशन होता था और इसीमें कारागार भी होता था। चौदहवीं शताब्दीमें आश्चर्यजनक सभाभवन बनने लग गये थे। ये कैथड्रल तथा और गिरजोंके अतिरिक्त प्राचीन सम्प्रदायके यूरोपके व्यवसायी नगरोंके सबसे अपूर्व प्रासाद हैं जिनको अब भी यात्री आश्चर्यसे देखते हैं।

मध्ययुगके नगरोंमें लोग कारीगर तथा व्यवसायी दोनों ही होते थे। वे केवल वस्तुनिर्माण ही नहीं करते थे, किन्तु अपनी दूकानकी बनी वस्तुओंका विक्रय भी

* टि C—फ्रांसीसी सिक्का = $\frac{1}{20}$ फ्रांक।

किया करते थे। व्यवसायियोंके संघोंके अतिरिक्त जिन्होंने कि नगरको अपने अधिकारकी प्राप्ति तथा रक्षामें सहायता दी थी, ऐसी अनेकशः नयी-नयी संस्थाओंकी सृष्टि भी हुई जिन्हें क्रेफ्टगिल्ड या व्यापारसंघ कहते हैं। पेरिस नगरमें सबसे प्राचीन व्यवस्था मोमबत्ती बनानेवाले संघकी है, जिसकी स्थापना संवत् १११८ (सन् १०६१ ई०) में हुई थी। प्रत्येक नगरमें भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यवसाय किये जाते थे, परन्तु सब संघोंका एक यही प्रयोजन था कि जो मनुष्य संघमें विधिपूर्वक सम्मिलित नहीं हुआ है वह व्यवसाय करने नहीं पावे।

व्यवसाय सीखनेमें कई वर्ष लगते थे। सीखनेवाला किसी निपुण व्यवसायीके घरपर रहता था। वह प्रथम वेतन नहीं पाता था। फिर वह घूम-घूमकर व्यवसाय करता था और उस श्रमके लिए वेतन पाता था। उस समय भी वह जनताका कार्य न करके अपने शिक्षकका ही कार्य करता था। साधारण व्यवसाय तीन वर्षमें आ जाता था, पर स्वर्णकार बननेके लिए कमसे कम दस वर्षतक शागिर्द बनना पड़ता था। प्रत्येक शिक्षकके पास निश्चित ही शागिर्द रह सकते थे जिससे कि घूमकर बेचनेवाले अधिक न हो जायँ। प्रत्येक व्यवसायके चलानेके विशेष नियम बना दिये गये थे। प्रत्येक दिवस कार्य करनेका समय भी निश्चित कर दिया गया था। वणिक्-संघने साहस तो कम कर दिया और प्रत्येक व्यवसायमें कौशल समान रूपसे बनाये रखा। यदि ये संघ स्थापित न किये गये होते तो रक्षाहीन निःसहाय कारीगर प्राचीन कृषकोंके समान अपने स्वामी सामन्तोंसे न कभी स्वतन्त्र ही हुए होते और न नागरिक स्वतन्त्रता ही मिलती।

नगरोंकी उन्नति तथा उनकी वृद्धिका मुख्य कारण पश्चिमी यूरोपमें व्यवसाय-वृद्धि थी रोम-साम्राज्यके जमानेके मार्गोंका नाश हो जानेसे व्यवसाय प्रायः नष्ट हो गया था और जंगलियोंके आक्रमणोंसे चारों ओर अराजकता छा रही थी। मध्ययुगमें प्राचीन रोमके स्थल-पथोंका उद्धार करनेवाला कोई न था। जब स्वतंत्र सामन्त अथवा इधर-उधरकी छोटी-छोटी जातियाँ साम्राज्य-स्थानपमें लगीं तो मर्सिया-से ब्रिटेन-पर्यन्त सभी मार्ग उजड़ गये थे। व्यवसाय घटने लगा, क्योंकि विलासिताकी जिन वस्तुओंको रोमवाले बाहरके नगरोंसे मँगाते थे अब उनकी आवश्यकता ही न रह गयी। द्रव्यका अभाव था; अतः विलासिताका नाम भी नहीं था। वहाँके बड़े लोग भी अपने एकान्त सादे तथा बड़े प्रासादोंमें साधारण जीवन व्यतीत करते थे।

इटलीमें व्यवसाय एक दम बन्द नहीं हो गया था। धर्मयुद्ध-यात्राके पूर्व ही वेनिस, जिनोआ, अमल्फी तथा इटलीके अन्य नगरोंमें भूमध्य समुद्रसे व्यवसायकी अधिक उन्नति हुई थी। जैसा कि पहले लिख आये हैं, वहाँके वणिकोंने जेरुसलम-

कार्य नहीं प्रारम्भ हुआ था। अबसे ये लोग एक विचित्र प्रकारकी टोपी और चिह्न धारण करनेके लिए बाध्य किये गये जिससे ये लोग सहजमें ही पहचाने जाते थे और लोग इनको निरादरकी दृष्टिसे देखते थे। बाद उन्हें नगरके किसी खास प्रदेशमें जिसे ज्यूअरी कहते थे, बन्द होकर रहना पड़ता था। उन लोगोंको संघोंसे बहिष्कृत कर दिया गया था। इससे ये स्वभावतः लेन-देनका व्यवहार करने लगे जिसको कोई भी ईसाई नहीं करता था। इस व्यवसायसे भी इनकी अधिक अप्रतिष्ठा होती थी। कभी-कभी राजा लोग इन्हें कहीं अधिक दरपर सूद लेनेकी आज्ञा भी दे देते थे। राजकोशके शेष होनेपर सम्पूर्ण लाभ ले लेनेकी व्यवस्थापर फिलिप अगस्टसने उन्हें सैकड़ेपर ४६ रुपया सूद लेनेकी आज्ञा भी दे दी थी। इङ्गलैण्डमें साधारण दर प्रत्येक सप्ताह पन्द्रह रुपयेपर एक आना थी।

तेरहवीं शताब्दीमें इटलीके लम्बार्ड नगरवालोंने भी महाजनीका कार्य प्रारम्भ किया। इन लोगोंने हुण्डीका प्रयोग अधिक फैलाया। ये लोग ऋणके लिए सूद तो नहीं लेते थे, परन्तु यदि ऋण लौटानेमें विलम्ब होता था तो वह लेते थे। जो लोग सूद लेनेकी निन्दा करते थे उन्हें भी यह उचित मालूम होने लगा। महाजन लोग व्यवसायमें रुपया लगा देते थे और जबतक सूद नहीं दिया जाता था तबतकके हुए लाभका कोई भाग लेते थे। इस प्रकार सूद लेनेके प्रतिकूल विचारोंको घटाया गया और व्यवसायके लिए बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ—विशेषतः ईटलीमें—स्थापित हुईं।

मध्ययुगके वणिकोंके मार्गमें दूसरी बाधा यह थी कि जिन राजाओंके राज्यसे होकर उन्हें जाना पड़ता था वहाँ उन्हें असंख्य कर देने होते थे। उन्हें केवल पथ, पुल तथा पहाड़ी नदियोंके ही लिए कर नहीं देना पड़ता था, किन्तु उन बेरन लोगोंको भी कर देना पड़ता था जिनका प्रासाद भाग्यवश किसी नदीके ऊपर स्थित होता था, क्योंकि वे लोग मार्ग बन्द कर देते थे। यद्यपि उनके टैक्सकी मात्रा अधिक न थी, परन्तु इनके वसूल किये जानेके ढंग तथा बार-बारके विलम्बसे वणिकोंको अत्यन्त कष्ट होता था और वाणिज्यमें बड़ी क्षति पहुँचती थी। जैसे कोई मछली लिये नगरको जा रहा है और मार्गमें मठ पड़ गया, तो मठाधिपतिने आज्ञा दी कि मछलीवाला ठहर जाय और महन्तोंको तीन आनेके मूल्यकी मछलियाँ मठमें दे, चाहे शेष मछलियोंकी कुछ भी भली-बुरी दशा क्यों न हो जाय। इसी प्रकार मद्यसे लदी एक नाव सीनसे पेरिस जा रही है। धर्मसंस्थाके अधिपतिके भृत्यको उनसे तीन बोतल कर लेना है। अब वह भी समस्त पात्रोंमेंसे स्वाद लेकर जिसमें सबसे अच्छी होगी उसीमेंसे लेगा। बाजारमें तो अनेक प्रकारके कर देने पड़ते थे, जैसे उनको बनियेकी तराजू तथा नापनेका गज़ रखनेका कर भी चुकाना होता था। इसके अतिरिक्त उस समय यूरोपमें अनेक प्रकारके सिक्के प्रचलित थे, उनसे भी देशको बहुत क्षति पहुँचती थी।

सामुद्रिक व्यवसायमें भी बड़े-बड़े संकट थे, वहाँपर केवल झंझावात, तरंग, चट्टान तथा उथले स्थानोंसे ही भय न था। उत्तरीय समुद्रमें बहुत लुटेरे थे। वे लोग तो कभी-कभी उच्च श्रेणीके पुरुषोंके नेतृत्वमें बड़ी उत्तम रीतिसे संगठित होते थे और इस कार्यको कोई अपमानजनक नहीं समझते थे। इसके अतिरिक्त "स्ट्रैण्ड लाज़" या "समुद्रतट-विधान" बने थे जिनके अनुसार टूटे हुए या भटके हुए जहाज भी उस मनुष्यकी सम्पत्ति हो जाते थे जिसके किनारेपर वे टूट या भटक जाते थे। उस समय मार्ग-प्रदर्शक ज्योतिःस्तम्भ बहुत कम थे और तटमार्ग आपत्तिजनक थे और साथ-साथ एक आपत्ति यह भी थी कि लुटेरे लोग झूठे संकेतोंसे जहाजोंको किनारे बुलाकर उनको लूट लेते थे।

इन सब विपत्तियोंको दूर करनेके लिए नगरनिवासी लोग परस्पर मिलकर रक्षाके निमित्त संघ स्थापित करने लगे। इनमेंसे सबसे प्रसिद्ध जर्मनीके नगरका हन्स संघ था। ल्यूबेक नगर इसका सर्वदा नेता रहा था, परन्तु उन सत्तर नगरोंके नामोंमें जो किसी न किसी समय संघमें सम्मिलित किये गये थे, कोलोन, ब्रन्सविक, डैन्टजिक तथा और प्रसिद्ध नगरोंके नाम ही विशेष हैं। इस संघने लण्डन नगरका वह भाग खरीदा और अपने प्रबन्धमें रखा जो अब लण्डन पुलके समीप "स्टील-यार्ड"के नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने विस्बी बर्गन तथा रूसके नवगण्ड नगरका प्रदेश भी खरीदा। संधियोंके बलपर अथवा अपने प्रभावसे ही उन्होंने बाल्टिक तथा उत्तरीय समुद्रका सम्पूर्ण व्यवसाय अपने अधिकारमें लेना चाहा।

संघने डाकुओंपर आक्रमण करना प्रारम्भ किया और वाणिज्यके संकटोंको बहुत कुछ घटा दिया। अब इनके पोत अलग-अलग बेड़ोंके रूपमें रवाना होकर किसी सेनाकी रक्षामें रहकर यात्रा करते थे। किसी समय डेन्मार्कके राजाने उनके कार्यमें कुछ हस्तक्षेप किया। इसपर इन लोगोंने उससे युद्ध कर विजय पायी। दूसरी बार इंगलैण्डसे भी लड़ाई कर उसे दमन किया। अमरीकाकी खोजसे पूर्व दो सौ वर्षतक इस संघने पश्चिमीय यूरोपके व्यवसायकी वृद्धिमें प्रधान कार्य किया, परन्तु पूर्वीय तथा पश्चिमीय इंन्डीजको पहुँचनेके नये मार्गके आविष्कारके पूर्वसे ही यह संघ क्षीण होने लगा था।

यहाँपर यह लिख देना उचित जान पड़ता है कि तेरहवीं, चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दियोंमें देश-देशसे परस्पर व्यवसाय नहीं होता था। पर एक नगर दूसरे नगरसे व्यवसाय करता था, जैसे वेनिस, ल्यूबेक, घेन्ट तथा ब्रुजेज और कोलोन। कोई वणिक् स्वतन्त्र व्यवसाय नहीं कर सकता था। वह किसी वणिक्-संघका सदस्य रहता था और अपने नगर तथा सम्मेलनसे स्थिर रक्षा प्राप्त करता था। यदि किसी नगरका कोई वणिक् ऋण नहीं दे सका तो उसी नगरका दूसरा

वणिक् भी पकड़ा जा सकता था। जिस समयके इतिहासका वर्णन हम कर रहे हैं उस समयमें लण्डन नगरका वणिक् आधुनिक कोलोन तथा आन्टवर्प नगरके निवासियोंके समान ब्रिस्टल नगरमें भी विदेशी ही समझा जाता था। धीरे-धीरे समस्त नगर एकत्र होकर देश बन गये।

धनकी बढ़तीके कारण संघसमाजमें इनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। समृद्ध होनेसे ये लोग शिक्षामें पादरियों तथा विलासभवनोंसे नागरिकोंकी समानता करने लगे। उनका ध्यान शिक्षाकी ओर आकर्षित होने लगा। चौदहवीं शताब्दीमें कई किताबें केवल उन्हींकी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार बनायी गयी थीं। सभामें नगरके जो जर्मन प्रतिनिधिरूपसे निमन्त्रित किये जाते थे, ये लोग भी राज्य-प्रबन्धके लिए द्रव्य देते थे, इससे इनका मत भी राज्य-प्रबन्धमें लेना पड़ता था। प्राचीन पादरियों तथा सामन्तोंके संघके साथ-साथ नागरिकसंघकी वृद्धि तेरहवीं शताब्दीमें घोर आकस्मिक परिवर्तनका उदाहरण है।

अध्याय १८

मध्य-युगमें शिक्षा और सभ्यताकी उन्नति

पश्चिमी यूरोपके इतिहासमें मध्ययुग अत्यन्त रुचिकर है। अनेक नीतिज्ञ राजाओं और सम्राटोंकी उत्पत्ति, उनकी विजय और पराजय, पोप और बिशपोंकी नीति, यूरोपीय सामन्तोंके कलह तथा यूरोपकी उससे रक्षाके कारण ही इस युगका इतिहास बहुत मनोरंजक हो गया है। ये सब बातें तो आवश्यक हैं ही, इनके अतिरिक्त उस समयकी शिक्षा, कलाकौशल, ग्रंथ, साहित्य, विद्यापीठ तथा उस कालके गिरजोंका आलोचन करना भी बड़ा आवश्यक है, क्योंकि इनकी आलोचनाके बिना उस समयके इतिहासका अनुशीलन अपूर्ण रह जाता है। वर्त्तमान तथा मध्ययुगमें प्रथम भेद इस विषयमें है कि उस समय लिखने और बोलने दोनोंमें लैटिन भाषाका ही प्रयोग होता था। तेरहवीं शताब्दी तथा उसके बहुत समय बादतक समस्त विद्वत्ताकी पुस्तकें लैटिनमें लिखी जाती थीं। विद्यापीठमें अध्यापकगण लैटिनमें ही शिक्षा देते थे। मित्र लोग इसी भाषामें पत्र-व्यवहार किया करते थे। राजकीय संधियाँ एवं न्यायालयोंके व्यवस्थापत्र सब लैटिनमें ही लिखे जाते थे। प्रत्येक शिक्षित मनुष्यके लिए अपनी मातृ भाषा तथा लैटिन भाषाके प्रयोगकी योग्यता सम्पादन करना बड़ा उपयोगी था, क्योंकि उस समयमें भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंमें एक देशको दूसरे देशसे वार्तालाप करनेमें भी बहुत कठिनाइयाँ होती थीं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस समय पश्चिमी यूरोपमें पोप अपने अधीन पादरियोंसे किस प्रकार अपना सम्बन्ध बनाये रखता था और विद्यार्थी, महन्त, प्रचारक तथा वणिक्-जन किस सुविधाके साथ देश-देशान्तरका पर्यटन करते थे। पश्चिमी यूरोपके लोगोंमें भी इस भाषाके प्रतिकूल बड़ा भारी आन्दोलन उठा। धीरे-धीरे प्रचलित भाषाओंने पुरानी भाषाको हटाकर दूर कर दिया। यहाँतक कि अब कोई भी विद्वान् लैटिन् भाषामें ग्रन्थ लिखनेका साहस नहीं करता। इस भाषा-क्रान्तिका वृत्तान्त भी बड़ा मनोरंजक तथा रुचिकर है।

आधुनिक भाषाओंके अवलोकनसे ही हमें पूर्णतया ज्ञात हो जाता है कि मध्ययुगमें समस्त पश्चिमीय यूरोपमें लैटिन तथा देशीय भाषा दोनोंका प्रयोग किस प्रकार होता होगा। यूरोपकी सब भाषाएँ दो वर्गोंमें विभाजित हैं। १—जर्मनी वर्ग (जर्मनिक) और २—रोमन-वर्ग (रोमन्स)।

वे जर्मन लोग जो रोमन साम्राज्यके बाहर रहते थे या वे जो आक्रमणोंके अवसरोंपर गाल-प्रदेशमें फ्रैंक लोगोंके समान साम्राज्यकी सीमासे भी बहुत दूरपर न बसे थे जिससे कि वे अपने विजितोंकी भाषाका प्रयोग करते, उन लोगोंने स्वभावतः अपने पुरखाओंकी प्राचीन जर्मन भाषाका प्रयोग ही प्रचलित रखा। आधुनिक जर्मनी, अंग्रेजी, डच, स्वीडिश तथा नार्वेजीयन, डेनिस तथा आइसलैन्डिक भाषाओंकी उत्पत्ति प्राचीन असभ्य जर्मनीकी भाषाओंसे ही हुई हैं।

'रोमन्स' अथवा 'रोमन-भाषा-वर्ग'की उत्पत्ति रोम-साम्राज्यके प्रान्तोंसे हुई और आधुनिक फ्रांस, इटली, स्पेन तथा पुर्तगालकी भाषाएँ इसी वर्गकी अंग हैं। प्राचीन शब्दोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि इस 'रोमन-भाषा-वर्ग'की उत्पत्ति उस लैटिन भाषासे थी जिसका सिपाही और वणिक्, व्यापारी तथा अन्य जन साधारणतः प्रयोग करते थे। इस भाषा तथा लिखित लैटिन भाषामें बड़ा ही अन्तर था। यह अति मधुर थी और इसका प्रयोग सिसरो और सीजर आदि बड़े-बड़े विद्वान् लेखक और वक्ता लोग करते थे। इसका व्याकरण अत्यन्त सरल था, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें यह भिन्न-भिन्न थी, क्योंकि गालवासी इटली-वालोंकी तरह उच्चारण नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त जिस भाषाका प्रयोग लेखमें होता था उसका प्रयोग बोल-चालमें नहीं होता था। जैसे भाषामें लोग घोड़ेको "केबालस" कहते थे, परन्तु लेखमें लिखनेवाले उसे "इकुअस" लिखते थे। फ्रांस, इटली और स्पेनके अश्ववाचक शब्द (कबेली, कवेलो, शेवाल) "केबालस" शब्दसे ही उत्पन्न हैं।

समयके साथ-साथ बोल-चाल तथा लेखकी भाषाओंमें बड़ा अन्तर होता गया। लैटिन भाषा कठिन है, क्योंकि इसके नाना प्रकारके रूप तथा व्याकरणके नियम जटिल हैं, अतः इस भाषामें व्युत्पत्ति प्राप्त करनेके लिए बड़े परिश्रमकी आवश्यकता है। रोमके निवासी तथा आगन्तुक असभ्य लोग कारक प्रक्रियाके शुद्ध प्रयोगपर विशेष ध्यान नहीं देते थे, क्योंकि वे अपने भावोंको प्रकट करनेके लिए सरलसे सरल विधि चुन लेते थे। जर्मनीके आक्रमणके पश्चात् कई शताब्दियोंतक भी बोलचालकी भाषामें कुछ भी नहीं लिखा गया था। जबतक कि अनपढ़ लोग लिखी लैटिन भाषाकी किताबोंको सुनकर समझ सकते थे, तबतक तो साधारण बोलचालकी भाषामें कुछ लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं थी, परन्तु शार्लमेनके राजत्व-कालमें भाषित तथा लिखित भाषामें अधिक अन्तर पड़ गया और उसने आज्ञा दी थी कि आजसे उपदेश बोल-चालकी भाषामें दिया जाय, क्योंकि साधारण लोग लिखित लैटिन भाषाको नहीं समझ सकते हैं। फ्रांसमें जो भाषा उत्पन्न हो रही थी उसका प्रथम उदाहरण हमें

जर्मनीकी भाषाओंमें साम्राज्यके विभ्रंश होनेके पूर्व कमसे कम एक भाषा लेखमें आ चुकी थी। एड्रियानोपोलके युद्धके पूर्व ही जब गाथ देशके निवासी डेन्यूब नदीके उत्तरीय तटपर रहते थे, एक पश्चिमीय विशप उल्फिलास उनके धर्म-परिवर्तनका प्रयत्न कर रहा था। अपना कार्यसम्पादन करनेके लिए उसने बाइबिलके अधिकांश भागका गाथिक भाषामें उल्था किया था। इस अनुवादमें उच्चारण स्पष्ट करनेके लिए उसने ग्रीक अक्षरोंका प्रयोग किया था। गाथिक भाषाके अतिरिक्त शार्लमेनके समयके पूर्व किसी जर्मन भाषामें भी लिखे जानेका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। जर्मनीके पास मौखिक साहित्य था और वही कई शताब्दीतक परम्परासे चलता रहा और पीछे लिखा गया। शार्लमेनने अनेक कविताओंका संग्रह कराया था। इनमें क्रांतिके समयके जर्मन वीरोंकी वीरताओंका वर्णन था। पवित्रात्मा लूईको जर्मनोंकी देव-पूजा देखकर बड़ा खेद हुआ। उसने जर्मनीकी प्राचीन तथा अमूल्य प्रतिमाओंको नष्ट करवा दिया। जर्मनीका प्राचीन इतिहास—जिसे "निबेलंगसका गीत" कहते थे—अधिक कालतक मुखाग्र ही सुना जाता था। अन्तको ईसाकी बारहवीं शताब्दीके अन्तमें यह भी लेखबद्ध हो गया।

प्राचीनकालकी इंग्लिश भाषाको "एंग्लो सैक्सन" भाषा कहते हैं। आधुनिक अंग्रेजी भाषामें तथा इसमें इतना अंतर है कि अंग्रेजोंको भी यह विदेशी भाषाके समान जान पड़ती है। शार्लमेनके एक शताब्दी पूर्व बीडीके समयमें सीडमन नामी एक अंग्रेजी कवि था। बेओं वुल्फ नामी एंग्लो सैक्सनके इतिहासका हस्तलेख सुरक्षित रखा है जिसे देखनेसे प्रतीत होता है कि यह कदाचित् आठवीं शताब्दीमें लिखा गया है। पहिले कहा जा चुका है कि राजा अलफ्रेडको मातृभाषासे बड़ा प्रेम था। नार्मन विजयके बाद भी प्राचीन भाषा प्रचलित थी। एंग्लो सैक्सन इतिहासका अन्त संवत् १२११ (सन् ११५४ ई०) में होता है। यह एंग्लो सैक्सन भाषामें लिखा गया था। भाषाके क्रमिक परिवर्त्तन भिन्न-भिन्न कालोंके ग्रन्थोंके पढ़नेसे स्पष्ट प्रतीत हो जाते हैं और इसी प्रकार शनैः-शनैः, कालके साथ-साथ भाषामें भी परिवर्त्तन होता गया और वर्त्तमान प्रचलित भाषाका रूप बन गया। संवत् १३११ (सन् १२५६ ई० में तृतीय हेनरीके राजत्वकालमें अंग्रेजी भाषामें प्रथम लेख्यपत्र लिखा गया था। बिना विशेष अध्ययन किये यह लेख्यपत्र समझमें आता ही नहीं है। परन्तु इसके पुत्रके समयमें एक कविता लिखी गयी थी जो पर्याप्त रूपसे समझमें आ जाती है।

वह समय शीघ्र आनेवाला था, जब अंग्रेजी भाषाकी प्रशंसा इंग्लिश चैनलके पार भी होती और वहाँकी भाषाओंपर इसका अधिक प्रभाव भी पड़ता। मध्ययुगमें पश्चिमी यूरोपकी सबसे प्रसिद्ध भाषा फ्रेंच थी। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें

फ्रांसकी बोलचालेकी भाषामें अनेक साहित्यकी किताबें निकलीं। इटली, स्पेन, जर्मनी, तथा आंग्ल देशमें लिखी किताबोंपर इनका अधिक प्रभाव पड़ा।

रोम-साम्राज्यकी बोल-चालकी लैटिन भाषासे फ्रांसमें शनैः-शनैः दो भाषाओंकी उत्पत्ति हुई। यदि चित्रपर ला रोशेलसे लेकर अटलान्टिकके पूर्व आल्पसतक तथा लियानके नीचे रोमके पारतक एक लकीर खींच दी जाय तो दोनों भाषाओंकी सीमाका पूरा पता चल जाय। उत्तरमें फ्रेंच तथा दक्षिणमें पिरनीज और आल्पसके मध्य "प्रोवेंकल" भाषा बोली जाती थी।

संवत् १९५७ (सन १९०० ई०) के पूर्व प्राचीन फ्रेंच भाषाके बहुत कम लेख सुरक्षित हैं। पश्चिमीय फ्रेंचवाले बहुत पहलेसे ही अपने मुख्य वीर क्लाविस, डेगोवर्ट और चार्ल्स मार्टेल आदिके वीर-कर्मोंका यशोगान किया करते थे। पश्चात् शार्लमेनने इन विख्यात् शासकोंको दबा दिया और मध्य-युगकी कविता तथा आख्यायिकाओंका वह भी एक अप्रतिद्वन्द्वी नायक हो गया। लोगोंका मत है कि उसने १२५ वर्षतक राज्य किया था और उसके तथा उसके वीरोंके नामपर संसारमें बलके अद्भुत तथा विस्मयावह कार्य प्रसिद्ध थे। ऐसा समझा जाता था कि उसने जेरुसलममें क्रूसेडकी भी यात्राकी थी। ऐसे वृत्तान्तोंको, जिनमें इतिहासकी अपेक्षा और घटनाकी कथा अधिक थी, संग्रह करके बड़ा इतिहास बनाया गया। यही फ्रेंच लोगोंका प्रथम लिखित साहित्य था। इन कविताओं तथा साहसिक कार्योंकी कथाओंसे फ्रेंच लोगोंमें बड़ा साहस और उत्साह उत्पन्न हुआ। फ्रांसके लोग समझने लगे कि हमारा देश स्वयं परमेश्वरसे सुरक्षित है।

यह जानकर विशेष आश्चर्य नहीं होता कि बादको इसमेंसे सबसे अच्छी कविताओंने फ्रांसके जातीय इतिहासका रूप धारण किया। "रोलैण्डका गीत" प्रथम धर्मयुद्धकी यात्राके पूर्व लिखा गया था। इस कवितामें शार्लमेनके स्पेनसे भाग जानेका वर्णन है, जिसमें कि उसके सेनापति रोलैण्डने पिरनीजके संकीर्ण मार्गोंमेंसे गुजरते हुए एक साहसिक-प्रतियुद्धमें अपनी जान दे दी।

बारहवीं शताब्दीके मध्य भागमें राजा आर्थर और उसके "राउण्डटेबुल"के वीरोंके आश्चर्य-कार्य प्रारम्भ होते हैं। शताब्दियों पर्यन्त पश्चिमीय यूरोपमें इनकी बड़ी प्रशंसा थी और अब भी लोग इन्हें एकदम भूल नहीं गये हैं। आर्थरकी ऐतिहासिक स्थितिका पता नहीं चलता, परन्तु विदित होता है कि वह सैक्सनी लोगोंके इंग्लैण्डपर अधिकार करनेके पश्चात् ही ब्रिटेनका राजा हुआ। दूसरी लम्बी कवितामें सिकन्दर, सीजर तथा अन्य प्राचीन वीरोंका वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक घटनाओंपर ध्यान देकर मध्ययुगके लोग इंग्लैण्डकी विजय करनेवाले वीरोंका समय मध्ययुग ही बतलाते हैं। इससे विदित होता है कि मध्ययुगवालोंको

प्राचीन तथा आधुनिकके भेदका ज्ञान ही नहीं था। ये सब कथाएँ मनोरंजक तथा विस्मयजनक वीरोचित कार्योंसे भरी पड़ी हैं। इनसे सच्चे वीरोंकी राजभक्ति तथा वीरताका परिचय मिलता है और यह भी विदित होता है कि उनको मनुष्य-जीवनसे घृणा तथा निःस्पृहता थी।

"रोलैण्ड"के समान बहुत-सी ऐतिहासिक कविताओं तथा आख्यायिकाओंके अतिरिक्त भी अनेक छोटी-छोटी कविताएँ थीं जिनमें अधिकांशमें जीवनकी प्रत्येक दिनचर्याका, विशेषकर विनोदोंका वर्णन था। इसके अतिरिक्त बहुत-सी कहानियाँ थीं जिनमें सबसे प्रसिद्ध रेनार्ड और लोमड़ीकी कहानी थी। इन कहानियोंमें उस समयकी प्रथाओंपर, विशेषकर पुरोहितोंकी चरित्रहीनतापर बहुत आक्षेप किये गये थे।

दक्षिणी फ्रांसके इतिहासमें हमें भाट लोगोंके सुललित कवित्त भी मिलते हैं जो प्रोवेंकल भाषाके कीर्तिस्थापक हैं। इससे विदित होता है कि उस समयके सामन्त बड़े प्रसन्नचित्त तथा सभ्य थे। उस समयके शासक केवल कवियोंकी रक्षा तथा उनको उत्साहित ही नहीं करते थे, परन्तु वे स्वयं भी कवि होना चाहते थे और भाटोंकी पदवी लेना चाहते थे। यह गीत बाँसुरीके साथ गाये जाते थे। जो लोग कविता करना नहीं जानते थे और केवल गाते ही थे वे जोंगलियर (गायक) के नामसे प्रसिद्ध थे। ये भाट तथा जोंगलियर केवल फ्रांसमें ही नहीं, परन्तु दक्षिणी फ्रांसकी वेश-भूषा धारण किये हुए भाषाके कवित्त गाते हुए उत्तरी जर्मनी तथा दक्षिणी इटलीकी राजसभाओंमें भी भ्रमण किया करते थे। संवत् ११५७ (सन् ११०० ई०) के पूर्वमें प्रोवेंकल भाषाके हमको बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, परन्तु उस समयके बाद दो शताब्दी-पर्यन्त अगणित कविताएँ लिखी गयीं और कितने ही भाटोंका यश सब देशोंमें फैल चुका था। टौलेस तथा अन्य नगरोंके अध्यक्ष अल्बिगन लोगोंके साथ सरल व्यवहार करते थे। इस कारण इनके आस-पास बहुत-से नास्तिक लोग भी एकत्र हो गये थे। अल्बिगेन्सियनकी भयानक धर्मयुद्ध-यात्रासे इनपर घोर आपत्ति तथा मृत्युकी व्याधि उपस्थित हुई, परन्तु साहित्य-समालोचकोंका कथन है कि इस दुर्घटनाके पूर्वसे ही प्रान्तिक कविताओंकी अवनति हो रही थी।

इतिहासके पाठकोंका दक्षिणकी कविता तथा उत्तरीय फ्रांसके इतिहाससे विशेष मनोरंजन इस कारण भी होता है कि इनमें सामन्तोंके समयके जीवन तथा आकांक्षाओंका मार्मिक वर्णन मिलता है। इन सबको हम एक शब्दमें 'वीरता' कह सकते हैं। यहाँपर इसका संक्षेपतः वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि यदि यह साहित्य-रूपसे उपयोगी न होता तो इसे जाननेकी हमें विशेष आवश्यकता भी न होती।

मध्ययुगकी समस्त आख्यायिकाओंमें वीर नायक ही मुख्य भाग लेते हैं। अधिकतर भाट लोग भी इन्हीं वीरोंमेंसे थे, इससे इनके छन्दोंमें भी इनका ही विशेष वृत्तान्त पाया जाता है।

"वीरों" (नाइट) की कोई संस्था किसी विशेष समयमें स्थापित नहीं हुई थी। मनसबदारीसे इसका घना सम्बन्ध था और उसीके समान कोई इसका प्रवर्तक नहीं था, परन्तु उस समयकी आवश्यकताएँ और लौकिक अभिलाषाएँ पूरी करनेके लिए पश्चिमी यूरोपमें इसका अचानक प्रादुर्भाव हुआ। टेसिटससे विदित होता है कि उसके समयमें भी जब किसी नवयुवक वीरको सैनिकके शस्त्रोंसे सुशोभित किया जाता था तो जर्मनीवाले उस समयको अत्यन्त महत्त्वका समझते थे। यह इस बातका चिह्न था कि नवयुवक अब पूर्ण युवा हो गया है और यही उसका प्रथम सत्कार था। कदाचित् वीर (जवान, Knight) शब्दमें भी इसी भावकी मुख्यता है। जब कोई उच्च वंशका युवक घोड़ेकी सवारी करने, तलवार चलाने, मृगया करने तथा अपने बाजको सम्हालनेमें निपुण हो जाता था तब उसे "नाइट" पदसे विभूषित किया जाता था। यह पद उसे कोई वृद्ध नाइट ही प्रदान करता था और इस संस्थामें धर्म-संस्था भी भाग लेती थी।

नाइट (वीर क्षत्रिय) ईसाई सैनिक होता था। वीर क्षत्रिय (नाइट) तथा इसके सहयोगी लोग मिलकर अपनी रक्षा तथा उन्नतिके हेतु एक योग्य व्यवस्थामें संघटित प्रतीत होते थे। इस संस्थाके नियम अपने वर्गके लिए उच्च तथा गौरवप्रद थे। यह कोई ऐसी संस्था न थी जिसमें सदस्य अपने प्रधानके अधीन कुछ लिखित नियमोंमें बद्ध हों। यह एक आदर्श कल्पित संस्था थी। इस संस्थामें रहनेके लिए राजा-महाराजा भी सदा उत्सुक रहते थे। जैसे जन्मसे कोई ड्यूक वा काउंट हो सकता था उसी प्रकार जन्मसे कोई नाइट नहीं हो सकता था। ऊपर कथित विशेष दीक्षासे ही लोग नाइट बन सकते थे। कोई सरदार होकर भी "नाइट"की संस्थाका सदस्य नहीं हो सकता था, किन्तु एक साधारण मनुष्य शूर-वीरताका परिचय देकर नाइट संस्थाका सदस्य हो सकता था।

'नाइट'को ईसाई होना आवश्यक था। उसको सर्वदा धर्म-संस्थाकी रक्षा करनी पड़ती थी। उसे सब निर्बलताएँ और भय त्यागकर सदा दुर्बलोंकी सहायता तथा दीनोंकी रक्षा करनी पड़ती थी। उसको नास्तिकोंसे लगातार निर्दय होकर युद्ध करना पड़ता था। रणसे भागना उसके धर्मके विरुद्ध था, उसे मनसबदारीका सम्पूर्ण कार्य-संपादन करना पड़ता था। अपने स्वामीका सर्वदा सच्चा विश्वासपात्र रहना पड़ता था। झूठ बोलना और अपनी प्रतिज्ञा भंग करना उसके लिए पाप था। उसको उदार और दुखिया दरिद्रोंका सहायक होना पड़ता था। अपनी पत्नीके प्रति सच्चा तथा उसके

मानकी रक्षाके लिए सर्वस्व त्यागकर भी तत्पर रहना पड़ता था। उसे अन्याय और क्रूरताके प्रतिकूल सर्वदा न्यायका रक्षक बनना पड़ता था। संक्षेपतः क्षत्रियता या नाइट बनना ईसाई-धर्मसे विहित सैनिकका पेशा था। *

राजा आर्थर तथा उसके सहायकों ('राउंड टेबुल' के) बहादुरोंकी कथामें वास्तविक नाइटका उत्तम नमूना दिखाया गया है। लैन्सलाटके देहान्त होनेपर एक शोकातुर वीरने उसे सम्बोधित कर यों कहा था—"तुम खड्ग-चर्मधरोंमें सबसे अधिक विनीत, स्नेहियोंके प्रति सच्चे मित्र और उत्तम अश्वारोही, कामियोंमें भी स्त्रियोंके प्रति सचमुच कामदेव, असिधारियोंमें भी दयार्द्र-हृदय, सब वीर (नाइट) यशस्वियोंमें सबसे श्रेष्ठ, सबसे अधिक नम्र, सभ्यतम, अनुरक्त, कान्त और अस्त्रधारी शत्रुओंके प्रति सबसे अधिक कठोर और असह्य विक्रम हो।"

जर्मनीने भी "वीरता"के साहित्यकी वृद्धि की थी। तेरहवीं शताब्दीके जर्मन कवियोंका नाम मिनसिंगर (शृंगारगायक) है। भाटोंके समान वे लोग भी प्रेमानुरागवर्धक गीत गाया करते थे। जर्मन गायकोंमें सबसे प्रसिद्ध 'वाल्टर वानडेर वोगेल वाइड' था। उसके गीतोंमें मातृभूमि जर्मनीकी अनुपम शोभाका वर्णन तथा वीर-रसपूर्ण देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी है। वोल्फ्रमवान इशेनवाकने अपनी पर्सिफूलकी आख्यायिकामें एक नाइटके संकटपूर्ण साहसिक कार्योंका वर्णन किया है। यह वीर उस "पवित्र कलश" (होली ग्रेल) की खोजमें निकला था, जिसमें ईसामसीहका रक्त भरा था। लोगोंको इस बातका विश्वास था कि जो लोग मन, वाणी तथा कर्मसे शुद्ध हैं वे ही उसका दर्शन कर सकते हैं। पर्सिफूल पीड़ित दुखिया मनुष्यसे सहानुभूति नहीं करता था। इसके लिए उसने बहुत दिनतक पश्चात्ताप किया। अन्तको उसे ज्ञात हुआ कि केवल दया, नम्रता तथा ईश्वर-भक्तिसे 'पवित्र कलश' पानेकी आशा की जा सकती है।

जिस शूरताका वर्णन रोलन्डके गीतों तथा उत्तरीय फ्रांसकी अन्य गम्भीर कविताओंमें किया गया है वह बहुत ही भयानक और उग्र है। इसमें विशेषकर मूर्त्ति-उपासकोंके प्रतिकूल धर्म-संस्थाकी सेवाओं और मनसबदारोंके प्रति कृतज्ञता-प्रकाशोंको प्रधान स्थान दिया है। दूसरी ओर आर्थरकी कथाओं तथा भाटोंके छन्दोंमें एक वीर कुलीन नायक और उसकी प्रियतमा नायिकाके प्रति उसके प्रेमानुरागोंका वर्णन किया गया है। इसके बादके शतकोंके साहित्यमें ऐसी वीरताके अर्थमें नाइट शब्दका प्रयोग होता था। अब किसीको विधर्मियोंसे लड़नेका ध्यान न रहा, क्योंकि

* भारतवर्षके क्षत्रियोंके समान ही ये नाइट थे। इनके सब वही धर्म थे जो मनु आदिकने क्षत्रियोंके लिए नियत किये हैं। (सं०)

धर्म-युद्ध समाप्त हो गये थे और नाइट लोग अपने देशके समीप साहसिक कार्य खोजनेमें लग गये थे।

उस समय छापाखाना न होनेसे सब ग्रन्थ हाथसे ही लिखे जाते थे, इसलिए आधुनिक समयके समान उस समय अधिक ग्रन्थ न थे। सब लोग काव्य-साहित्यका अध्ययन नहीं कर सकते थे, परन्तु कविता ही जिनका व्यवसाय हो गया था, वे लोग छन्द पढ़ा करते थे और सब लोग सुना करते थे। घूमता-घूमता जोंगलियर (मिरासी) जहाँ कहीं भी पहुँच जाता था, उसकी बड़ी प्रतिष्ठा होती थी। उसकी घटिया और बढ़िया सभी प्रकारकी कविताएँ सुननेके लिए बहुत लोग बड़े चावसे एकत्र हो जाते थे। जो लोग लैटिन नहीं जानते थे वे गुजरे हुए इतिहासको बहुत कम जान पाते थे, क्योंकि यूनान तथा रोमके विद्वान् होमर, प्लेटो, सिसरो तथा लिवी आदिके साहित्य-ग्रन्थोंके अनुवाद उस समयतक भी नहीं हुए थे। भूतकालका जो कुछ वृत्तान्त उनको ज्ञात था वह केवल पूर्वोक्त विचित्र आख्यायिकाओं द्वारा ही था। इनमें भी सिकन्दर, एनियस तथा सीजरके आडम्बरपूर्ण साहसिक कार्योंका अधिक वर्णन होता था।

परन्तु स्वयं इनके इतिहासका ठिकाना न था, क्योंकि फ्रांसके प्राचीन समयका तथा समस्त यूरोपका इतिहास बड़ा गड़बड़ था। उस समयके इतिहास-लेखकोंने फ्रैंकके राजा क्लोविससे लेकर पिपिनतकके साहसिक कार्योंको शार्लमनके नामपर मढ़ दिया है। सच्चा इतिहास फ्रांसीसी भाषामें सबसे प्रथम विल्टर्डुइनने संवत् १२६१ (सन् १२०४) में लिखा जिसमें धर्मयुद्धके यात्रियोंका उसने अपनी आँखों देखा इतिहास लिपिबद्ध किया था।

वैज्ञानिक साहित्यका एकदम अभाव था। हाँ, उस कालमें भी विश्वकोश अवश्य था जिसमें साधारणतः समस्त वस्तुओंका कवितामें वर्णन किया गया था, जिसे पढ़कर वस्तुओंके विषयमें बहुत-सा अशुद्ध ज्ञान हो जाता था। लोगोंको एकशृंग महिषासुर, शूलावृत अजगर और गरुड़ (फिनिक्स) के समान आश्चर्यजनक पशुओंमें तथा पशुओंकी आश्चर्यजनक आदतोंमें विश्वास था। केवल एक उदाहरणसे ही विदित हो जायगा कि तेरहवीं शताब्दीमें जन्तु-शास्त्र क्या था?

"गोहके समान एक जन्तु है, यदि वह आगमें गिर जाय तो वह बुझ जाय। वह जन्तु इतना शीतल होता है कि आग उसे जला ही नहीं सकती और जहाँ वह रहता है वहाँ किसी प्रकारका काम नहीं हो सकता। यह जन्तु उस पवित्रात्माका प्रतिनिधि है जो परमेश्वरमें विश्वास करता है और ऐसी आत्माको न तो अग्नि पीड़ा दे सकती है, न उसको नरक-यातना भोगनी पड़ती है। इसका दूसरा नाम "सल-

मन्दर" है। यह सेबके वृक्षपर चढ़ जाय तो सेब विषैला हो जाता है, यह कुएँमें गिर जाय तो कुएँका पानी भी विषैला हो जाता है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले सब पशु आध्यात्मिक बातोंके संकेत समझे जाते थे। वे मनुष्यके लिए कोई शिक्षा ही सिखाते थे। ऐसे विचार कई शताब्दियोंसे प्रचलित थे, परन्तु चिरकालतक इनकी सत्यतापर किसीने विचार भी नहीं किया था। यहांतक कि उस समयके विद्वान् भी फलित ज्योतिष तथा वन-औषधियों एवं रत्नोंके आश्चर्यजनक गुणोंमें विश्वास करते थे। तेरहवीं शताब्दीका प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्टस मैग्नसका कथन है कि "चन्द्रकान्त मणि फोड़ोंको अच्छा कर देती है। बारहसींगेके रक्तमें हीरा भी गल जाता है। यदि बारहसींगेको मद्य तथा अजवायनका सेवन कराया जाय तो उसमें उक्त गुण सहजमें आ जाता है।"

उस समयके लोगोंके जीवनकी दशाका परिचय केवल मध्ययुगके साहित्योंसे ही नहीं, किन्तु उस समयके कला-कौशलसे भी मिलता है; क्योंकि उस समयके चित्रकार, राज तथा शिल्पी पश्चिमी यूरोपके समस्त प्रदेशोंमें होते थे।

उस समयके चित्र आधुनिक चित्रोंसे बहुत भिन्न होते थे। उस समय केवल पुस्तकोंमें विशेष दृश्योंके चित्र ही पाये जाते थे। जिस प्रकार किताबें हस्तलिखित होती थीं उसी प्रकार चित्र भी चर्मपत्रोंपर स्वच्छ तथा सुन्दर, चमकीले, सुनहरे, रुपहले और नाना रंगोंसे चित्रित किये जाते थे। इन किताबों तथा चित्रोंको महन्त लोग ही लिखा करते थे और वे ही चित्र भी बनाया करते थे। वे पुस्तकें जो धर्म-कार्योंमें काम आती थीं, बहुत अच्छी प्रकार सजायी जाती थीं। वे पुस्तकें प्रायः स्तोत्र-संग्रह, गीतावली तथा भजन-संहिताएँ होती थीं। चित्र भी प्रायः धार्मिक सन्तों अथवा धार्मिक इतिहासोंके सूचक थे। इन चित्रोंमें स्वर्गके सुख, शैतान और उसके दुष्ट साथियोंका पतन तथा स्वर्गसे च्युत आदमके दुःख आदिके दृश्य दर्शाये गये थे। इन सब प्रयत्नोंसे धर्ममें सदा प्रोत्साहन दिया जाता था। भिन्न-भिन्न विषयोंके ग्रन्थोंमें भी नाना प्रकारके चित्र बनाये जाते थे। इनमें बहुतसे चित्रोंमें जन वा समाजके सामाजिक और घरेलू जीवनके दृश्य भी दीखते हैं। जैसे किन्हीं चित्रोंमें हल लिये हुए किसान खड़े हैं, किसीमें बूचड़खानेमें बूचड़ खड़ा है, किन्हींमें कुप्पी फूँकनेवाला कुप्पी फूँक रहा है। अन्तमें हमें काल्पनिक चित्र भी मिलते हैं जिनमें चित्र-विचित्र पशुओंके साथ मनुष्य तथा विलक्षण कलाओंसे निर्मित भवन आदि भी पाये जाते हैं।

मध्ययुगमें लोगोंको संकेतों तथा कार्य-संपादनके लिए विशेष नियत विधियों-से कितना प्रेम था यह इन चित्रोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रत्येक रंग-विशेष भावका द्योतक था, प्रत्येक चरित्र-लेखनके लिए कुछ विशेष नियम थे जिनका पालन चित्र-

कार लोगोंमें वंशपरम्परासे होता आता था और किसी विशेष मनुष्यको अपनी बुद्धि-के विकासका कम अवकाश मिलता था, परन्तु इन छोटे-छोटे चित्रोंमें कभी-कभी बहुत चातुर्य दिखाई पड़ता था और कभी-कभी तो इनमें प्रकृतिके सूक्ष्म सुन्दर रहस्य भी चित्रित होते थे। इन उपर्युक्त चित्रोंके अतिरिक्त साधारणतः लोग इन पुस्तकोंको सुन्दर तथा मनोहर चित्राक्षरों और बेलबूटोंके हाशियोंसे सजा लिया करते थे। ये रचना तथा रंगमें बहुत सुंदर होते थे। इनमें चित्रकारोंको वैज्ञानिक कल्पनाशक्ति और कला-स्वच्छन्दताका अवसर मिल जाता था और कभी-कभी बड़े मनोहर मनुष्य, पक्षी, गिलहरी तथा अनेक छोटे-छोटे जन्तुओंके चित्र-विचित्र रूपों-से उन बेलोंमें जानसी पड़ जाती थी।

मध्ययुगमें मूर्ति-रचनाका कार्य चित्र-रचनाके कार्यसे भी अधिक किया जाता था। मध्ययुगकी मूर्तिकारीमें मानव-मूर्तियोंपर विशेष ध्यान नहीं था। यह सब केवल शोभा बढ़ानेके लिए ही था। मूर्तिकारीकी कला मध्ययुगकी भवननिर्माण-कलाकी अपेक्षा कम उन्नत थी।

मध्ययुगके इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड, बेलजियम तथा जर्मनीके बड़े-बड़े गिरजोंमें उस समयके भवन-निर्माण-शिल्पकी मनोहरता तथा सौम्यताका प्रत्यक्ष उदा-हरण मिलता है। इनकी बराबरी करनेमें आधुनिक समयकी चतुरताके समस्त उपाय असफल हैं। गिरजा सबकी समानरूपसे सम्पत्ति था और सभी पुरुष गिरजेके साथ सम्बद्ध थे। गिरजा बनाना तथा उसको अलंकृत करना सभी श्रेणियोंके पुरुषोंके लिए समानरूपसे इष्ट था। इससे इनके धार्मिक भाव, स्थानिक देशाभिमान तथा कलाप्रियताका भाव पूर्ण होता था। समस्त कला तथा चातुर्यके नये-नये प्रयोग मन्दिरोंके निर्माण और अलंकारमें किये जाते थे। यह सब शिल्पप्रदर्शन धार्मिक श्रद्धाके अतिरिक्त आधुनिक कलाभवनोंके स्थानोंपर भी होता था। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भपर्यन्त गिरजोंकी बनावट रोमन ढंगकी होती थी। धर्ममन्दिरकी रचना बाहरसे क्रासके आकारकी होती थी। मध्यमें एक तथा दोनों किनारोंपर दो खण्ड होते थे। किनारेके खण्ड मध्यके खण्डसे छोटे होते थे। इन खण्डोंके बीचमें गोल खम्भे होते थे। ये गोल महराबोंकी रचनाके साथ-साथ छततक पहुँचते थे। इनमें छोटी-छोटी खिड़कियाँ होती थीं जिनसे मकानके अन्दर पूर्ण प्रकाश नहीं जा सकता था। समस्त रचनामें सरलताकी झलक होती थी। बादमें गिरजे रेखागणितीय आकृ-तियोंके अनुसार नाना प्रकारके शिल्प और चित्र-विचित्र मूर्तियोंसे सजाये जाने लगे।

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दीमें खिड़कियोंमें चोटीदार महराब बहुत लगाये जाते थे। परन्तु तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें इनका प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा और थोड़े ही दिनोंमें इनका प्रयोग गोल महराबोंसे कहीं अधिक हो गया। यह

एक नयी पद्धतिका आविष्कार था। इस पद्धतिका नाम गाथिक पद्धति था। इसके प्रयोगसे विशेष परिणाम निकलते थे। अब शिल्पियोंनेपृथक्-पृथक् आकार, ऊँचाई तथा चौड़ाईके महराब बनाने आरम्भ किये। गोल महराबकी ऊँचाई चौड़ाईसे आधी हो सकती है, परन्तु चोटीदार महराबकी ऊँचाई तथा चौड़ाईमें बहुतसे भेद हो सकते हैं। सहायक महराब (Flying Buttres) के आविष्कारसे गाथिक पद्धतिमें बड़ी उन्नति हुई। यह रचना बाहरको निकली रहती थी और खम्भेके बोझको भी बहुत कुछ सँभालती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अब खिड़कियाँ भी बनने लगीं और गिरजेमें प्रकाश भी अधिक आने लगा।

इन बड़ी खिड़कियोंसे जो प्रकाश प्रविष्ट होता था वह बहुत प्रखर होता था। इन खिड़कियोंमें अत्युत्तम पत्थरकी जालियोंमें रंगीन शीशे जड़े रहते थे जिनके कारण प्रकाश हलका हो जाता था। मध्ययुगके गिरजोंमें रंगीन शीशोंके कार्यकी बड़ी प्रख्याति थी, विशेषकर फ्रांसमें, क्योंकि वहाँके शीशेकी कारीगरीने इस शिल्पकी विशेष उन्नति की थी। इनमेंसे अधिकांश तो नष्ट-भ्रष्ट हो गये, तो भी जो बचे हैं उनको बहुत मूल्यवान् समझा जाता है और उनको बड़ी सुरक्षासे रखा गया है। इनकी समानताका अबतक दूसरा नमूना बना भी नहीं। इनके छोटे-छोटे टुकड़ोंकी बनी जालीदार खिड़कियाँ आजकलके अच्छेसे अच्छे नमूनेकी रचनासे भी कहीं अधिक सुन्दर होती थीं।

ज्यों-ज्यों गाथिक पद्धतिकी उन्नति होती गयी और कारीगर चतुर होते गये त्यों-त्यों गिरजोंमें प्रकाशकी मनोरञ्जक विचित्रताओं और सुन्दर और सुकुमार शिल्पोंकी वृद्धि होती गयी, परन्तु उनकी सुन्दरता तथा गौरवकी मात्रा तब भी वैसी ही बनी रही। मूर्तिकारोंने अपनी कला-कौशलकी अच्छी-अच्छी रचनाओंसे उन्हें सजाया। मूर्ति तथा स्तम्भ-शिखर, आसन, वेदी, गायक-जवनिका, पादरीगणके बैठनेके लिए लकड़ीके बने आसन इत्यादि वस्तुओंपर सुन्दर-सुन्दर पत्तियाँ तथा पुष्प, पालतू पशु, अथवा विचित्र दैत्य, धार्मिक घटना तथा दैनिक जीवनके ग्रामीण दृश्य खुदे रहते थे। इङ्गलैण्डके वेल्स नगरके एक गिरजेके स्तम्भ-शिखरपर एक चित्र अंकित है। उसमें अंगूरों और पत्तोंके बीचमें पीड़ाके कारण म्लानमुख एक बालक अपने पैरमेंसे काँटा निकाल रहा है। दूसरे चित्रमें चोरी पकड़े जानेका दृश्य दिखाया गया है। उसमें एक चोर अंगूर चुराकर भागा जा रहा है और क्रुद्ध किसान हाथमें लाठी लिये उसके पीछे दौड़ रहा है। मध्ययुगमें हास्यजनक विनोदोंकी विशेष कल्पना की जाती थी। उस कालके लोगोंका विलक्षण पशु, आधा उकाब तथा आधा सिंह, चमगीदड़ोंके समान भीषण जन्तु, दैत्यसमान विकटाकार तथा काल्पनिक आकृतियोंसे अत्यन्त प्रेम था। ये आकृतियाँ पत्थरोंपर बनी फूल-पत्तियोंमें

बनायी जाती थीं और दीवार तथा स्तम्भपर मनुष्यपर देखती हुई मुद्रामें बैठा दी जाती थीं अथवा पतनालों या शिखरोंपर सिंहादिका मुख लगा दिया जाता था।

गाथिक पद्धतिमें एक विचित्रता यह है कि इसमें अपासलों, सन्तों और राजाओंकी मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। इनसे गिरजेके बाह्य भाग और विशेषकर प्रवेशद्वारकी शोभा बढ़ायी जाती थी। जिन पत्थरोंसे भवन बनते थे उन्हीं पत्थरोंकी मूर्तियाँ भी बनायी जाती थीं, इससे ये शिल्प उसीके एक भाग ज्ञात होते थे। यदि उनकी तुलना बादके शिल्पसे करें तो वे कुछ भद्दे और घटिया जचेंगे, तो भी वे उनकी रचनाके बहुत अनुरूप हैं और उनमेंसे जो अच्छे हैं वे तो अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार प्रतीत होते हैं

यहाँतक तो हमने गिरजेके शिल्पका वर्णन किया और उस युगमें इस शिल्पकी ही बड़ी प्रधानता थी। बादको चौदहवीं शताब्दीमें गाथिक पद्धतिके अनेक सुन्दर-सुन्दर भवन बनाये गये। इनमें सबसे चित्तापहारी तथा विख्यात व्यापारी कम्पनियोंके बनवाये विशाल भवन तथा मुख्य-मुख्य नगरोंके नगर-भवन थे, परन्तु गाथिक पद्धतिका विशेष प्रयोग तो धर्मसंस्थाओंमें ही था। इसके उन्नत शिखर, खुले फर्शदार मैदान, ऊँची-ऊँची गगनचुम्बित महराबें तथा इसकी स्वर्ग-समृद्धिको याद करानेवाली खिड़कियाँ आदि सभी वैभव मध्ययुगके लोगोंके प्रेम तथा भक्तिको अवश्य बढ़ाते होंगे।

मध्युगके प्रासादोंका वर्णन करते हुए हमने प्रासाद-निर्माण-शिल्पका कुछ वर्णन किया था। इनको प्रासाद न कहकर यदि हम दुर्ग कहें तो अच्छा होगा, क्योंकि दृढ़ता तथा दुर्गमता इनमें प्रधान होती थी। उनमें कई फीट मोटी दीवालें, झरोखोंके समान छोटी-छोटी खिड़कियाँ और पत्थरके फर्श होते थे। बड़े-बड़े भवन बड़ी भट्ठियोंसे खूब गर्म रहते थे, जिनसे प्रकट होता है कि आधुनिक गृहोंके समान इनमें कुछ भी सुख नहीं था। साथ ही साथ इनसे यह भी स्पष्ट है कि उस समयके लोग अत्यन्त सरल रुचिके और शरीरके बलिष्ठ थे। वर्तमानमें हम इसी बातके लिए तरसा करते हैं

उस समयके लोगोंकी भाषा, पुस्तक, कला तथा शिक्षितोंका व्यवसाय देखकर यह प्रश्न उठता है कि इन्हें शिक्षा कहाँसे मिलती थी? जस्टीनियनके सरकारी विद्यालय बन्द करने तथा फ्रेडरिक बारबरोसाके आगमनके बीचके कालमें इटली तथा स्पेनके अतिरिक्त पश्चिमी यूरोपमें आधुनिक विद्यापीठ तथा विद्यालयोंके समान शिक्षाका कुछ भी प्रबन्ध नहीं था। शार्लमेनकी आज्ञासे जिन विद्यालयोंको बिशप तथा एबटोंने स्थापित किया था उनमेंसे कुछ तो अवश्य ही उसकी मृत्युके बादके अन्धकार तथा अराजकताके समयमें भी बनाये गये थे, परन्तु वहाँकी शिक्षाप्रदानकी व्यवस्था

जाननेसे प्रकट होता है कि ये विद्यालय प्रारम्भिक थे, यद्यपि इनके अध्यक्ष कभी-कभी अच्छे विद्वान् भी होते थे।

संवत् ११५७ (सन् ११०० ई०)में अविलार्ड नामका एक उत्साही नवयुवक अपने देश ब्रिटनीसे इस प्रयोजनसे रवाना हुआ कि वह न्याय तथा दर्शन-शास्त्रमें विशेष शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विद्यापीठोंका दर्शन करे। उसने इन शास्त्रों-में शिक्षा पानेके लिए देश-विदेश भ्रमण किया। उसने लिखा है कि फ्रांसके कई नगरोंमें, विशेषतः पेरिस नगरमें बहुतसे पंडित रहते थे। उनके पास दूर-दूरसे छात्रगण न्याय, छन्द तथा ब्रह्म-विद्याकी शिक्षा पानेके लिए आते थे। अविलार्ड अपने अध्यापकोंसे भी तीव्र था। उसने उन लोगोंको वाद-विवादमें कई बार निरुत्तर करके अपनी विवेकबुद्धिका परिचय दिया था। शीघ्र ही वह स्वयं भी शिक्षा देने लगा। इस कार्यमें उसे इतनी अधिक सफलता हुई कि सहस्रों छात्र शिक्षा पानेके लिए उसके पास आने लगे।

उसने एक छोटी-सी पुस्तिका रची जिसका नाम 'अस्ति-नास्ति' था। इस पुस्तकमें उसने धर्मसंस्थाके पादरियोंका विविध विषयोंपर मतभेद दिखलाया था। छात्रोंको बहुत सोच-समझकर इन मतभेदोंका परिहार करना पड़ता था। अवि-लार्डका मत था कि निरन्तर प्रश्नोंसे ही सच्चा ज्ञान मिल सकता है। जिन विद्वानों-पर मनुष्योंका धर्म-विश्वास जमा हुआ था उनके साथ उसका स्वतंत्र वाद-विवाद अनेक समानकालिकोंको खटकता था। विशेषकर महात्मा बर्नर्ड जिन्होंने उसे बहुत कष्ट दिया था, उसके बड़े विरोधी थे। अब ईसाई मन्तव्योंपर स्वतंत्र विवाद करना उस समयकी रीति हो गयी थी और लोगोंने अरस्तूके न्यायका अवलम्बन कर ईश्वरवादका एक उच्च कोटिका दर्शन बनाना चाहा। अविलार्डकी मृत्युके बाद पीटर लम्बर्डने अपनी 'सेन्टेन्स' (महावाक्य) नामकी पुस्तक प्रकाशित की।

कई लोगोंका मत है कि अविलार्डने पेरिसके विद्यापीठकी स्थापना की थी। यह असत्य है, परन्तु उसने धर्म-विषयक मतभेदोंको सर्वसाधारणमें प्रचार करनेका बड़ा यत्न किया। उसकी शिक्षा देनेकी रीति इतनी उत्तम थी कि उसके पास बहुत छात्र एकत्र होते थे। अन्तमें उसे संकटोंने आ घेरा। उसी दशामें उसने अपने जीवनका दुःख-वृत्तान्त लिखा है। इस वृत्तान्तके पढ़नेसे विदित होता है कि उसको शिक्षामें कितनी अभिरुचि थी और इसीसे पेरिसके विद्यापीठकी उत्पत्तिका भी पता चलता है।

बारहवीं शताब्दीके अन्ततक पेरिसमें इतने शिक्षक हो गये थे कि उन्होंने अपनी वृद्धिके लिए एक संघ स्थापित किया। शिक्षकोंके इस संघका नाम "युनिवर्सिटस" (विद्या-संघ) था। इसीसे युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

राजा तथा पोप दोनोंकी इस विद्यासंघपर कृपादृष्टि थी। इन लोगोंने पादरियोंके अनेक अधिकार शिक्षकों तथा छात्रोंको प्रदान किये थे। इन लोगोंकी गणना भी इन्हींमें की जाती थी, क्योंकि अनेक शताब्दियोंतक शिक्षा केवल पादरियोंके अधीन थी।

जिस समय शिक्षकोंके संघ अथवा विद्यापीठकी स्थापना हुई ठीक उसी समय बोलोनियामें एक बड़े शिक्षालयकी उत्पत्ति हो रही थी। इस विद्यापीठमें पेरिसके विद्यापीठके समान आत्मिक वादपर विशेष ध्यान न देकर रोम तथा इटलीके व्यवस्था-शास्त्रों एवं कानूनोंपर विशेष ध्यान दिया जाता था। बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें इटली नगरमें रोमके कानूनोंमें विशेष रुचि उत्पन्न हुई। कारण यह था कि उस समयतक भी रोमका व्यवस्थाशास्त्र इटलीवासियोंको न भूला था। संवत् ११९९ (सन् ११४२ ई०) में ग्रेशियन नामक महन्तने एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित कराया। इसका अभिप्राय राजा तथा पोपोंके परस्पर विरोधी नियमोंकी एकवाक्यता करके चर्चकी व्यवस्थाओंका एक प्रामाणिक ग्रन्थ बनानेका था। अब बोलोनियामें भी बहुतसे विद्यार्थी उपस्थित होने लगे। अपरिचित नगरोंमें अपनी रक्षा करनेके लिए उन्होंने अपना एक संघ स्थापित किया। जो कुछ दिनोंमें इतना शक्तिशाली हो गया कि उसके नियमोंका पालन उनके शिक्षकोंको भी करना पड़ता था।

आक्सफोर्डका विश्वविद्यालय द्वितीय हेनरीके समयमें स्थापित हुआ। आंग्ल देशके छात्र तथा शिक्षकोंने पेरिस नगरके विद्यापीठोंसे असन्तुष्ट होकर इसको स्थापित किया था। कैम्ब्रिजके विद्यापीठ तथा फ्रांस, इटली और स्पेनके अनेक विद्यापीठ तेरहवीं शताब्दीमें ही स्थापित हुए थे। जर्मनीके विद्यापीठ जो अबतक भी प्रसिद्ध हैं, पश्चात्की चौदहवीं शताब्दीके मध्य अथवा पन्द्रहवीं शताब्दीमें स्थापित हुए थे। उत्तरीय विद्यापीठोंने सीनके विद्यापीठको अपना आदर्श बनाया और दक्षिणी यूरोपके विद्यापीठोंने बोलोनियाके विद्यापीठको अपना आदर्श बनाया।

कुछ समयके उपरान्त शिक्षकगण छात्रोंकी परीक्षा लेते थे जो उत्तीर्ण हो जाते थे वह संघके सदस्य बना लिये जाते थे और वे भी स्वयंशिक्षक हो जाते थे। जिसे वर्त्तमान समयमें पदवी या डिग्री कहा जाता है, मध्ययुगमें उसको अध्ययन-योग्यताकी प्राप्ति कहा जाता था, परन्तु तेरहवीं शताब्दीमें अनेक पुरुष उपाध्याय अथवा डाक्टरकी उपाधिके उत्सुक थे, क्योंकि वे साधारण शिक्षक बनना नहीं चाहते थे।

मध्ययुगके विद्यापीठोंमें भिन्न-भिन्न वयसके छात्र थे। उनकी अवस्था १२ वर्षसे लेकर आठ वर्षतकके बीचमें होती थी। उस समयतक विश्वविद्यालयोंके विशाल भवन नहीं बने थे, अध्यापकगण अपने पाठ छप्परोंमें पढ़ाते थे। किरायेके मकान

लेकर उसमें घास-फूस बिछा दिया जाता था। अध्यापकगण उसीपर बैठकर अपने छात्रोंको शिक्षा देते थे। उस समय रसशालाएँ भी नहीं थीं, क्योंकि परीक्षाओंकी आवश्यकता ही न होती थी। केवल पाठ्य-पुस्तककी एक प्रतिकी आवश्यकता थी चाहे वह प्रेशिअनका "ह्विक्रेटस दि सेन्टेन्स" हो अथवा अरस्तूके निबन्ध हों वा आयुर्वेदकी कोई पुस्तक हो। इनका प्रत्येक वाक्य शिक्षक भली भाँति समझाते थे और छात्र भी ध्यानपूर्वक श्रवण किया करते थे। वे कभी-कभी संक्षेपमें लिख भी लेते थे।

उस समयमें न तो विश्वविद्यालयोंके विशाल भवन ही थे और न विशेष उपकरण ही थे। इससे शिक्षक तथा छात्र स्वतन्त्र भ्रमण किया करते थे। यदि किसी स्थानमें उनसे दुर्व्यवहार होता था तो वे लोग उस स्थानको त्यागकर दूसरे स्थानमें चले जाते थे। इससे वहाँके व्यापारियोंकी बड़ी हानि होती थी, क्योंकि इन लोगोंकी स्थितिसे उन्हें विशेष लाभ था। इसी प्रकार आक्सफोर्ड और लिप्जिक विद्यापीठ भी उक्त प्रकारके शिक्षकों और छात्रोंने ही स्थापित किये थे।

आधुनिक विद्यालयोंकी भाँति कलामें "आचार्य" (एम० ए०) की उपाधि प्राप्त करनेमें पेरिसके विद्यापीठमें ६ वर्ष लगते थे। वहाँ तर्कशास्त्र और विज्ञानकी विविध शाखाएँ, जैसे भौतिक विज्ञान तथा गणित आदि, अरस्तूके ग्रन्थ, दर्शन-शास्त्र तथा आचार-शास्त्र आदि पढ़ाये जाते थे। वहाँ इतिहास तथा ग्रीक भाषा नहीं पढ़ायी जाती थी। कार्य-सम्पादनके लिए लैटिन भाषाका अध्ययन आवश्यक था। रोमकी प्राचीन भाषापर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। आधुनिक भाषाएँ पण्डितोंको सहसा विद्वानोंके अयोग्य जान पड़ती थीं। यहाँपर यह जान लेना भी आवश्यक है कि आजकलकी आंग्ल, फ्रेन्च, स्पेनिश, इटालियन भाषाओंमें बड़ी-बड़ी पुस्तकें उस समयतक लिखी ही नहीं गयी थीं।

मध्ययुगके विद्यापीठोंमें अरस्तूके ग्रन्थोंपर विशेष बल दिया जाता था। शिक्षकोंका अधिक समय उसीके ग्रन्थोंके समझानेमें व्यतीत हो जाता था। उनमेंसे भौतिक विज्ञान, अध्यात्म-विद्या, उसके तर्कके ग्रन्थ, आचार-शास्त्र, आत्मा, स्वर्ग तथा पृथिवी विषयक अनेक पुस्तकें प्रधान थीं। अरस्तूके समस्त लेख भूल गये थे। अबिलार्डको केवल उसके तर्कका ही ज्ञान था, परन्तु तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें उसके विज्ञानके समस्त ग्रन्थ पश्चिम देशोंमें भी चले गये। इनका प्रचार या तो कुस्तुन्तुनियासे या अरबों द्वारा हुआ था, जिन्होंने इनका प्रचार स्पेनमें किया था। लैटिनके अनुवाद न तो अच्छे थे और न स्पष्ट ही थे। उनका तात्पर्य निकालने, अरब दार्शनिकोंके अभिप्राय समझाने और ईसाई धर्मसे उनकी समता दर्शानेमें शिक्षकोंको बड़ा श्रम करना पड़ता था।

वास्तवमें अरस्तू ईसाई न था। मृत्युके उपरान्त आत्माकी सत्तामें उसको पूरा विश्वास नहीं था। वह बाइबिलके विषयमें कुछ भी नहीं जानता था। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि प्रभु ईसामसीहके द्वारा मनुष्यकी मुक्ति हो सकती है। कदाचित् कोई समझते हों कि अन्धश्रद्धालु ईसाई-धर्मावलम्बियोंने उसे अपने यहाँसे निकाल दिया हो, परन्तु ऐसा नहीं ; उस समयके शिक्षकगण उसकी तर्क-शैलीपर मुग्ध थे और उसकी विद्वत्तापर विस्मित थे। उस समयके बड़े-बड़े धार्मिक विद्वान् अल्बर्टस, मैग्नस तथा टामस आक्विनसने बिना किसी संकोचके इसके सम्पूर्ण ग्रन्थोंपर टीका की थी। इसको सब लोग दार्शनिक तत्ववेत्ता कहा करते थे। उस समयके विद्वानोंका मत था कि परमेश्वरने असीम कृपा कर अरस्तूको इस योग्य बनाया कि वह प्रत्येक विषयपर, प्रत्येक शाखापर भी अन्तिम सिद्धान्त लिख सकता था। बाइबिल, पोप, धर्मशास्त्र तथा रोमके कानूनोंके साथ-साथ वे लोग इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। उन लोगोंको विश्वास था कि अरस्तू स्वतः मानव-संसारका एकमात्र मार्गदर्शी ऋषि है जो आचार तथा शास्त्रोंमें स्वतः प्रमाण है।

"सिद्धान्तवाद" शब्दसे दर्शन, धर्म तथा मध्युगके शिक्षकोंकी विवाद-पद्धतिका बोध होता है। जिनकी श्रद्धा तर्क तथा अरस्तूके लिए बहुत थी उन लोगोंका मत था कि वादसे शिक्षाको विशेष लाभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि इसमें रोम तथा ग्रीक-साहित्यको स्थान नहीं दिया गया था। यदि हम टामस आक्विनसके आश्चर्यभरे निबन्ध पढ़ें तो हमें इतना तो ज्ञात होता है कि वादी तार्किक असाधारण मर्मज्ञ और बहुश्रुत थे। वे अपने पक्षपर आनेवाले सब आपेक्षोंको समझते थे तथा अपने सिद्धान्तको पूर्णतया समझा सकते थे। यदि तर्कसे छात्रकी ज्ञानवृद्धि नहीं होती तो भी उसकी विवेचना-शक्ति बढ़ जाती थी और वह अपने विषयको व्यवस्थित रूपसे रख सकता था।

तेरहवीं शताब्दीमें भी कुछ विद्वान् थे जो समस्त विषयोंपर अरस्तूको प्रमाण मान लेना अनुचित समझते थे। सबसे प्रसिद्ध आलोचक रोजर बेकन था। वह एक अंग्रेज फ्रान्सिस्कन महन्त था। उसका कथन था कि यद्यपि अरस्तू बहुत बुद्धिमान् था, तथापि "उसने केवल ज्ञानवृक्ष लगाया है जिसकी अभीतक न तो सब शाखाएँ निकली हैं और न सब फूल ही खिले हैं।" "यदि हम लोग अनन्त शताब्दियों पर्यन्त जीवित रहें तो भी हम लोग पूर्ण ज्ञातव्य विद्याका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। कोई भी प्रकृतिका इतना पूर्ण ज्ञानी नहीं है जो बता सके कि एक साधारण मक्खीका ऐसा रंग क्यों है ? उसके इतने पैर क्यों हैं, कम और ज्यादा क्यों नहीं ?" बेकनको विश्वास था कि अरस्तूके निबन्धोंके अशुद्ध लैटिन अनुवादोंकी अपेक्षा सार पदार्थोंपर निरीक्षण और परीक्षण करनेसे सहस्र-गुण ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उसने लिखा है

कि "यदि मुझे स्वतन्त्रता मिले तो अरस्तूके सम्पूर्ण लेख आगमें जला दूँ, क्योंकि उनके पढ़नेसे समय व्यर्थ नष्ट होता है और उनसे अज्ञान तथा मिथ्या ज्ञानकी वृद्धि होती है।"

इससे विदित होता है कि जिस समय विद्यापीठोंमें वादोंकी अधिक चर्चा थी उस समय भी अनेक वैज्ञानिक थे जो तत्त्व-अन्वेषणकी आधुनिक प्रथाका प्रचार किया करते थे। इसमें तर्कके नियमानुसार प्रचीनकालके ग्रीक दार्शनिकोंके वचनोंपर विचार नहीं किया जाता था, परन्तु उपस्थित वस्तुओंपर ही शान्तिपूर्वक विचार किया जाता था।

यहाँतक तो हमने उन पन्द्रह सौ वर्षोंके आधे कालकी समालोचना की है जो वर्तमान यूरोपको पन्द्रहवीं शताब्दीके विच्छिन्न रोम-साम्राज्यसे विभक्त करता है। अब आगेके आठ सौ वर्षोंकी चर्चा करेंगे जिसमें अलरिक, अटिला, लियो, क्लोविस, तृतीय इन्नोसेन्ट, सेन्ट लुई तथा प्रथम एडवर्ड आदि उत्पन्न हुए और इसी कालमें बड़े-बड़े विख्यात् परिवर्तन भी हुए।

प्रथम देखनेसे विदित होता था कि असभ्य गाथ, फ्रेंकूस, वन्डाल तथा बर्गन्डी-वाले, सर्वत्र उजाड़ और तबाही फैलाते थे। इनकी शक्ति इतनी प्रबल थी कि शार्लमेनकी शक्ति भी इस अत्यन्त उपद्रवको कुछ कालके लिए ही रोक सकी थी। उसके बाद उसके पौत्रोंमें कलह तथा नार्थमैन हंगरीवाले स्लाव और सारसेनोंका आक्रमण प्रारम्भ हुआ। परिणाम यह हुआ कि सातवीं तथा आठवीं शताब्दीके समान एक समय पश्चिमी यूरोप पुनः उसी अराजकता तथा अन्धकारमें निमग्न हो गया।

शार्लमेनके राज्यके दो सौ वर्ष बाद पुनः यूरोपमें जागृतिकी झलक दिखाई दी। यद्यपि ग्यारहवीं शताब्दीके सम्बन्धमें विशेष हाल ज्ञात नहीं, तथापि उस समय-के अच्छे-अच्छे विद्वानोंको भी छात्रोंके अतिरिक्त शेष सभी भुला चुके थे। परन्तु निःसन्देह इस बीचमें भी बारहवीं शताब्दीकी तैयारी हो रही थी। ग्यारहवीं शताब्दी की ही बदौलत बारहवीं शताब्दीमें अविलार्ड, सेन्ट बेर्नर्डआदि नाना धर्म-शास्त्री, कवि, शिल्पी तथा दार्शनिकोंका प्रादुर्भाव हुआ।

हम मध्ययुगको दो विशेष भागोंमें बाँट सकते हैं। सप्तम ग्रेगरी तथा विजयी विलियमके शासनसे पूर्वके कालको "अन्धकारका काल" कह सकते हैं। यद्यपि उस समय यूरोपमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था, तथापि वह समस्त काल अरा-जकता तथा अन्धकारका था। मध्ययुगके पिछले भागमें मनुष्यके प्रत्येक कार्यमें निःसन्देह उन्नति हुई थी। तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें जो परिवर्तन हुए हैं उन्हींके

कारण आधुनिक यूरोपकी दशा रोमन साम्राज्यके अधीन पश्चिमीय यूरोपकी दशासे बहुत बदल गयी। इन परिवर्तनोंमेंसे कुछ एक यह हैं—

(१) कुछ राष्ट्रोंने एक संघ स्थापित किया जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी राष्ट्रीयताओंका प्रादुर्भाव हो रहा था। उस संघने रोम साम्राज्यका स्थान ग्रहण किया। इन लोगोंने अपने शासनमें इटली, गाल, जर्मनी तथा ब्रिटनके मतभेदोंको स्थान नहीं दिया। अनवस्थित मनसबदारी जो गत अन्धकारयुगमें शासन कर रही थी, राजशक्तिके आधिपत्यके नीचे झुक गयी। जर्मनी और इटली इस राजशक्तिके नीचे न थे और पश्चिमी यूरोपमें एक साम्राज्य स्थापित करनेकी कोई आशा भी न थी।

(२) एक प्रकारसे धर्म-संस्था भी रोम साम्राज्यका अधिकार हथिया रही थी। पोपने पश्चमी यूरोपके बहुतसे लोगोंको अपने अधीन कर लिया था और सामन्त लोग न्याय तथा शान्तिके स्थापनमें समर्थ न थे, इस कारण उसने राज्यका भी समस्त कार्य अपने हाथमें ले लिया। स्वच्छन्द राजाकी भाँति मध्ययुगकी धर्मसंस्था सबसे अधिक शक्तिशाली हो गयी थी। इसकी राजनीतिक दशा तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें तृतीय इन्नोसेन्टके समय उच्च शिखरपर पहुँच गयी थी। तेरहवीं शताब्दीके समाप्तिके पूर्व ही संगठन इतना शक्तिशाली हो गया था कि देखनेसे प्रतीत होता था कि वह पोप तथा पादरियोंके हाथसे शीघ्र शासन-अधिकार छीन लेगा और उनके हाथमें केवल धर्मकार्य रह जायगा।

(३) पादरी तथा नाइट लोगोंके संघके साथ-साथ एक नयी सामाजिक संस्था और उत्पन्न हुई। इससे कृषक दासोंको सुधार, नगरोंकी स्थापना और व्यवसायकी उन्नति हुई और वणिकों तथा कारीगरोंको भी अवसर मिला कि वे भी द्रव्योपार्जन कर विख्यात तथा प्रभावशाली हो जायँ। आधुनिक विद्वानोंका यहींसे प्रादुर्भाव होना प्रारम्भ होता है।

(४) नाना प्रकारकी आधुनिक भाषाओंका प्रयोग लेखमें होने लगा। जर्मनोंके आक्रमणके ६ सौ वर्ष-पर्यन्त लैटिनका प्रयोग होता रहा, परन्तु ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियोंमें बोल-चालकी भाषाने पुरानी भाषाओंका स्थान ले लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे साधारण लोग भी जो प्राचीन रोमन भाषाकी गूढ़ताको नहीं समझते थे, अब फ्रेन्च, प्रोवेंकल, जर्मन, अंग्रेजी, स्पेनिश तथा इटली भाषामें लिखी कथाओंका आस्वाद भी लेने लगे।

यद्यपि शिक्षाका प्रबन्ध अब भी पादरियोंके ही हाथमें था और साधारण लोग लिखने-पढ़ने लगे थे, तथापि वाङ्मय-साहित्यपरसे पादरियोंका एकाधिकार धीरे-धीरे न्यून होने लगा।

(५) संवत् ११५७ (सन् ११०० ई०) से ही छात्र लोग शिक्षकोंके निकट

एकत्र होने लगे और रोमकी धर्म-व्यवस्था, तर्क, दर्शन तथा धर्म-शास्त्रकी शिक्षा भी लेने लगे। अरस्तूके ग्रन्थ एकत्र किये गये और छात्रवर्ग विद्याकी समस्त शाखाओंमें उत्साहके साथ उसके ग्रन्थोंका मनन करने लगे। उसी समयमें आधुनिक सभ्यताके विशेष अंगरूप विद्यापीठोंका भी प्रादुर्भाव हुआ था।

(६) अब शिक्षक लोग केवल अरस्तूके प्राप्त निबन्धोंसे ही सन्तुष्ट न हो सके इससे उन्होंने स्वयं अपने प्रयत्नसे विद्याकी उन्नति करनी चाही। रोजर बेकन तथा उसके समकालिक विद्वान् एक वैज्ञानिक वर्गके अंग थे। इस वर्गने विज्ञानकी सभी शाखाओंमें उन्नतितक पहुँचनेका मार्ग तैयार कर दिया। वे आधुनिक समयकी भी एक-मात्र प्रतिष्ठा हैं।

(७) बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीके गिरजोंका शिल्प देखकर उस समयकी कलाभिरुचिका पता चलता है। यह सब किसी प्राचीन कलाका अनुकरण नहीं था, परन्तु उस समयके शिल्पी तथा मूर्तिकारोंकी स्वमूलक रचना थी।

अध्याय १९

शतवर्षीय युद्ध

चौदहवीं तथा पन्द्रहवी शताब्दीके यूरोपीय इतिहासका वर्णन निम्नलिखित क्रम-से किया गया है। (१) आंग्ल देश तथा फ्रांसका वर्णन एक साथ किया गया है, क्योंकि आंग्ल देशके राजा लोग फ्रांसके राज्यपर भी अपना अधिकार जतलाते थे। दोनों प्रदेशोंके बीच शतवर्षीय युद्धसे प्रथम दोनों देशोंमें दुर्व्यवहार और कलह उत्पन्न होता है और पश्चात् इनकी सुलह होती है। (२) दूसरे पोपके अधिकार तथा कान्स्टेन्सकी सभामें धर्मसंस्थाकी उन्नतिके प्रयत्नके इतिहासका वर्णन है। (३) इसके बाद जागृतिकी उन्नतिका वर्णन है। विशेषतः इटलीके उन नगरोंका संक्षेपतः वर्णन है जो उस समयमें विज्ञान-वृद्धिके अग्रसर नेता थे। इसके साथ-साथ पन्द्रहवीं शताब्दीके बादके भागमें छापाखाना तथा भूगोल-विद्याकी नवीन खोजें और उनसे हुई उन्नतिका वर्णन है। (४) चतुर्थ भागमें सोलहवीं शताब्दीके यूरोपका वर्णन है। इससे मार्टिन लूथरके नेतृत्वमें हुए धर्म संस्थाके नवीन आन्दोलनको पाठक भली भांति समझ सकेंगे।

सबसे पहले आंग्ल देशकी दशा देखना उचित है। प्रथम एडवर्डके पूर्वके शासकोंका ग्रेटब्रिटेनके एक अंशपर ही शासन था, उनके राज्यके पश्चिममें वेल्जका पहाड़ी प्रान्त था। इस प्रान्तमें आदि ब्रिटन जातिके वे लोग बसे थे जिनको जर्मन आक्रामक लोग परास्त नहीं कर सके थे। इसके उत्तरमें स्काटलैण्डका राज्य था। यह राज्य भी स्वतन्त्र था। वह केवल कभी-कभी आंग्लदेशीय शासकोंको अधिपति मान-कर उन अंग्रेजोंका सामन्तराज्य मान लिया जाता था। प्रथम एडवर्डने वेल्जको सर्वदाके लिए तथा स्काटलैण्डको कुछ समयके लिए जीत लिया था।

कई शताब्दियों-पर्यन्त आंग्ल देश तथा वेल्जकी सीमाओंपर लड़ाई होती रही। विजयी विलियमने आवश्यक समझकर वेल्जकी सीमापर "अर्लडम" स्थापित किया था और चेस्टर श्रूजबरी तथा मन्मथ नार्मन लोगोंके लिए अच्छी रोक थी। वेल्ज-वालोंकी लगातार आक्रान्तिसे अंग्रेजी राजा क्रुद्ध होकर वेल्जपर चढ़ाई करना चाहते थे, परन्तु शत्रुपर विजय पाना सरल नहीं था, क्योंकि वे लोग स्नोडनके समीप वनोंकी पहाड़ी कन्दराओंमें छिप जाते थे और अंग्रेजी सैनिकोंको वहाँकी जंगली भूमिमें भूखों मरना पड़ता था। वेल्जवालोंकी सफलताके साथ इतने अधिक समयतक

शक्तिशाली अंग्रेजी सेनाओंका सामना करते रहे; इससे वेल्ज केवल उनके रक्षास्थान ही नहीं थे, परन्तु वहाँके भाटोंने भी अपने उत्साहभरे कवित्तोंसे वहाँके लोगोंको उत्तेजित किया था। इन लोगोंको विश्वास था कि जो आंग्ल देश एंगल तथा सैक्सनोंके आगमनके पूर्व इनके अधिकारमें था उसको ये लोग पुनः जीत लेंगे।

सिंहासनारूढ़ होते ही प्रथम एडवर्डने आज्ञापत्र भेजा कि वेल्ज जातिका अधिपति ल्हुएलिन जो वेल्जका युवराज कहलाता है हमारे दरबारमें आकर सिर झुकावे। ल्हुएलिन प्रभावशाली तथा योग्य पुरुष था। उसने राजाकी आज्ञा न मानी। इसपर एडवर्डने वेल्ज देशपर आक्रमण किया। लगातार दो युद्धोंके बाद वेल्जका दम उखड़ गया। ल्हुएलिन युद्धमें मारा गया और उसीके साथ वेल्जकी स्वतन्त्रता भी सदाके लिए लुप्त हो गयी। एडवर्डने सम्पूर्ण देशको शहरोंमें बाँट दिया और आंग्ल देशके नियम तथा प्रथाओंका प्रचार किया। उसको साम-उपायसे इतनी सफलता हुई कि एक शताब्दी-पर्यन्त उस देशमें आक्रान्ति हुई ही नहीं। पश्चात् उसने अपने पुत्रको वेल्जका युवराज बनाया और उसी समयसे आंग्ल देशके राज्यके उत्तराधिरीको 'वेल्सके युवराज' (प्रिंस आव वेल्स) की उपाधि मिलती है।

स्काटलैण्डका जीतना वेल्जके जीतनेसे भी अधिक कठिन था। स्काटलैण्डका प्राचीन इतिहास बड़ा जटिल है। जिस समय एंगल तथा सैक्सन लोग आंग्ल देशमें आये, उस समय फोर्थके मुहानेके उत्तरके पहाड़ी प्रदेशमें पिक्टनामी केल्टिके जाति बसी हुई थी। पश्चिमीय तटपर एक छोटासा राज्य आयरिश केल्ट लोगोंका था जो स्काट कहाते थे। दशवीं शताब्दीके आरम्भमें पिक्ट लोगोंने स्काट लोगोंको अपना शासक मान लिया था और इतिहास-लेखकोंने हाईलैण्ड नामका प्रदेशको स्काट लोगोंका देश लिखना प्रारम्भ कर दिया था। समयके परिवर्तनके साथ-साथ आंग्ल देशके राजाओंने अपने लाभार्थ सीमापरके कुछ नगर स्काटवालोंको दे दिये, जिसमें ट्वीड् तथा फोर्थ नदीकी खाड़ीके मध्यका लोलैंण्ड नामक प्रदेश भी था। इसके निवासी अंग्रेज थे और वे लोग आंग्ल भाषा बोलते थे परन्तु हाईलैण्डवाले अबतक भी गेलिक भाषा बोलते हैं।

स्काटलैण्डके इतिहासमें यह एक बड़े महत्वकी घटना थी कि उसके राजा लोग हाईलैण्डमें न रहकर लोलैंण्डमें रहे और उन्होंने अपनी राजधानी दुर्भेद्य दुर्गान्वित एडिनबराको नियत किया था। विजयी विलियमके सिंहासनपर बैठते ही अनेक आंग्ल देशीय तथा असन्तुष्ट नार्मन अमीर लोग भी इंगलैण्डकी सीमाको पार कर लोलैण्डमें आ बसे। इन्होंने बड़े-बड़े कुटुम्ब स्थापित किये। इनमें बेलियल तथा ब्रूस अत्यन्त विख्यात हैं जिन्होंने बादको स्काटलैण्डकी स्वतन्त्रताके लिए भीषण युद्ध भी किये। बारहवी तथा तेरहवी शताब्दीमें यह देश, विशेषतः इसके दक्षिणी प्रान्त इन एँग्लो

नार्मन पड़ोसियोंके प्रभावसे अतिशीघ्र उन्नत हुए और इनके नगर समृद्धि और व्यवसायमें भी उन्नत हो गये।

प्रथम एडवर्डके पूर्व आंग्ल देश तथा स्काटलैण्डके बीच कुछ भी वैमनस्य न था। संवत् १३४७ (सन् १२९० ई०)में स्काच् वंशके अन्तिम राजाकी मृत्यु हुई। इसके मरनेपर राजमुकुटके कई उत्तराधिकारी प्रकट हो गये। अपने गृहकलहको शान्त करनेके लिए लोगोंने एडवर्डको न्याय करनेके लिए निमन्त्रित किया। उसने अपनी स्वीकृति इस शर्त्तपर दी कि नया स्काट नरेश आंग्ल देशके अधीन सामन्त होकर रहना स्वीकार करे। यह शर्त्त मान ली गयी और राबर्ट बेलियलको राजा बनाया गया। एडवर्ड मूर्खतासे स्काटलैण्डवालोंसे कर माँग बैठा। इससे उत्तेजित होकर उन्होंने उसकी अधीनता भी स्वीकार न की। इसके अतिरिक्त स्काटलैण्डवालोंने आंग्ल देशके शत्रु फ्रांसके फिलिपसे सन्धि कर ली। इसके पश्चात् आंग्ल देशवालोंको अपने तथा फ्रांसके मध्य द्वेषके कारणोंकी गणना करते समय स्काट लोगोंकी भी गणना करनी पड़ती थी, क्योंकि ये लोग सर्वदा आंग्ल देशके शत्रुओंकी बड़ी प्रसन्नतासे सहायता करते थे।

संवत् १३५३ (सन् १२९६ ई०)में एडवर्डने स्वयं स्काटलैण्डपर आक्रमण किया और विद्रोह शान्त किया। उसने घोषित कर दिया कि राजद्रोहके कारण बेलियलसे उनका प्रान्त छीन लिया गया है और स्काटलैण्डका राजा आंग्लदेशका अधिपति ही है। इससे समस्त मनसबदारोंको चाहिये कि वे उसके अधीन रहें। वहाँकी राजधानी स्कोनसे वह भाग्यशिला उठा ली गयी जिसपर स्काटलैण्डके राजाओंका युगयुगान्तरसे अभिषेक होता चला आया था और इस प्रकारसे उसने स्काटलैण्डपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। कई शताब्दियोंके लगातार विग्रहके कारण एडवर्डने वेल्जकी भाँति स्काटलैण्डको भी आंग्ल देशमें मिला लेना चाहा। यहाँ आंग्ल देश तथा स्काटलैण्डके मध्य तीन सौ वर्षका युद्ध प्रारम्भ होता है जिसका अन्त संवत् १६६० (सन् १६०३ ई०)में हुआ, जब कि स्काटलैण्डका राजा छठा जेम्स प्रथम जेम्सके नामसे आंग्ल देशकी राजगद्दीपर बैठा।

राबर्ट ब्रूस नामक एक राष्ट्रीय वीरने सामान्यजन तथा सर्दारोंको अपने नेतृत्वमें मिलाकर स्काटलैण्डकी स्वतन्त्रताकी रक्षा की। संवत् १३६४ (सन् १३०७ ई०)में ब्रूसने उत्तरमें विद्रोह खड़ा किया। एडवर्ड उसका दमन करनेके लिए प्रस्तुत हुआ। रास्तेमें ही उसकी मृत्यु हो गयी। स्काटलैण्डके दमनका कार्य उसके पुत्र द्वितीय एडवर्डके ऊपर पड़ा। वह इस कार्यके लिए समर्थ न था। अब स्काटलैण्डवालोंने ब्रूसको अपना राजा मान लिया था। उसने बेनकबर्नकी प्रसिद्ध रणभूमिमें द्वितीय एडवर्डको एकदम परास्त किया। स्काटलैण्डके इतिहासमें यह बड़ा प्रसिद्ध

युद्ध है। इतना होनेपर भी आंग्ल देश-निवासियोंने संवत् १३८५ (सन् १३२८ ई०) के पूर्व स्काटलैण्डकी स्वाधीनता स्वीकार नहीं की।

आंग्ल देशीयोंसे निरन्तर युद्ध होते रहनेके कारण स्काटलैण्डनिवासी आपसमें और भी दृढ़तासे बद्ध हो गये थे। यद्यपि वहाँकी स्वतन्त्रताके लिए बहुत अधिक रक्तपात करना पड़ा, तथापि इससे कुछ ऐसे परिणाम निकले जिन्होंने स्काच जातिको आंग्ल जातिसे सर्वदाके लिए पृथक् कर दिया। स्काच लोगोंकी विशेषताका परिचय वर्न, स्काट तथा स्टीवेन्सनके समान स्काटलैण्डनिवासी प्रख्यात लेखकोंके लेखोंमें मिलता है।

द्वितीय एडवर्डके शत्रुओंने उसकी दुर्बलतासे लाभ उठाकर उसका नाश करना चाहा, परन्तु इन लोगोंने यह कार्य पार्लमेण्ट द्वारा किया। इससे राष्ट्रीय सभा और भी पुष्ट हो गयी। हमने देखा है कि संवत् १३५२ (सन् १२९५ई०)की राष्ट्रीय सभामें प्रथम एडवर्डने नागरिकों, सर्दारों तथा पादरियोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित किया था। इस विख्यात नूतन रीतिको उसके पुत्रने सदाके लिए स्थिर कर दिया। इस समय उसने यह प्रतिज्ञा की कि उसके राज्यके सम्पूर्ण कार्य इसी राष्ट्रीय सभा द्वारा सम्पादित किये जायँगे और इसमें सर्वसाधारण नागरिक भी सम्मिलित होंगे। इसके बाद इनकी सम्मति बिना कोई भी नियम नहीं बनाया जा सकता था। सं० १३८४ (सन् १३२७ ई०)में पार्लमेण्टने द्वितीय एडवर्डको सिंहासनसे उतार और उसके पुत्रको सिंहासनारूढ़ कर अपने अधिकारका स्वरूप दिखलाया। तभीसे यह नियम हो गया कि यदि कोई राजा अयोग्य हो तो राष्ट्रके प्रतिनिधि उसको गद्दीसे उतार सकते हैं। इसके पश्चात् राष्ट्रीय सभा दो विभागोंमें बँट गयी जिनका नाम "लोक-सभा" तथा "अमीर-सभा" हुआ। आधुनिक समयमें यूरोपके प्रायः समस्त देशोंने इसी सभाका अनुकरण किया है।

जिस शतवर्षीय युद्धका वर्णन किया जा रहा है यह अँग्रेजों तथा फ्रांसके बीच बहुत दिनों चलती आयी युद्ध-मालाका एक भाग था। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ। जानकी मूर्खतासे आंग्ल देशका राजा नारमंडी तथा अपने द्वीपान्तर्गत राज्यका अधिक उपजाऊ भाग भी खो बैठा। अब उसके हाथ गियानाकी डची रह गयी जिसके लिए उसे फ्रांसको कर देना पड़ता था। उसका यह सबसे अधिक शक्तिशाली सामन्त था। इस बन्दोबस्तके कारण प्रायः सर्वदा कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहती थीं। इसका विशेष कारण यह भी था कि फ्रांसके राजा जितना जल्दी हो सके उतना ही इन सामन्तोंकी शक्ति छीनकर आप इनका स्थान ग्रहण करना चाहते थे। यह सहसा असम्भव था कि आंग्ल देशका राजा गियानाकी डचीको चुपचाप ले लेने दे, तथापि फिलिप और उसके उत्तराधिकारियोंका सर्वदा यही प्रयत्न रहता था।

तृतीय एडवर्डने फ्रांसके राज्यपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि आंग्ल देश तथा फ्रांसके अनिवार्य कलहने और भी भीषण रूप धारण किया। उसने स्वयं फ्रांसके राज्यका उत्तराधिकारी होनेका दावा किया। उसका कथन था कि मेरी माता "इज़ाबेला" फिलिपकी पुत्री थी। संवत् १३७१ (सन् १३१४ ई०)में फिलिपकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके पश्चात् उसके तीनों पुत्र क्रमशः राज-सिंहासनारूढ़ हुए। उनमेंसे किसीको पुत्र नहीं हुआ; अतः कपेशियन वंशका संवत् १३८५ (सन् १३२८ ई०)में लोप हो गया। फ्रांसके व्यवस्थापकोंने कहा कि फ्रांसका राज्य-नियम है कि स्त्री कभी राज्याधिकारिणी नहीं हो सकती। साथ ही इस नियमकी भी प्रधानता दिखलायी कि कोई भी स्त्री अपने पुत्रको राज्य नहीं दे सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि तृतीय एडवर्ड राजपदसे बहिष्कृत किया गया और चतुर्थ फिलिपका भतीजा वालवाका छठा फिलिप गद्दीपर बैठा।

तृतीय एडवर्ड संवत् १३८५ (सन् १३२८ ई०)में बालक था। अपने अधिकृत देशपर आधिपत्य स्थिर रखनेके लिए उसने भी गियानामें छठे फिलिपको कर देना स्वीकार किया, परन्तु जब उसने देखा कि फिलिप केवल मेरे स्वत्वको ही दबा नहीं रहा है, पर स्काच लोगोंके सहायतार्थ अपनी सेना भी भेज रहा है तो उसे फ्रांस-पर अपने उत्तराधिकारका फिर स्मरण हो आया।

उसने खुल्लमखुल्ला घोषित कर दिया कि फ्रांसके सच्चे अधिकारी हम हैं। इसके पश्चात् ही फ्लैण्डर्सके समृद्ध नगरोंने जो भाव दर्शाया उससे इस घोषणाको बड़ी सहायता मिली। छठे फिलिपने फ्लैण्डर्सके काउण्टकी सहायता कर वहांके निवासियोंको स्वतंत्र होनेसे रोका था। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्लैण्डर्सनिवासियोंने फिलिपको त्यागकर एडवर्डको अपना राजा स्वीकार किया।

उस समयमें फ्लैण्डर्स पश्चिमीय यूरोपका शिल्प और व्यवसायका सबसे भारी तथा प्रसिद्ध प्रदेश था। गेण्ट वर्तमानमें मानचेस्टरके समान बड़ा शिल्प-व्यवसायका नगर था। इसका पोत-स्थान सर्वदा जहाजोंसे आजकलके अण्टवार्प और लिवर-पूलके समान घिरा रहता था। यह सब समृद्धि आंग्ल देशपर निर्भर थी, क्योंकि फ्लैण्डर्सनिवासी कपड़े तथा बोरा बनानेके लिए सब ऊन वहांसे ही मँगाते थे, संवत् १३९३ (सन् १३३६ ई०)में फिलिपकी रायसे फ्लैण्डर्सके काउण्टने वहांके सम्पूर्ण अंग्रेजोंको जेलमें डाल दिया। एडवर्डने ऊनका भेजना तथा कपड़ोंका अपने देशमें आना बन्द कर इसका बदला लिया। साथ ही वह फ्लैण्डर्सके नागरिकोंसे भागे हुए फ्लैण्डर्सके शिल्प व्यवसायी लोगोंकी सहायता तथा रक्षा करने लगा।

इन सब बातोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि फ्लैण्डर्सनिवासियोंने अपने स्वार्थ एडवर्डको अपना राजा मान आंग्ल देशसे अपना सम्बन्ध स्थिर रखना चाहा। इस

लोगोंने उसे फ्रांस जीतनेके लिए खूब उत्तेजित किया था। संवत् १३९७ (सन १३४० ई०)में हम आंग्ल देशके राज्य-चिह्नमें फ्रांसके फलरडलेको भी लगा देखते हैं।

कुछ समयतक एडवर्डने फ्रांस देशपर आक्रमण नहीं किया, परंतु उसके जहाजी फ्रांस राज्यके लड़ाऊ जहाजोंका नाश करके अपने राजाका अधिकार समस्त समुद्रपर फैलाने लगे। संवत् १४०३ (सन् १३४६ ई०)में एडवर्ड स्वयं नार्मण्डी पहुँचा। उस नगरको उजाड़कर वह पेरिस नगरके समीप सीनतक आ गया और पेरिसकी ओर भी बढ़ा, परंतु वहाँसे उसे लौटना पड़ा, क्योंकि उसका सामना करनेके लिए फिलिपने एक बड़ी भारी सेना एकत्र कर रखी थी। एडवर्ड क्रेसीमें ठहरा और यहाँपर एक इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध हुआ। वैनकबर्नके युद्धके समान इस युद्धने भी संसारको यह कठिन शिक्षा दी कि यदि पैदल सैनिक सुसज्जित तथा सुशिक्षित हों तो सामन्तोंके अश्वारोहियोंको भली भाँति पराजित कर सकते हैं। फ्रांसके अभिमानी अश्वारोही नाइट एकाकी अत्यन्त वीरताका कार्य करते थे, परन्तु वे एकतासे नहीं लड़ सके। इसका परिणाम यह हुआ कि आंग्ल देशीय धनुर्धरोंके लम्बे-लम्बे धनुषोंसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंके सामने उन लोगोंके पैर उखड़ गये। आंग्ल देशके साधारण पदातियोंने फ्रांसके चुने-चुने अश्वारोहियोंका घात कर दिया। यहींपर एडवर्डके पुत्रने श्यामकुमारकी प्रख्याति पायी थी। वह राजकुमार श्याम इसलिए कहाता था कि वह काला कवच धारण करता था।

यह विजय पानेपर आंग्ल देशके राजाने आंग्ल देशीय तटके समीप कैले नगरका अवरोध किया। उसपर अधिकार कर वहाँके निवासियोंको उसने निकाल दिया और उनके स्थानपर आंग्ल देशवासियोंको बसाया। यह नगर आंग्ल देशीयोंके अधिकारमें दो शताब्दी-पर्यन्त बना रहा। अब युद्ध पुनः आरम्भ हुआ। इस युद्धमें अति प्रसिद्ध 'श्याम युवराजने' फ्रांस-निवासियोंको क्रेसीकी पराजयसे भी घोर पराजय दी। पायटियर्सके युद्धमें उसने पुनः फ्रांसके वीरोंको भगा दिया। इस युद्धमें वह फ्रांसके राजा जानको बन्दी कर लण्डन ले आया।

फ्रांस-निवासियोंका कहना ठीक था कि क्रेसी तथा पायटियर्सकी पराजयमें उनके राजा तथा सलाहकारोंकी आयोग्यता ही कारण थी। इसके अनुसार द्वितीय पराजयके पश्चात् जब नगरसंस्था ऋणकी नयी रकमके अनुमोदनके हेतु निमन्त्रित की गयी तो उसने सब अधिकार अपने हाथमें लेने चाहे। नगरोंके प्रतिनिधि जिनको फिलिपने पूर्वमें निमन्त्रित किया था, इस समय पादरी तथा सर्दारोंसे कहीं अधिक थे। सुधारोंकी एक सूची बनायी गयी जिसमें और बातोंके अतिरिक्त यह भी लिखा था कि चाहे राजा निमन्त्रित करे या नहीं, यह संस्था अपनी बैठक बराबर करती

रहे और करका एकत्र करना तथा व्यय करना राजाके हाथमें न रहे, परन्तु सर्व-साधारणके प्रतिनिधि इस कार्यके निरीक्षक हों। पेरिस नगरके लोगोंने इस मतका अनुमोदन किया, परन्तु संस्थाको इन मित्रोंकी उद्दण्डताके कारण उलटे हानि पहुँची और फ्रांसमें एक बार पुनः राज्याधिकार स्थापित हुआ।

इस असफल प्रयत्नकी मनोरंजकता दो कारणोंसे है। पहले तो इन सुधारकोंके मत तथा पेरिसकी जनताके व्यवहार और संवत् १८४६ (१७८९ ई०)के उस सफल विद्रोहमें बहुत कुछ सादृश्य है जिसने अन्तमें राज्यप्रबन्धमें बहुत कुछ उलट-फेर कर दिया। दूसरे, इस संस्था और तत्कालीन आंग्ल देशीय राष्ट्र-सभाके इतिहासमें बड़ा अन्तर था। फ्रांसके राजाको जब कभी द्रव्यकी आवश्यकता होती थी, वह संस्थाको निमन्त्रित करता था। इसमें उसका केवल इतना अभिप्राय था कि इन लोगोंके अनुमोदनसे कर सहजमें एकत्र कर लिया जाय, परन्तु फ्रांस-नरेशने यह कभी भी अंगीकार नहीं किया था कि बिना संस्थाकी अनुमतिके वह कर नहीं लगा सकता, परन्तु आंग्ल देशमें प्रथम एडवर्डके समयसे यह स्थिर नियम था कि प्रजाके प्रतिनिधियोंकी अनुमतिके बिना कोई भी नया कर न लगाया जाय। द्वितीय एडवर्डने तो यहाँतक स्वीकार कर लिया था कि राज्यकी भलाईके लिए समस्त मुख्य कार्योंमें प्रजाके प्रतिनिधि हमारे सलाहकार होंगे। परिणाम यह हुआ कि फ्रांसके समाजका तो बल धीरे-धीरे क्षीण होता गया, पर आंग्ल देशकी राष्ट्रीय सभाकी शक्ति बढ़ती गयी, क्योंकि जबतक उनके कष्टोंका राजा निवारण नहीं करता था तबतक राजाको रुपया ही नहीं मिलता था।

श्याम राजकुमारकी विजय तथा जानके बन्दी होनेपर भी फ्रांसको जीतना तृतीय एडवर्डके लिए असम्भव था। संवत् १४१७ (सन् १३६० ई०)में ब्रिटीनीमें सुलह हुई। इसमें उसने प्रसन्नतापूर्वक फ्रांसके राज्य, नार्मण्डी तथा लोयरपर अपने दावेको त्याग दिया। इसके बदलेमें उसे आंग्ल देशका स्वतन्त्र राज्य तथा पोयटाऊ, गियाना, पौन्थ्यू और कैलेके नगर मिले। यह सब मिलाकर फ्रांस राज्यका तृतीयांश होता था।

ब्रिटीनीकी सन्धि शीघ्र ही टूट गयी। एडवर्डने गियाना नगरका शासन अपने पुत्र "श्याम-कुमार"को दिया। उसने वहाँकी प्रजापर अधिक कर लगाना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगोंका चित्त आंग्ल देशसे हटकर फ्रांसकी ओर झुका। संवत् १४२१-१४३७ (सन् १३६४-१३८०)में फ्रांसका राजा पंचम चार्ल्स हुआ। यह बड़ा बुद्धिमान् था। जब यह अपने बिगड़े हुए देशको सँभालनेके लिए उठा तो उसे कहीं भी रुकावट न हुई, क्योंकि एडवर्ड बहुत वृद्ध हो गया था और उसका वीर पुत्र श्यामकुमार मृत्यु-शय्यापर पड़ा था। संवत् १४३४

(सन् १३७७ ई०,में एडवर्डकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके पश्चात् आंग्ल देशके राजाके पास कैले तथा बोर्डोके दक्षिण प्रदेशके सिवा कुछ न बचा।

तृतीय एडवर्डकी मृत्युके पश्चात फ्रांससे कुछ समयके लिए युद्ध बन्द हो गया। फ्रांसकी क्षति आंग्ल देशसे कहीं अधिक हुई थी। पहिले तो जितनी लड़ाइयाँ हुईं सब फ्रांसपर ही हुई थीं और दूसरे ब्रिटीनीकी सुलहके पश्चात् जिन सैनिकोंको कोई कार्य न मिला वे लोग स्वच्छन्द होकर लोगोंको तंग करते तथा लूटते फिरते थे। फ्रांसकी दशामें इतना परिवर्तन हो गया था कि पेट्रार्कने जिस समय वहाँ यात्रा की तो उसे सन्देह होने लगा कि क्या यह वही देश है जिसको उसने किसी समय अत्यन्त समृद्ध तथा सुखी-सम्पन्न देखा था। उसने लिखा है कि मुझे चारों ओर भयानक निर्जन सुनसान, घोर दरिद्रता, परती भूमि, उजड़े मकानोंके अतिरिक्त कुछ भी दिखलाई नहीं दिया। पेरिसके निकट भी अग्निप्रकोप तथा उजाड़के लक्षण दिखलाई देते थे। सड़कें उजड़ गयी थीं और उनपर झाड़ियाँ और सरकण्डे पैदा हो गये थे।

संवत् १४०५ (सन् १३४८ ई०) में यूरोपमें प्लेगका भयंकर प्रकोप हुआ। इससे युद्धकी भीषण दारुणता और भी बढ़ गयी। वैशाख (अप्रैल) मासमें इसका प्रकोप फ्लोरेन्स नगरतक पहुँचा तथा श्रावणमें यह प्लेग जर्मनी तथा फ्रांस देशका नाश करता हुआ धीरे-धीरे आंग्ल देशमें दक्षिण-पश्चिमसे उत्तरकी ओर फैला। सं० १३४६ (सन् १२८९ ई०)में यह प्रायः देशके हरेक भागमें अपनी संहार-क्रीड़ा करने लगा। महामारी तथा शीतला आदि भयंकर संक्रामक रोगोंकी भाँति इसकी भी उत्पत्ति प्रथम एशियामें हुई थी। इसके रोगी दो या तीन दिनमें तड़प-तड़पकर मर जाते थे। कितने मनुष्य इसके कवल हुए इसकी संख्या निश्चित करना बहुत कठिन है। परन्तु लोगोंका अनुमान है कि फ्रांसमें एक प्रान्तमें केवल दसवाँ तथा दूसरे प्रान्तमें तो सोलहवाँ हिस्सा ही जीवित रहा और बहुत दिनोंतक तो पेरिसके अस्पतालसे पांच सौ मृत शरीर प्रतिदिन निकलते थे। आंग्ल देशके आधे निवासी प्लेगके अर्पण हो गये। न्यूअनहमकी अब्बीमें छब्बीस मनुष्योंमेंसे केवल एक एबट और दो महन्त ही शेष रहे। बहुत दिनोंतक तो यही शिकायतें सुननेमें आती रहीं कि कितनी ही भूमियाँ अब मनसबदारोंके कार्यकी ही न रह गयीं, क्योंकि उनमें एक भी किसान न बचा था।

इसी समय आंग्ल देशके कृषकोंमें भी असन्तोषके चिह्न दिखाई देने लगे। इसके दो कारण थे। प्रथम तो इन भीषण बीमारियोंका परिणाम, दूसरे फ्रांससे युद्ध जारी रखनेके लिए नया-नया कर लगाना। आजतक समस्त कृषक किसी न किसी ग्रामपतिके अधीन थे। वे उन लोगोंको नियमित कर तथा श्रम दे दिया करते थे।

अबतक ऐसे बहुत कम थे जो स्वच्छन्द मजदूरी करते। बीमारियोंसे मजदूरोंकी संख्या कम हो गयी। परिणाम यह हुआ कि मजदूरीकी वृद्धिके साथ-साथ स्वच्छन्द मजदूरोंका महत्त्व भी बढ़ गया। इससे वे लोग केवल अधिक मजदूरी ही न माँगते थे, परन्तु यदि एक आदमी अधिक मजदूरी दे तो पहले मालिकको त्यागकर दूसरेका काम करते थे।

जो लोग पुराने भावसे मजदूरी देते आये थे उन्हें यह अत्यन्त बुरा लगा। सरकारने भी मजदूरी कम करनेका प्रयत्न किया। उसने मजदूरोंको बीमारीके पूर्व समयकी अपेक्षा अधिक मजदूरी लेनेसे मना किया। यदि कोई मजदूर साधारण वेतनपर काम करना स्वीकार न करे तो उसे जेल भी भुगतनी पड़ती थी। संवत् १४०८ (सन् १३५१ ई०)में भृत्योंके लिए श्रमी विधान बनाया गया, परन्तु उसका पालन साधारणतः नहीं किया गया और सौ बरसतक इसी प्रकारके समय-समयपर अनेक नियम बनते गये। इतना होनेपर भी लोगोंको इस बातकी शिकायत ही रहती थी कि मजदूरसमुदाय अधिक वेतन माँगता है। इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रीय सभाने माँग और श्रमदके सिद्धान्तके विरुद्ध जो भी प्रयत्न किया, सब निष्फल था।

प्राचीन समयकी ग्राम्य प्रथाओंका लोप हो रहा था। ग्रामके अनेक सेवक अब अवसरपर ग्राममें भूमि नहीं लेते थे। वे ग्राम छोड़कर स्थान-स्थानपर घूमकर मजदूरीपर काम खोजते थे। आंग्ल देशके कृषक दास ग्रामपतिको कर देना अन्याय समझने लगे। संवत् १४३४ (सन् १३७७ ई०)में राष्ट्रीय सभामें एक आवेदन-पत्र भेजा गया जिसमें लिखा था कि कृषक दास न तो ग्रामपतिको कर ही देना चाहते हैं न उनके अधिकारमें रहना ही स्वीकार करते हैं।

ग्रामवासियोंमें असन्तोष फैल रहा था। उसकी झलक तत्कालीन एक कवितामें मिलती है, जिसमें कृषकोंकी हीन दशाका सच्चा चित्र खींचा गया है। कविताका नाम 'दि विज़न आफ पियर्स प्लाउमन' था। इसी प्रकारकी अनेक गद्य तथा पद्यकी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित की गयी थीं, जिनसे असन्तोषकी वृद्धि ही होती गयी। इसी समय "श्रमविधान" बनाया गया। इससे स्वामी तथा सेवकमें पारस्परिक विरोध पैदा हुआ। एक नये प्रकारका कर लगा दिया गया जिससे अशान्ति और बढ़ गयी। संवत् १४३६ (सन् १३७९ ई०) में एक प्रकारका कर लगाया गया। इसी प्रकार सोलह वर्षसे अधिक व्यक्तियोंपर दूसरे ही वर्ष एक कर और लगाया गया। इन करोंके चुकानेके लिए द्रव्य एकत्र किया जाता था। अब इस कृषक [illegible] असन्तुष्ट हो रहा था। कृषकके [illegible] [illegible] थे।

वत् १४३८ (सन् १३८१ ई०)में केण्ट तथा एसेक्सके कृषकोंने विद्रोह मचाया। इनमेंसे कितने विद्रोहियोंने लन्दन नगरपर आक्रमण करना स्थिर किया। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते जाते थे, उनकी संख्या मार्गके असन्तुष्ट कृषकों तथा मजदूरोंके सम्मिलित होनेसे और भी बढ़ती जाती थी। शीघ्र ही आंग्ल देशके सम्पूर्ण दक्षिण तथा पूर्वीय नगरोंमें विद्रोह फैल गया। किसानोंने कितने महाजनों तथा समृद्ध धर्माध्यक्षोंके घर जला दिये। उनको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि कर-संग्रहके रजिस्टर तथा मजदूरीके हिसाबकी बहियाँ जल गयीं। उनसे सहानुभूति रखनेवाले कुछ पुरवासियोंने लन्दन नगरका द्वार विद्रोहियोंके लिए खोल दिया। राजाके कितने कर्मचारियोंको पकड़कर मार डाला गया। कुछ लोगोंने सोचा कि द्वितीय रिचर्डको उभाड़कर अपना नेता बना लें। वह उन लोगोंकी सहायता करना नहीं चाहता था, फिर भी उसने उन लोगोंको वचन दिया था कि यदि आप लोग विद्रोह मिटा दें तो मैं भी कृषक दासताको उठा दूँगा।

यद्यपि राजाने अपना वचन पूरा नहीं किया, तथापि कृषक दासता धीरे-धीरे आप ही आप उठने लगी। इससे कृषक दास अपने स्वामीके खेतोंमें श्रम न करके रुपया देकर लगान चुकाते थे। इससे कृषकोंके दासत्वके एक प्रधान अंगका लोप हुआ। ग्रामपति अपने खेतमें काम करानेके लिए या तो वेतनपर मजदूर रखते थे या अपने खेतोंको किसानोंमें बाँट देते थे। इन नये रैयतोंको तो इतना अधिकार था ही नहीं कि वे ग्रामके अन्य रैयतोंका सम्पूर्ण कर जो ग्रामपति लेते थे, वसूल कर सकें। कृषक-युद्धके ५० या ६० वर्ष बाद आंग्ल देशके ग्रामनिवासी किसी न किसी प्रकार स्वतन्त्र हो गये और ग्राम दासता तबसे निर्मूल हो गयी।

जैसा कि ऊपर कह आये हैं, तृतीय एडवर्डकी मृत्युके कुछ समय बादतक फ्रांससे युद्ध बन्द रहा। आंग्ल देशकी राजगद्दीपर श्याम-युवराजका पुत्र तृतीय रिचर्ड बैठा। वह युवक था इससे उसका सम्पूर्ण कार्य सर्दारोंद्वारा होता था। आंग्ल देशका इतिहास इनकी स्पर्धाके वर्णनसे भरा पड़ा है। अन्तको संवत् १४५६ (सन१३९९ ई०)में उसे राज छोड़ना पड़ा। लैंकेस्टर-वंशीय चतुर्थ हेनरी राजा बनाया गया, यद्यपि उसका हक तृतीय एडवर्डके एक दूसरे वंशजसे जो अभी बालक था, कहीं कम था। चतुर्थ हेनरीको अपनी स्थितिमें भी सन्देह था। इस कारण उसने तृतीय एडवर्डके समान आश्चर्यजनक साहस भी नहीं किया। फ्रांसके साथ युद्ध बन्द कर दिया गया। उसके लड़के पञ्चम हेनरीने उसे फिर जारी किया। उस समय फ्रांसकी ऐसी दशा हो रही थी कि उसे देखकर पंचम हेनरीको संवत् १४७१ (सन् १४१४ ई०) में फ्रांस राज्यपर हक दिखलानेका फिर उत्साह हुआ।

फ्रांसका राजा पंचम चार्ल्स बहुत योग्य पुरुष था। उसने अपने देशको आंग्ल

देशीय आक्रांतियोंसे बहुत दिनतक बचाये रखा। उसकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र छठा चार्लस संवत् १३३७ (सन् १२८० ई०)में राज्यसिंहासनपर बैठा। थोड़े ही दिन पश्चात् वह पागल हो गया। अब उस पागल राजाके चाचा तथा और सम्बन्धियों-में इस बातका झगड़ा प्रारम्भ हुआ कि फ्रांसका राजा कौन हो। परिणाम यह हुआ कि देश दो दलोंमें बँट गया। एक दलका नेता बर्गण्डीका शक्तिशाली ड्यूक हुआ जो फ्रांस तथा जर्मनीके मध्यमें स्वयं एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर रहा था। दूसरे दलका नेता ओर्लियन्सका ड्यूक हुआ। संवत् १४६४ (सन् १४०७)में बर्गण्डीके ड्यूककी आज्ञासे ओर्लियन्सके ड्यूककी बड़ी निर्दयतासे हत्याकी गयी। उस समय आंग्ल देश तथा फ्रांसमें अपने शत्रुओंको नाश करनेका यह सामान्य उपाय था। परिणाम यह हुआ कि दोनों दलोंमें आपसकी लड़ाई छिड़ गयी और आंग्ल देश ओर्लियन्सके ड्यूकके उस आक्रमणसे बहुत दिनोंतक बचा रहा जिसकी वह तैयारी कर रहा था।

फ्रांसके राज्यपर पंचम हेनरीका कुछ भी हक न था। तृतीय एडवर्डके युद्ध करनेका कारण यह था कि फ्रांसका राजा गियानापर अपना अधिकार जमा रहा था और फ्लैण्डर्सवालोंने भी एडवर्डकी सहायता की थी। तत्कालीन फ्रांसके राजाने आंग्ल देशके प्रतिकूल स्काटलैण्डकी सहायता भी की थी, परंतु हेनरीका तात्पर्य युद्धसे अपनी तथा अपने वंशकी कीर्ति फैलाना था। तदनुसार फ्रांसवालोंको उसने अजिन-कोर्टके युद्धमें परास्त किया। यह विजय क्रेसी अथवा पायटियर्सकी विजयसे कहीं बढ़-चढ़कर थी। आंग्ल देशीय धनुर्धरोंने एक बार पुनः फ्रांसके अनेक वीरोंको मार डाला। इसके पश्चात् आंग्ल लोग नार्मण्डी तथा पेरिसकी विजयके लिए आगे

फ्रांसमें अंग्रेजोंका आधिपत्य

पृ० १७५

उसे अपना राजा माना। उसका चाचा बेडफोर्डका ड्यूक बहुत योग्य पुरुष था। उसने इसके अधिकारोंकी रक्षा इतनी सावधानीसे की कि थोड़े ही दिनोंमें आंग्ल देशके राजाने लायरके उत्तर फ्रांसका सम्पूर्ण प्रदेश जीत लिया, यद्यपि दक्षिण प्रान्तमें षष्ठ चार्ल्सके पुत्र सप्तम चार्ल्सका ही राज्य रहा।

सप्तम चार्ल्सकी राजगद्दी नहीं हुई थी, इससे उसके सहायक भी उसे डाफिन कहा करते थे। वह शक्तिहीन तथा निरुद्यम था, इसलिए आंग्लदेशीय विजयकी वृद्धिको रोकनेका उसने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया और न उसने प्रजाको उत्साहित कर उनके दुःख दूर करनेका ही कोई प्रयत्न किया। जिस कार्यको चार्ल्स न पूरा कर सका था उसको फ्रांसकी पूर्वीय सीमापर रहनेवाली एक कृषक बालिकाने किया। अपने वंशजों तथा संगिनियोंके लिए वीर बालिका 'जोन आव आर्क' कृषककी एक साधारण कुमारी ही थी, परन्तु फ्रांस देश तथा वहाँकी प्रजापर जो विपत्ति आ पड़ी थी उसकी उसे सदा चिन्ता लगी रहती थी। वह भावी दुर्दशा देख सदा दया अनुभव करती थी। उसे सदा स्वप्न देख पड़ा करते थे तथा आकाशवाणी सुन पड़ती कि "तू राजाकी सहायताके लिए जा और उसको रीम्जतक ले जाकर राजगद्दी दिला।"

लोगोंको उसपर बड़ी मुश्किलसे विश्वास हुआ और तब लोग डाफिनके सहायतार्थ खड़े हुए, परन्तु उसके अटल विश्वासने ही उसकी समस्त बाधाओं तथा संशयोंको दूर किया। अन्तमें लोगोंको पूर्ण विश्वास हो गया कि परमेश्वरने स्वयं इसे भेजा है, तब उसे कुछ सेना लेकर ओर्लियन्सकी रक्षाके लिये भेजा गया। यह नगर "दक्षिण फ्रांसका दिल" कहलाता था। कई महीनेसे आंग्ल देशीयोंने इसे घेर रखा था और अब यह उनके हस्तगत होनेवाला ही था कि जोनने पुरुषकी भाँति कवच और शस्त्र धारण करके घोड़ेपर सवार हो अपने सैनिकों सहित उधरको प्रस्थान किया। इसके सैनिक इसको देवताके समान मानते थे। इसके अदम्य विक्रम, शान्त चित्त तथा प्रचंड उत्साहसे उत्तेजित तथा संचालित सैनिकोंने आंग्ल देशीयोंको हराकर ओर्लियन्सकी रक्षा की। उसे ओर्लियन्सकी रानीकी उपाधि दी गयी। वह स्वच्छन्दतासे डाफिनको रीम्ज ले गयी। संवत् १४८६ (१७ जुलाई सन् १४२९) के श्रावणमें डाफिनका रीम्जके गिरजेमें राज्याभिषेक हुआ।

उस नवयुवतीने कहा कि अब मेरा कर्तव्य पूरा हो गया, मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये। राजा इससे सहमत न हुआ। इससे वह पूर्ण राजभक्तिके साथ राजाके शत्रुओंसे लड़ती रही। परन्तु अन्य सेनापति उससे ईर्ष्या-द्वेष रखते थे और उसके साथी सैनिक भी स्त्रीके नेतृत्वमें रहनेसे लज्जा करते थे। संवत् १४८७ (सन् १४३० ई०)में वह कम्पेनकी रक्षा कर रही थी। उस समय वह निस्सहाय छोड़ दी गयी। बर्गण्डीके ड्यूकने उसे बन्दी बना आंग्ल देशीयोंके हाथ बेच दिया। वे लोग

उसको बन्दी करनेसे ही सन्तुष्ट न हुए। उन लोगोंने सोचा कि इस औरतने हम लोगोंको बहुत नीचा दिखाया है, अतएव उचित है कि इसके किये हुए सम्पूर्ण कार्योंकी अवहेलना की जाय। यह निश्चित कर उन लोगोंने घोषित कर दिया कि यह जादूगरनी है। इसके समस्त कार्योंमें भूत-पिशाच सहायक हैं। धर्माध्यक्षोंके न्यायालयमें इसका विचार हुआ। उसपर नास्तिकताका दोषारोपण किया गया और वह संवत् १४८८ (सन् १४३१ ई०)में रुआन नगरमें जीते जी जला दी गयी। उसकी वीरता तथा धैर्यका उसके शत्रुओंपर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक सैनिक जो उसकी मृत्युपर हर्ष मनाने आया था, चिल्ला उठा कि "हम लोगोंका नाश हो गया, हम लोगोंने एक देवीको जला दिया।" उसके शौर्यसे फ्रांसके सैनिकोंको इतना उत्साह मिला कि उन लोगोंने आंग्ल-शासनको फ्रांससे सर्वदाके लिए दूर कर दिया।

अब जब विजय बन्द हो गयी तो आंग्ल देशकी पार्लमेण्ट पुनः द्रव्य देनेसे मुँह मोड़ने लगी। बेडफर्ड जो अपनी योग्यतासे बराबर आंग्ल देशके स्वत्वोंकी रक्षा करता रहा था, संवत् १४९२ (सन् १४३५ ई०)में मर गया। इसी समय बर्गण्डीके ड्यूक फिलिपने भी आंग्ल देशीयोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ सप्तम चार्ल्ससे मित्रता कर ली। उसने नेदरलैण्ड्सको अपने अधिकारमें कर लिया। फिलिपके राज्यका विस्तार अब इतना फैल गया कि वह यूरोपमें एक नरेशके तुल्य हो गया। फ्रांससे इसकी नयी मित्रताके प्रभावसे आंग्ल देशीयोंका प्रयत्न निष्फल हो गया। इस समयसे आंग्ल देश-के हाथसे धीरे-धीरे फ्रांसकी भूमि निकल गयी। संवत् १५०७ (सन् १४५० ई०) में वे नार्मण्डीसे निकाल दिये गये। तीन वर्षके बाद फ्रांस देशमें उनका बचा-खुचा गास्कनी भी फ्रांसके राजाके अधीन हो गया। यही शतवर्षीय युद्धका अवसान है। यद्यपि कैले अब भी आंग्ल-देशीयोंके अधीन था, तथापि उनका फ्रांस द्वीपपर अधिकार करनेका प्रयोजन सर्वदाके लिए समाप्त हो गया।

शतवर्षीय युद्धके समाप्त होते ही "गुलाबका युद्ध" प्रारम्भ हुआ। इस युद्धमें दो [illegible] थे जो आंग्ल देशकी राजगद्दीके लिए आपसमें युद्ध कर रहे थे। इनमें एक लंकास्टरके वंशज थे। इसी वंशमें पञ्चम हेनरीका जन्म हुआ था। दूसरे यार्कके वंशज थे। पहलेका चिह्न "लाल गुलाब" तथा दूसरेका "श्वेत गुलाब" था। [illegible] युद्ध [illegible] था। प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वीको धनी [illegible] सहायता [illegible] थी। [illegible] हो [illegible] है [illegible] [illegible] हो गया है। [illegible] [illegible] थे। [illegible] थे। [illegible]

अमीर-उमरावोंकी शक्ति अब उन वशवर्त्तियोंपर निर्भर नहीं थी जिनको उनके साथ युद्धमें जाना ही पड़ता। राजाओंकी भाँति वे लोग भी वैतनिक सैनिकोंके भरोसे रहते थे। ऐसे मनुष्य बहुतसे मिल जाते थे जो भोजनादिकी यथेच्छ व्यवस्था हो जानेसे सर्दारोंके यहाँ सिपाहियोंमें नौकरी कर लेते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे लोगोंकी निर्भर्त्सना करते रहेंगे और काम पड़नेपर अपने स्वामीकी हानि करनेवालोंको मार भी डालेंगे। फ्रांससे युद्ध समाप्त होते ही बहुतसे उद्दण्ड लोग चैनलको पार कर आंग्ल देशमें आये और अमीरोंके सैनिक बन देशको भयभीत करने लगे। ये लोग न्यायाधीशोंको भय दिखलाते थे और पार्लमेण्टके प्रतिनिधियोंके चुनावके अधिकार अमीरोंके हाथमें देते थे।

यहाँपर "गुलाबके युद्ध" की अनेक छोटी-छोटी लड़ाइयोंका वर्णन करना निष्प्रयोजन है। लड़ाइयाँ संवत् १५१२ (सन् १४५५ ई०)में आरम्भ हुई। तबसे यार्कका ड्यूक तीस वर्षतक अर्थात् ट्यूडर वंशज सप्तम हेनरीके आरोहण-पर्यन्त लैंकास्टर वंशज निःशक्त राजा छठे हेनरीको राज्यसे च्युत करनेका कठा प्रयत्न करता रहा। कई लड़ाइयोंके पश्चात् संवत् १५१८ (सन् १४६१ ई०) में पार्लमेण्टने यार्कके नेता चतुर्थ एडवर्डको राजा बनाया और हेनरी तथा उसके दो लैंकास्टरी पूर्वजोंको राज्यका चोर घोषित किया। एडवर्ड शक्तिशाली राजा था। उसने अपने अधिकारको अन्ततक स्थिर रखा। संवत् १५४० (सन् १४८३ ई०) में उसकी मृत्यु हुई।

एडवर्डका पुत्र पंचम एडवर्ड उसकी मृत्युके समय अबोध बालक था इससे उसके चाचा ग्लूस्टरके ड्यूक रिचर्डने राज्य-प्रबन्ध अपने हाथमें ले लिया। उसे राजगद्दीके लालचने इतना सताया कि वह उससे न दब सका, अन्तको उसने राज-गद्दीपर भी हाथ मारा। रिचर्डकी अनुमतिसे चतुर्थ एडवर्डके दोनों पुत्र लन्दनके घरहरमें मारे गये। यद्यपि उस समयमें यह प्रथा-सी थी कि अपने प्रतिद्वन्द्वीकी हत्यामें किसी प्रकारके कलंककी सम्भावना न थी, तथापि इस हत्याके कारण रिचर्ड-बदनाम हो गया। राज्यका एक नया दावेदार खड़ा हुआ और उसने भी एक षड्यन्त्र रचा। संवत् १५४२ (सन् १४८५ ई०) में बास्वर्थ फील्डमें घोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में रिचर्डकी हार हुई और वह मारा गया। उसके सिरका भूतलपर गिरा मुकुट अब ट्यूडर वंशज सप्तम हेनरीके सिरपर रखा गया। इसका राजमुकुटपर कुछ भी हक नहीं था, यद्यपि उसकी माता तृतीय एडवर्डके वंशसे थी। उसने पार्लमेण्टकी अनुमति शीघ्र प्राप्त कर ली। उसने चतुर्थ एडवर्डकी पुत्रीसे विवाह कर ट्यूडर वंशके चिह्नमें "लाल तथा श्वेत गुलाबों"को मिला दिया।

गुलाबके युद्धका मुख्य परिणाम यह हुआ कि इस युद्धमें आंग्ल देशके समस्त प्रधान अमीर उमराव शामिल हुए। इनमेंसे अधिकतर तो युद्धमें ही मारे गये और कितनोंकी हत्या विजयी प्रतिद्वन्द्वियोंने करवा डाली। इसका परिणाम यह हुआ कि राजाकी शक्ति पहिलेसे अधिक हो गयी। राजा पार्लमेण्टको तोड़ तो न सकता था, परंतु उसने उसको अपने अधिकारमें अवश्य कर लिया था। एक शताब्दी या कुछ कालतक ट्यूडर राजाओंने अनियन्त्रित राज्य किया। जिस स्वतन्त्रताकी नींव एडवर्ड तथा अन्य लैंकास्टर राजाओंके समयमें पड़ गयी थी उसका आनन्द आंग्ल देशको कुछ समय-पर्यन्त किंचिन्मात्र भी न मिला। उस समय बाहर तथा भीतर दोनों ओरसे व्याकुल किये जानेपर उनको अपने देशपर ही भरोसा रखना पड़ता था।

शतवर्षीय युद्धकी समाप्तिके बाद फ्रांस देशमें मृतप्राय सैन्य विभागकी अधिक उन्नति हुई, इससे राजाकी शक्ति और बढ़ गयी। मन्सबदारोंकी सेनाका कभीका लोप हो चुका था। युद्धके छिड़नेके पूर्वसे ही मन्सबदारोंको सैन्यसहायताके लिए रुपया दिया जाने लगा था। अब उन्हें अपनी जागीरोंके बदले सेना नहीं देनी पड़ती थी। सैन्यश्रेणियाँ यद्यपि नामको राजकीय सेनापतियोंके अधीन रहती थीं, पर वास्तवमें राजाके अधीन न थीं। सैनिकोंके वेतन निश्चित नहीं रहते थे। इस कारण वे अपने सेनापति-

पश्चिमी यूरोप
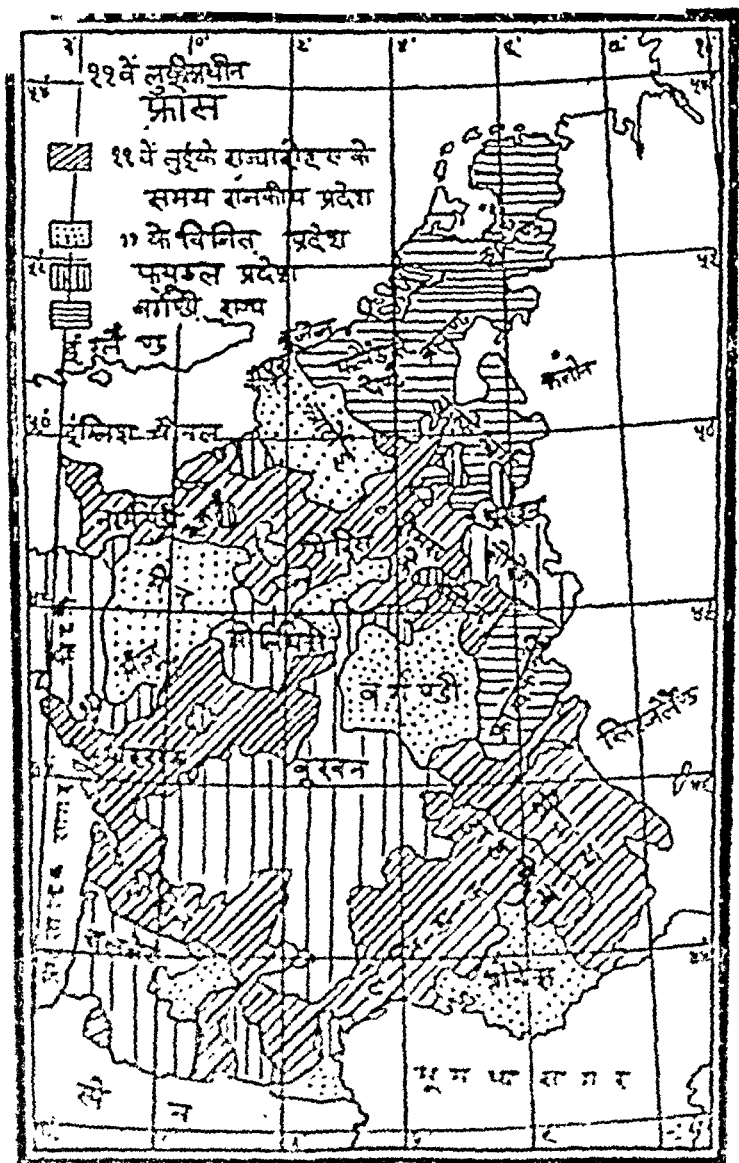
राजाओंकी कठोरता तथा कुटिल नीतिके कारण प्राचीन वंशोंका नाश हो चुका था। परंतु उसने तथा उसके उत्तराधिकारियोंने अपने पुत्रोंको भिन्न-भिन्न प्रदेश प्रदान कर प्रतिद्वन्द्वियोंके नूतन वंश उत्पन्न कर दिये। इस प्रकार मन्सबदारोंके नये तथा शक्तिशाली वंश चलने लगे जिनमें ओर्लियन्स, आंजू, बोरबोन तथा बर्गण्डी सबसे शक्तिमान् थे। पहले चित्रसे आंग्लदेशीयोंको भगानेके बाद राजाके राज्य का परिचय मिलता है। उसीसे प्रकट होता है कि फ्रांसको मन्सबदारोंसे स्वतंत्र करके एक शक्तिशाली राज्य बनानेके लिए राज्यमें कितने संगठनकी आवश्यकता थी। सरदारोंके अधिकार घटने प्रारम्भ हो गये थे। उनको सिक्का बनाना, सेना रखना तथा कर लगाना मना था और राजाके न्यायाधीशोंका अधिकार सारे राज्यपर कर दिया गया। परंतु फ्रांसको संगठित करनेका कार्य सप्तम चार्ल्सके पुत्र ग्यारहवें लूईके हाथसे पूरा हुआ। यह बहुत ही बिलक्षण तथा मायावी था। इसने संवत् १५१८ से लेकर १५४० (सन् १४६१-१४८३ ई०) पर्यन्त राज्य किया।

बर्गण्डीका ड्यूक फिलिप (संवत् १४७६-१५२४, सन् १४१९-१४६७ ई०) तथा उसका पुत्र चार्ल्स (संवत् १५२४-१५३४, सन् १४६७-१४७७ ई०) दोनों लूईके सबसे भयानक मन्सबदार थे। ग्यारहवें लूईके एक शताब्दी पूर्व बर्गण्डी वंशका लोप हो गया था। अब संवत् १४२० (सन् १३६३ ई०) में जिस राजा जानको आंग्ल देशीय बन्दी कर ले गये थे उसीने बर्गण्डीको अपने पुत्र फिलिपको दे दिया। इस वंशके भाग्यसे कई अच्छे-अच्छे वंशोंमें विवाह हो गये तथा दैवात् कई सम्पत्तियाँ मिल गयीं। इसलिए बर्गण्डी ड्यूकोंने अपने राज्यको इतना फैला लिया कि कुछ समयके पश्चात् फ्राञ्च, कामटे, लक्सेम्बर्ग, फ्लैण्डर्स, अर्टोई ब्राबण्ट तथा अन्य प्रदेश जिनसे आधुनिक हालैण्ड तथा बेल्जियम बने हैं, सब बर्गण्डीके अधीन हो गये।

अपने पिताकी मृत्युके कुछ समय पहले चार्ल्स फ्रांसके अन्य मन्सबदारोंको लूईके प्रतिकूल विद्रोह करनेके लिए मिलाता रहा। ड्यूक होनेके बाद उसने अपना ध्यान दो ओर दौड़ाया। प्रथम तो उसने लारेनकी विजयका संकल्प किया क्योंकि इस प्रदेशने उसके राज्यको दो भागोंमें विभाजित कर रखा था जिससे फ्राञ्चे—काम्टेसे लक्सेम्बर्ग जानेमें उसे बड़ी कठिनता पड़ती थी। दूसरे वह अपने पूर्वजों द्वारा जीते हुए देशका राज्य बन जर्मनी तथा फ्रांसके मध्य एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करना चाहता था।

चार्ल्सकी तृष्णासे न तो फ्रांसके राजाको और न जर्मनीके सम्राट्को ही सहानुभूति थी। अपने महत्त्वाकांक्षी मन्सबदारको विदलित करनेके लिए लूईको अपनी

प्रखर बुद्धिका पूरा प्रयोग करना पड़ा। जब उसने हृदयमें राजपदकी आकांक्षा की तो सम्राट्ने भी उसको राजा बनाना स्वीकार नहीं किया। साथ ही साथ चार्ल्सको एक ऐसी अपमानजनक हार खानी पड़ी जिसकी उसे आशंका भी न थी। स्विस लोगोंने उसके शत्रुकी सहायता की थी। इससे क्रुद्ध हो उसने दण्ड देनेके हेतु उनपर आक्रमण किया पर दो स्मरणीय युद्धोंमें परास्त हुआ।

दूसरे वर्ष उसने नान्सी नगर लेनेका प्रयत्न किया। यह भी निष्फल हुआ और वह मारा गया। उसकी सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी उसकी पुत्री मेरी हुई। उसने तत्काल सम्राट्के पुत्र मैक्समीलियनसे अपना विवाह कर लिया। इस सम्बन्धसे लूई बहुत असन्तुष्ट हुआ क्योंकि बर्गण्डीको उसी तो उसके अधिकारमें आ ही चुकी थी। बची हुई सम्पत्ति लेनेकी भी वह आशा करता था। इस विवाह-सम्बन्धके महत्त्व का पता तब लगेगा जब हम पंचम चार्ल्स तथा उसके विस्तृत साम्राज्यका वृत्तान्त आरम्भ करेंगे।

अपने प्रधान सरदारोंकी शक्तिको रोकने तथा बर्गण्डी प्रदेशको अपने राज्य-में मिलानेके अतिरिक्त ११ वें लूईने फ्रांसके राजवंशके लिए और भी कितने ही कार्य किये। मध्य तथा दक्षिणी फ्रांसके कितने प्रान्तोंका वह स्वयं उत्तराधिकारी बना। ये प्रदेश अपने स्वामियोंकी मृत्युके पश्चात् संवत् १५३८ (सन् १४८१ ई०)में लूईके हाथ लगे। इसने उन सब सरदारोंका जिन्होंने वीर चार्ल्सके साथ इसके प्रतिकूल विद्रोह किया था, अनेक प्रकारसे अपमान किया। इसने आलिंकनके ड्यूकको बन्दी कर लिया तथा नीमर्सके विद्रोही ड्यूकको बेरहमीसे मार डाला। लूईके राजनैतिक उद्देश्य उत्तम थे, परन्तु उनके साधनके उपाय अति घृणित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसको इस बातका बड़ा गर्व था कि जिन दुष्टों तथा विश्वास-घातियोंको वह फ्रांस राज्यको भलाईके लिए फँसा लेता था वह आप उन सबसे बढ़कर दुष्ट तथा विश्वासघाती था।

शतवर्षीय युद्धसे छुटकारा पानेपर फ्रांस तथा आंग्ल दोनों देश पहलेसे कहीं अधिक शक्तिशाली हो गये। दोनों देशोंने सरदारोंकी शक्तिको नष्ट कर राजाने अपने-को उनके भयसे मुक्त कर लिया। राजशक्ति दिनपर दिन बढ़ती जाती थी। व्यवसाय तथा वाणिज्यकी वृद्धि होनेसे राजलक्ष्मी भी समृद्ध हो रही थी। इनसे इतना अधिक कर मिलता था कि राजा कानून तथा देशकी रक्षाके लिए प्रस्तुत सैन्य तथा कर्म्म-चारी रखते थे। अब उन्हें अपने सरदारोंके अनिश्चित वचनोंके भरोसे नहीं रहना पड़ता था। सारांश यह है कि फ्रांस तथा आंग्ल दोनों देश स्वतन्त्र हो रहे

थे। इनमें जातीयताका प्रादुर्भाव हो रहा था और राजाके प्रति प्रेम, भक्ति तथा आज्ञाकारिताकी उत्पत्ति हो रही थी।

ज्यों-ज्यों राजाकी शक्तिका बल बढ़ता जाता था त्यों त्यों मध्ययुगकी धर्मसंस्थाकी दशामें भी परिवर्त्तन होता जाता था। इसके पहले जैसा कि हम लोग देख चुके हैं, यह केवल एक धर्मसंस्था ही न थी, परन्तु सर्वव्यापी साम्राज्यकी भाँति बहुत कुछ शासनका भी प्रबन्ध करती थी। इन कारणोंसे अच्छा होगा कि हम लोग प्रथम एडवर्ड तथा फिलिपके समयसे लेकर सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भकालतक धर्मसंस्थाके इतिहासकी आलोचना करें।

अध्याय २०

पोप तथा राज्य-परिषद्

मध्य-युगमें धर्मसंस्था तथा उसके अध्यक्षोंने शासनप्रबन्धका जो अधिकार अपने हाथमें ले रखा था उसका मुख्य कारण यह था कि उस समयमें कोई भी राजा इतना शक्तिशाली तथा योग्य नहीं था जिसकी प्रजा बहुसंख्यक, सम्पन्न तथा राजभक्त हो। जबतक मन्सबदारोंके कारण देशमें अराजकता वर्त्तमान थी तबतक तो धर्मसंस्थावाले शान्तिस्थापन कर, न्यायपरायण हो, दीनोंकी रक्षा तथा शिक्षाकी उन्नति कर उस समयके अयोग्य तथा उद्दण्ड राजाओंकी अयोग्यताकी पूर्ति करते रहे। अब आधुनिक राज्यकी उत्पत्तिसे विशेष कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगीं। प्राचीन समयमें पादरी लोग जिस अधिकारका उपभोग कर चुके थे उस अधिकारको वे अब भी अपने हाथमें रखना चाहते थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यह अधिकार वास्तवमें उन्हींका है। इधर जब नरेशोंने देखा कि हम अपनी प्रजाका शासन तथा रक्षा करनेके योग्य हो गये हैं तो वह पादरियों तथा धर्माध्यक्ष पोपके हस्तक्षेपका प्रतिरोध करने लगे। अब साधारण लोग भी अच्छे शिक्षित होने लगे। इस कारण शासनके लिए राजाको पादरियोंके भरोसे नहीं रहना पड़ता था। उनके अधिकार राजाकी आँखमें गड़ने लगे, क्योंकि इस दशामें उनकी अवस्था अन्य प्रजासे पृथक् हो गयी थी और इतना धन होनेके कारण वे लोग राजाके लिए भी शंकास्थल हो गये थे। ऐसी दशामें यह आवश्यक हो गया कि राजा तथा धर्म-संस्थाके सम्बन्धका निर्णय कर दिया जाय। इस समस्याको सारा यूरोप चौदहवीं शताब्दीसे सुलझा रहा था तो भी वह सफल नहीं हुआ था।

राजाके प्रतिकूल अपने स्वत्वकी रक्षा करनेमें जो कठिनाई धर्माध्यक्षोंको उठानी पड़ी थी उसका ठीक-ठीक पता उस कलह-वृत्तान्तसे चलता है जो सेण्ट लूईके पौत्र फिलिप तथा अष्टम बोनीफ़ेसके बीच हुआ था। यह मनुष्य असीम उत्साही था और वृद्धावस्थामें संवत् १३५१ (सन् १२९४ ई०)में पोप पदपर आया। प्रथम कलहका प्रारम्भ यों हुआ। आंग्ल तथा फ्रांस दोनोंके राजा साधारण प्रजाकी भाँति धर्माध्यक्षोंपर भी कर लगाते थे। यह स्वाभाविक था कि यहूदियों, नगरनिवासियों तथा मन्सबदारोंसे यथाशक्ति धन संचित कर चुकनेपर राजा अपना ध्यान पादरियोंकी समृद्ध सम्पत्तिकी ओर भी डालता, यद्यपि पादरियोंका कहना था कि उनकी सम्पत्ति देवार्पण थी और उसका राजाके अधिकारसे कोई मतलब नहीं था। प्रथम एडवर्डने संवत्

१३५३ (सन् १२९६ ई०)में पादरियोंसे उनकी निजी सम्पत्तिका पाँचवाँ अंश कर-रूपमें माँगा। फिलिपने पादरियों तथा साधारण प्रजाके धनका शतांश और पुनः पचासवाँ अंश करमें लिया।

बोनीफेसने संवत् १३५३ (सन् १२९६ ई०)में इस न्याययुक्त प्रथाका अपने "क्लेरिसिस लेइकस" नामी घोषणापत्रमें प्रतिरोध किया। उसमें उसने कहा था कि साधारण जन पादरियोंके सर्वदा प्रतिरोधी रहे हैं और धर्मसंस्थाओंपर कर लगाकर राज। भी वही विरोध प्रकट कर रहा है। कदाचित् उसको इस बातका ध्यान नहीं है कि पादरी तथा उसकी सम्पत्तिपर उसका कुछ भी अधिकार नहीं है। इस कारण उसने समस्त पादरी तथा पुरोहितोंको मना कर दिया कि उसकी आज्ञा बिना किसी भी बहानेसे या किसी प्रकारसे भी वे लोग राजाको कुछ भी कर न दें। उसने यह भी उद्घोषित किया कि जो राजा या युवराज धर्मसंस्थापर कर लगायेगा वह पदच्युत कर दिया जायेगा।

इधर तो पोपने यह घोषणा कर पादरियोंको कर देनेसे रोका था उधर फिलिपने अपने देशसे सोने तथा चाँदीका भेजना एकदम बन्द कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पोपकी प्रधान आमदनी बन्द हो गयी क्योंकि फ्रांसकी धर्मसंस्था रोमको कुछ भी नहीं भेज सकती थी। अन्तमें पोपको अपना हठ छोड़ना पड़ा। दूसरे वर्ष उसने उद्घोषित किया कि उसका तात्पर्य यह नहीं था कि पादरी लोग अपना साधारण भौमिक कर और राजाके ऋण भी न दें।

संवत् १३५७ (सन् १३०० ई०)में रोममें एक बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। इसमें बोनीफेसने पश्चिमीय यूरोपके समस्त धर्माध्यक्षोंको निमन्त्रित किया था। नयी शताब्दीके आरम्भपर खुशी मनायी गयी थी। इतनी असुविधा होनेपर भी जो प्रतिष्ठा इस समय पोपकी हुई वह कभी भी नहीं हुई थी। उस समय विदित होता था कि पश्चिमीय यूरोपका प्रधान अधिपति वही है। लोगोंका विचार है कि उस समय यूरोपके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे लगभग २० लाख मनुष्य रोममें एकत्र हुए थे। वहाँ इतनी अधिक भीड़ हुई कि सड़कोंके चौड़ी कर देनेपर भी कितने तो दब-कर ही मर गये। पोपके कोषमें इतना धन बहा चला आ रहा था कि दो मनुष्य केवल महात्मा पीटरकी समाधिपर चढ़ी भेंट-पूजाको फावड़ोंसे बटोर रहे थे।

पर बोनीफेसको शीघ्र ही विदित हो गया कि चाहे ईसाई संसार रोमको प्रधान माने भी, पर कोई राष्ट्र उसे अपना शासक नहीं मानेगा। जब फिलिपने फ्लैण्डर्सके काउण्टको बन्दी कर लिया था तो पोपने उसके पास एक उद्धत दूत भेजकर कहलाया था कि वह काउण्टको छोड़ दे। इसपर फिलिपने बिगड़कर कहा कि दूतकी इतनी

कठोर भाषा राजद्रोहात्मक है और उसने अपने किसी वकीलको पोपके पास भेजकर कहलाया कि इस दूतको तनज़्जुल कर दिया जाय और दण्ड भी दिया जाय।

फिलिपके सलाहकार कुछ वकील लोग थे और फ्रांसके वस्तुतः शासक वे ही थे। इन लोगोंने रोमन शासनप्रणालीका खूब अध्ययन किया था और वे सब रोमन राजाओंके अनियन्त्रित अधिकारको बहुत अच्छा समझते थे। उनके विचारमें राजा सबसे प्रधान था, अतः वे लोग राजासे सर्वदा कहा करते थे कि आप पोपको उसके उद्धत व्यवहारके लिए उचित दंड दीजिये। पोपके प्रतिकूल किसी भी कारवाई करनेके प्रथम फिलिपने अपनी नागरिक प्रजा, महाजनों तथा पादरियोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित किया। यह प्रतिनिधि-संस्था फिलिपके एक वकीलसे सब कथा सुनकर राजाकी सहायताके लिए कटिबद्ध हो गयी।

फिलिपका सबसे बड़ा मंत्री नोगारट था। उसने पोपका सामना करनेका बीड़ा उठाया। उसने इटलीमें कुछ सैन्य एकत्रित कर बोनीफेसपर आक्रमण किया। उस समय वह अनागनीमें था। वहाँपर उसके पूर्व अधिकारियोंने फ्रेडरिक बारबरोसा तथा द्वितीय फ्रेडरिकको पदच्युत किया था। इस समय बोनीफेस घोषित कराना चाहता था कि फ्रांसका राजा ईसाई धर्मसंस्थासे निकाल दिया गया है। ठीक उसी समय नोगारट पोपके प्रासादमें अपने सैनिकों सहित घुस गया और उस वृद्ध तथा अभिमानी पोपका निरादर करने लगा। नगरवासियोंने नोगारटको दूसरे ही दिन वहांसे चले जानेके लिए बाधित किया पर बोनीफेसका हौसला टूट गया था इससे वह शीघ्र ही मर गया।

फिलिपकी इच्छा अब पोपसे विवाद करनेकी नहीं थी। संवत् १३६२ (सन् १३०५ ई०)में उसने बोर्डोके आर्कबिशपको इस शर्तपर पोप बननेमें सहायता दी कि वह अपनी राजधानी फ्रांसमें रखे। नये पोपने समस्त कार्डिनलोंको (धर्म्म-संस्थाके एक प्रकारके उच्च पदाधिकारियोंको) लियनमें निमन्त्रित किया और पंचम क्लेमेण्टके नामसे पोप पदपर आरूढ़ हुआ जबतक वह धर्माध्यक्ष रहा, वह फ्रांसमें ही रहा और एक अबेसे दूसरे अबेमें भ्रमण करता रहा। फिलिपके आज्ञानुसार अपनी इच्छाके प्रतिकूल उसने स्वर्गीय बोनीफेसपर एक प्रकारका अभियोग चलाया। राजाके वकीलोंने बोनीफेसकी अनेक प्रकारकी शिकायतें कीं। उसके अधिकांश आज्ञा-पत्र तोड़ दिये गये और जिन लोगोंने उसके विरुद्ध आचरण किया था वे विमुक्त कर दिये गये। राजाको प्रसन्न करनेके लिए पोपने टेम्प्लर नामक मठवासियोंपर अभियोग चलाया। यह संस्था तोड़ दी गयी और राजाकी अभिलाषाके अनुरूप उसकी सम्पत्ति राज्यमें मिला ली गयी। पोपके राज्यमें रहनेसे राजाको विशेष लाभ हुआ। संवत् १३७१ (सन् १३१४ ई०) में क्लेमेण्टकी मृत्यु हुई। उसके

उत्तराधिकारीने अपना निवास उस समयके फ्रांस राज्यकी सीमाके बाहर अविग्नान नगरमें रखा। वहाँपर उन्होंने एक विस्तृत प्रासाद बनवाया। उसमें ६० वर्ष-पर्यन्त कई पोप बड़े समारोहके साथ रहे।

संवत् १३६२ से लेकर संवत् १४३४ (१३०५–१३७७ ई०) के समयको "बैबलोनियन कारावास" कहते हैं। इतने समयतक पोप रोमसे निर्वासित रहा। इस समयमें धर्मसंस्थाकी बड़ी निन्दा हुई। इस समयके पोप अच्छे तथा परिश्रमी थे, पर सबके सब फ्रांस देशीय थे इससे लोगोंको इस बातका सन्देह होता था कि ये फ्रांसके राजाके आधिपत्यमें हैं। इस सन्देह तथा विलासप्रियताके कारण उनका अन्य राज्योंमें अपमान होने लगा।

जब पोप रोममें रहते थे तो उन्हें इटलीकी सम्पत्तिसे कुछ कर मिल जाया करता था। अविग्नानमें रहनेसे उनको इसका अधिक भाग मिलना बन्द हो गया। इस कमीको कर बढ़ाकर पूरा करना पड़ा, क्योंकि इधर शानदार पोपदर्बारका व्यय भी बढ़ गया था। उन लोगोंने द्रव्य एकत्र करनेका जो उपाय रचा उससे उनकी और भी अप्रतिष्ठा हुई। इन उपायोंमें पोपके दरबारियोंको समस्त यूरोपीय धर्म्म-स्थानोंमें नियुक्त करना, क्षमादान, विशपोंकी नियुक्ति तथा अभियोगोंके विचारके लिए अधिक शुल्क रखना सबसे घृणित थे।

धर्मसंस्थाके पदोंपर रहनेवाले बहुतसे विशप और एबट आदि अधिकारियोंकी आवश्यकतासे कहीं अधिक आय थी। अपनी आमदनी बढ़ानेके लिए पोप इन पदों-मेंसे जितनी अधिक हो सके, अपने अधिकारमें लाना चाहता था। उसने रिक्त पदों-पर पुनर्नियुक्ति करनेका अधिकार अपने हाथमें रखा था। वह लोगोंको धर्मसंस्थामें स्थान खाली होनेपर अधिकारी बना देनेका प्रलोभन देकर अपना अर्थ सिद्ध करने लगा। जिन लोगोंकी नियुक्ति इस प्रकार होती थी वे लोग "प्रोवाइजर" कहाते थे और ये लोग बड़े बदनाम थे। इनमेंसे कितने तो परदेशी होते थे। लोगोंको यही संदेह होता था कि इनकी नियुक्ति केवल करके लिए हुई है। ये धर्मपदके योग्य हैं या नहीं, इसका विचार नहीं किया गया है।

पोपके लगाये करोंका आंग्ल देशमें बड़ा प्रतिरोध किया गया, क्योंकि फ्रांस तथा आंग्ल देशसे युद्ध हो रहा था और पोप फ्रांसका पक्षपाती था। संवत् १४०९ (सन् १३५२ ई०)में पार्लमेण्टने एक नियम बनाया। इसके अनुसार पोपके नियुक्त किये हुए सम्पूर्ण धर्माधिकारी राजद्रोही समझे गये। जो कोई चाहे, इन्हें दण्ड दे सकता था, क्योंकि राजा तथा राज्यके विरोधी होनेसे इनकी रक्षाका कोई उपाय नहीं था। ऐसे-ऐसे नियमोंसे कोई लाभ न हुआ और पोप स्वेच्छानुसार अधिकारपद प्रदान कर अपनी तथा अपने दरबारियोंकी भलाई करता रहा। किसी न किसी बहानेसे आंग्ल देशका

द्रव्य अविग्नानतक पहुँच ही जाता था। राजा इसे नहीं रोक सका। सम्वत् १४३३ (सन् १३७६ ई०)में पार्लमेण्टने अनुसन्धान किया तो प्रकट हुआ कि जो कर राजाको दिये जाते थे उनसे पाँचगुना अधिक कर पोपको दिये जाते थे।

पोप तथा रोमन धर्मसंस्थाकी कड़ी आलोचना करनेवालोंमें आक्सफर्डका धर्मोपदेशक जान विक्लिफ सर्वश्रेष्ठ था। वह संवत् १३७७ (सन् १३२० ई०)में पैदा हुआ था, पर उसकी प्रसिद्धि संवत् १४२३ (सन् १३६६ ई०)में हुई। जब पंचम अर्वनने आंग्ल देशसे वह कर माँगा जो कि पोपका सामन्त होनेपर राजा जानने देनेका वचन दिया था तो पार्लमेण्टने उत्तर दिया कि बिना अनुमति लिये प्रजाको इस प्रकारके बन्धनमें डालनेका जानको कोई अधिकार नहीं था। विक्लिफके पोपके विरोध करनेका समय यहींसे प्रारम्भ होता है। उसने सिद्ध करना चाहा कि पोप तथा जानके मध्य जो सुलह हुई थी वह न्याययुक्त न थी। उसने इस बातकी शिक्षा देनी आरम्भकी कि यदि धर्मसंस्थाकी सम्पत्तिका दुरुपयोग हो तो राजा उसे जब्त कर सकता है और बाइबिलके अनुकूल काम करनेके अतिरिक्त पोपको और किसी बातका अधिकार नहीं है। दस वर्षके बाद पोपने विक्लिफके प्रतिकूल घोषणा निकाली। शीघ्र ही वह पोपपदके अस्तित्व, तीर्थयात्राओं तथा स्वर्गवासी साधु-महात्माओंकी पूजापर आक्षेप करने लगा। वह रूपान्तरी भावके * सिद्धान्तका भी खण्डन करने लगा।

वह केवल धर्माध्यक्षोंके उपदेशों तथा व्यवहारके दोषोंकी ही निन्दा नहीं करता था। उसने "उपदेशकों"की एक संस्था स्थापित की। इनका काम घूम-घूमकर परोपकार करके अपने उदाहरणसे उपदेशकों तथा महन्तोंको सुधारना था।

अपने प्रयत्नकी सफलताके लिए उसने 'बाइबिल'' का अनुवाद सरल आंग्ल भाषामें कराया। उसने आंग्ल भाषामें अनेक धर्मोपदेश तथा उपदेशपूर्ण पुस्तिकाएँ लिखी। आंग्ल भाषामें गद्यका वही जन्मदाता है। लोगोंका कहना है कि उसके "अति रम्य करुणा रस" तीव्र तथा ललित व्यंग्योक्तिसे तथा छोटे-छोटे और ओजस्वी वाक्योंके प्रभावजनक भावोंसे भाषाके दोष उत्तमतामें छिप जाते हैं। यद्यपि उस समय आंग्ल भाषा अपरिपक्व दशामें थी, फिर भी विक्लिफकी रचनाको आज भी पढ़ते समय हम लोग मुक्तकंठसे उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। उसके अनुयायी लोलार्ड कहाते थे। उसके सिद्धान्त पीछेसे 'ओपन एयर प्रीचर्स'

---

* Transubstantiation or change—एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें बदल जाना। ईसाई साहित्यमें यूकारिस्ट या भगवद्भोगकी विधिमें रोटीका ईसाके शरीर और शराबका उनके रुधिरके रूपमें बदल जानेका सिद्धान्त 'रूपान्तरी भाव' का सिद्धान्त कहा जाता है।

(खुली हवामें प्रचारकों) द्वारा खूब फैले। लूथरने भी फिर इन्हीं सिद्धान्तों-को अपनाया।

विक्लिफ तथा उसके "सरल उपदेशकों"पर यह अभियोग लगाया कि जिस असन्तोष तथा आराजकताके कारण कृषक-युद्ध आरम्भ हुआ थो उसको उभाड़नेवाले ये ही लोग हैं। चाहे यह अभियोग सच्चा था या झूठा, पर इसका परिणाम यह हुआ कि उसके कितने अमीर साथी उसका साथ छोड़कर चले गये। पर इससे तथा धर्मसंस्थाकी ओरसे प्राप्त परिवादसे भी उसे विशेष क्षति नहीं हुई। उसने संवत् १४४१ (सन्१३८४ ई०) में शान्तिपूर्वक देह त्यागी। उसकी मृत्युके उपरान्त उसके साथियोंपर अभियोग चलाया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि सबके सब ढीले हो गये। पर उसके सिद्धान्तोंका प्रचार बोहेमियामें दूसरे उत्साही सुधारक जान हुसने बड़े उत्साहसे किया। उसने धर्मसंस्थाको भी बहुत तंग किया। विक्लिफ उन सुधारकोंमें प्रथम है जिन लोगोंने पोपकी प्रधानता तथा रोमकी धर्मसंस्थाके व्यवहारोंका खण्डन किया। इन्हींका खण्डन डेढ़ सौ वर्ष बाद लूथरने मध्य युगकी धर्मसंस्थाके प्रतिकूल अपने प्रबल आन्दोलनमें किया।

संवत् १४३४ (सन् १३७३ ई०)में नवाँ ग्रेगरी पुनः रोम लौट आया। पोप लोग सत्तर वर्षपर्यन्त निर्वासित रहे थे और इस बीचमें ऐसी बहुत सी बातें हुई थीं जिनसे पोपके अधिकार तथा महत्त्वमें कमी हुई थी। पर अविग्नान रहनेसे पोपकी जो कुछ अप्रतिष्ठा हुई वह उसके रोम लौटनेके बादकी आपत्तियोंके सामने कुछ भी नहीं है।

रोम आनेके दूसरे वर्ष ग्रेगरीकी मृत्यु हुई। लोग दूसरा प्रधान नियुक्त करनेके लिए एकत्रित हुए। इनमेंसे अधिकतर फ्रांसके निवासी थे। नन लोगोंने देखा कि रोमकी दशा अति शोचनीय हो रही है। उसकी अवनत दशा देखकर और अवि-ग्नानके सुखसम्पन्न, मनोमोहक विलासोंकी याद कर उन्हें दुःख होने लगा। इससे इन लोगोंने ऐसा पोप चुनना चाहा जो पुनः फ्रांस चले। यहाँ तो यह प्रबन्ध हो रहा था, उधर रोमकी प्रजा धर्मसभाभवनसे* बाहर चिल्लाकर कह रही थी कि पोप-पदपर या तो रोमवासी या इटली निवासी ही नियुक्त किया जाय। अन्तको छठा अर्बन नामी एक साधारण इटलीवा महन्त पोप बनाया गया और यह आशा की गयी कि वह कार्डिनलोंकी इच्छाके अनुकूल कार्य करेगा।

नये पोपने शीघ्र ही प्रकट कर दिया कि उसका अविग्नान जानेका कोई विचार नहीं है। उसने धर्मसदस्यों (कार्डिनलों) के साथ कठोर व्यवहार किया और उनकी दशामें प्रबल सुधार करना चाहा। उसके व्यवहारसे वे सब घबराकर अनग्नी चले

*कानक्लेवके नामसे पुकारा जाता है।

गये और वहाँ जाकर घोषित किया कि हमने रोमकी जनताके भयसे अर्वनको चुन लिया था। उन लोगोंने अब एक नया पोप चुना। उसने सप्तम क्लेमेण्टकी उपाधि धारण की और वह अविग्नान चला गया और वहाँ ही उसने अपना दरबार स्थापित किया। अर्वन इन बातोंसे तनिक भी न घबराया और उसने अट्टाईस नये धर्मसदस्य बना लिये।

इस द्विविध चुनावसे जो धर्मसंस्थामें कलह आरम्भ हुआ वह चालीस वर्षतक चलता रहा। इससे पोपके अधिकारका चारों ओरसे विरोध होने लगा। पहली शताब्दियोंमें पोपके अनेक विरोधी होते थे जिनको राजा लोग नियुक्त करते थे। परन्तु असल पोप कौन था, इसका झगड़ा न था। पर इस समय यूरोप चक्करमें पड़ गया था। धर्मसदस्योंके कहनेके अनुसार अर्वनकी नियुक्ति बलपूर्वक करायी गयी थी, अतएव न्यायसम्मत न थी। इसका निर्णय करना बड़ा कठिन था। इस कारण किसीको भी निश्चय नहीं था कि प्रतिद्वन्द्वी पोपोंमेंसे महात्मा पीटरका वास्तविक उत्तराधिकारी कौन है? अब धर्मसदस्योंकी दो संस्थाएँ (Two colleges of cardinals) थी। इनकी स्थिति पोपके चुनावके अधिकारपर निर्भर थी। स्वभावतः इटलीने अर्वनका पोपपदपर समर्थन किया। फ्रांस क्लेमेण्टकी आज्ञा मानता था। फ्रांस और आंग्ल देशमें विरोध था इसलिये आंग्ल देशने अर्वनका समर्थन किया। स्काटलैंडका आंग्ल देशसे विरोध था इसलिए उसने क्लेमेण्टका समर्थन किया।

इन दोनोंमेंसे प्रत्येकका अधिकार बराबर था। दोनों ईसामसीहके प्रतिनिधि बनते थे और धर्मसंस्थाके सम्पूर्ण अधिकारोंका उपयोग करना चाहते थे। वे दोनों एक दूसरेकी निन्दा करते थे और एक दूसरेको निकाल देनेका प्रयत्न करते थे। यह कलह पोपसे लेकर साधारण बिशप तथा एबटतकमें वर्तमान था। प्रत्येक स्थानमें प्रतिवादी धर्माधिकारी पादरी दोनों पोपोंकी ओरसे नियुक्त थे। इससे धर्मसंस्थामें विद्रोह उत्पन्न होने लगा। इससे पादरियोंकी तमाम बुराई प्रत्यक्ष होने लगी और विक्लिफ तथा उसके शिष्योंकी बतलायी हुई बुराइयोंकी समालोचना करनेवालोंको खुला मौका मिल गया। धर्मसंस्थाकी दशा बड़ी शोचनीय थी। इस विषयकी चारों ओर नाना प्रकारकी चर्चा होने लगी।

लोगोंको केवल इन बुराइयोंके सुधारकी ही नहीं, परन्तु पोपपदके अधिकारके संशोधनकी चिन्ता भी होने लगी इस अनिश्चित चालीस वर्षके कलहसे लोगोंकी मानसिक दशामें बड़ा परिवर्तन होने लगा और सोलहवीं शताब्दीकी धर्मक्रान्तिकी भूमिका तैयार हो गयी।

दोनों संस्थाओंके पोपों तथा सदस्योंने आपसमें संविधान कर इस प्रश्नको हल करना चाहा। जनतामें यह प्रश्न उठा कि 'ईसाई मतमें एक शक्ति ऐसी होनी चाहिये

जो पोपसे भी उच्च हो। क्या एक ऐसी समिति नहीं स्थापित की जा सकती जिसमें समस्त ईसाई धर्मके प्रतिनिधि हों और वह ईसाकी पवित्रात्मासे संचालित होकर पोपके कार्योंपर भी विचार करे।' पूर्वीय रोमन साम्राज्यमें ऐसी कई सभाएं समय-समय पर हुई थीं। ऐसी सभा सबसे प्रथम कान्स्टैण्टाइनके समयमें निकीयामें हुई थी। इन लोगोंने धर्मसंस्थाकी शिक्षाका प्रबन्ध किया था तथा सर्वसाधारण और पादरियोंके लिए नियम बनाये थे, पर इसका कुछ भी परिणाम न हुआ।

संवत् १४३९ (सन १३८१ ई०)में पेरिसके विद्यापीठने एक सर्वसाधारण सभाके लिए प्रस्ताव किया जो प्रतिस्पर्द्धी पोपोंके अधिकारोंका निर्णय कर ईसाई धर्मपर पुनः एक मुख्य नेताकी नियुक्ति करे।' इससे प्रश्न उठा कि सभा पोपसे उच्च है या नहीं? जिनका मत था कि यह सभा उच्च है उनका कहना था कि समस्त धर्मावलम्बियोंने ही धर्मसदस्योंको पोपके चुननेका अधिकार दिया है और जब इन लोगोंने ही पोपपदको नीचे गिरा दिया तो उनका हस्तक्षेप करना भी आवश्यक है और पवित्र आत्मासे प्रेरित धर्मावलम्बियोंकी सर्वसाधारण महासभा महात्मा पीटरके उत्तराधिकारी पोपसे कहीं श्रेष्ठ है। कुछ लोग इस मतका घोर प्रतिवाद करते थे। इन लोगोंका मत था कि पोपको सीधे ईसामसीहसे अधिकार मिले हैं। यद्यपि किसी समयमें इसने कुछ अधिकार सभाको दे दिया था, तथापि इसका अधिकार सदासे श्रेष्ठतम रहा है। कोई भी सभा जो पोपकी अनुमतिके प्रतिकूल होगी, सर्वसाधारण सभा नहीं कही जा सकती, क्योंकि रोमके विशप अथवा धर्मसंस्थाकी आज्ञा बिना कोई भी सभा समस्त धर्मावलम्बियोंकी नहीं हो सकती। पोपके अधिकारके संरक्षकोंका यह भी कहना था कि प्रधान न्यायकर्ता पोप ही है। वह किसी सभा या भूतपूर्व पोपके नियमोंमें उलटफेर भी कर सकता है। वह दूसरोंका फैसला कर सकता है, पर उसके कार्योंपर कोई विचार भी नहीं कर सकता।

बहुत दिनों-पर्यन्त दोनों संस्थावालोंमें इसी प्रकार बहुत विवाद और व्यर्थका संविधान होता रहा। अन्तको संवत् १४६६ (सन् १४०९ ई०)में पीसा नगरमें एक सभा इस कलहको शान्त करनेके लिए बैठी। बहुतसे धर्माध्यक्ष निमन्त्रणपत्रके उत्तरमें आये और बहुतसे राजाओंने सम्मिलित होकर बड़े उत्साहसे कार्य किया, पर इनके कार्यमें उतावलापन तथा नासमझी थी। इन लोगोंने बारहवें ग्रेगरी जिसकी नियुक्ति रोममें संवत् १४६३ (सन् १४०६ ई०)में हुई थी और अविग्नानके पोप तेरहवें बेनेडिक्टको जिसकी नियुक्ति संवत् १४५१ (सन् १३९४ ई०)में हुई थी, पीसामें निमन्त्रित किया। ये दोनों उपस्थित न हुए। लोगोंने इनपर धृष्टताका दोष इन्हें लगाकर पोपपदसे च्युत कर दिया। नया पोप चुना गया। एक वर्ष

बाद इसकी मृत्यु हुई। इसके बाद तेईसवां जान पोप हुआ। अपनी युवावस्थामें वह विख्यात तथा भाग्यशाली सैनिक था। जानकी नियुक्ति केवल उसके पराक्रमके कारण हुई थी। नेपिल्सके राजाकी आन्तरिक अभिलाषा रोमपर अधिकार कर लेनेकी थी। ऐसी अवस्थामें पोपकी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए किसी ऐसे ही मनुष्यकी आवश्यकता थी। बहिष्कृत दोनों पोपोंमेंसे किसीने भी इस सभाकी आज्ञा न मानी। ये दोनों कुछ न कुछ अधिकारका उपभोग अवश्य ही करते थे और कुछ न कुछ लोग इनके सहायक भी थे। इससे पीसाकी सभासे कलह तो शान्त न हुआ, प्रत्युत तीसरा पोप भी खड़ा हो गया जो ईसाई धर्मका प्रधान अधिपति होनेका दावा करने लगा।

अध्याय २१

कलहके समयके पोप

ग्यारहवाँ ग्रेगरी (सं: १४३०—१४३५)

सं: १४३४ में रोम लौट आया

म–निवासी

छठाँ अर्बन (सं० १४३५–१४४६)

ग्यारहवाँ बोनिफ़ेस (१४४६–१४६१)

ावचाँ इन्नोसेण्ट (१४६१–१४६३)

रहवाँ ग्रेगरी (१४६३–१४७२)

अविग्नान–निवासी

सातवाँ क्लेमेण्ट (१४३५–१४५१)

तेरहवाँ बेनेडिक्ट (१४५१–१४७४)

पीसाकी सभा द्वारा नियुक्त

पाँचवाँ अलेग्ज़ण्डर (१४६६–१४६७)

तेईसवाँ जान (१४६७–१४७२)

पाँचवाँ मार्टिन (१४७४–१४८८)

पीसाकी सभाका कुछ फल न हुआ। इससे ईसाई धर्मावलम्बियोंको दूसरी सभा करनी पड़ी। उस समय सम्राट् सिगिस्मण्डका बहुत प्रभाव था। इस कारण तेईसवें जानको अपनी इच्छाके प्रतिकूल मानना पड़ा कि यह सभा जर्मनीमें साम्राज्यकी राजधानी कान्स्टेन्स नगरमें हो। इस सभाका आरम्भ संवत् १४७१ (सन् १४१४ ई०) के अन्तमें हुआ। राष्ट्रीय सभाओंमें यह बहुत विख्यात है। यह सभा तीन वर्षतक होती रही। इसने समस्त यूरोपमें नया उत्साह पैदा कर दिया था। इसमें पोप और सम्राट्के अतिरिक्त तेईस कार्डिनल, तैंतीस आर्कबिशप तथा बिशप, एक सौ ड्यूक तथा अर्ल और सैकड़ों साधारण जन उपस्थित थे।

सभाके सामने तीन बड़े महत्त्वके कार्य उपस्थित थे। (१) वर्तमान कलहको दूर करना जिसमें वर्तमान तीनों पोपोंको निकालकर धर्मसंस्थाके लिए एक सर्वमान्य प्रधानका चुनना सम्मिलित था। (२) नास्तिकताको मिटाना, क्योंकि बोहीमियाका जान हस जो अपने कालका बड़ा प्रमाणित विद्वान् तथा प्रसिद्ध सुधारक था, धर्मसंस्थाको क्षति पहुँच रहा था (३) धर्मसंस्थामें पोपसे लेकर साधारण अधिकारीतकका साधारण सुधार करना।

(१) सभाके हाथमें सबसे भारी काम चिरकालके विद्वेषका शमन करना था। कान्स्टेन्समें तेईसवाँ जान बड़ा बेचैन था। उसको भय था कि पदत्यागके लिए बाध्य किये जानेके अतिरिक्त मेरे सन्देह-जनक अतीतके विषयमें जाँच-पड़ताल भी की जायगी। अपने कार्डिनलोंको अकेला छोड़कर वह चैत्र (मार्च) मासमें वेश बदलकर कान्स्टेन्ससे भागा। उसके भाग जानेसे सभाको भी भय था कि कहीं पोप उसकी शक्तिके बाहर होकर सभा तोड़नेका प्रयास न करे, इसपर संवत् १४७२ (४ अप्रैल सन् १४१५ ई०)के २४ चैत्र को सभाने एक घोषणापत्र निकाला जिसमें उसने अपने अधिकारको पोपसे श्रेष्ठ बतलाया। उसने घोषित किया कि सर्वसाधारणकी सभाको सीधे ईसामसीहसे अधिकार मिला है। इससे प्रत्येक मनुष्य और पोप भी उसका अधिकार न माननेसे दण्डका भागी होगा।

जानके ऊपर अनेक दोषारोपण किये गये और उसे नियमपूर्वक बहिष्कृत किया गया। उसने सभाका विरोध किया, पर उसे विशेष सहायता न मिली। इस कारण अन्तमें उसने अपनेको बिना किसी शर्तके सभाके हाथ समर्पण कर दिया। रोमन पोप बारहवें ग्रेगरीने सावन (जुलाई) मासमें स्वयं पदत्याग किया। तीसरे पोप तेरहवें बेनिडिक्टने पदत्याग करनेसे स्पष्ट इनकार किया। उसके समर्थक केवल स्पेननिवासी थे। सभाने इन लोगोंको बेनेडिक्टका साथ छोड़नेको बाधित किया और कहा कि अपना दूत कान्स्टेन्समें भेजो। तदनुसार संवत् १४७४ (जुलाई सन्

१४१७)के सावनमें बेनेडिक्ट पदच्युत किया गया और दूसरे वर्ष नये पोप पञ्चम मार्टिनकी कार्तिकमें नियुक्ति हुई । इस प्रकार इस प्राचीन कलहका अन्त हुआ ।

प्रथम वर्ष कान्स्टेन्सकी महासभा कलहशान्ति तथा नास्तिकताके दमनका उद्योग करती रही। विक्लिफकी मृत्युके थोड़े ही दिन बाद राजा द्वितिय रिचर्डका विवाह बोहीमियाकी राजकुमारीसे हुआ। इस सम्बन्धसे आंग्ल देश तथा बोहीमियाको परस्पर मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ। बोहीमियामें भी कुछ लोग ऐसे थे जो धर्म-संस्थाका सुधार चाहते थे। इस सम्मेलनसे आंग्ल देशीय सुधारकार्यपर बोहीमिया-वासियोंकी भी दृष्टि पड़ी। वे पहलेसे ही चर्चके सुधारपर दृष्टि लगाये हुए थे। इनमें सबसे अधिक विख्यात जान हस था। इसका जन्म संवत् १४२६ (सन् १३६९ ई०) में हुआ था। इसे बोहीमियन जातिकी उन्नति और सुधारके प्रति विशेष उत्साह था, इन कारणोंसे प्रेग विद्यापीठमें इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उससे इसका बड़ा सम्बन्ध था।

इसका सिद्धान्त था कि ईसाइयोंको उन लोगोंका आज्ञापालन न करना चाहिये जो संसारमें पाप कर रहे हैं और स्वयं स्वर्ग पानेकी आशा नहीं रखते। इस विचार-का धर्मसंस्थावालोंने घोर प्रतिवाद किया। उनका कहना था कि इससे शान्ति तथा अधिकार नहीं रह सकता। उनके कहनेके अनुसार किसी नियुक्त अधिकारीके अधिकारको हम लोग इस कारणसे नहीं मानते कि वह योग्य है वरन् इस कारण कि वह न्याय-व्यवस्थाके अनुसार शासन करता है। सारांश यह कि जान हसकी शिक्षासे केवल विक्लिफके आन्दोलनका ही प्रचार नहीं होता था परन्तु शासन-प्रणाली तथा धर्मसंस्थाको भी घोर क्षति पहुँचती थी।

जान हसको पूर्ण विश्वास था कि वह सभाके सदस्योंको अपने मन्तव्यकी सत्यताका भली भाँति विश्वास करा देगा, इससे वह कान्स्टेन्स गया। उसको सम्राट् सिगिस्मण्डने अभयपत्र दिया जिसमें लिखा था कि कोई भी उसके साथ किसी प्रकारका असद्व्यवहार न करे और उसकी जिस समय इच्छा हो, कान्स्टेन्स छोड़कर कहीं भी जा सके। इसके होते हुए भी वह संवत् १४७१ (दिसम्बर सन् १४१४ ई०) के पौषमें बन्दी कर लिया गया। उसके साथ जो व्यवहार किया गया उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मध्ययुगमें धार्मिक मतभेदसे लोग किस प्रकार घृणा करते थे। अपने अभयपत्रके प्रतिकूल व्यवहारको न सहकर सम्राट्ने घोर प्रतिवाद किया पर सभाने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि नास्तिकताके अभियोगीको दिये अभयवचनका पालन आवश्यक नहीं माना जा सकता। नास्तिक लोग राजाके अधिकारके बाहर हैं। सभा-ने यह भी कहा कि कैथोलिक धर्मके प्रतिकूल किसी भी वचनका पालन नहीं किया जायगा। इन सब कारणोंसे सम्राट् सिगिस्मण्ड हसकी रक्षा नहीं कर सका। इस-

से प्रकट होता है कि उस समय नास्तिकताका अपराध हत्याके अपराधसे भी बड़ा समझा जाता था और लोगोंका मत था कि यदि सिगिस्मण्ड हसके अभियोगका प्रतिरोध करता तो वह स्वयं भी अपराधी समझा जाता।

हमारी दृष्टिसे हसके साथ बहुत कठोर व्यवहार किया गया पर सभाके सदस्यों-की दृष्टिसे उसे बहुत सुविधाएँ दी गयी थीं। उसे सर्वसाधारणके सामने अपना मत प्रकट करनेका अवसर दिया गया। सभाकी इच्छा थी कि हस अपने मतसे फिर जाय, पर वह सहमत न हुआ। अन्तमें सभाने उसके लेखोंसे उसके कुछ मन्तव्यों-का संग्रह किया और उसका अपराध चिताया और कहा कि "इन विचारोंको छोड़ दो, इनकी शिक्षा कभी मत दो तथा इनके प्रतिकूल उपदेश करनेका वचन दो"। सभा-ने इस बातका विचार नहीं किया कि उसका मन्तव्य न्यायसंगत है या नहीं, उसने केवल इसी बातपर ध्यान दिया कि उसका मत धर्मसंस्थाके मतके अनुकूल है या नहीं।

सभाने उसे घोर नास्तिक ठहराया। संवत् १४७२ के २४ मीन (६ अप्रैल सन् १४१५ ई०) को वह नगरके द्वारके बाहर एक बार फिर लाया गया और उसे अपना मार्ग बदल देनेका एक और अवसर दिया गया पर उसने स्वीकार नहीं किया। वह पुरोहितपदसे च्युत कर दिया गया और सरकारके हाथ सौंप दिया गया कि उसपर नास्तिकताका अभियोग चलाया जाय। सरकारी शासकोंने भी अपनी ओरसे कोई अनुसन्धान नहीं किया। उन लोगोंने सभाकी बातको सत्य मानकर हसको जीता जला दिया। उसकी राख राइन नदीमें फेंक दी गयी कि कहीं उसके अनुयायी उसकी राखकी भी पूजा न करने लगें।

हसकी मृत्युसे बोहीमियामें सुधारकोंको नया उत्साह मिला। कुछ वर्ष बाद जर्मनोंने बोहीमियाके प्रतिकूल धार्मिक लड़ाई आरम्भ की। इन दोनों जातियोंमें ऐसा विरोध पैदा हो गया कि उसकी जड़ अबतक ज्योंकी त्यों बनी है। सुधारक बड़े वीर निकले। अनेक भीषण रोमांचकारी लड़ाइयोंके बाद उन लोगोंने शत्रुको अपने देशसे भगाकर जर्मनोंपर भी आक्रमण किया।

कान्स्टेन्सकी सभाका तीसरा बड़ा कार्य धर्मसंस्थाका सुधारना था। जानके भाग जानेके पश्चात् इसने पोपके सुधारका भी कार्य अपने हाथमें लिया। धर्मसंस्था-की बुराइयोंको भी कम करनेका यह अच्छा अवसर था। सभामें सर्वसाधारणके प्रतिनिधि थे। प्रत्येक मनुष्यको आशा थी कि यह धर्मसंस्थाके समस्त दोषोंको जो उस समय अधिक प्रचण्ड हो गये थे, दूर करेगी। कितने सज्जनोंने पादरियोंके घृणित कुव्यवहारोंकी कड़ी समालोचना कर कितनी पुस्तकें और पत्र निकाले। ये सब बुरा-इयाँ चिरकालसे चली आ रही थीं। इनका वर्णन पिछले अध्यायोंमें किया जा चुका है।

यद्यपि दोषोंको सभी लोग जानते थे परन्तु इनका बंद करना या उचित सुधार करना सभाने अपनी शक्तिसे बाहर पाया। तीन वर्षके अपने सब श्रमको निष्फल जानकर सभाके सम्पूर्ण सदस्य थक कर हताश हो चुके थे। अन्तको संवत् १४७४ के २२ आश्विन (९ अक्तूबर सन् १४१७ ई०) को उन लोगोंने यह आज्ञापत्र निकाला कि धर्मसंस्थाकी समस्त बुराइयाँ सभाके पहले अधिवेशनोंकी उपेक्षा करनेसे ही उत्पन्न हुई हैं। अब कमसे कम प्रत्येक दशवें वर्ष सभा होनी चाहिये। इससे यह आशा होने लगी कि जिस प्रकार आधुनिक समयमें आंग्ल देशमें पार्लमेण्ट तथा फ्रांसमें सर्वसाधारण समाजने राजाके अधिकारोंको कम कर दिया उसी प्रकार इस समासे पोपके अधिकार भी कम हो जायेंगे।

इस आज्ञापत्रके निकालनेके पश्चात् सभाने विशेष सुधार करने योग्य दोषोंकी सूची बनायी। इस सभाके विसर्जित होनेपर नये पोपने अपने कुछ सदस्योंके साथ इनपर विचार किया। जिन प्रश्नोंकी ओर सभाका ध्यान गया था उनमें प्रधान ये थे:—सभामें कितने धर्मसदस्य और किस-किस जातिके होने चाहियें? पोपको किस-किस पदके अधिकारियोंकी नियुक्तिका अधिकार है? उसके न्यायालममें कौन-कौन अभियोग लाये जा सकते हैं? किन अपराधोंके लिए पोप पदच्युत किये जा सकते हैं? नास्तिकताका लोप किस प्रकार किया जा सकता है?

कलह-शमन करनेके सिवा सभाने कोई विशेष कार्य नहीं किया। उसने हसको जला तो अवश्य डाला पर इससे नास्तिकताका लोप नहीं हुआ। वह तीन वर्ष-पर्यन्त धर्मसंस्थाके दोषोंके सुधारपर विचार करती रही पर उसमें उसे सफलता न प्राप्त हुई। बादको पोपने सुधारकी कई घोषणाएँ निकालीं, पर इससे भी धर्मसंस्थाकी दशा न सुधरी।

जिन लोगोंने शस्त्रके बलसे बोहीमियावासियोंको कट्टर ईसाईमतके पथपर लाना चाहा उनका बोहीमियावासियोंसे कठिन संघर्ष होता रहा। ये लोग अपने निश्चयोंपर ऐसे कटिबद्ध थे कि अन्य देशवालोंका भी ध्यान इनकी ओर खिंच गया और बड़ी सहानुभूति भी प्रकट होने लगी। संवत् १४८८ (सन् १४३१ ई०) में इनके प्रतिकूल अन्तिम धार्मिक युद्ध हुआ जिसका भीषण अन्त हुआ। मजबूर होकर पंचम मार्टिनने नास्तिकोंके साथ व्यवहारनीतिका निर्णय करनेके लिए सभा निमन्त्रित की। उसकी बैठक बेसलमें हुई और यह भी अट्ठारह वर्षसे कम न बनी रही। आरम्भमें वह इतनी प्रभावशाली हो गयी कि पोपका अधिकार भी उसके सामने तुच्छ हो गया। संवत् १४९१ (सन् १४३४ ई०) में वह अपने अधिकारकी चरम सीमापर पहुँच गयी थी। अब उसने बोहीमियाके सुधारवादियोंके उदारदलसे सन्धि कर ली। पर चतुर्थ युजीनका सभासे विरोध बना ही रहा। संवत् १४९४

(सन् १४३७ ई०) में पोपने इस सभाको विसर्जित करनेकी घोषणा करके दूसरी सभा फेरारामें निमन्त्रित की। वेसलकी सभाने पोपको पदच्युत कर दूसरा प्रतिद्वन्द्वी पोप नियुक्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपवालोंको सर्वसाधारणकी सभासे अश्रद्धा हो गयी। धीरे-धीरे यह सभा टूट गयी और संवत् १५०६ (सन् १४४९ ई०) में वास्तविक पोप पुनः अधिपति मान लिया गया।

इधर फेराराकी सभाने पश्चिमीय तथा पूर्वीय यूरोपकी धर्मसंस्थाओंको मिलाने-की कठिन समस्या हाथमें ले ली थी। ओटोमान तुर्क लोगोंने कुस्तुन्तुनियाके पश्चिम प्रदेशोंपर विजय-लाभ कर पूर्वीय यूरोपपर अधिकार जमा लिया था। पूर्वीय सम्राट्-के मन्त्रियोंने कहा कि यदि पूर्वीय तथा पश्चिमीय धर्मसंस्थाओंमें मेल हो जायगा तो पश्चिमीय धर्मसंस्थाका पोप मुसलमानोंका आक्रमण रोकनेके लिए पश्चिम प्रदेशोंसे सैनिक देगा। जब पूर्वीय धर्मसंस्थाके प्रतिनिधि फेरारामें पश्चिमी धर्मसंस्था-के प्रतिनिधियोंकी सभामें उपस्थित हुए तो ज्ञात हुआ कि दोनोंके मतमें कुछ थोड़ा ही भेद है। परन्तु धर्मसंस्थाओंके प्रधान अधिपतिका प्रश्न बड़ा जटिल था। फिर भी एक प्रकारका संयुक्त नियम बनाया गया जिससे सब सहमत थे। उसके अनुसार पूर्वीय धर्मसंस्थाने पोपको अपना प्रधान माना पर उसके भी प्रधान अध्यक्षके अधि-कार सुरक्षित रहे।

पूर्वीय तथा पश्चिमीय धर्मसंस्थाके परस्पर विभेद मिटाकर मेल करा देनेके कार्यके लिए युजीनकी बड़ी प्रशंसा हुई। उधर जब यूनानके दूत घर लौटे तो लोगों-ने उनकी बड़ी निन्दा की। फेराराकी सभामें जो त्याग इन लोगोंने किया था उसके लिए, इन्हें डाकू लोग चोर तथा मातृघातक कहने लगे। इस सभाके मुख्य परिणाम ये हुए,—(१) वेसलकी सभाके विरोध करनेपर भी पोप पुनः ईसाई मतका प्रधान अध्यक्ष हो गया। (२) कुछ यूनानी लोग इटलीमें रह गये और उन्होंने यूनानी साहित्य-के लिए उत्साह बढ़ाया।

पन्द्रहवीं शताब्दीमें फिर कोई सभा न बैठी। पोप लोग स्वतन्त्रतापूर्वक इटलीके राज्यमें अपनी स्थिति जमाने लगे। पंचम निकोलस तथा अन्य पोपोंने कला तथा साहित्यके विशेष विद्वानोंका अच्छा आदर किया। यूरोपके इतिहासमें संवत् १५०० (सन् १४५० ई०)से लेकर धर्मसंस्थाके प्रतिकूल जर्मनीके विद्रोहके आरम्भतकके सत्तर वर्षका काल पोपोंके लिए बड़े महत्वका था। इस समयमें पोप राज्यकार्यमें अपना तथा अपने सम्बन्धियोंका अधिकारस्थापन करनेमें जी-जानसे लग गये थे और अपनी राजधानीकी भी बड़ी उन्नति कर रहे थे।

अध्याय २२

इटलीके नगर और नवयुग

जिस समय आंग्ल देश तथा फ्रांस शतवर्षीय युद्धमें पड़कर पारस्परिक कलह मिटा रहे थे और जर्मनीके छोटे-छोटे राज्य बिना नेताके अपने मोटे प्रश्न हलकर रहे थे, इटली यूरोपकी सभ्यताका केन्द्र बना हुआ था। इसके नगर, विशेषकर फ्लारेन्स, वेनिस, मिलन इत्यादि इतने समृद्ध तथा उन्नत हो रहे थे कि जिसका आल्प्स पर्वतके दूसरी तरफवालेको स्वप्न भी नहीं था। इस देशमें कला तथा साहित्यकी इतनी अधिक उन्नति हुई थी कि इस समयका इतिहासमें एक विशेष नाम है। वह नाम नवयुग, "नूतन जन्म" है। प्राचीन यूनानकी भाँति इटली के नगरोंमें भी छोटे-छोटे राज्य थे। इनका अपने ढंगका जीवन तथा अपनेही ढंगका प्रबन्ध था। रोम तथा यूनानके कृतियोंके लिए पुनर्जागृति तथा इटलीके उन्नत शिल्पियों तथा कारीगरोंकी विविध भाँतिकी विचित्र मूर्ति तथा गृहनिर्माण-कलाके विषयमें कुछ कहनेके पूर्व इन नगरोंके सम्बन्धमें कुछ थोड़ासा कह देना आवश्यक है।

जिस प्रकार होहेन्स्टाफेनवंशी राजाओंके समयमें इटलीका मानचित्र तीन भागोंमें बँटा था उसी प्रकार उसकी दशा चौदहवीं शताब्दीके आरम्भमें भी थी। दक्षिणमें नेपल्सका राज्य था। उसके बाद धर्मसंस्थाका राज्य था। यह प्रायद्वीपके बीचो-बीच सीधा चल गया था। उत्तर तथा पश्चिममें छोटे-छोटे नगरोंके समूह थे। हम इन्हींका थोड़ा वर्णन करेंगे।

इनमेंसे वेनिस सबसे विख्यात था। यूरोपके इतिहासमें यह भी पेरिस तथा लन्दनसे समताका है। यह अपूर्व नगर इटलीसे दो मीलकी दूरीपर एड्रियाटिक समुद्रके छोटे-छोटे बालुकामय टापुओंपर बसा है। जिस प्रकार न्यूजरसीसे दक्षिणका अटलैन्टिक महासागरका तट समुद्रकी लहरोंसे एक बालूके टीले द्वारा रक्षित है, उसी प्रकार यह भी सुरक्षित है। संभवतः ऐसा स्थान ऐसे विशाल नगरके लिए कभी भी पसन्द न किया जाता। उसकी निर्जनता और दुष्प्रवेश्यताके कारण वहाँ बसना वहाँके प्रथम निवासियोंको बहुत अच्छा प्रतीत हुआ, क्योंकि पन्द्रहवीं शताब्दीमें असभ्य हूणोंके आक्रमणोंसे व्याकुल हो अपना देश छोड़कर इन लोगोंने इसी स्थानमें पूरी शरण पायी। ज्यों-ज्यों समय गुजरा, यह स्थान व्यवसायके लिए भी उपयोगी प्रतीत होने लगा। धर्मयुद्ध-यात्राओंके पूर्वसे ही वेनिस वैदेशिक व्यवसायोंमें लग चुका था।

इसके उत्साहने इसे पूरबका मार्ग दिखलाया और आरम्भमें ही इसने एड्रियाटिकके पार पूरबमें भी अपना विस्तार फैला लिया था। पूरबके संसर्गके प्रभावोंका प्रत्यक्ष प्रमाण सेण्टमार्ककी गिर्जामें मिलता है। उसके गुम्बज तथा सुन्दर शिल्पको देखनेसे ही इटलीकी अपेक्षा कुस्तुन्तुनिया अधिक याद आता है।

पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें वेनिसवालोंको विदित होने लगा कि इटली प्रदेश-से सम्बन्ध करना भी आवश्यक है। उसकी वस्तुएँ उत्तरमें आल्प्स पर्वतके मार्गोंसे देसावरको जाती थीं। उसने देखा कि इन मार्गोंपर उसके प्रतिद्वन्द्वी मिलन नगरको अधिकार मिलनेसे उसकी बड़ी भारी व्यावसायिक क्षति होगी। भोजनकी सामग्री भी वह शायद एड्रियाटिकके पारके अपने अधीन पूर्वीय प्रदेशोंसे न मँगाकर आसपासके नगरोंसे ही ले लेना अच्छा समझता था। वेनिसके अतिरिक्त इटलीके समस्त नगरोंने कुछ न कुछ प्रदेश अपने अधिकारमें कर लिया था। यद्यपि वेनिस प्रजातन्त्र कह-लाता था तथापि इसका शासन कुछ थोड़ेसे लोगोंके ही हाथमें जा रहा था। संवत् १३५७ (सन् १३०० ई०) में कुछ एक सर्दारोंके अतिरिक्त शासन सभामेंसे समस्त नागरिकोंको निकाल बाहर किया गया। संवत १३६८ (सन् १३११ ई०)में दस सदस्योंकी प्रसिद्ध सभा, 'दशावरा' की उत्पत्ति हुई। इसके सब सदस्य एक वर्षके लिए बड़ी सभा द्वारा चुने जाते थे। इस छोटी सभाके हाथमें जातीय तथा विजातीय समस्त राज्यप्रबन्धका कार्य दिया गया था। यह सभा प्रजातन्त्रके प्रधान डोज या ड्यूकके साथ प्रबन्धकार्य किया करती थी। यही दोनों अपने कार्योंके लिए बड़ी सभाके प्रति उत्तरदायी थे। इस प्रकार राज्यप्रबन्ध बहुत थोड़े लोगोंके हाथमें था। इसकी कार्यवाही गुप्त रूपसे चलायी जाती थी। इस कारण फ्लोरेन्सकी भाँति स्वतंत्र विवाद तथा अनेक विद्रोहोंका यहाँ नाम-निशान भी नहीं थ। वेनिसके वणिक् अपने व्यवसायमें संलग्न थे। उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि राज्य अपना प्रबन्ध हम लोगोंकी सहायता बिना ही स्वयं चलावे तो अच्छा है। यद्यपि सभामें बहुत थोड़े लोगोंके हाथमें अधिकार था, तथापि इटलीके और नगरोंकी भाँति यहाँ विद्रोह नहीं होता था। वेनिसके प्रजातन्त्र राज्यने शासनका प्रबन्ध संवत् १३५७ (सन् १३०० ई०) से लेकर संवत् १८५४ (सन् १७९७ ई०) पर्यन्त एक ही प्रकारका रखा। अन्तको नेपोलियनने इस राज्यको ही नष्ट कर डाला।

अब मिलन नगरकी दशा देखिये। यह उन नगरोंमेंसे था जिनमें ऐसे स्वेच्छा-चारी तथा प्रजापीड़क नरेश राज्य करते थे जिन्होंने नगरपर धोखे या बलसे अधि-कार प्राप्त कर लिया था और उसका सब प्रबन्ध अपने लाभके हेतु करते थे। जिन नगरोंने फ्रेडरिक बारबरोसाके प्रतिकूल संघ बनाया था, वे चौदहवीं शताब्दीके आरम्भ-में छोटे-छोटे स्वेच्छाचारी शासकोंके अधीन हो गये थे। ये शासक आपसमें बराबर

युद्ध किया करते थे और अपने पड़ोसी नगरोंसे कभी हार जाते थे और कभी जीत जाते थे। विस्कोण्टीके वंशजोंने मिलन नगरपर अपना अधिकार कर लिया। इनके कानूनोंसे ही इटलीके नगरमें होनेवाले अत्याचारोंका अच्छा नमूना मिल जाता है।

विस्कोण्टीवंशके अधिकारका प्रथम संस्थापक मिलनका आर्क-बिशप था। संवत् १३३४ (सन् १२७७ ई०)में उसने जिस वंशके हाथमें नगरका अधिकार था उसके प्रधान लोगोंको लोहेके तीन कठघरोंमें बन्द कर दिया और अपने भतीजे मेटियो विस्कोण्टीको सम्राट्का प्रतिनिधि नियत कराया। थोड़े ही दिनोंमें मेटियो मिलनका राजा माना जाने लगा और उसका पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। डेढ़ सौ वर्षोंतक उसके वंशजोंमें कोई न कोई उस अधिकारको सुरक्षित रखने योग्य होता रहा।

इनमें सबसे प्रसिद्ध गियन गेलियजो था। उसने अपने चाचाको जो उस समय विस्कोण्टीके विस्तृत राज्यके एक विस्तृत भागपर शासन करता था, कैद कर लिया और विषसे मारकर आप राजगद्दीपर बैठ गया। कुछ कालतक यह प्रतीत होता था कि वह समस्त उत्तरीय इटलीको जीत लेगा, पर यह न हो सका, क्योंकि फ्लोरेन्सके प्रजातन्त्रराज्यने उसे आगे बढ़नेसे रोका। इसीके पश्चात् उसकी असामयिक मृत्यु हो गयी। गियनमें इटलीके स्वेच्छाचारी शासकोंके सम्पूर्ण गुण वर्तमान थे। वह बड़ा चतुर तथा सफल शासक था और उसने अपने राज्यका प्रबन्ध बड़ी निपुणतासे किया था। उसकी सभामें बड़े-बड़े पण्डित वर्तमान थे। उसके बनवाये हुए सुन्दर-सुन्दर भवनोंसे उसकी कलाप्रियताका पता लगता है। इतना होनेपर भी वह किसी स्थिर नियमपर कार्य नहीं करता था। जिन अभिलषित नगरोंको वह न तो जीत सका था और न खरीद सकता था, उनको अपने अधिकारमें करनेके लिए घृणितसे घृणित उपायोंका भी प्रयोग करता था।

इटलीके स्वेच्छाचारी क्रूर शासकोंके दारुण व्यवहारोंके कितने ही दृष्टान्त वर्तमान हैं। यह जान लेना आवश्यक है कि इनमेंसे सचमुच कानूनके अनुसार बहुत कम राजा थे। अधिकतर तो वे लोग राज्यको अपने अधिकारमें तभीतक रखनेकी आशा रखते थे जबतक उनमें प्रजाको दबाये रखने तथा अपने पड़ोसी राज्यापहारियोंसे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति रहती। इसमें बुद्धिमत्ताकी विशेष आवश्यकता थी। अनेक शासकोंने प्रजाको सुखी रखना लाभप्रद तथा कलाविशारदों और विद्वानोंका आदर करना अपने लिए प्रतिष्ठाजनक पाया। पर वे अपने बहुतसे कट्टर शत्रु भी पैदा कर लेते थे और प्रायः अपने पार्श्ववर्तियोंपर ही संदेह किया करते

थे। उनको इस बातकी सदा चिंता रहती थी कि कहीं कोई विष पिलाकर या सिर काटकर हत्या न कर डाले।

इटलीके नगर बहुधा किरायेके सैनिकों द्वारा युद्ध जारी रखते थे। जब कभी किसीपर आक्रमण करनेका विचार होता था तो किसी भी सेनानायकसे ठेका कर लिया जाता था और वह आवश्यक सेनाका प्रबन्ध कर देता था। दोनों तरफकी सेनाएँ किरायेकी होती थीं इस कारण युद्धमें उन्हें अधिक उत्साह नहीं होता था। इसीलिए युद्धमें विशेष रक्तपात भी नहीं होता था। दोनों प्रतिपक्षियोंका प्रयत्न बिना कोई अनावश्यक कष्ट दिये एक दूसरेको बन्दी करनेका होता था।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कोई सेनाध्यक्ष किसी नगरको अपने नियोजकके लिए जीतकर स्वयं उसका स्वामी बन बैठता था। संवत् १५०७ (सन् १४५०) ई० में मिलनमें ऐसा ही हुआ। विस्कोण्टीके वंशके लोप होनेपर वहाँके निवासियोंने फ्रांसके स्फोर्जा नामी किसी सेनानायकको किरायेपर रखा और उसकी सहायतासे वेनिस नगरसे युद्ध करना चाहा, क्योंकि इस समय वेनिसका राज्य मिलनपर्यन्त विस्तृत था। स्फोर्जाने वेनिसवालोंको मिलनसे भगा दिया और स्वयं शासक बन गया। अब मिलनवालोंने देखा कि इसे हटाना सहसा असम्भव है। तबसे वह और उसके उत्तराधिकारी ही नगरके राजा बन गये।

फ्लोरेंसके प्रसिद्ध इतिहासलेखक मेकियावेलीने प्रिंस नामक एक छोटासा राजनीति-विषयक ग्रंथ लिखा है। इसके पढ़नेसे स्वेच्छाचारी, दुर्दान्त तथा क्रूर शासकोंकी दशा तथा शासनप्रणालीका पूरा पता चलता है। इस पुस्तकको उसने तत्कालीन शासकोंके लिए प्रामाणिक पाठ्यपुस्तक बनाया था। उसने इस पुस्तकमें गम्भीर होकर इस बातका सविस्तार वर्णन किया है कि कोई स्वेच्छाचारी राजा किसी राज्यको एक बार अपने अधिकारमें करके पुनः उसका शासन किस भाँति करे। उसने इस समस्याको भी हल किया है कि यदि राजा लोग अपने प्रतिज्ञानुसार वचन पूरा न कर सकें तो उनको क्या करना चाहिये और आवश्यकता पड़नेपर कितने नगरवासियोंको वह निश्चिन्त होकर मार सकते हैं। मेकियावेलीने दिखलाया है कि जिन अत्याचारी शासकोंने अपने वचनोंका पालन नहीं किया, वरन् अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको बिना किसी संकोचके मार डाला, वे अपने विवेकी प्रतिद्वन्द्वियोंसे कहीं अधिक लाभमें रहे।

इटलीके नगरोंमें फ्लोरेन्स सबसे प्रसिद्ध है। इसका इतिहास वेनिस नगर तथा मिलन नगरके स्वेच्छाचारी शासनके इतिहाससे कई अंशोंमें भिन्न है। फ्लोरेन्स नगरके समस्त निवासी शासनप्रबन्धमें भाग लेते थे। इसका परिणाम यह होता था कि राज्यव्यवस्थामें अधिक परिवर्तन होता था तथा भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलोंमें

स्पर्धा लगी रहती थी। जो दल प्रधान होता था वह अपने प्रतिद्वन्द्वी दलके मुख्य नेताओंको नगरसे निकाल देता था। फ्लोरेन्सनिवासीके लिए देशनिर्वासनका दण्ड सबसे कठिन होता था, क्योंकि निवासस्थानके अतिरिक्त वे उसे अपना देश समझकर उससे विशेष प्रेम करते थे।

पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्यसे फ्लोरेन्स नगर मेडिचि वंशके प्रभावमें आ गया। इसके व्यक्तियोंने राजनीतिक बातोंमें अत्यन्त चालाकीसे काम लिया। प्रतिनिधियों तथा पदाधिकारियोंके चुनावको गुप्त रूपसे अपने अधिकारमें रखकर ये लोग नगरका शासन करते थे। नगरनिवासियोंको सन्देह भी नहीं होता था कि उन लोगोंका समस्त अधिकार उनके हाथसे चला गया है। इस वंशका सबसे विख्यात सरदार लोरेन्जो था। उसके शासनकालमें फ्लोरेन्स साहित्य तथा कलामें उन्नतिके शिखरपर पहुँच गया था।

जो लोग आज फ्लोरेन्स देखने जाते हैं उनके सामने नवयुग समयके युगपद्वर्ती भिन्न परिस्थितियोंका दृश्य आता है। राज-पथके दोनों ओर सरदारोंके ऊँचे-ऊँचे भवन हैं जिनकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण बहुत समयतक अशान्ति विराज रही थी। इनके नीचेका भाग दुर्गकी भाँति विशाल पत्थरोंसे बड़ा दृढ़ बना है और खिड़कियाँ भी बन्दीघरकी भाँति लोहेके छड़ोंसे जकड़ी हैं। तब भी इनके भीतर विलासिता तथा विशेष भोग सम्पदाका सामान रहता था। अराजकता तथा अशान्तिसे रक्षा करनेके लिए धनी लोग अपने भवन भी दुर्गकी भाँति बनाते थे पर उस समयकी गिर्जाओं, आलीशान नगरभवनों तथा कौतुकागारोंके देखनेसे प्रकट होता है कि शिल्पकलाकी जो उन्नति उस अशान्तिके समयमें थी उतनी पहले कभी भी नहीं हुई थी। फ्लोरेन्स सभी कलाओंका केन्द्र था। दूसरे-दूसरे देश विद्यामें इटलीसे बढ़ गये पर एथेन्सके अतिरिक्त और इसके सदृश दूसरे किसी नगरके निवासी इतने दक्ष, चतुर, बुद्धिमान्, मर्मवेदी तथा सूक्ष्मदर्शी नहीं हुए। इटलीनिवासियोंकी सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी भावोंका प्रतिबिम्ब फ्लोरेन्सनिवासियोंमें साररूपसे वर्तमान था। केवल वे ही नहीं, परन्तु रोम, लम्बार्डी तथा नेपिल्सके निवासी भी उनकी इस उच्चताको भली भाँति जानते थे। सम्पूर्ण इटली देशने साहित्य, कला, कानूनविद्या, दर्शन तथा विज्ञानमें फ्लोरेन्सवासियोंकी प्रधानता स्वीकार की थी।

जैसा हम पहले लिख आये हैं, तेरहवीं शताब्दीमें शिक्षामें लोगोंको बड़ा उत्साह था। नये-नये विद्यापीठोंकी स्थापना हुई। यूरोपके सब प्रदेशोंके छात्र आने लगे। अलबर्टस, मेगनस, टामस, ऐक्विनस तथा रोजर बेकनके समान बड़े-बड़े विद्वानोंने धर्म, विज्ञान तथा दर्शनपर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे। सर्वसाधारणकी भाषामें लिखित तथा उत्साहजनक किस्से-कहानियों, उपन्यासों तथा गीतोंको सुनकर लोग

बड़े प्रसन्न होते थे। कारीगरोंने गृहनिर्माण-शिल्पोंके नये-नये प्रकारके नमूने खड़े किये। मूर्तिकारोंकी सहायतासे उन्होंने ऐसे-ऐसे भवन बनाये जिनकी बराबरीके भवन अबतक कहीं भी नहीं बन सके थे। तब फिर इस समयके बादकी दो शताब्दियोंको नवयुगका काल क्यों कहा जाता है? इससे तो विदित होता है कि गहरी नींदसे यूरोपके लोग एकाएक उठ बैठे थे अथवा यूरोपमें शिक्षा तथा शिल्प-कलाका प्रचार चौदहवीं शताब्दीमें ही आरम्भ हुआ था।

"नवयुग" शब्दका प्रयोग केवल वही लेखक करते थे जिन्हें तेरहवीं शताब्दी-का कुछ मूल्य प्रतीत नहीं होता था। उन लोगोंका मत था कि लैटिन तथा ग्रीक भाषाओंके ज्ञान बिना शिक्षाकी अधिक उन्नति हो ही नहीं सकती। परन्तु अब प्रतीत होता है कि तेरहवीं शताब्दीमें शिक्षा तथा शिल्पकला दोनोंके प्रति अधिक उत्साह था, यद्यपि ग्रीस या रोमकी तत्कालीन तथा आधुनिक समयकी शिक्षा और शिल्पकलाओंमें बड़ा भेद है।

इस कारण चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दीके "नयाजन्म" अथवा "नवयुग"-को हम वही स्थान नहीं दे सकते जो स्थान उनके एक शताब्दी बादके लोगोंने पूर्व समयका उचित अवलोकन न कर उन्हें दिया है। तो भी चौदहवीं शताब्दीके मध्यकालमें लोगोंकी रुचि, विद्या, शिल्प तथा कलामें बड़ा परिवर्तन आरम्भ हुआ और इसको हम लोग नवयुगका समय भली भाँति कह सकते हैं। उस समयके दो विख्यात लेखक दान्ते तथा पेट्रार्कके निबन्धोंको पढ़कर हम लोग चौदहवीं शताब्दीका पता लगा सकते हैं।

दान्ते उत्तम श्रेणीका महाकवि समझा जाता था। इसकी गणना होमर, वर्जिल तथा शेक्सपियरके साथ की जाती है। कविताओंकी रोचकता तथा मानसिक कल्पनाकी विचित्रताके अतिरिक्त उसमें और गुण भी वर्तमान थे जिस कारण इतिहास-लेखकोंको वह अधिक प्रिय है। उसने अपने कालकी सभी विद्याओंका अनुशीलन किया था। वह अपने कालका वैज्ञानिक, पण्डित तथा कवि था। उसके लेखोंसे पता लगता है कि तेरहवीं शताब्दीमें सूक्ष्म बुद्धिवालोंकी दृष्टिमें जगत् कैसा प्रतीत होता था और उस समयके सबसे बड़े विद्वान्‌को भी कितनी विद्या प्राप्त हो सकती थी।

जिन विद्वानोंका हम लोग अबतक वर्णन करते आये हैं उनकी भाँति दान्ते पादरी नहीं था। बोईथियसके समयके बाद वही प्रथम विख्यात गृहस्थ विद्वान् था। वह केवल अपनी मातृभाषा जाननेवाले अनेक साधारण जनोंको उस शिक्षाका ज्ञान दिया करता था जो केवल लैटिन जाननेवालोंको मिलती थी। लैटिनमें पण्डित होने-पर भी उसने डिवाइन कामेडी नामकी कविता अपनी मातृभाषामें ही लिखी।

आधुनिक भाषाओंमें इटालियन भाषाकी उन्नति सबसे पश्चात् हुई। इसका कारण कदाचित् यह था कि लैटिन भाषाको इटलीके सर्वसाधारण लोग अधिक कालपर्यन्त वर्तते रहे पर दान्तेको विश्वास था कि साहित्यके लिए लैटिनका प्रयोग दिखावा मात्र रह गया है। वह यह जानता था कि अनेक पुरुष तथा स्त्री जो केवल इटलीकी भाषा ही जानती हैं उसकी कविता-पुस्तकोंको और उसके विज्ञानविषयक निबन्ध 'बैंक्वेट'को बड़े चावसे पढ़ेंगी।

दान्तेके लेखोंसे पता चलता है कि मध्ययुगके विद्वान् विश्वके बारेमें जितने अनभिज्ञ समझे जाते थे उतने न थे। यद्यपि प्राचीन समयके लोगोंकी तरह वे भी समझते थे कि पृथिवी मध्यमें स्थिर है और सूर्य तथा नक्षत्रगण उसके चारों ओर घूमते हैं, तथापि गणितज्योतिषके विषयमें वे बहुत कुछ जानते थे। वे पृथिवीको गोल मण्डल मानते थे और उसके आयतनको भी लगभग ठीक जानते थे। उनको इस बातका भी ज्ञान था कि समस्त गुरु वस्तुएँ पृथिवीके केन्द्रसे आकर्षित होती हैं और यदि कोई भूमण्डलके दूसरी ओर भी चला जाय तो उसको गिरनेका कोई भय नहीं है तथा जब पृथिवीके एक भागमें रात होती है तो दूसरे भागमें दिन होता है।

दान्तेके समयमें धर्मशिक्षाका अधिक प्रचार था। उसने भी उसमें अपना अधिक उत्साह प्रकट किया था। वह अरस्तूको "सच्चा दार्शनिक" कहकर उसकी प्रतिष्ठा करता था पर साथ ही साथ यूनान तथा रोमके अन्य कवियोंकी उसने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की थी। उसने वर्जिलको पथप्रदर्शक बनाकर यमलोककी एक कल्पित यात्रा की थी। वह यमलोकके उस प्रदेशमें लाया गया जिसमें प्राचीन कालके सत्पुरुषोंकी आत्माएँ रहती हैं। वहाँ उसे होरेस ओविड और कविराज होमरके दर्शन हुए। वहीं हरी घासपर लेटे-लेटे प्राचीन समयके विद्वान् सुकरात अफलातून तथा अन्य ग्रीक दार्शनिक सीज़र, सिसरो, लिवी, सिनेका इत्यादिसे भेंट हुई। उनके संगसे वह इतना अधिक आनन्दित हुआ कि अपने अनुभवको शब्दोंमें व्यक्त न कर सका। उनके ईसाई न होनेसे वह अप्रसन्न नहीं हुआ। यह मानते हुए कि उनको स्वर्गका सुख नहीं प्राप्त हुआ, वह कहता है कि उनके लिए जो स्थान नियत है उसीमें वे आनन्दसे रहते हैं।

पेट्रार्कने प्राचीन लेखकोंकी प्रतिष्ठा दान्तेसे भी कहीं अधिक की है। वह प्रथम विद्वान् था जिसने मध्ययुगकी शिक्षाका त्याग करके अपने समयके मनुष्योंको ग्रीक तथा रोमन साहित्यके लालित्य तथा सौन्दर्यकी तरफ आकर्षित किया। मध्ययुगके विद्यापीठोंमें तर्क, धर्मशास्त्र तथा अरस्तूके ग्रन्थोंकी व्याख्या स्वाध्यायके मुख्य विषय थे। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीके विद्वान् लैटिनमें लिखी उन्हीं पुस्तकोंको पढ़ते थे जो वर्तमान समयमें भी प्राप्य हैं, पर वे उनके रसका आस्वादन नहीं कर सकते

थे। उनको उदार शिक्षाका आधार बनानेका उनको स्वप्नमें भी विचार न उठा होगा।

पेट्रार्कने लिखा है कि जब मैं बालक था, मैं सिसेरोकी मधुर भाषा पढ़कर ही अति प्रसन्न होता था, यद्यपि मैं उसे समझ नहीं सकता था। कुछ समय व्यतीत होनेपर मुझे विश्वास हो गया कि इस जीवनमें लैटिन भाषाके साहित्यको एकत्र करनेसे बढ़कर कोई दूसरा उच्च उद्देश्य नहीं हो सकता। वह केवल आप ही विद्वान् न था। जो लोग उसके संसर्गमें आते थे उसको देखकर वे भी बड़े उत्साहित हो जाते थे। शिक्षित लोगोंमें उसने लैटिन शिक्षाका अधिक प्रचार किया। उसने प्राचीन समयकी अलभ्य तथा विस्मृत पुस्तकोंके अन्वेषणमें बहुत प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगोंमें पुस्तकालय स्थापित करनेका नया उत्साह उत्पन्न हो गया।

"नवयुग"के विद्वानों तथा पेट्रार्कके स्वाध्याय कार्यमें बड़ी कठिनाइयाँ थीं। उनके पास यूनान तथा रोमके प्रसिद्ध लेखकोंके ग्रन्थोंकी एक भी ऐसी प्रति न थी जिसके शब्दोंको प्राचीन हस्तलिपियोंसे मिलाकर भली भाँति संशोधन किया गया हो। यदि उन्हें किसी विख्यात लेखकका एक भी हस्तलेख मिल जाता तो वे अपनेको धन्य समझते, पर तो भी वे निश्चय नहीं कर सकते थे कि उनमें अशुद्धि नहीं है। नकल करनेवालोंकी असावधानतासे उन पुस्तकोंमें इतनी अशुद्धियाँ आ गयी थीं कि यदि सिसेरो तथा लिवी पुनर्जन्म लेकर आवें तो अपनी ही पुस्तक पढ़नेमें उन्हें बड़ी कठिनाई होगी और उन्हें प्रतीत होगा कि यह किताब किसी और की, शायद किसी जंगलीकी, लिखी होगी।

यूरोपमें आगे चलकर जितना प्रभाव एरैस्मस तथा वाल्टेयरका हुआ उतना ही उस समयमें पेट्रार्कका था। इटलीके अतिरिक्त आल्प्स पर्वतके उस पारके नगरोंके विद्वानोंसे भी उसका सम्बन्ध था। उसके कितने ही पत्र अबतक भी सुरक्षित हैं जिनसे उस समयकी संस्कृतिका पूरा पता चलता है।

उसने केवल रोमन विद्वानोंके ग्रन्थोंके स्वाध्यायका ही प्रचार नहीं किया था, बल्कि साथ ही साथ उसने उस समयके विद्यापीठोंमें प्रचलित शिक्षाप्रणालीमें बहुत परिवर्तन कर दिया। तेरहवीं शताब्दीके विद्वानोंके ग्रन्थोंको उसने अपने पुस्तकालयमें रखना स्वीकार नहीं किया। अरस्तूके भद्दे अनुवादोंकी प्रतिष्ठा देख देखकर वह रोजर बेकनकी भाँति जलता था। उसके मतमें तर्कशास्त्रकी शिक्षा बालकोंके लिए अच्छी है। प्रौढ़ मनुष्यको तर्कशास्त्रके अध्ययनमें लिप्त हुआ देख उसे बड़ा खेद होता था।

इटालियन भाषामें सुन्दर तथा ललित कविताओंके लिए पेट्रार्ककी जितनी प्रसिद्धि है उतनी लैटिन भाषाकी कविता, इतिहास तथा अन्य निबन्धोंके लिए नहीं, पर दान्तेकी भाँति उसे मातृभाषासे प्रेम न था और वह अपने बनाये पद्योंको जवानी-

का खिलवाड़ कहकर उनको विशेष महत्व नहीं देता था। उसका तथा जिन लोगोंको लैटिन भाषाके साहित्यके लिए उसने उत्साहित किया था उनका इटालियन भाषाके प्रति घृणा करना स्वाभाविक था। वह भाषा उन लोगोंको गँवारी प्रतीत होती थी। उन लोगोंका कहना था कि यह भाषा सामान्य लोगोंके दैनिक काममें प्रयोग करनेके लिए है। जिस भाषामें उनके पूर्वज रोमन कवियोंने अपने काव्य लिखे थे, उस भाषासे वह कहीं निकृष्ट प्रतीत होती थी। जितना अभिमान हम लोगोंको भवभूति तथा कालिदासके काव्योंसे होता है उतना ही अभिमान इटलीवालों-को लैटिन साहित्यसे था। चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दीके इटलीके विद्वान् अपनी मातृभाषाको अपना पथप्रदर्शक न बना उसके जन्मदाताओंकी प्रणाली तथा भाषाका अनुकरण करने लगे।

जिन लोगोंने अपने सम्पूर्ण जीवनको पहिले रोमन साहित्य और पीछेसे ग्रीक साहित्यके अध्ययनमें लगाया था वे ह्यूमनिस्ट विद्याप्रेमी कहाते थे। इस शब्दकी उत्पत्ति लैटिन "ह्यूमनिटस" शब्दसे हुई है। इस शब्दके अर्थ उन्नत ज्ञान हैं। इस शब्दसे विशेषकर "साहित्यप्रियता"का बोध होता है। धर्मशास्त्रमें उनकी बहुत कम रुचि थी पर मनुष्यको संस्कृत बनानेके लिए जिस शिक्षाकी आवश्यकता थी उसकी प्राप्तिके लिए लोग सर्वदा सिसेरोके ग्रन्थ पढ़ा करते थे।

पेट्रार्ककी मृत्युके पीछेकी शताब्दीमें इटलीके विद्वानोंमें लैटिन तथा ग्रीक भाषाके लिए नयी श्रद्धा उत्पन्न हुई। साहित्यमें उनके इतने अधिक अनुरागका कारण समझनेके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि वर्तमान समयके समान उच्च कोटिकी पुस्तकें उन्हें प्राप्त न थीं। वर्तमान समयमें यूरोपकी प्रत्येक जातिके पास उसकी मातृभाषामें लिखित अनन्त साहित्य भरा है जिसको सब लोग पढ़ सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थोंके अनुवादके अतिरिक्त वर्तमान समयमें शेक्सपियर, वाल्टेयर तथा गेटे सदृश बड़े-बड़े विद्वानोंके उच्च कोटिके ग्रन्थ हैं जिनका चार शताब्दीपूर्व नाम भी नहीं सुना जाता था। सारांश यह है कि वर्तमान समयमें लैटिन अथवा ग्रीक भाषा जाने बिना ही हम लोग समस्त युगोंके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़ सकते हैं। मध्ययुगमें इस बातकी सुविधा न थी। इस कारण धर्मशास्त्र, तर्क तथा अरस्तूके विज्ञान-ग्रन्थोंसे खिन्न होकर लोग आगस्टस अथवा पेरिक्लिजके समयके ग्रन्थोंपर दत्तचित्त होते थे और उन्हींके साहित्यको पथप्रदर्शक बना अपने जीवनके उद्देश्यकी सिद्धि करते थे।

अनेक विद्वानोंने यूनानी और रोमन विद्वानोंके ग्रन्थोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा। इससे उन लोगोंको लौकिक तथा पारलौकिक जीवनके सम्बन्धमें मध्ययुगवालोंके विश्वासोंसे अश्रद्धा हो गयी। वे लोग होरेसकी शिक्षाका प्रचार करने लगे और महन्तों-के आत्मत्यागकी प्रथाका ठट्ठा उड़ाने लगे, उन लोगोंका मत था कि मनुष्यको इस

जीवनमें आनन्दका उपभोग करना चाहिये, दूसरे जन्मके लिए चिन्तित रहना व्यर्थ है। कहीं-कहीं तो वे लोग धर्मसंस्थाका भी प्रतिरोध कर बैठते थे, पर देखनेमें वे सदा उसकी आज्ञा मानते थे और अनेक धर्मपदोंपर नियुक्त भी होते थे।

ह्यूमेनिज्मने उदार शिक्षाके आदर्शमें क्रान्ति मचा दी। सोलहवीं शताब्दीमें जर्मनी, फ्रांस तथा आंग्ल देशके बहुतसे लोग इटलीमें भ्रमणके लिए जाते थे। उन लोगोंके प्रभावसे अनेक विद्यालयोंने तर्क अथवा मध्ययुगके और विषयोंको उठाकर लैटिन तथा ग्रीक साहित्यको मुख्य स्थान दिया। यह तो केवल थोड़े समयसे हुआ है कि विद्यापीठों और विद्यालयोंमें लैटिन तथा ग्रीकके स्थानमें अनेक प्रकारके विज्ञान तथा इतिहासकी शिक्षा आरम्भ की गयी है। अब भी बहुतसे ऐसे लोग हैं जो पन्द्रहवीं शताब्दीके ह्यूमनिस्टोंसे सहमत हो यही कहते हैं कि और विषयोंकी अपेक्षा लैटिन तथा ग्रीक भाषाको ही पढ़ाना अच्छा है।

चौदहवीं शताब्दीके ह्यूमनिस्ट साधारणतः ग्रीक भाषासे अनभिज्ञ थे। मध्ययुगमें इस भाषाका किंचिन्मात्र प्रचार पश्चिममें था; परन्तु उस समयमें प्लेटो, डिमास्थनीज, एस्किलस अथवा होमरको पढ़नेका कोई भी प्रयत्न नहीं करता था। इन विद्वानोंके निबन्ध पुस्तकालयोंमें भी कठिनतासे पाये जाते थे। पेट्रार्क तथा उसके अनुयायियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होता था कि होरेस और सिसेरोने बार-बार अपना एथेन्सका ऋणी होना स्वीकार किया है। पेट्रार्ककी मृत्युके थोड़े ही दिन बाद फ्लोरेन्स नगरके विद्यापीठमें कुस्तुन्तुनियासे क्रिसोलोरस नामी ग्रीक भाषाके अध्यापक नियुक्त किये गये।

फ्लोरेन्स नगरके लियोनार्डो नामक कानूनके विद्यार्थीके चित्तमें क्रिसोलोरसकी नियुक्तिका वृत्तान्त सुनकर जो विचार उठे उनको उसने इस प्रकार व्यक्त किया है: "यदि तुम होमर, डिमास्थनीज तथा अन्य अनेक बड़े-बड़े कवियों और दार्शनिकों तथा विद्वानोंके ग्रन्थोंको जिनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल रही है, नहीं पढ़ते हो तो अपनी बड़ी भारी क्षति कर रहे हो। तुम्हें भी उनमें दत्तचित्त होकर उनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। क्या तुम चाहते हो कि यह अमूल्य समय यों ही निकल जाय? सात सौ वर्षसे इटलीमें ग्रीक भाषा जाननेवाला कोई मनुष्य नहीं है, पर तो भी सब लोग मानते हैं कि समस्त भाषाओंकी उत्पत्ति ग्रीक भाषासे हुई है। यदि तुम उस भाषासे परिचित हो जाओगे तो बुद्धिका कितना अधिक विकास होगा और कितना आनन्द मिलेगा! रोमन कानूनोंके विद्वान् अनेक पाये जाते हैं और तुम्हें उनके स्वाध्यायके अवसरोंकी कमी नहीं होगी, परन्तु ग्रीक भाषाका एक ही शिक्षक है और यदि वह न रहेगा तो तुम्हें ग्रीक भाषा पढ़नेका अवसर ही प्राप्त न होगा"।

अनेक छात्रोंने इस अवसरसे लाभ उठाकर ग्रीक भाषा पढ़ना आरम्भ किया। क्रिसोलोरसने उनके लिए वर्तमान रीतिपर ग्रीक व्याकरणकी प्रथम पुस्तक बनायी। थोड़े ही दिनोंमें ग्रीक भाषा भी लैटिन भाषाकी भाँति प्रचलित हो गयी। इटलीके कितने लोग ग्रीक भाषा पढ़नेके लिए फ्लोरेन्स गये। पूर्वीय धर्मसंस्था पश्चिमीय धर्मसंस्थाके साथ तुर्कोंके प्रतिकूल सहायता पानेके लिए जो राजनीतिक सलाह-मशविरे (मन्त्रणा) कर रही थी उसके सम्बन्धमें कितनेही ग्रीक विद्वान् इटली आये। संवत् १४८० (सन् १४२३ ई०)में इटलीका एक विद्वान् ग्रीक साहित्यकी दो सौ अड़तीस पुस्तकें लेकर वेनिस नगरमें आया, अर्थात् उसने समस्त ग्रीक साहित्यको एक नयी तथा उर्वरा भूमिमें ला जमाया। ग्रीक तथा लैटिन भाषाकी पुस्तकोंकी सावधानीसे प्रतिलिपि और सम्पादन कराकर अनोके मेडिचीवंशी ड्यूकच तथा पोप पंचम निकोलसने सुसज्जित विशाल पुस्तकालय स्थापित कराये। यही पोप वैटिकनके पुस्तकालयका जन्मदाता था जो अब भी संसारके सबसे बड़े तथा विख्यात पुस्तकालयोंमेंसे है।

इटलीके ह्यूमनिस्ट विद्याप्रेमी प्राचीन साहित्यके लिए प्रेमको जन्म देनेके लिए अधिक यशके भागी हुए परन्तु पुस्तकोंकी अनेक प्रतियाँ निकालने तथा सस्ते रूपमें फैलानेका कार्य जर्मनी तथा हालैण्डवालोंके ही धीर परिश्रमका फल था। ग्रन्थोंको अति परिश्रमपूर्वक हाथसे नकल करनेमें बड़ी असुविधाएँ थीं। यद्यपि अनेक प्रतिलिपिवाले अपने व्यवसायमें इतने चतुर भी थे कि उनके छोटे-छोटे अक्षर भी छापासदृश स्पष्ट होते थे, परन्तु काम बहुत शनैः-शनैः होता था। लारेन्ज़ो-के पिता कासिमोने एक पुस्तकालय स्थापित करना चाहा तो उसने एक ठेकेदारसे प्रबंध ठीक कर लिया। उसने पैंतालीस लेखक दिये, परन्तु दो वर्ष-पर्यन्त कठिन परिश्रम करनेपर भी केवल दो सौ प्रतिलिपियाँ तैयार हो सकीं।

इसके अतिरिक्त छापेके आविष्कारके पूर्व एक ग्रन्थकी दो प्रतिलिपियाँ भी एक प्रकारकी नहीं पायी जा सकती थीं। जब कि अत्यन्त सावधानीसे नकल करनेपर भी कुछ न कुछ भूलें रह जाती थीं तो असावधानीसे कार्य करनेपर कितनी अधिक भूलें रह जाती होंगी! विद्यापीठने अपने यहाँके छात्रोंको आदेश दे रखा था कि यदि उनकी पुस्तकोंमें कोई भूल प्रतीत हो तो उन्हें तत्काल सूचित करें जिससे भूल शोध ली जाय और लेखकके भावका यथार्थ रूपमें बोध हो। छापाखानेके आविष्कारसे थोड़े समयमें ही किसी पुस्तककी एकसी अनेक प्रतियाँ और तैयारकी जा सकती हैं। यदि टाइपकी स्थितिपर ही ठीक ध्यान दिया जाय तो सस्ती प्रतियाँ शुद्ध निकल सकती हैं।

छपी पुस्तकोंमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ बाइबिल है। यह संवत् १५१३ (सन्

१४५६ ई०)में मेयंस नगरमें पूरी की गयी थी। एक वर्ष पश्चात् मेयांसकी साल्टर नामी पुस्तक छपी। इनके पूर्व भी छोटी-छोटी पुस्तकें हाथसे खोदे हुए ठप्पे तथा स्थिर अक्षरोंसे छापी गयी थीं। जर्मनीमें इसका सबसे शीघ्र प्रचार हुआ। उन लोगोंने उस लिपिका प्रयोग किया जिसमें हाथसे लिखनेवालेको सुगमता होती थी। इन्हें गोथिक अथवा काला अक्षर कहते थे। इटलीमें छापेकी कलका पहले-पहल प्रचार संवत् १५२३ (सन् १४६६ ई०)में हुआ। इनके अक्षर प्राचीन रोमके शिलालेखोंके अक्षरोंके सदृश थे। यह वर्तमान समयके अक्षरोंसे बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इटलीवालोंने छोटे-छोटे तथा टेढ़े अक्षर निकाले जिससे एक पृष्ठमें अनेक शब्द आ सकते थे। प्राचीन छापनेवाले अपने कार्यको मन लगाकर करते थे। छापेकी पहली पुस्तक भी बादकी छपी पुस्तकोंके समान उत्तम छपी है।

प्राचीन सौन्दर्यके आदर्शों तथा मनुष्य और प्रकृति-विषयक नवीन उत्साहका प्रभाव जितना इटलीके नवयुगकी शिल्पकलामें वर्तमान है उतना और कहीं भी नहीं है। मध्ययुगकी शिल्पकला परम्परागत नियम-बन्धनोंसे जकड़ी हुई थी। इन लोगोंने इन्हें भी तोड़ डाला। यद्यपि कारीगर तथा शिल्पी लोग उस समय भी अपने मध्ययुगके पूर्वजोंकी भाँति धर्मविषयक चित्र ही चित्रित करते रहे, परन्तु चौदहवीं शताब्दीमें इटलीके कारीगरोंको निकटवर्त्ती जीवन और सौन्दर्यसे पूर्ण संसार तथा प्राचीन शिल्पकलाके अवशेषोंसे अधिक उत्साह मिला। उन्होंने अपनी कल्पनाशक्तिको भी विशेष स्वच्छन्द मार्गपर डाल दिया। भिन्न-भिन्न कारीगरोंकी रुचि तथा कल्पनाको अब दबाया नहीं जाता था, प्रत्युत उनकी रचनामें उनकी रुचि-को ही प्रधान स्थान प्राप्त होता था। नवयुगमें शिल्पकलाका इतिहास वस्तुतः शिल्पकारोंका इतिहास है।

इटलीमें गृहनिर्माणके गोथिक ढंगका विशेष प्रचार नहीं हुआ था। इटलीवालों-ने अपने धर्मस्थानोंमें रोमन शिल्पका ही थोड़ा-सा परिवर्त्तन करके प्रयोग किया था। उत्तरीय देशोंमें ऊँची मेहराबों और पत्थरकी नक्काशीका प्रचार विशेष रूपसे था। इधर इटलीमें गुंबजका अधिक रिवाज था।

वे लोग स्तम्भशिखर और भित्तिशिखर आदि छोटी मोटी चीजोंमें, विशेषकर सरलता और आनुपातिक सौन्दर्यमें अवश्य पुराने शिल्पका अनुकरण करते थे। जिस प्रकार इटलीने प्राचीन साहित्यको अपनाया था, उसी प्रकार ग्रीक तथा रोमन कला और शिल्पके अनुकरणमें भी वह शेष यूरोपकी अपेक्षा विशेष रूपसे प्रभावित था।

नवयुगके आरम्भ-कालमें भित्ति-चित्र बनाये जाते थे। गिर्जों अथवा प्रासादों-की दीवारोंपर वे बनाये जाते थे। कुछ चित्र, विशेषकर गिर्जोंकी वेदियोंपर लगानेके

चित्र, काठके पटरोंपर भी बनाये जाते थे। सोलहवीं शताब्दीमें कपड़े, काठ या अन्य वस्तुओंपर पृथक् चित्र भी बनाये जाने लगे।

कदाचित् मूर्त्तिकारीमें ही प्राचीन समयका अनुकरण अधिक और सबसे पहले किया गया। शिल्पकी उन्नतिमें पीसा नगरके मूर्त्तिकार निकोलाका स्थान प्रथम है। देखनेसे विदित होता है कि कुछ प्राचीन मूर्त्तिखण्डोंका उसने उत्साहपूर्वक अनुशीलन किया था। पीसामें एक पत्थरकी बनी शव रखनेकी पेटी* तथा संगमरमरका एक बर्तन पाया गया था। उन्हींमें बने कई रूपोंका अनुकरण करके उसने पीसामें गिर्जाके मेम्बर (उपदेशकके खड़े होनेका स्थान)का निर्माण किया था। यद्यपि मूर्त्तिकारीकी कलाने लोगोंका ध्यान अपनी तरफ सबसे पूर्व आकर्षित किया था, पर इसकी उन्नति बहुत धीरे-धीरे हुई थी। इटलीका ध्यान तो इसकी तरफ पन्द्रहवीं शताब्दीमें गया। तबसे इसकी उन्नति स्वतन्त्र तथा नूतन पंथपर होने लगी।

चौदहवीं शताब्दीमें इटलीके विख्यात चित्रकार जोटोने चित्र-कलाके विकासमें विशेष उत्साह दिखलाया। इससे इस कलामें बड़ी शीघ्रताके साथ विशेष उन्नति हुई। उसके पहले भित्तियोंपर वज्रलेप चित्रोंका प्रचार था। वे पूर्ववर्णित साधारण चित्रकारीके निदर्शनकी भाँति बहुत सुन्दर न होते थे। जोटोके समयसे चित्र-कलामें विशेष परिवर्तन हुआ। जोटोको प्राचीन कलामें ऐसा कुछ भी नहीं मिला जिसकी वह नकल करता, क्योंकि जो कुछ प्राचीनोंने उन्नति की थी वह सब लुप्त हो गयी थी। इस कारण उसे चित्र-कलाकी समस्याओंको सरल करनेके लिए कहींसे कोई सहायता नहीं मिली। वह केवल उनको सरल करनेके कार्यको आरम्भ कर पाया। उसके वृक्ष और भू-भागके चित्र हास्यजनक प्रतीत होते हैं, मुखाकृतियाँ सब एक प्रकारकी हैं। यदि कहीं लटके हुए कपड़ोंका चित्र दिया गया है तो उनकी तहें ऊपरसे नीचेतक सीधी हैं, पर उसने वह कार्य कर दिखानेका निश्चय किया था जिसका उसके पूर्वके चित्रकारोंने स्वप्न भी न देखा होगा, अर्थात् उसने जीवित भावपूर्ण स्त्री तथा पुरुषोंके चित्र बनानेका प्रयत्न किया। उसने अपनी चित्रकारीको प्राचीन समयके केवल बाइबिलके ही दृश्योंतक नहीं सीमित किया। अपने प्रसिद्ध वज्रलेप चित्रमें उसने महात्मा फ्रैंसिसके जीवनके चित्र अंकित किये थे। चौदहवीं शताब्दीके चित्रकारों तथा सर्वसाधारणके चित्रोंपर इस पवित्र जीवनका विशेष प्रभाव पड़ा था। उस शताब्दीकी चित्र-कलापर जोटोका विशेष प्रभाव पड़नेका यह भी कारण था कि वह चित्रकार होनेके अतिरिक्त गृहनिर्माण-कलाका भी ज्ञाता था। इसके अतिरिक्त वह मूर्त्तिकारीके लिए आदर्श चित्र भी तैयार करता था। एक ही

* सारकोफेगस-पत्थरकी बनी सुन्दर पेटी जिसमें अमीर लोगों या प्रसिद्ध पुरुषोंके शव बंद करके स्मारकालयमें रखे जाते हैं।

कलाकारके हाथसे इतनी कलाओंका अभ्यास होना नवयुगकी अत्यन्त आश्चर्यजनक बातोंमेंसे एक है।

पन्द्रहवीं शताब्दी अथवा नवयुगके आरम्भकालमें इटलीमें कलाकी वृद्धि हुई। यह धीरे धीरे उन्नत होकर सोलहवीं शताब्दीमें उच्च शिखरपर पहुँच गयी। मध्ययुगकी प्रथाओंका परित्याग कर प्राचीन कालकी शिक्षाका पूर्णतया अभ्यास किया गया। ज्यों ज्यों यन्त्रके प्रयोगमें वे अभ्यस्त तथा कलाकी सूक्ष्म विधियोंसे परिचित होते गये त्यों-त्यों उनकी चित्रकारीमें अपने अभिलषित मानस-भावोंको चित्रित करनेकी सामर्थ्य बढ़ती गयी।

पन्द्रहवीं शताब्दीमें फ्लोरेन्स नगर कला-व्यवसायका केन्द्र था। उस समयके सबसे प्रसिद्ध तथा चतुर चित्रकार, शिल्पी तथा मूर्त्तिकार या तो फ्लोरेन्स नगरके निवासी थे अथवा अपने अच्छे-अच्छे कार्य वहाँ ही संपादित किया करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दीके पूर्वभागमें मूर्तिकारीकी पुनः प्रधानता हुई। फ्लोरेन्स नगरकी गिरजाके काँसेके द्वार जिनको गिबर्टीने संवत् १५०७ (सन् १४५० ई०)में तैयार किया था, नवयुगके शिल्पके उत्कृष्ट उदाहरणोंमेंसे हैं। माईकेल अंजेलो उन्हें स्वर्गद्वारके योग्य बतलाता था। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें बने हुए पीसाके द्वारोंसे इनकी तुलना करनेपर इनमें बड़ा भारी अन्तर प्रतीत होता था। ल्यूका-डेला रोबिया गिबर्टीका समकालीन था। वह चिलकदार मिट्टी अथवा संगमरमरपर सुन्दर-सुन्दर चित्र बनानेके लिए प्रसिद्ध था। उनके बहुतसे नमूने अब भी फ्लोरेन्समें पाये जाते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दीके पूर्व-भागमें फ्रा एंजेलिको नामका एक महन्त विख्यात चित्रकार था। सैन मार्कोके मठकी दीवारोंपर उसने जो चित्रकारी की है उससे उसके सौन्दर्य-प्रेम तथा आशामय भक्तिका परिचय मिलता है। इस भक्तिमें और सवोनारोलाकी भक्तिमें महान् अन्तर है। सवोनारोला उसी मठका रहनेवाला था। भक्तिके आवेशमें उसने उसी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें फ्लोरेन्सनिवासियोंकी कलाप्रियताकी घोर निंदा की थी।

फ्लोरेन्सका शासक लोरेंजो कलाओंका बड़ा उत्साही प्रेमी था। उसके राजत्व-कालमें चित्रकलाका प्रधान स्थान फ्लोरेन्स उन्नतिके शिखरपर पहुँचा था। उसकी मृत्यु तथा सवोनारोलाके अल्पकालीन, किन्तु प्रबल प्रभावसे कलाओंमें रोमको प्राधान्य मिल गया।

उस समय रोम यूरोपकी सबसे बड़ी राजधानियोंमें परिगणित था। पोप द्वितीय जूलियस तथा दशम लियो कलाओंके बड़े अनुरागी थे। उन्होंने बड़े प्रयत्नसे तत्कालीन विख्यात चित्रकारों तथा शिल्पियोंको महात्मा पीटरके समाधिस्थान तथा

वेटिकन अर्थात् पोपकी गिरजा और महलके बनाने और सजानेमें लगाया। गिरजाओंके बीचमें गुम्बज रखना नवयुगके शिल्पियोंको बहुत भाता था। सेण्टपीटरके गिरजाका गुम्बज शिल्पकी पराकाष्ठापर पहुँच गया है।

इस गिरजाके निर्माणका आरम्भ पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुआ। संवत् १५६३ (सन् १५०६ ई०)में पोप द्वितीय जूलियसने इसको बहुत उत्साहके साथ आगे बढ़ाया। यह कार्य तत्कालीन चतुर तथा विख्यात कारीगर राफेल और माइकेल अंजेलो आदिके निरीक्षणमें सारी सोहलवीं तथा सत्रहवीं शताब्दीके कुछ अंशपर्यन्त चलता रहा। पहले खाकोंमें अनेक बार परिवर्तन हुए, परन्तु जब वह भवन बनकर तैयार हुआ तो वह लैटिन क्रासके आकारका बनाया गया और उसपर एक विशाल गुम्बज बनाया गया। उसका व्यास एक सौ अड़तीस फुट लंबा था। यह धर्ममन्दिरोंमें सबसे अधिक विशाल था। इस विशाल गिरजाको देखकर लोगोंको एक प्रकारका विस्मय होता है।

सोलहवीं शताब्दीमें नवयुगी शिल्पकला उन्नतिके चरम शिखरपर पहुँच गयी थी। उस समय सम्पूर्ण शिल्पकारोंमें लियोनार्डो डाविंस, माइकेल अंजेलो तथा राफेल सबसे अधिक विख्यात हैं। इनमेंसे प्रथम तथा द्वितीयने तो भवन-शिल्प, मूर्तिकारी तथा चित्रकला तीनोंमें अनन्त यश प्राप्त किया था। इन तीनोंकी कलाप्रवीणताका परिचय थोड़ी-सी पंक्तियोंमें नहीं दिया जा सकता। राफेल तथा माइकेल अंजेलोके बनाये हुए सुन्दर-सुन्दर भित्तिचित्र तथा अन्य चित्र और माइकेलकी बनायी सुन्दर मूर्तियाँ भी मिलती हैं। उन्हें देखकर उनके उत्कर्षका अनुमान किया जा सकता है। लियोनार्डोकी कलाके सर्वांगपूर्ण नमूने बहु कम बचे हैं। समस्त चित्रकलामें उसकी विख्याति इस कारण थी कि उसकी प्रकृति विविध रूपसे विकसित थी, उसके कार्य मौलिक होते थे और वह नयी पद्धतियोंका अविष्कार कर उनका प्रयोग करता था। उसको शिल्पकार न कहकर परीक्षक कहें तो बहुत यथार्थ होगा।

यद्यपि अब फ्लोरेंस इटलीकी शिल्पकलाका केन्द्रस्थान न रहा था, तथापि वहाँ अच्छे-अच्छे चित्रकार होते थे जिनमें एण्ड्रियाडेल सार्टो सबसे प्रसिद्ध था। पर सोलहवीं शताब्दीमें रोमके बाहर चित्रकलाका सबसे बड़ा केन्द्र वेनिस था। वहाँके चित्रोंमें भड़कीले रंगोंकी विशेषता थी। यह बात वेनिसके सबसे विख्यात चित्रकार टिशनके चित्रोंसे बहुत स्पष्ट हो जाती है।

इटलीके शिल्पकारोंका यश इतना अधिक विस्तृत हो गया था कि उत्तरीय प्रदेशोंसे लोग वहाँके उस्तादोंके पास आकर चित्रकलाकी शिक्षा पाते थे, और उस कलामें निपुण होकर अपने देशको लौट जाते थे और अपने-अपने ढंगके अनुसार कलाका प्रयोग करते थे। जाटोके समयके एक शताब्दी पश्चात् बेलजियममें वान आइक नामी दो भाई रहते थे। वे चित्रकलामें इतने निपुण थे कि इटलीवालोंकी तुलनामें

किसी अंशमें कम न थे। उन लोगोंने रंग मिश्रित करनेकी नवीन विधिका आविष्कार किया जो इटलीवालोंसे कहीं बढ़कर थी। इसके पश्चात् जिस समय इटलीमें चित्रकला उन्नतिके शिखरपर पहुँची थी, उस समय जर्मनीमें ड्योरर तथा हैन्स हालबीन नामी दो प्रसिद्ध चित्रकार हुए जो चित्रकलामें राफेल तथा माइकेल अंजेलोको मात करते थे। ड्योरर लकड़ीपर तथा ताँबेके पत्तरोंपर खुदाईके कामके लिए अधिक विख्यात है। जहाँतक प्रतीत होता है आजतक इस कार्यमें कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सका है।

सत्रहवीं शताब्दीमें आल्प्स पर्वतके दक्षिण भागमें चित्रकलाकी अवनति होने लगी। उस समय डच तथा फलेमिश चित्रकारोंने विशेषतः रूबेंस और रेम्ब्राण्टने चित्रकलाकी एक नयी प्रथा निकाली। फलेमिश चित्रकार वानडाइकने कितने ही ऐतिहासिक प्रसिद्ध पुरुषोंके चित्र बनाये। सत्रहवीं शताब्दीमें स्पेनमें वेलास्कीज नामी चित्रकार पैदा हुआ, जो इटलीके सबसे अच्छे चित्रकारोंसे कहीं विशेष चतुर था। वानडाइककी भाँति उसने भी कितने ही विस्मयकारी चित्र बनाये।

छापेकी कलके आविष्कारके थोड़े ही दिन पश्चात् समुद्र-यात्रा आरम्भ हुई, जिससे समस्त भूमण्डलका पता लगाया गया और पश्चिमी यूरोपकी दृष्टिसीमाका विस्तार हुआ। यूनान तथा रोमके निवासी दक्षिणी यूरोप, उत्तरीय अफ्रीका तथा पश्चिमीय एशियाके अतिरिक्त संसारके सम्बन्धमें बहुत कम जानते थे और जो कुछ वे जानते भी थे उसे भी लोग मध्ययुगमें भूल चुके थे। क्रूसेडयात्रामें बहुतसे यूरोपके निवासी मिस्र अथवा शामपर्यंत गये थे। दान्तेके समयमें वेनिसके पोलो नामी दो वणिक् चीन देशमें गये। पेकिंग नगरमें मंगोलोंके राजाने उनका अच्छा सत्कार किया। संवत् १३५२ (सन् १२९५ ई०)की दूसरी यात्रामें उनमेंसे एकका बेटा मार्कोपोलो भी उनके साथ गया। बीस वर्षपर्यन्त भ्रमण करके ये लोग संवत् १३७२ (सन् १३१५ ई०)में वेनिस लौटे। वहाँ पहुँचकर मार्कोने अपनी यात्राके अनुभवका जो वर्णन किया है उसको पढ़कर आश्चर्य होता है। उसने स्वर्णद्वीप जियाण्ड (जापान) तथा मसाले उत्पन्न करनेवाले द्वीप मलक्का एवं लंकाका जो झूठ-सच मिला हुआ वर्णन किया उसने यूरोपवालोंको बहुत आकृष्ट और उत्साहित किया।

संवत् १३७९ (सन् १३२२ ई०)में वेनिस तथा जिनोआने नेदरलैंडके नगरोंसे सामुद्रिक सम्बन्ध स्थापित किया। उनके नौपोत लिस्बन नौकाश्रयमें ठहरते थे। पुर्तगालवालोंका व्यापारमें बड़ा उत्साह बढ़ा और वे लोग भी लंबी-लंबी सामुद्रिक यात्रा करने लगे। चौदहवीं शताब्दीके मध्यकालतक उन लोगोंने कैनरी द्वीप मैडीरा तथा अजोर्सका पता लगाया। इसके पहले सहाराके रेगिस्तानके आगे किसीने भी अफ्रीका-तटपर जानेका साहस न किया था। यह देश अति भयानक था, वहाँ बंदरगाह

भी नहीं थे और लोगोंका विश्वास था कि उष्णकटिबंध निवासयोग्य नहीं है, इससे नाविकोंके मार्गमें और भी रुकावट पड़ती थी। संवत् १५०२ (सन् १४४५ ई०) में कुछ उत्साही नाविक मरुभूमिके पारतक आये। वहाँपर उन्हें गर्म प्रदेशोंमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंसे हराभरा एक प्रदेश दृष्टिगोचर हुआ। उसका नाम उन लोगोंने वर्डे अन्तरीप रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि अब लोगोंके ध्यानसे वह बात जाती रही कि दक्षिणमें कोई बसने योग्य हरा-भरा प्रदेश नहीं है।

एक पीढ़ीतक पुर्तगालवाले अफ्रीका-तटपर बराबर आगे बढ़ते रहे। उनकी आशा थी कि जहाँ उसका अंत होगा वहाँसे उन्हें समुद्रद्वारा भारतमें जानेका मार्ग मिल जायगा। अन्तको संवत् १५४३ (सन् १४८६ ई०)में डायजने गुडहोप नामी अन्तरीपकी प्रदक्षिणा की। ठीक बारह वर्ष बाद संवत् १५५५ (सन् १४९८ ई०)में कोलम्बसके नूतन आविष्कारसे उत्तेजित हो वास्कोडिगामा गुडहोप अन्तरीपकी परिक्रमा कर जंजबार द्वीपके उत्तरसे हिन्दमहासागर पार करता हुआ भारतके पश्चिम-तटपर बसे हुए कालीकट नगरमें पहुँचा।

इन साहसिक कार्योंसे मसालेके व्यापारी मुसलमानोंको अनेक प्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न होने लगी, क्योंकि इन लोगोंको विदित हो गया था कि इन सबका अभिप्राय केवल मसालेके द्वीपोंमें स्वतन्त्र व्यवसाय स्थापन करनेका था। इस समय-पर्यन्त मलक्का तथा भूमध्य समुद्रके पूर्वी नौकाश्रयोंके बीचका मसालेका सम्पूर्ण व्यवसाय मुसलमानोंके अधिकारमें था। वहाँसे सब वस्तु इटलीके व्यवसायी ले जाते थे। पुर्तगालवालोंने भारतीय राजाओंसे सन्धि कर गोआ तथा अन्य स्थानोंमें व्यवसाय-स्थान बनाये। इसको मुसलमान लोग किसी प्रकार रोक नहीं सके। संवत् १५६९ (सन् १५१२ ई०)में वास्कोडिगामाका एक उत्तराधिकारी जावा तथा मलक्का द्वीपोंमें जा पहुँचा। वहाँपर उन लोगोंने एक दुर्ग खड़ा किया। संवत् १५७२ (सन् १५१५ ई०)में पुर्तगालकी सामुद्रिक शक्ति यूरोपके अन्य समस्त राष्ट्रोंकी सामुद्रिक शक्तियोंसे बढ़ गयी थी। अब इटलीके नगरोंकी मध्यस्थताके बिना ही मसाला लिस्बन नगर पहुँचने लगा। इससे इटलीके नगरोंको बहुत क्षति पहुँची।

इससे विदित होता है कि भूमण्डलका अन्वेषण केवल मसालेकी प्राप्तिके लिए हुआ था। इस प्रयोजनकी सिद्धिके लिए यूरोपके नाविकोंने पूर्वदेशमें प्रवेश करनेके यथासाध्य सम्पूर्ण प्रयत्न किये। उन लोगोंने अफ्रीकाकी परिक्रमा की। अमेरिकाके अस्तित्वको जाननेके पूर्व उन लोगोंने पश्चिमी समुद्र-यात्रा कदाचित् इण्डीजमें पहुँचनेके लिए की। अमेरिकाका पता लग जानेके पश्चात् उसके उत्तर तथा दक्षिणसे यात्रा की। यहाँतक कि उत्तरसे आरम्भ कर समस्त यूरोपकी परिक्रमा की गयी। हम लोगोंकी समझमें नहीं आता कि उस समयमें मसालोंके लिए इतना अधिक उत्साह क्यों प्रकट

किया गया था। वर्तमान समयमें यूरोपमें मसालोंकी उतनी माँग नहीं है। उन दिनोंमें मांसकी रक्षा करनेके लिए मसालेका प्रयोग किया जाता था, क्योंकि वर्तमान समयकी भाँति मांस ताजा-ताजा एक स्थानसे दूसरे स्थानको इतनी शीघ्रतासे नहीं पहुँचाया जा सकता था और न वर्तमान कालकी भाँति बर्फसे ही उसकी रक्षा की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त बिगड़ा हुआ पदार्थ भी मसाला मिलानेसे स्वादिष्ट हो जाता था।

दूरदर्शी लोगोंको ऐसा विदित होने लगा कि पश्चिमकी ओर यात्रा करनेसे पूर्वी एशिया द्वीपसमूहमें पहुँचना हो सकता है। पृथ्वीके आकार तथा परिमाणका मुख्य प्रामाणिक विद्वान् उस समय प्राचीन ज्योतिषी टालमी था। उसका बतलाया परिमाण वास्तविक परिणामसे ¼ भाग कम था और मार्कोपोलोने अपनी यात्राके वर्णनमें पूरबकी दूरीको अधिक बढ़ाकर कहा था, इससे लोगोंका विश्वास था कि अटलांटिकको पार करके जानेमें यूरोपसे जापान अधिक दूर न होगा।

पश्चिमकी प्रथम यात्राका भावी उपक्रम संवत् १५३१ (सन् १४७४ ई०)में पुर्तगालके राजाको फ्लोरेन्सके एक वैद्य स्फैनेलान टास्कनेलीने दिया था। संवत् १५४९ (सन् १४९२ ई०) में जिनोआके नाविक कोलम्बसने जिसे सामुद्रिक यात्रामें विशेष अनुभव था, तीन छोटी-छोटी नौकाएँ लेकर पाँच सप्ताहमें जापान (जीपाँगु) पहुँचनेकी आशासे यात्रा की थी। केनरी द्वीपसे यात्रा करनेके पचीस दिन बाद वह सैन सैल्वेडोर द्वीपमें जा पहुँचा। कोलम्बसने समझा कि वह पूर्वी इण्डीजमें पहुँच गया। इससे आगे बढ़कर वह क्यूबा द्वीपमें पहुँचा। उसको उसने एशिया महाद्वीप समझा था। अन्तको वह हैती द्वीपमें पहुँचा जिसे उसने अपना निर्दिष्ट प्रदेश जापान ही समझा। उसने तीन और सामुद्रिक यात्राएँ कीं और दक्षिणी अमेरिकाके ओरिनोको-पर्यन्त पहुँचा और अन्तमें मर भी गया, पर तबतक उसे यह ज्ञान नहीं था कि वह वस्तुतः एशियाके किनारेतक नहीं पहुँचा।

वास्कोडिगामा तथा कोलम्बसके साहसिक कार्यसे उत्साहित हो मैगेलनके नेतृत्वमें एक सामुद्रिक यात्रा की गयी। इसने समस्त भूमण्डलकी परिक्रमा की। अब नये-नये देशोंका यूरोपनिवासियोंको पता लगने लगा। उत्तरीय अमेरिकाके तटको प्रधानतया आंग्ल देशीय नाविकोंने बड़ी सावधानीसे खोजना शुरू किया। एक शताब्दी इसी कार्यमें बीत गयी। इन्हें आशा लगी रही कि इन्हें मसालेके द्वीपोंको जानेके लिए उत्तरसे कोई मार्ग अवश्य मिल ही जायगा, पर यह निष्फल हुई।

संवत् १५७६ (सन् १५१९ ई०)में कार्टीजने स्पेनके लिए मेक्सिकोके आजटेक साम्राज्यकी विजय की। कुछ वर्ष पश्चात् पिजारोने पेरू प्रांतमें भी स्पेनका झण्डा गाड़ दिया। यूरोपवासियोंने इन देशोंके आदिम निवासियोंके अधिकारोंपर तनिक भी ध्यान

न दिया और उनके साथ अत्यन्त क्रूर और घृणित व्यवहार किया। स्पेनने सामुद्रिक शक्तिमें पुर्तगालको दबा दिया। सोलहवीं शताब्दीमें उसकी उन्नति तथा प्रसिद्धिका कारण उसके नव-प्राप्त देशोंसे आयी लूटसे प्राप्त लक्ष्मी ही थी।

इस युगके अवसानमें दक्षिणी अमेरिकाके उत्तरीय तटोंपर अनेक साहसी नाविक जा पहुँचे। इनमें व्यापारी, दास-विक्रेता तथा डाकू भी थे। इनमेंसे अधिकतर तो आंग्ल देशके रहनेवाले थे। आंग्ल देशकी व्यावसायिक वृद्धि इन्हीं लोगोंके कारण हुई थी।

इधर तो कोलम्बस तथा वास्कोडिगामाके प्रयत्नसे नये नये देशोंका यूरोप-वासियोंको परिचय होता जाता था, उधर पोलैण्डका निवासी कौपर्निकस नामी ज्योतिषी यह कह रहा था कि इस पृथ्वीको विश्वका केन्द्र माननेमें प्राचीनोंने भूल की थी। उसने पता लगाया कि पृथ्वी भी और ग्रहोंके साथ सूर्यकी परिक्रमा करती है। इससे गगनचारी ग्रहों तथा उनकी चालोंके सम्बन्धमें जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ वही वर्त्त-मान ज्योतिषका आधार है।

यह जानकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ कि जिस पृथ्वीपर हम लोग बसते हैं वह ईश्वरीय सृष्टिमें सबसे बड़ी होकर विश्वकी तुलनामें एक रजः-कण मात्र है और हमारा सूर्य नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्र है। प्रत्येक नक्षत्रके साथ अपना-अपना ग्रह-परिवार है जो उसकी प्रदक्षिणा करता है। प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथ-लिक दोनों मतोंके धर्माध्यक्षोंने कहा कि कौपर्निकस मूर्ख, दुष्ट और झूठा है, क्योंकि उसकी शिक्षा बाइबिलके विरुद्ध है। उसने अपनी मृत्युके कुछ ही पहले अपनी नयी विद्याका प्रकाश किया नहीं तो उसको इसके लिए न जाने क्या-क्या कष्ट भुगतने पड़ते।

इन विविध प्रकारकी उन्नतियोंके अतिरिक्त चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दीमें अनेक प्रकारके कला-कौशलोंके आविष्कार हुए जिनमेंसे एकका भी यूनानियों तथा रोमनोंको पता न था। उदाहरणार्थ, छापाखाना, कम्पास (ध्रुवदर्शक), बारूद तथा चश्मेका प्रयोग। लोहेको गलाकर उसको साँचोंमें ढालनेका आविष्कार भी हो चुका था।

सारांश यह है कि यह युग केवल साहित्य-चर्चाके लिए ही विख्यात नहीं था, इस युगमें केवल प्राचीन कला तथा साहित्यका पुनर्जन्म ही नहीं हुआ, वरन् इस समय यूरोपने ऐसी अनेक उन्नतियोंकी नींव डाली जो प्राचीन समयसे बिलकुल भिन्न थीं और जिनकी सफलताका प्लीनीको स्वप्न भी न था।

अध्याय २३

सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें यूरोपकी दशा

सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे यूरोपके इतिहास-में बड़ा परिवर्तन हुआ।

(१) कई ऐसे-ऐसे विवाह हुए जिनसे पश्चिमी यूरोपका अधिक भाग सम्राट् पञ्चम चार्ल्सके अधीन हो गया। बर्गण्डी, स्पेन, इटलीका कुछ भाग तथा आस्ट्रिया-का राज्य मिला और संवत् १५७६ (सन् १५१९ ई०)में वह सम्राट् चुना गया। चार्लमेनके समयसे लेकर उस समयपर्यन्त उसके साम्राज्यके बराबर कोई साम्राज्य नहीं हुआ था। वियना, ब्रूसल्स, मैड्रिड, पेलर्मो, नेपिल्स, मिलन तथा मेक्सिको उसके साम्राज्यके अन्तर्गत थे। इस साम्राज्यका उदय तथा कलहोंके साथ उसका अन्त दोनों ही आधुनिक यूरोपके इतिहासमें बड़े विख्यात हैं।

(२) जिस समय चार्ल्स इस लंबे-चौड़े साम्राज्यका उत्तरदायित्व अपने हाथमें ले रहा था, मध्ययुगकी धर्म-संस्थाके प्रतिकूल आन्दोलन भी बड़ी सफलतासे उठ खड़ा हुआ था। इस आन्दोलनसे धर्म-संस्थामें मतभेद हो गया और कैथलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट दो दल खड़े हो गये जो अबतक भी वर्तमान हैं। इस परिच्छेदमें पञ्चम चार्ल्सके साम्राज्यकी स्थापना, उसके विस्तार तथा विशेषताका वर्णन किया जायगा। इससे पाठक प्रोटेस्टेण्ट विद्रोहके राजनीतिक परिणामोंसे भली भाँति परिचित हो जायँगे।

जिन पारिवारिक सम्बन्धोंके कारण इतना बड़ा साम्राज्य एक पुरुषके हाथमें लगा उनका विवरण देनेके पूर्व हम पञ्चम चार्ल्सके मूल हैप्सबर्ग-वंशका संक्षेपतः वर्णन करना चाहते हैं और साथ ही स्पेनका यूरोपियन राजनीतिमें प्रवेश भी दिखलाना चाहते हैं, क्योंकि स्पेनका अबतकके इतिहासमें बहुत कम उल्लेख हुआ है।

जर्मनीके राजा लोग [illegible] ग्यारहवीं सदी तथा आगे [illegible] देशके समान हेनरीकी भाँति प्रसिद्ध तथा शक्तिशाली राज्य स्थापित नहीं कर सके। उन लोगोंको अपने [illegible] झगड़े-टंटेके कारण ही बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। जर्मनी तथा इटलीके राज्योंको अपने अधीन रखनेके प्रयत्न करने तथा रोमके विरोधके उनके शत्रुओंके साथ मिले रहनेसे वे [illegible] हो गये। उनकी गद्दियाँ उनके वंशजोंके हाथमें न रहीं, इस कारण उनकी शक्ति और भी क्षीण हो गयी। यद्यपि सम्राटोंके मनोनयन

उनके पुत्र ही प्रायः गद्दीपर बैठाये जाते थे तो भी उनका राज्याभिषेक चुनावके पश्चात् होता था। चुननेवाले इस बातका ध्यान रखते थे और नये सम्राट्से वचन ले लेते थे कि वह उनके विशेष अधिकारों तथा स्वत्वोंमें हस्तक्षेप न करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि होहेन्स्टाफेन-वंशके राज्यच्युत होनेके पश्चात् जर्मन-साम्राज्य कई स्वतन्त्र रियासतोंमें बँट गया। उनमेंसे कोई भी रियासत बहुत बड़ी नहीं थी, पर कितनी तो बहुत ही छोटी थीं।

कुछ समयकी अराजकताके पश्चात् संवत् १३३० (सन् १२७३ ई०)में हैप्सवर्ग-वंशका रूडल्फ सम्राट् चुना गया। हैप्सवर्ग वंशके लोगोंने यूरोपके इतिहासमें बड़ा भाग लिया है। उनका मूल निवास उत्तरीय स्विट्जरलैंडमें था, जहाँपर उनके प्रासादोंका भग्नावशेष अब भी पाया जा सकता है। रूडल्फ इस वंशका प्रधान पुरुष था। उसने आस्ट्रिया तथा स्टारियाकी डचियोंको अपने अधिकारमें लेकर अपने वंशकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ायी। इन्हींसे बढ़ते-बढ़ते उसके उत्तराधिकारियोंके समयमें विशाल आस्ट्रियन राज्यकी स्थापना हो गयी।

रूडल्फकी मृत्युके लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद निर्णायकोंने आस्ट्रियन राज्यके स्वामीको सम्राट् चुननेका नियम-सा बना लिया, इसलिए सम्राट्की पदवी, हैप्सवर्ग-वंशमें, पैतृकसी हो गयी। परन्तु हैप्सवर्गोंको मृतप्राय पवित्र रोमन साम्राज्यकी हितवृद्धिकी अपेक्षा अपने कौटुम्बिक राज्यकी वृद्धिका अधिक खयाल था। यह साम्राज्य तो, वाल्टेयरके शब्दोंमें, न अब पवित्र रह गया था, न रोमन रह गया था, न साम्राज्य रह गया था।

प्रथम मैक्सिमिलियन जो सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें सम्राट् था, जर्मनीके शासनके सुधारकी ओर ध्यान न देकर अपनी विदेशी विजय-यात्राओंमें मग्न रहता था। अपने अन्य पूर्वाधिकारियोंकी भाँति उसे भी उत्तरीय इटलीपर अधिकार प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा थी। उसका विवाह चार्ल्स दि बोल्ड (धृष्ट चार्ल्स) की लड़कीसे हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि नेदरलैण्डका आस्ट्रियासे सम्बन्ध हो गया। आगे चलकर इस सम्बन्धके कई असाधारण परिणाम निकले। विवाहने हैप्सवर्गोंको स्पेनका भी, जिसका अभीतक जर्मनीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न था, अधिपति बना दिया।

स्पेनपर मुसलमानोंके विजय पा जानेसे इस देशका इतिहास यूरोपके अन्य देशोंके इतिहाससे भिन्न प्रकारका हो गया। इस विजयका पहला प्रभाव तो यह पड़ा कि उसके बहुतसे निवासी मुसलमान हो गये। दशम शताब्दीमें, जब कि सारा यूरोप घोर अन्धकारमें डूबा हुआ था, स्पेनकी अरब सभ्यता उन्नतिके शिखरपर पहुँची। प्रजाके रोमन, गोथिक, अरब और बर्बर आदि भिन्न-भिन्न अङ्ग पूर्णतया

मिल-जुल गये थे। कृषि, व्यापार, व्यवसाय, कला और विज्ञानकी खूब उन्नति हो रही थी। उस समय शायद सारी पृथ्वीपर कर्डोवाके समान विशाल और समृद्ध नगर न था। उसकी जनसंख्या ५ लाख थी। उसमें विश्वविद्यालय और प्रासादोपम भवनोंके सिवाय ३००० मस्जिदें और ३०० सार्वजनिक स्नानागार थे। जिस समय उत्तरी यूरोपमें केवल पादरी लोगोंको कुछ साधारण अक्षर-बोध था उस समय कर्डोवाके विश्वविद्यालयमें सहस्रों छात्र पढ़ रहे थे, परन्तु यह शानदार सभ्यता सौ वर्ष भी न ठहरी। ११ वीं शताब्दीके अन्ततक कर्डोवाकी खिलाफत मटियामेट हो गयी थी और इसके कुछ काल पीछे अफ्रीकासे नये विजेताओंने आकर देशपर अधिकार जमा लिया।

यह बातें तो हो ही रही थीं, पर इनके साथ ही उत्तरीय स्पेनके पहाड़ोंमें ईसाई राज्यके चिह्न भी बचे चले आते थे। संवत् १०५० (सन् ९९३ ई०)के लगभग कैस्टील, ऐरेगॉन और नैवार आदि कई छोटे-छोटे ईसाई राज्योंका जन्म हो चुका था। कैस्टीलने विशेष उन्नति की। उसने हतोत्साह अरबोंको पीछे हटाना आरम्भ किया और संवत् ११३२ (सन् १०७५ ई०)में टालीडो उसने छीन लिया।

ऐरेगॉनने बार्सिलोनाको मिलाकर अपनी सीमा बढ़ा ली और एब्रोके किनारोंपरकी भूमि जीत ली। संवत् १३०० (सन् १२४३ ई०)तक स्पेनके मुसलमानों और ईसाइयोंकी लंबी लड़ाई समाप्त हो गयी। कैस्टीलका राज्य दक्षिणी समुद्र-तटतक पहुँच चुका था और कर्डोवा और सेवीलके नगर उसके अन्तर्गत थे। पुर्तगालका राज्य उतना ही विस्तृत हो गया था जितना कि वह आज है।

स्पेनके मुसलमान मूर कहलाते थे। दो सौ वर्षतक उन्होंने स्पेनी प्रायद्वीपके दक्षिणी पहाड़ी भागमें गरनातामें अपना राज्य स्थिर रखा। इस बीचमें स्पेनके नगरसे बचे ईसाई राज्य कैस्टीलको घरेलू झगड़ोंने इतना व्यग्र कर रखा था कि उसे मूरोंसे लड़नेका अवकाश ही न था।

स्पेनके उल्लेखनीय शासकोंमें कैस्टीलकी रानी इसाबेलाका स्थान पहला है। इन्होंने संवत् १५२६ (सन् १४६९ ई०)में ऐरेगॉनके युवराज फर्डिनण्डसे विवाह किया।

इस विवाहके द्वारा कैस्टील और ऐरेगॉनका जो संयोग हुआ उसीने यूरोपीय इतिहासमें स्पेनके महत्त्वकी नींव डाली। इसके बाद सौ वर्षतक स्पेन यूरोपका सबसे प्रबल राज्य रहा। फर्डिनेण्ड और ईसाबेलाने पहले प्रायद्वीपकी विजयको पूर्ण करनेका निश्चय किया और संवत् १५४९ (सन् १४९२ ई०)में गरनाता उनके हाथमें आया। अब फिर स्पेनमें मुस्लिम शासनका लेशमात्र भी न रहा।

जिस साल प्रायद्वीपपर पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ उसी साल कोलम्बसने भी रानी इसाबेलाकी सहायतासे [illegible] अमेरिकाका [illegible] किया और स्पेनके

लिए अनन्त धनराशिका द्वार खोल दिया। सोलहवीं शताब्दीमें स्पेनका जो अल्प-कालिक अभ्युदय हुआ उसका कारण यही अमेरिकासे आया हुआ धन था। मैक्सिको और पेरूके नगरोंकी लूट और चाँदीकी खानोंकी आयने कुछ कालके लिए स्पेनको वह स्थान दिला दिया जिसे अपने निजी बल और सम्पत्तिसे वह कभी प्राप्त न कर सकता।

परन्तु दुर्भाग्यकी बात यह थी कि स्पेनके सबसे परिश्रमी, मितव्ययी और गुणी निवासियों अर्थात् मूरों और यहूदियोंके साथ जिनके व्यवसायसे प्रायः सारे देशका पालन-पोषण होता था, ईसाइयोंका व्यवहार बहुत बुरा था। इसाबेलाको अपने राज्यमें ईसाइयों-को निकालनेकी इतनी तीव्र इच्छा थी कि उसने इंक्विजिशन नामक धार्मिक न्याया-लयोंको फिरसे जारी किया। बीसों वर्षतक ये न्यायालय जारी रहे। सहस्रों मनुष्य, जिनपर विधर्मी होनेका अभियोग चलाया जाता था, इनमें लाये जाते थे और इनकी आज्ञासे जला दिये जाते थे। संवत् १६६६ (सन् १६०९,ई०)में सब मूर स्पेनसे निकाल दिये गये। इन अत्याचारोंने उन लोगोंको निरुत्साह बना दिया जो स्पेनकी जनतामें सबसे अधिक उद्यमी थे। इसका परिणाम यह हुआ कि स्पेनको सोलहवीं शताब्दीमें समृद्ध और बलशाली बननेका जो अवसर मिला था वह उसके हाथसे निकल गया।

जर्मन सम्राट् मैक्सिमिलियनको धृष्ट चार्ल्सकी लड़कीसे विवाह करनेसे बर्गण्डी तो मिल गया पर वह इतनेसे सन्तुष्ट न हुआ। उसने फर्डिनेण्ड और इसाबेलाकी लड़की जोआनासे अपने लड़के फिलिपका विवाह कराया। संवत् १५६३ (सन् १५०६ ई०)में फिलिपकी मृत्यु हो गयी और जोआनाको पतिवियोगने पागल कर दिया, और वह राज्य करनेके योग्य न रही। इसलिए उसके लड़के चार्ल्सका भविष्य बड़ा ही आशापूर्ण था। अपने दादा मैक्सिमिलियन और नाना फर्डिनेण्डके मरनेपर वह बहुतसी उपाधियों और बहुत बड़े अधिकारका स्वामी होनेवाला था।*

---

* आस्ट्रिया — प्रथम मैक्सिमिलियन (मृः १५०६) = बर्गण्डी — मेरी (मृः १५६१) (धृष्ट चार्ल्सकी लड़की)

कैस्टील — इसाबेला (मृः १५६१) = ऐरेगॉन — फार्डिनेण्ड (मृः १५७३)

फिलिप (मृः १५६३) = जोआना (मृः १६२२)

पञ्चम चार्ल्स (मृः १६१५) (सम्राट्)

फर्डिनेण्ड (मृः १६२१) (सम्राट्) = ऐना (बरहमिया और हंगरीकी उत्तराधिकारिणी)
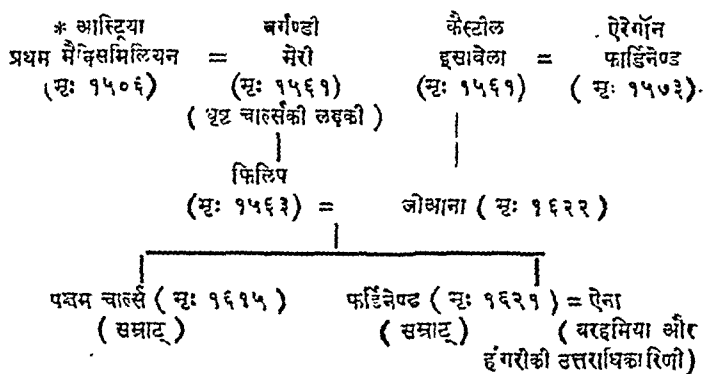
संवत् १५७३ (सन् १५१६ ई०)में फर्डिनेण्डकी मृत्यु हुई। उस समय चार्ल्स सोलह वर्षका था। वह आजन्म नेदरलैण्डमें ही रहा था। जब वह स्पेन आया तो उसे कई कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। स्पेनवाले उसके नेदरलैण्डवासी साथियोंसे चिढ़ते थे। बात-बातमें सन्देह, शंका और अविश्वासका परिचय मिलता था। स्पेनका साम्राज्य कई राज्योंमें बँटा था। इनमेंसे प्रत्येक राज्य यह चाहता था कि चार्ल्सको सम्राट् माननेके पहले उसे कुछ विशेष अधिकार मिल जायँ।

स्पेन-नरेश बननेमें तो आपत्तियाँ थीं ही, चार वर्षके भीतर ही उसको एक और दायित्वपूर्ण पद मिला। मैक्सिमिलियनकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि उसके मरनेपर उसका पोता सम्राट् हो। संवत् १५७६ (सन् १५१९ ई०)में उसकी मृत्यु हुई। फ्रांसका राजा प्रथम फ्रांसिस सम्राट् होना चाहता था, पर निर्णायकोंने चार्ल्सको ही चुना। इस चुनावका यह फल हुआ कि स्पेनका नरेश जो न तो आजतक जर्मनी गया था, न जर्मन भाषा जानता था, उस देशका अधिपति हो गया और वह भी ऐसे समय जब कि लूथरकी शिक्षाके कारण अभूतपूर्व मतभेद और राजनीतिक उद्वेग फैल रहा था। सम्राट् होनेपर उसकी उपाधि पंचम चार्ल्स हुई।

फ्रांसका राजा अष्टम चार्ल्स (१५४०–१५५५) अपने पिता ग्यारहवें लुईकी भाँति बुद्धिमान् न था वह तुर्कोंपर आक्रमण करने और कुस्तुन्तुनिया जीतनेके स्वप्न देखा करता था। उस समय नेपल्सका राज्य ऐरेगॉनके राजवंशके अधिकारमें था, परन्तु उसपर ग्यारहवें लुईका भी स्वत्व था। वह तो इस विषयमें चुपचाप था, परन्तु चार्ल्सने उस स्वत्वके आधारपर नेपल्सपर आक्रमण करनेका विचार किया। दक्षिणमें इतने बलशाली नरेशके अधिकार जमा लेनेसे इटलीकी बराबर हानि थी, परन्तु इस बातकी कोई आशा न थी कि उस देशके छोटे-छोटे राज्य मिलकर इस विदेशीका सामना करेंगे। ऐसा करना तो दूर रहा, कुछ इटलीवालोंने ही चार्ल्सको अपने देशमें बुलाया।

यदि लारेंजो जीता होता तो शायद वह फ्रेंच-नरेशके विरुद्ध एक संघ खड़ा करता, पर वह चार्ल्सकी यात्राके दो वर्ष पहले ही मर चुका था। उसके लड़कोंका फ्लोरेन्सपर वह प्रभाव न था। इस समय नगरका नेतृत्व डोमिनिकन सम्प्रदायके पादरी सावोनारोलाको मिला जिसके उपदेश-पूर्ण व्याख्यानोंसे कुछ कालके लिए फ्लोरेन्सकी सुखभोगी जनता मुग्ध हो गयी। उसे अपने ऋषि होनेपर विश्वास था। वह कहा करता था कि ईश्वर इटलीको उसके पापोंके लिए दण्ड देनेवाला है और लोगोंको चाहिये कि उसके कोपसे बचनेके लिए पाप और विलासका जीवन त्याग दें।

जब सावोनारोलाने फ्रांसीसी आक्रमणका समाचार सुना तो उसने कहा कि यह वही ईश्वरीय दण्ड है जिसकी वह भविष्यवाणी किया करता था। उसको

यह विश्वास हो गया कि ईसाई-धर्मका अब संस्कार हो जायगा। उसकी भविष्य-वाणीको सच होते देखकर लोग डर गये। जब चार्ल्सकी सेना फ्लोरेंसके निकट पहुँची तो लोगोंने मेडिची-वंशका प्रासाद लूट लिया और लोरेंजोके तीनों लड़कोंको निकाल दिया। जो नया प्रजातंत्र स्थापित किया गया उसमें सावोनारोला ही प्रधान पुरुष होगया। चार्ल्सको फ्लोरेंसमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी गयी, परन्तु नगर-निवासी उसकी भद्दी आकृति देखकर अप्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे स्पष्टतया बतला दिया कि वे उसे अपना विजेता न स्वीकार करेंगे। सावोनारोलाने उससे कहा—"लोगोंको तुम्हारा फ्लोरेंसमें अधिक कालतक रहना अच्छा नहीं लगता। तुम व्यर्थ अपना समय खो रहे हो। ईश्वरने तुमको धर्म-संस्थाको संस्कृत करनेका कार्य सौंपा है। जाओ, अपना काम पूरा करो। नहीं तो ईश्वर इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए किसी दूसरे मनुष्यको चुनेगा और तुमको दण्ड देगा।" इसलिए एक सप्ताह ठहरकर फ्रांसीसी सेना दक्षिणकी ओर बढ़ी।

यहाँसे चलकर चार्ल्सको एक ऐसे व्यक्तिका सामना करना पड़ा जिसका चरित्र और स्वभाव सावोनारोलासे नितान्त भिन्न था। यह व्यक्ति तत्कालीन पोप छठा सिकन्दर था। धार्मिक मतभेदके उपशमनके बाद पोपोंने अपने इटालियन राज्यको सुदृढ़ बनानेका प्रयत्न आरम्भ किया। इस काममें दो बाधाएँ पड़ती थीं। एक तो उनको वृद्धावस्थामें पोप-पद मिलता था, इसलिए अपनी नीति निबाहनेके लिए पर्याप्त समय न मिलता था, दूसरे वे अपने सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंके भरण-पोषणकी चिन्तामें लग जाते थे, इससे और लोग बहुत अप्रसन्न रहते थे।

छठे सिकन्दरके बराबर अत्याचारी और दुराचारी शासक इटलीमें कोई दूसरा हुआ ही नहीं। यह स्पेनके बोर्जिया-वंशका था। संसारी शासकोंकी भाँति इसने अपने लड़कोंका हित-साधन करना आरम्भ किया। इसने अपने लड़के सीजर बोर्जिया-को फ्लोरेंसके पूर्व एक डची देनेका विचार किया। सीजर अपने पितासे भी बढ़-कर दुष्ट था। अपने शत्रुओंको मारना तो एक साधारण बात थी, उसने अपने भाईको मारकर टाइबर नदीमें फेंकवा दिया। यह कहा जाता है कि यह पिता-पुत्र विषोंका अद्भुत ज्ञान रखते थे।

फ्रांसीसी आक्रमणसे पोप घबराया। ईसाई-धर्मका अध्यक्ष होते हुए भी उसने तुर्कीके सुल्तानसे सहायता माँगी, पर चार्ल्स न रुका। उसने रोममें प्रवेश कर ही लिया।

उसकी विजयपर विजय होती गयी। शीघ्र ही नेपल्स भी उसके हाथमें आ गया, परन्तु दक्षिणकी विलास-सामग्रीने उसके सिपाहियोंको आलसी बना दिया और उसके शत्रुओंने उसके विरुद्ध चक्र रचना आरम्भ किया। फर्डिनेण्डको सिसली खो बैठनेका

डर था और मैक्सिमिलियन यह नहीं चाहता था कि इटलीपर फ्रांसवालोंका दबाव रहे । अन्तमें संवत १५५२ (सन् १४९५ ई०)में चार्ल्सको इटलीसे चला जाना पड़ा ।

यों तो ऐसा प्रतीत होता है कि चार्ल्सका परिश्रम निष्फल गया पर वस्तुतः इसका बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा । पहली बात तो यह हुई कि सारे यूरोपको यह बात विदित हो गयी कि यद्यपि इटलीवाले आल्प्स पर्वतके उत्तर रहनेवालोंको बर्बर कह-कर घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, पर उनमें राष्ट्रीयताका नितान्त अभाव है । इस समयसे लेकर १९ वीं शताब्दीके अन्ततक इटलीपर विदेशों, विशेषकर स्पेन और आस्ट्रिया-का ही प्रभुत्व रहा । दूसरी बात यह हुई कि फ्रांसवालोंका इटलीकी कला और संस्कृति-से प्रेम हो गया । जो विद्या अबतक इटलीमें ही फूली-फली थी उसका फ्रांस ही नहीं, वरन् इंग्लैण्ड और जर्मनीमें भी विकास होने लगा । अतः जिस समय इटली अपनी राजनीतिक स्वाधीनता खो रहा था उसी समय उसके हाथसे वह विद्या-सम्बन्धी महत्त्व भी निकला जा रहा था जो उसे अबतक प्राप्त था ।

चार्ल्सके लौट जानेपर भी सावोनारोला फ्लोरेंसकी उन्नतिमें लग रहा था । उसको आशा थी कि कुछ कालमें यह नगर पृथ्वीभरके लिए आदर्श बन जायगा । कुछ दिनोंतक तो लोग उसकी बात मानते गये । संवत् १५५४ (सन् १४९७ ई०)के कार्निवल उत्सवके अवसरपर सिटी हालके सामने मैदानमें चित्र, अश्लील पुस्तकें, गहने इत्यादि जिनको सावोनारोला विलासकी वस्तुएँ समझता था, जला दी गयीं ।

परन्तु इस सुधारकके कई शत्रु थे । स्वयं उसके सम्प्रदायवालोंमें उसके कई विरोधी थे । फ्रांसिस्कन तो उसे बराबर ही दम्भी कहा करते थे । पोप भी उससे रुष्ट था, क्योंकि यह फ्लोरेंसवालोंको फ्रांससे मिले रहनेका परामर्श दिया करता था । कुछ दिनोंमें जनताका विश्वास भी उसपरसे उठ गया । संवत् १५५५ (सन् १४९८ ई०)में यह पोपकी आज्ञासे कैद किया गया । उसे फाँसीका दण्ड दिया गया और उसकी लाश उसी मैदानमें जलायी गयी जहाँ साल भर पहिले उसने विलास-सामग्री जलवायी थी ।

इसी साल चार्ल्सकी भी मृत्यु हुई । उसे कोई लड़का न था, इसलिए एक दूरका सम्बन्धी, जिसने अभिषिक्त होनेपर बारहवें लुईकी उपाधि धारण की, उत्तराधिकारी हुआ । इसकी दादी मिलनके राजवंशकी थी, इसलिए वह अपनेको मिलन और नेपल्स दोनोंका अधिकारी समझता था । इसने मिलनपर शीघ्र ही कब्जा कर लिया और फिर स्पेनके फर्डिनेण्डसे नेपल्सको बाँट लेनेके लिए एक गुप्त समझौता किया । पीछे दोनोंमें बनी नहीं और इसने अपना हिस्सा फर्डिनेण्डके हाथ बेच दिया ।

[illegible] (संवत् १५६०) बाद द्वितीय जूलियस पोप हुआ । यह भी [illegible] ही [illegible] और धर्मनिष्ठ था, पर इसके साथ ही यह सिपाही-प्रकृतिका मनुष्य था । एक बार [illegible] वह [illegible]

था और जेनोआके प्रतियोगी वेनिससे जलता था। वेनिसवालोंने उसके राज्यकी उत्तरी सीमाके पासके कुछ नगरोंको छीनकर उसे और भी क्रुद्ध कर दिया। उसने उनको यह धमकी दी कि मैं तुम्हारे नगरको छोटासा मछुओंका गाँव बनाकर छोड़ूँगा। इसके उत्तरमें वेनिसके दूतने कहा कि यदि आप न मान जायँगे तो हम आपको एक देहाती पादरी बनाकर छोड़ेंगे।

संवत् १५६५ (सन् १५०८ ई०)में सम्राट् फ्रांस, स्पेन और पोपने वेनिसके राज्यके उस भागको जो इटालियन प्रायद्वीपपर था, बाँट लेनेके उद्देश्यसे 'कैम्ब्रेटी लीग' नामक एक मित्रसंघ बनाया। शीघ्र ही वेनिसके राज्यका बहुतसा भाग चला गया, परन्तु उसने पोपसे क्षमा-प्रार्थना करके मेल कर लिया। अब पोपने वेनिसकी ओरसे फ्रांससे लड़नेका विचार किया और इंगलिस्तानके नये बादशाह अष्टम हेनरीको भी अपनी ओर मिला लिया। परिणाम यह हुआ कि संवत् १५६९ (सन् १५१२ ई०)में फ्रांसवालोंको इटली छोड़ना पड़ा।

संवत् १५७० (सन् १५१३ ई०)में जूलियसकी जगह फ्लोरेंसके लारेञ्जोका लड़का दशम लियो पोप हुआ। यह कला और साहित्यका प्रेमी था, पर धार्मिक भाव उसमें भी बिलकुल न था। अपने थोड़ेसे तुच्छ लाभके लिए वह युद्धको जारी रखना चाहता था।

लूईके बाद उसका चचेरा भाई प्रथम फ्रांसिस फ्रांसका बादशाह हुआ। यह उस समय केवल २० वर्षका था, पर इसका स्वभाव बड़ा मिलनसार और लोगोंके साथ व्यवहार बड़ा ही शिष्ट था। 'सज्जनरेश' उसकी बड़ी ही प्रशस्त उपाधि थी। वह भी कला और साहित्यका प्रेमी था, परन्तु वह अच्छा राजनीतिज्ञ न था। उसकी नीति बराबर बदलती रहती थी। अपने राज्यकालके आरम्भमें उसने एक उल्लेख्य विजय प्राप्त की। वह अपने सिपाहियोंको एक ऐसी घाटीसे इटलीमें उतार ले गया जो उस समयतक सवारोंके लिए अगम्य समझी जाती थी। इटलीमें आकर उसने पोपके स्विस सिपाहियोंको सहसा परास्त किया। इसके बाद उसने मिलनपर कब्जा कर लिया। अन्तमें उससे और पोपसे यह समझौता हुआ कि मिलनपर फ्रांसका अधिकार रहे और फ्लोरेंस मेडिची-वंशको मिल जाय। तबसे फ्लोरेंसका प्रजातंत्र नरेशों-के अधीन हो गया और उसका नाम टस्कनीकी ग्रांड डची पड़ गया। वह फिर अपने पूर्व-गौरवतक कभी न पहुँचा।

पहले पहले प्रथम फ्रांसिस और पंचम चार्ल्समें मैत्री थी, पर कई ऐसे कारण उपस्थित हो गये जिन्होंने निरन्तर लड़ाईका द्वार खोल दिया। फ्रांस उस समय चार्ल्सके राज्यके उत्तरी और दक्षिणी भागोंके बीचमें दबा था और उसकी सीमा प्राकृतिक न थी। बर्गण्डीपर दोनों अपना स्वत्व समझते थे। चार्ल्स अपनेको

मिलनका हकदार भी समझता था। कई वर्षोंतक इन दोनों नरेशोंमें लड़ाई होती रही। इतना ही नहीं। यह लड़ाई उस लड़ाईकी भूमिकामात्र थी जो इसके बाद २०० वर्षोंतक फ्रांस और बर्बोनवत्त हैप्सबर्ग-वंशमें हुई।

भावी युद्धके लिए दोनों पक्षोंका इंग्लिस्तानके नरेशसे सहायता माँगना स्वाभाविक ही था। हेनरीकी भी यूरोपीय मामलोंमें हस्तक्षेप करनेकी इच्छा थी। वह संवत् १५६६ (सन् १५०९ ई०)में १८ वर्षके वयमें नरेश हुआ था। वह भी फ्रांसिसकी भाँति सुन्दर और सुशील था और उसके राज्यकालके प्रारम्भमें लोग उससे बहुत प्रसन्न थे। कुछ लोग उसकी विद्वत्तापर भी मुग्ध थे। उसने अपना पहला विवाह चार्ल्सकी एक बुआ कैथरीनसे किया। उसका मंत्री टामस वुल्सी था जिसका अभ्युदय और पतन इस अभागी रानीके भाग्यके साथ-साथ, जैसा कि हम आगे चलकर दिखलायंगे, बँध गया।

संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)में चार्ल्स एज-ला शैपेलमें अपना अभिषेक कराने जर्मनी चला। रास्तेमें हेनरीको फ्रांसिससे सन्धि करनेसे रोकनेके लिए वह इंग्लिस्तानमें उतर पड़ा। इस उद्देश्यसे उसने वुल्सीको जिसे दशम लियोने कार्डिनल बना दिया था और जिसकी बात इंग्लिस्तानमें बहुत चलती थी, खूब उत्कोच (रिश्वत) दिया। जर्मनी पहुँचकर उसने वर्म्समें पहली राजसभा बुलायी। इस सभाके सामने सबसे पहला और महत्त्वका काम मार्टिन ल्यूथर नामक एक अध्यापकके विषयमें विचार करना था। इसपर अधर्ममूलक पुस्तकोंके लिखनेका अभियोग चलाया गया था।

अध्याय २४

प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलनके पहले जर्मनीकी दशा

उत्तरी और पश्चिमी यूरोपके एक बड़े भागका मध्ययुगीय धर्म-पद्धतिसे विमुख हो जाना सोलहवीं शताब्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। पाश्चात्य जगत्के इतिहासमें इस घटनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके पहिले दो बार लोग और सिर उठा चुके थे। १३ वीं शताब्दीमें दक्षिणी फ्रांसमें आल्बीजेन्सी और पन्द्रहवींमें बोहीमियावालोंने सुधारके लिए प्रयत्न किया था, पर दोनों आन्दोलन बड़ी क्रूरतासे दबा दिये गये और पुरानी पद्धति फिर ज्योंकी त्यों स्थापित हो गयी।

पर अन्तमें यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो गयी कि अपने अद्‌भुत संगठन और असाधारण शक्तिके होते हुए भी धर्मसंस्था सारे पश्चिमीय यूरोपको पोपके अधीन रखनेमें समर्थ नहीं है।

संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)की शरदऋतुमें अध्यापक मार्टिन लूथर विटिन वर्गके विद्यापीठके सम्पूर्ण छात्रोंको लेकर नगरके बाहर चले गये और वहाँपर मध्ययुगकी धर्मसंस्थाकी समस्त नियम-पद्धतिमें आग लगा दी गयी। इस भाँति उन्होंने तत्कालीन धर्मसंस्थाकी बहुत-सी नीतियों तथा मन्तव्योंका खण्डन करनेकी अभिलाषा प्रत्यक्ष प्रकट की। उनकी शिक्षाको रोकनेके लिए पोपने जो घोषणा निकाली उसको नष्ट करके उन्होंने पोपका भी अपमान किया।

जर्मनी, स्विट्ज़रलैण्ड, आंग्ल देश तथा अन्य स्थानोंमें पृथक्-पृथक् नेताओंने भी धार्मिक विद्रोह खड़े किये। राजाओंने भी सुधारकोंकी शिक्षाका आदर किया और पोपके अधिकारको न माननेवाली धर्मसंस्थाओंकी संस्थापनामें सहायता देनेका प्रयत्न किया। इस भाँति पश्चिमीय यूरोपमें दो धार्मिक दल हो गये। अधिकतर लोगोंने तो पोपको ही प्रधान धर्माध्यक्ष मानकर जिस धार्मिक शिक्षाको थियोडोसियसके समयसे उनके पिता-पितामह स्वीकार करते आये थे उसीको स्वीकार किया। जो प्रदेश रोम-साम्राज्यमें थे वे तो रोमनकैथलिक रह गये, परन्तु उत्तरीय जर्मनी, आंग्ल देश और स्विट्ज़रलैंडके कुछ प्रदेश, स्काटलैण्ड तथा स्कैण्डिनेवियाने क्रमशः पोपके आधिपत्यको अस्वीकार कर, मध्ययुगकी धर्मसंस्थाके नियमोंको न मानकर नयी-नयी धर्मसंस्थाएँ स्थापित कीं। जिन लोगोंने रोमकी धर्मसंस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़ा

मिलनका इकरार भी करता था। कई वर्षोंतक इन दोनों देशोंमें लड़ाई होती रही। इतना ही नहीं। यह लड़ाई उस लड़ाईकी पूर्वपीठिका थी जो इसके बाद २०० वर्षोंतक फ्रांस और इंगलैण्डमें हुई।

भावी युद्धके लिए दोनों पक्षोंका इंगलैण्डकी ओरसे सहायता चाहना स्वाभाविक ही था। हेनरीको भी यूरोपीय मामलोंमें हस्तक्षेप करनेकी इच्छा थी। यह संवत् १५६६ (सन् १५०९ ई०)में १८ वर्षकी वयमें गद्दीपर बैठा था। यह भी फ्रांसिसकी भाँति सुन्दर और चतुर था और उसके राज्यकालके प्रारम्भमें लोग उससे बहुत प्रसन्न थे। कुछ लोग उसको विद्याव्यसनी भी समझते थे। उसने अपना पहला विवाह चार्ल्सकी एक बुआ कैथराइनसे किया। उसका मंत्री टामस वुल्जी था जिसका अभ्युदय और पतन इस ब्याहकी वजहसे भाग्यके साथ-साथ, जैसा कि हम आगे चलकर दिखलायेंगे, बँध गया।

संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)में चार्ल्स पंचम स्पेनसे अपना अभिषेक कराने जर्मनी चला। रास्तेमें हेनरीको फ्रांसिसके पक्षमें जानेसे रोकनेके लिए वह इंगलिस्तानमें उतर पड़ा। इस वर्ष उसने वुल्जीको जिसे दसवें लियोने कार्डिनल बना दिया था और जिसकी बात इंगलिस्तानमें बहुत चलती थी, खूब उत्कोच (रिश्वत) दिया। जर्मनी पहुँचकर उसने वर्म्समें पहली राजसभा बुलायी। इस सभाके सामने सबसे पहला और महत्त्वका काम मार्टिन लूथर नामक एक अध्यापकके विषयमें विचार करना था। इसपर अधर्ममूलक पुस्तकोंके लिखनेका अभियोग चलाया गया था।

अध्याय २४

प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलनके पहले जर्मनीकी दशा

उत्तरी और पश्चिमी यूरोपके एक बड़े भागका मध्ययुगीय धर्म-पद्धतिसे विमुख हो जाना सोलहवीं शताब्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। पाश्चात्य जगत्‌के इतिहासमें इस घटनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके पहिले दो चार लोग और सिर उठा चुके थे। १३ वीं शताब्दीमें दक्षिणी फ्रांसमें आल्बीजेन्सी और पन्द्रहवींमें बोहीमियावालोंने सुधारके लिए प्रयत्न किया था, पर दोनों आन्दोलन बड़ी क्रूरतासे दबा दिये गये और पुरानी पद्धति फिर ज्योंकी त्यों स्थापित हो गयी।

पर अन्तमें यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो गयी कि अपने अद्‌भुत संगठन और असाधारण शक्तिके होते हुए भी धर्मसंस्था सारे पश्चिमीय यूरोपको पोपके अधीन रखनेमें समर्थ नहीं है।

संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)की शरदऋतुमें अध्यापक मार्टिन लूथर विटिन वर्गके विद्यापीठके सम्पूर्ण छात्रोंको लेकर नगरके बाहर चले गये और वहाँपर मध्ययुगकी धर्मसंस्थाकी समस्त नियम-पद्धतिमें आग लगा दी गयी। इस भाँति उन्होंने तत्कालीन धर्मसंस्थाकी बहुत-सी नीतियों तथा मन्तव्योंका खण्डन करनेकी अभिलाषा प्रत्यक्ष प्रकट की। उनकी शिक्षाको रोकनेके लिए पोपने जो घोषणा निकाली उसको नष्ट करके उन्होंने पोपका भी अपमान किया।

जर्मनी, स्विट्‌जरलैण्ड, आंग्ल देश तथा अन्य स्थानोंमें पृथक्-पृथक् नेताओंने भी धार्मिक विद्रोह खड़े किये। राजाओंने भी सुधारकोंकी शिक्षाका आदर किया और पोपके अधिकारको न माननेवाली धर्मसंस्थाओंकी संस्थापनामें सहायता देनेका प्रयत्न किया। इस भाँति पश्चिमीय यूरोपमें दो धार्मिक दल हो गये। अधिकतर लोगोंने तो पोपको ही प्रधान धर्माध्यक्ष मानकर जिस धार्मिक शिक्षाको थियोडोसियसके समयसे उनके पिता-पितामह स्वीकार करते आये थे उसीको स्वीकार किया। जो प्रदेश रोम-साम्राज्यमें थे वे तो रोमनकैथलिक रह गये, परन्तु उत्तरीय जर्मनी, आंग्ल देश और स्विट्‌जरलैंडके कुछ प्रदेश, स्काटलैण्ड तथा स्कैण्डिनेवियाने क्रमशः पोपके आधिपत्यको अस्वीकार कर, मध्ययुगकी धर्मसंस्थाके नियमोंको न मानकर नयी-नयी धर्मसंस्थाएँ स्थापित कीं। जिन लोगोंने रोमकी धर्मसंस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़ा

था उन्हें प्रोटेस्टेण्ट* कहते थे। इन लोगोंमें इस बातपर सहमति नहीं थी कि धर्म-सम्बन्धी पद्धतिके अनुसार किस प्रकारकी उपासना चाहिये। पोपको न मानने और अति प्राचीन धर्मसंस्थाको अथवा धर्म-ग्रन्थोंको तथा बाइबिलको एकमात्र धर्म-पुस्तक माननेमें ये लोग अवश्य एकमत थे।

प्रधान धर्मसंस्थाके प्रतिकूल विद्रोहसे लोगोंके आचार-व्यवहारमें भी अनेक प्रकारके परिवर्तन हो गये। यह होना भी स्वाभाविक था, क्योंकि धर्मसंस्था केवल धर्मसे ही सम्बन्ध न रखकर जीवनके समस्त व्यापारों तथा सामाजिक रूढ़ियोंपर प्रभाव डालती थी। शताब्दियोंपर्यन्त पारमार्थिक तथा उच्च शिक्षाका अधिकार इसीके हाथमें था। गृहमें, पंचायतमें, अथवा नगरमें अर्थात् भीतर और बाहर हो कोई न कोई धार्मिक पूजा आवश्यक थी। उस समयपर्यन्त जितनी किताबें प्रकाशित हुई थीं उनमेंसे अधिकतर पादरियोंकी लिखी हुई थीं। ये लोग राजसभाके सदस्य थे और राजाओंके गुरु तथा विश्वासी मन्त्री होते थे। तात्पर्य यह कि इटलीके बाहर यदि विद्वान् कहीं थे तो यही लोग थे। सर्वसाधारणके कार्योंमें जो भाग उस समय धर्म-संस्थाएँ लेती थीं वह आजकलकी धर्मसंस्थाओंको प्राप्त नहीं है।

जैसे मध्ययुगकी धर्मसंस्थाएँ केवल धार्मिक समाज नहीं थीं उसी प्रकार प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलनसे केवल धर्ममेंही परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन भी हुआ। उस संस्थाको मटियामेट करनेके लिए जो कलह आरम्भ हुआ वह अतीव भीषण था। वह दो शताब्दियोंतक चलता रहा और उसका प्रभाव वैयक्तिक, सामाजिक तथा ऐहिक और पारलौकिक क्षेत्रोंपर पड़ा। व्यवस्थाओंमें घोर परिवर्तन हो गया। राष्ट्र-राष्ट्रमें तथा राज्य-राज्यमें विद्रोह मच गया। घर-घरमें झगड़ा हो गया। उस समय पश्चिमी यूरोपके राज्योंमें युद्ध तथा विप्लव, क्षोभ तथा विनाश, विश्वासघात तथा अत्याचारका ही विस्तार था। अब हम देखना चाहते हैं कि यह आन्दोलन कैसे उत्पन्न हुआ, इसका वास्तविक रूप क्या था तथा इसके ऐसे परिणाम क्यों हुए। यह जाननेके लिए लूथरकी निवासभूमि जर्मनीका इतिहास देखना चाहिये। उससे हमें विदित हो जायगा कि जर्मन-जाति उसके आन्दोलनसे क्या सहमत हो गयी।

आधुनिक जर्मनीसे जर्मनसाम्राज्यका बोध होता है। वह साम्राज्य यूरोपके तीनों चार सुरक्षित तथा शक्तिशाली प्रधान राष्ट्रोंमेंसे है। वह साम्राज्य "संयुक्त अमेरिका"-की भाँति संघके रूपमें परस्पर संगठित है। उसमें बाईस बड़े राज्य और तीन छोटे-

---

*इस शब्दका अर्थ विरोध करनेवाला है। प्रचलित धर्मको न माननेवालोंका यह नाम रखा गया, क्योंकि वे उसके विरोधी थे।

छोटे प्रजातन्त्र प्रदेश हैं। इस संघका प्रत्येक सदस्य अपनी अभ्यन्तर व्यवस्था स्वयं करता है, परन्तु व्यापक महत्वके सब कार्योंका निश्चय बर्लिनमें स्थित राष्ट्रीय सभाके लिए छोड़ दिया जाता है। इस संघकी स्थापना हुए पचास वर्षसे अधिक नहीं हुए।*

पंचम चार्ल्सके समयमें आधुनिक जर्मनीके समान कोई भी जर्मन राज्य नहीं था। जिसको फ्रांसवाले "जर्मनीज" (जनियां) कहा करते थे वह करीब दो सौ छोटे-छोटे राज्योंका समवाय था। उनके क्षेत्रफल तथा शासन-स्वरूप भिन्न-भिन्न थे। किसीका शासक ड्यूक था, किसीका काउण्ट तथा किसी-किसीके शासक तो आर्कबिशप तथा एबट लोग ही थे। न्यूरेम्बर्ग, आगसबर्ग, फ्रैंकफोर्ट तथा कोलोन आदि ऐसे अनेक प्रदेश थे। इसके अतिरिक्त वहाँपर अनेक 'नाइट' लोग रहते थे जो अपने-अपने प्रासाद तथा उसके पासके एकाध छोटे-मोटे गाँवके ही मालिक होते थे। उनकी छोटी-छोटी जागीरें भी रियासत ही कहलाती थी, क्योंकि वे लोग भी उतने ही स्वतन्त्र थे जितने ब्राण्डेनबर्गके इलेक्टर थे जो किसी समय प्रशाके राजा तथा उसके कुछ काल बाद जर्मनीके सम्राट् हुए।

सम्राटमें तो इतनी भी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह मनसबदारोंको ही अपने अधिकारमें रख सकता। वह अपने गये-बीते बड़प्पनकी डींग मारा करता था, पर न अब उसके पास द्रव्य ही था और न सैन्यशक्ति ही थी। लूथरके जन्मकालमें तो फ्रेडरिक तृतीयकी दशा इतनी शोचनीय हो गयी थी कि वह मठोंके क्षेत्रोंमें मुफ्त खा-खाकर अपना जीवन-निर्वाह करता था और बैलगाड़ियोंपर सवारी करता था। जर्मनीका असल अधिकार तो बड़े-बड़े सामन्तोंके ही हाथमें था। इनमें प्रथम तथा सबसे प्रधान सात नियोजक थे। तेरहवीं शताब्दीसे ये लोग सम्राट्को नियुक्त करते आ रहे थे। इनमेंसे तीन तो आर्कबिशप थे। ये लोग केवल नाममात्रको राजा नहीं थे। इनके अधिकारमें मेयान्स, ट्रीवी तथा कोलीनके विस्तृत राज्य थे। इसके दक्षिणका प्रदेश पैलेटिनेटके इलेक्टरके अधीन था। ईशान कोणमें ब्रेण्डेनबर्ग तथा सैक्सनीके इलेक्टरोंके राज्य थे और सातवाँ बोहीमियाका राजा था। इनके अतिरिक्त और रियासतें भी थीं जो मान और वैभवमें इनसे किसी अंशमें कम न थीं। इनमेंसे कितने तो वर्टेम्बर्ग, बवेरिया, हेसी तथा बेडनकी भाँति अबतक भी वर्तमान हैं और अब भी जर्मन-साम्राज्यके भाग हैं, परन्तु अपने आस पासके छोटे-छोटे राज्योंको मिलाकर अब यह सोलहवीं शताब्दीके राज्योंसे बहुत बड़ा हो गया है।

तेरहवीं शताब्दीमें एक बड़ा भारी आर्थिक आन्दोलन हुआ। यहींसे व्यवसाय

---

* यह विवरण युद्धके पहलेका है। आजकल सारा जर्मनी एक प्रजातन्त्र राज्य है। उसके किसी प्रदेशका शासक नरेश नहीं है।—सं०

तथा कलोंका प्रयोग आरम्भ हुआ । इस समयसे जिन नगरोंकी उन्नति हुई थी उनको यूरोपमें आजके जैसे ही मेल थे जैसे वीनके इटलीके नगर थे । जर्मनीमें न्यूरेम्बर्ग सबसे सुन्दर नगर है यहाँ मध्ययुगी सामन्तोंके बने हुए बड़े बड़े किले, भवन तथा गिरजोंके नमूने अभी अवस्थामें जैसे थे वैसे ही बने हुए हैं । जितने ही नगर स्वयं सम्राट्के अधीन थे । इन्हें लोग स्वतन्त्र नगर अथवा साम्राज्याधीन नगर कहते थे । इनको भी अनेक साम्राज्यके संयुक्त राज्योंमें गिनना चाहिए ।

जो नाइट लोग जर्मनीके छोटे छोटे प्रदेशोंपर राज्य करते थे वे लोग पहले विशेष वीर योद्धाओंकी श्रेणीमें समझे जाते थे, पर गोला-बारूद तथा युद्धकी नयी-नयी सामग्रीके आविष्कारोंसे इनके सैनिक महत्त्वका विशेष आदर नहीं रहा । इनकी आय इतनी कम थी कि वे अपना खर्च भी भली भाँति नहीं चला सकते थे, इससे बहुधा लूट-मार किया करते थे । ये लोग नगरोंसे द्वेष करते थे, क्योंकि प्रचुर धनके कारण नगरके लोग बड़ी विलासिताके रहते थे, जिनकी ये दरिद्र नाइट बराबरी नहीं कर सकते थे । ये राजाओंसे भी द्वेष करते थे, क्योंकि ये लोग भी इनके छोटे-छोटे प्रदेशोंको अपनी रियासतोंमें मिला लेना चाहते थे । इनमेंसे कई जागीरें नगरोंकी भाँति स्वयं सम्राट्के अधीन और स्वतन्त्रप्राय थीं ।

पञ्चम चार्ल्सके राजत्व-कालके जर्मनी-राज्यकी सम्पूर्ण रियासतोंको स्पष्ट रूपसे दिखानेवाला मानचित्र बनाना अति कठिन काम होगा । उदाहरणार्थ यदि आपके चित्रको और बढ़ा दिया जाय और उसमें समस्त साम्राज्यके भागोंका चिह्न दिखलाया जाय तो देखनेसे विदित होगा कि उल्म नगरमें आर्कड्यूकके लार्डकी अनेक छोटी-छोटी जागीरें तथा इल्किजनके एयरके दो प्रदेश भी आ जाते हैं । इसकी सीमापर चार नाइटोंकी भूमियाँ हैं ।

इनके अतिरिक्त वर्टेम्बर्गके कितने ही हिस्से तथा आस्ट्रियाके भी प्रदेश इनमें शामिल हैं । इस अनवस्थित विभागका मुख्य कारण यह था कि उस समयके शासक लोग उन प्रदेशोंको अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर वहाँके निवासियोंका कुछ भी खयाल न करके उनको अपने इच्छानुसार पुत्रोंमें बाँट देते थे अथवा थोड़ा-थोड़ा करके बेच देते थे । ये सब छोटे अथवा बड़े राज्य आपसमें ऐसे जकड़े हुए थे कि परस्परका विरोध होना अनिवार्य था । ऐसी दशामें साम्राज्यके इन प्रान्तोंके आपसके कलहको किसी न किसी विशेष प्रकार शमन करना आवश्यक था । यह भी आवश्यक था कि उन अवस्थाओंके अनुसार कोई सर्वमान्य न्यायालय या न्यायाधीश होता और साथ ही साथ एक सैनिक दल भी होता जो उसके फैसलोंपर चलनेके लिए इन्हें बाधित करता । यद्यपि सम्राट्की बड़ी राजसभा थी, पर उसतक पहुँचना ही कठिन था, क्योंकि वह भी सम्राट्के साथ-साथ भ्रमण किया करती थी

बातोंका पता लगता था। उस समयके विदेशी यात्रियोंको जर्मनीके धनाढ्य व्यापा-
रियोंकी विलासिता तथा समृद्धि देखकर बड़ा विस्मय होता था। यहाँके धनाढ्य
अपना धन विद्यालय, धर्म-भवन तथा पुस्तकालयोंकी स्थापनामें बहुत अधिक
व्यय करते थे।

इधर तो उन्नति हो रही थी, उधर सब वर्गोंमें पारस्परिक विरोध भी बढ़ता जा
रहा था। छोटे-बड़े राजाओं, नागरिकों, नाइटों तथा कृषकोंमें आपसमें वैर बढ़ चुका
था। वणिक-व्यापारियोंपर लोग धोखा, सूदखोरी तथा कठोर व्यवहारका दोष लगाते
थे और इनकी समृद्धिका यही कारण समझते थे। किसानोंकी अज्ञानता, अन्ध-
विश्वासकी विशेषता, दरिद्रता तथा स्वभावकी प्रबलता जैसी उस समय थी वैसी
और कभी नहीं देखी गयी। शासन-पद्धतिमें सुधार तथा आपसके कलह शान्त करने-
के प्रयत्न प्रायः निष्फल हुए। इसके अतिरिक्त ईसाई प्रदेशोंपर धीरे-धीरे तुर्क लोग
बढ़ने लगे थे। पोपकी आज्ञा थी कि सब लोग प्रतिदिन मध्याह्न समय विधर्मियोंके
आक्रमणसे बचनेके लिए परमेश्वरसे प्रार्थना किया करें।

लोगोंकी ऐसी घोर विषमता और पारस्परिक स्पर्द्धाको देखकर विस्मित न
होना चाहिये, क्योंकि सभी उन्नतिके युगोंका इतिहास ऐसी बातोंसे भरा पड़ा है।
समाचारपत्रोंके पढ़नेसे विदित होता कि आजकल भी हम लोगोंकी दशा वैसे ही
है। एक ही साथ भले-बुरे, धनी-दरिद्र, शान्त-लड़ाके, पण्डित मूर्ख, सन्तुष्ट-असन्तुष्ट
तथा सभ्य-असभ्य सभी एक ही राष्ट्रमें संगठित हैं।

धर्म-संस्थाकी जर्मनीमें तत्कालीन अवस्था तथा जर्मनीकी धार्मिक दशा जाननेके
लिए चार बातोंका जानना आवश्यक है जिनसे प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलन और उसकी
उत्पत्तिका पूरा परिचय मिलता है। पहले तो प्राचीन समयकी धार्मिक पूजा तथा
आडम्बरमें लोगोंकी विशेष रुचि थी। तीर्थयात्रा, देवचिह्न, सिद्धियों तथा अन्य
वस्तुओंमें, जिनका प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने शीघ्र ही तिरस्कार कर दिया, अधिक विश्वास
था। दूसरे, बाइबिलका पाठ करनेमें लोगोंकी विशेष भक्ति थी। सदा ईश्वरकी दृष्टिमें
अपनेको पापी माननेकी प्रवृत्ति थी, केवल धर्मके बाह्य कार्योंपर ध्यान नहीं दिया
जाता था। तीसरे, लोगोंको, विशेषकर विद्वानोंको, पूरा विश्वास था कि धर्मशास्त्रियोंने
सूक्ष्म तर्क-वितर्कसे धर्मको अनावश्यक रूपसे जटिल बना दिया था। चौथे सर्व-
साधारणमें यह विश्वास बहुत दिनोंसे चला आता था कि इटलीके पादरी तथा पोप
जर्मनीके निवासियोंको मूर्ख समझकर उनसे द्रव्य खींचनेके नवीन-नवीन उपाय रचा
करते हैं। हम इन चारों विषयोंका पृथक्-पृथक् उल्लेख करेंगे।

मध्ययुगकी धर्मसंस्थाकी पूजा-पद्धतियोंका मान तथा प्रचार जिस भाँति पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्त तथा सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें था वैसा कभी भी नहीं हुआ। देखनेसे प्रतीत होता था कि यूरोपके दो धार्मिक दलोंमें बँट जानेके पहले सम्पूर्ण जर्मनीके निवासी प्राचीन धर्मके अनुसार उपासनामें बड़ी धूम-धामके साथ अन्तिम बार सम्मिलित हो रहे हैं। बहुत-से गिरजे स्थापित हुए और जर्मनीके बहुमूल्य कारीगरीसे सज्जित किये गये। सहस्रों यात्री तीर्थस्थानोंकी यात्रा करते थे और साम्राज्यके समृद्ध नगरोंके रमणीक बाजारोंमेंसे धर्मसंस्थाके शानदार जलूस निकला करते थे।

राजाओंने महात्माओंके शवावशेषोंका संग्रह करनेमें अत्यन्त उत्साह दिखलाया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इससे मुक्तिमें सहायता मिलती है। सैक्सनीके इलेक्टर प्रतिमान फ्रेडारिकने जो लूथरका संरक्षक हो गया, पाँच सहस्र शवावशेष पदार्थ एकत्र किये थे। उसने इन वस्तुओंका एक सूचीपत्र बनवाया जिसमें मूसाकी छड़ी तथा कुमारी मरियमके काते हुए सूत भी सम्मिलित थे। मेयन्सके इलेक्टरने इससे भी कहीं अधिक बड़ा संग्रह किया था। इसके पास महात्माओंके बयालीस शव थे। उसने दमिश्कके पासकी उस भूमिकी थोड़ी-सी मिट्टी भी मँगवायी थी जिसके विषयमें माना जाता था कि परमेश्वरने मनुष्यका प्रथम पुतला वहींकी मिट्टी-से बनाया था।

प्रधान धर्म-संस्थाकी शिक्षा थी कि प्रार्थना, व्रत, उपवास, धर्मोत्सव तीर्थयात्रा तथा अनेक प्रकारके सत्कार्योंका संचय किया जाय ताकि जिन लोगोंने सत्कार्य नहीं किये हैं उनकी कमी ईसामसीह तथा अन्य महात्माओंके अपरिमित पुण्य-भण्डारसे पूरी हो जाय।

यह विचार अत्यन्त मनोहर था कि ईसाईधर्मावलम्बी पुण्य कार्योंमें परस्पर सहायता किया करें, अर्थात् दृढ़ तथा श्रद्धालु भक्त निर्बलात्मा तथा उदासीन ईसाइयों-की सहायता किया करें, परन्तु धर्मसंस्थाके विज्ञ शिक्षक जानते थे कि लोग पुण्यकार्यके संचयके सिद्धान्तोंको संभवतः समझनेमें भूल करेंगे। लोगोंका पूरा विश्वास था कि बाह्य उपचारोंसे, जैसे उपासनामें उपस्थित रहने, दान देने, संतोंके पवित्र चिह्नोंकी पूजा करने, तीर्थ-यात्रा करने, इत्यादिसे परमेश्वरको प्रसन्न किया जा सकता है। यह भी प्रत्यक्ष प्रतीत होता था कि दूसरेके सत्कार्योंसे लाभ उठानेकी आशासे लोग अपनी आत्माके सच्चे हितको भूल जायँगे।

यद्यपि बाह्य कार्योंमें तथा भक्तिहीन पूजा-पाठमें लोगोंका प्रेम अधिक था, तथापि बहुधा गम्भीर तथा आध्यात्मिक धर्मकी विशेष उत्कण्ठाके चिह्न प्रकट हो रहे थे। छापेखानेके नवीन आविष्कारसे धार्मिक पुस्तकोंकी वृद्धि की गयी। इन पुस्तकोंने इसी बातपर आग्रह किया कि पाप-कर्मके लिए प्रायश्चित्त तथा अनुताप करना अनिवार्य

है और यह सिखाया कि पापियोंको परमेश्वरके प्रेम तथा दयाशीलतापर भरोसा रखना चाहिये ।

समस्त ईसाइयोंको बाइबिलका पाठ करनेके लिए उत्तेजित किया जाता था। न्यूटेस्टामेण्टके अंशोंके छोटी पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित होनेके अतिरिक्त इस पुस्तकके जर्मनी भाषामें कितनेही संस्करण प्रकाशित हो चुके थे । बहुतसी बातोंसे पता लगता है कि लूथरके समयसे पूर्व भी साधारणतः लोग बाइबिलका पाठ किया करते थे ।

इन कारणोंसे यह स्वाभाविक था कि जर्मनीके लोगोंकी लूथरके किये अनुवादके लिए विशेष रुचि हो । प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रादुर्भावके पूर्वसे ही उपदेश देनेकी प्रथा चल पड़ी थी । किन्हीं-किन्हीं नगरोंमें तो उपदेश देनेके लिए पृथक् उपदेशक नियुक्त किये गये थे ।

इन बातोंसे प्रकट होता है कि लूथरके पूर्व भी ऐसे अनेक लोग हो गये थे जो धर्मके उन्हीं विचारोंपर पहुँच रहे थे जिनपर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ । लूथरके उपदेशके पूर्व भी जर्मनीमें बहुतसी बातोंका प्रचार हो रहा था । लोगोंका यह भाव था कि आत्माकी मुक्ति केवल ईश्वर-भक्ति द्वारा हो सकती है । उपासना तथा पूजा-पाठ, गान, तीर्थ-यात्रादि कार्योंमें लोगोंका विश्वास घटता जा रहा था । बाइबिलके प्रति श्रद्धा तथा उसके प्रचारके लिए अधिक आग्रह किया जाता था ।

धर्माध्यक्षों, महन्तों तथा धर्मशास्त्रियोंके समालोचकोंमें सबसे प्रधान ह्यूमनिस्ट थे । हम इटलीके नवयुगका वर्णन कर चुके हैं जिसका आरम्भ पेट्रार्क तथा उसके पुस्तकालयके कारण हुआ था । रुडल्फ अग्रिकोला जर्मनीका पेट्रार्क था । यद्यपि वह उन जर्मनोंमें नहीं था जिनका ध्यान साहित्यकी ओर प्रथम आकर्षित हुआ था, तथापि वह प्रथम पुरुष था जिसने अपने मनोमोहक प्रभाव तथा विज्ञतासे पेट्रार्ककी भाँति बहुत लोगोंको उसी कार्यके लिए उत्साहित किया जिसमें वह स्वयं भी निमग्न था । इटलीके ह्यूमनिस्टोंकी भाँति न होकर अग्रिकोला तथा उसके अनुयायी लोग लैटिन और ग्रीकके समान सर्वसाधारणकी भाषाकी भी विशेष उन्नतिमें लगे रहते थे । इन लोगोंका निश्चय था कि सब प्राचीन ग्रन्थोंका जर्मन भाषामें उल्था किया जाय । इसके अतिरिक्त जर्मनीके ह्यूमनिस्ट इटलीके ह्यूमनिस्टसे कहीं अधिक उत्साही, गम्भीर और दिलसे काम करनेवाले थे ।

ज्यों-ज्यों इन लोगोंकी संख्या बढ़ती गयी त्यों-त्यों इनका आत्मविश्वास बढ़ता गया । इन लोगोंने जर्मनीके विद्यापीठोंमें तर्क तथा धर्मशास्त्रपर अधिक ध्यान दिये जानेका खण्डन करना शुरू किया । अब इनका प्राचीन महत्त्व लोप हो चुका था

और केवल निष्प्रयोजन वाक्कलह ही रह गया था। यह देखकर ह्यूमनिस्टोंको घृणा होती थी कि अध्यापक लोग स्वयं अशुद्ध लैटिनका प्रयोग करते हैं और उसी-की शिक्षा अपने छात्रोंको भी देते हैं और अब भी अन्य प्राचीन लेखोंकी अपेक्षा अरस्तूकी ही अधिक मान प्रतिष्ठा करते हैं। इस कारण इन लोगोंने अच्छी-अच्छी पाठ्य पुस्तकोंका निकालना आरम्भ किया और कहा कि विद्यालयों तथा पाठशालाओं-में ग्रीक तथा रोमनके कवियों तथा सुवक्ताओंके ग्रन्थ पढ़ने चाहिये। कितने ही विद्वानोंका मत था कि विद्यालयोंसे धर्मकी शिक्षा उठा देनी चाहिये, क्योंकि वह साधुओंके लिए ही उपयोगी होती थी और उससे धर्मके सत्सिद्धान्त भी छिपे जा रहे थे। प्राचीन ढंगके शिक्षक नयी शिक्षाकी निन्दा करते थे और कहते थे कि जो उसमें लगता है वह नास्तिक हो जाता है। कभी-कभी तो ह्यूमनिस्ट लोग विद्यापीठोंमें अपनी रुचिके ग्रन्थ पढ़ाने पाते थे, पर थोड़े ही समयमें यह स्पष्ट हो गया कि प्राचीन तथा नवीन पद्धतिके शिक्षक एक साथ मिलकर काम नहीं कर सकते।

लूथरके अभ्युदयके थोड़े ही दिन पूर्व ह्यूमनिस्टोंमें जो अपनेको कवि कहते थे तथा प्राचीन धर्मवेत्ताओं एवं साधु-ग्रन्थकारोंमें, जिनको वे वर्वर कहा करते थे, कलह उत्पन्न हुआ। हेब्रू भाषाके एक प्रसिद्ध विद्वान् रोखलिनका कलोन विद्यापीठके डोमिनिकन सम्प्रदायके मठवासी अध्यापकोंसे घोर विवाद खड़ा हो गया। ह्यूमनिस्ट लोग इसके सहायक बने और उन्होंने उसके प्रतिवादियोंपर एक प्रहसन बनाया। इन लोगोंने बहुतसे पत्र कोलोनके किसी अध्यापकके नाम उसके कल्पित पुराने छात्रोंकी तरफसे प्रकाशित कराये। इन पत्रोंमें उन लोगोंने उग्र मूर्खता तथा बेवकूफी-के नमूने दिखलाये। इन पत्रोंमें छात्रोंके बहुतसे घृणित कार्योंका वर्णन कराया गया और अध्यापकोंसे उनके सम्बन्धमें परामर्श लिया गया। वे लोग भद्दी लैटिनमें ह्यूमनिस्ट लोगोंका ठट्ठा उड़ाते थे। इस प्रकार जिन लोगोंने लूथरका प्रतिरोध किया वही लोग इस प्रकार उपालम्भके पात्र बनाये गये और उन्नतिके रोकनेमें उनका प्रयत्न प्रमाणित कर दिया गया।

इरासमस ह्यूमनिस्टोंमें प्रमुख था। वाल्टेयरके अतिरिक्त किसी भी यूरोपके विद्वान्ने अपने जीवन-कालमें इससे अधिक यश-उपार्जन न किया होगा। इटली तथा स्पेन ऐसे दूर-दूर प्रदेशोंमें भी इसकी प्रतिष्ठा थी। यद्यपि उसका जन्म रोटर्डममें हुआ था, तथापि वह डच नहीं कहा जाता था। वह दुनियाभरका निवासी था, क्योंकि आंग्ल देश, फ्रांस तथा इटली सभी उसको अपना मानते हैं। वह इनमेंसे प्रत्येक देशमें कुछ न कुछ समयपर्यन्त रहा और उस समयके विचारपर अपना कुछ न कुछ चिह्न अवश्य छोड़ गया है। उत्तरीय ह्यूमनिस्टोंकी भाँति यह भी धर्म-सुधार चाहता था और वह संसारको धर्मका ऐसा गम्भीर और उत्कृष्ट उपदेश

शौचपूजा तथा द्रव्यादि देकर पोप द्वारा अपराध-क्षमापन ही है, खूब आलोचना की है। उसने प्रायः उन सब बुराइयोंका उल्लेख किया है जिनकी लूथरने भी पीछेसे निन्दा की। इस पुस्तकमें हास्यरस और गम्भीर विचारोंका मेल है। इस किताबके पढ़नेवालोंको लूथरके इस कथनकी सत्यतापर विश्वास होने लगता है कि "इरेसमस सर्वदा उपहास ही किया करता है। यहाँतक कि उसने धर्म तथा स्वयं ईसामसीहतकको नहीं छोड़ा है,*" परन्तु इस उपहासके साथ ही साथ इरेसमसके उद्देश्यकी गम्भीरता भी प्रत्यक्ष दिखाई देती है। इरेसमसका सब प्रयत्न, विद्या तथा प्राचीन साहित्यके उद्धारके लिए नहीं, प्रत्युत ईसाईधर्मको संस्कृत करनेके लिए था, परन्तु उसके विचारमें पादरियों तथा पोपके प्रतिकूल आन्दोलन करनेसे लाभकी अपेक्षा हानिकी अधिक सम्भावना थी।

बहुत हलचलकी सम्भावना थी और लाभकी अपेक्षा हानि भी अधिक थी। उसका कहना था कि सत्यज्ञान तथा जागृतिका विकास यदि स्थायी रूपसे हो तो उसका शनैः-शनैः होना ही अच्छा है, क्योंकि इस तरह ज्ञानके विकासके साथ ही साथ लोगोंमेंसे अन्धविश्वास तथा उपासनाके आडम्बरमें प्रीतिका भी लोप होता जायगा।

इरेसमस तथा उसके अनुयायियोंका मत था कि धार्मिक सुधारका मुख्य साधन प्राचीन साहित्यके अनुशीलन द्वारा शिष्टाचारकी उन्नति ही है, परन्तु जिस समय यूरोपमें तीन विद्यानुरागी नरेशों—मैक्समिलियन, अष्टम हेनरी और प्रथम फ्रांसिस तथा विद्याप्रेमी पोप दशम लियोके यौगपद्यसे आशान्वित होकर इरेसमस अपनी शान्तिमय सुधारवाली कल्पनाको फलीभूत होता समझ रहा था, उसी समय एक ऐसी क्रान्ति आरम्भ हुई जिसका उसे स्वप्न भी न था और जिसने उसके जीवनके अन्तिम भागको दुःखमय बना दिया।

जर्मनीके लोग पोपकी सभासे कितनी घृणा करते थे इसका ठीक अनुमान वाल्थर वानडर योगल वाइडकी कवितासे होता है। लूथरके तीन सौ वर्ष पूर्व ही उसने लिखा था कि पोप मूर्ख जर्मनोंको लूटकर मजे उड़ा रहे हैं। वे समझते हैं कि "उनकी वस्तुएँ मेरी हैं, उनके द्रव्य हमारे दूरस्थित कोषमें चले आ रहे हैं। उनके पुरोहित मांस-मद्यके आनन्द ले रहे हैं और साधारण जन भूखों मर रहे हैं।" उसके पश्चात्‌के प्रायः सभी जर्मन लेखकोंके लेखोंमें ऐसे भाव पाये जाते हैं। चर्चके आर्थिक शासनके कारण जर्मनीमें विशेष रूपसे असन्तोष उत्पन्न हुए थे और इनके सुधारनेका प्रयत्न सभाने किया था। मेयेन,. ट्रीव्ज, कलोन तथा साल्जवर्गके

---

* Praise of Folly by Erasmus

आब्सक्योर*मेन"को पढ़कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसीसे उत्साहित होकर उसने उसकी परिशिष्ट निबन्धमाला लिखी जिसमें उसने धर्मशास्त्रियोंकी खूब खबर ली। सर्वसाधारणके कानतक धर्मसंस्थाकी पोल पहुँचानेके लिए उसने जर्मन तथा लैटिन भाषामें ग्रन्थ लिखने आरम्भ किये। एक छोटेसे निबन्धमें पोपपर आक्रमण करते हुए उसने लिखा कि "मैंने अपनी आँखों देखा है कि जर्मनीसे आये हुए द्रव्यको दशम लियो किस विलासितामें व्यय करता है। उस द्रव्यका एक भाग तो उसके सम्बन्धियोंके पास चला जाता है, दूसरा उसके आलीशान दरबारको बनाये रखनेके लिए लगाया जाता है। तीसरा भाग उसके अयोग्य नीच साथियों तथा नौकरोंके पास जाता है जिनका दुराचार देखकर प्रत्येक ईसाईको घृणा उत्पन्न होगी।"

यूरोपके समस्त देशोंसे जर्मनीकी दशा ऐसी शोचनीय हो रही थी कि लूथरके अभ्युदयने समस्त जातिमें बिजलीका-सा काम किया। ऐसा कोई वर्ग न था जिसपर उसका प्रभाव न पड़ा हो। समस्त देशमें असन्तोष था और सुधारके लिए उतावलापन प्रकट हो रहा था। प्रत्येक मनुष्यकी भिन्न-भिन्न अभिलाषा थी, तब भी सब मिलकर एक महापुरुषकी शिक्षापर ध्यान देनेको उद्यत थे जो प्राचीन धर्मसंस्थाकी उपेक्षा करके उनको मुक्तिका नूतन मार्ग दिखलाये।

---

*एक पुस्तकका नाम। इसका शब्दार्थ "तुच्छ मनुष्योंके पत्र" है।

आर्कबिशपकी भाँति, जर्मनीके पादरियोंको भी अपने चुनावका अनुमोदन कराके अपने पदकी पुष्टिके लिए पोपके कोषमें दस सहस्र सुवर्ण मुद्रा देनी पड़ती थी और अधिकारकी प्राप्तिके समय उनसे भी कई सहस्र अधिक मुद्राओंकी आशा की जाती थी। पोपको जर्मनीमें अनेक पदोंपर नियुक्ति करनेका अधिकार था और वह अधिकतर इटलीवालोंको नियुक्त कर देता था। यह इटलीवाले पद-सम्बन्धी किसी भी कार्यका ध्यान न रखते हुए केवल कर संचित करते थे। कभी-कभी तो एक ही मनुष्य अनेक धार्मिक पदोंपर नियुक्त किया जाता था। सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें मेयेनका आर्कबिशप, मेडबर्गका आर्कबिशप तथा हाल्बरस्टैडका बिशप भी था। कभी-कभी तो एक ही मनुष्य बीसों पदोंपर नियुक्त किया जाता था।

सोलहवीं शताब्दीके आरम्भके लेखोंसे धर्मसंस्थाकी दशामें जो असन्तोष प्रकट होता है उसका विस्तारसे वर्णन करना असम्भव है। जर्मनीके समस्त निवासी, शासकोंसे लेकर साधारण किसानतक, यही समझते थे कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। पादरी लोग दुराचारी तथा अज्ञ समझे जाते थे। एक श्रद्धालु लेखकका वचन है कि "जिनको कोई अपनी गाय भी सँभालनेके लिए न देगा ऐसे अयोग्य नवयुवक धर्मपदके योग्य समझकर नियुक्त किये जाते हैं। भिक्षुक, फकीर तथा फ्रांसिसकन, डोमिनिकन और आगस्टिनियन सम्प्रदायोंके तपस्वी घृणाकी दृष्टिसे देखे जाते थे, पर वस्तुतः पादरियोंकी अपेक्षा धर्मकार्यमें ये लोग कहीं अधिक तत्पर थे। आगे चलकर यह ज्ञात होगा कि भक्तिसे मुक्ति प्राप्त करनेका नया मार्ग एक आगस्टिनियन साधुने ही दिखलाया था।

पर ऐसे मनुष्य बहुत कम थे जो धर्मसंस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़ देना अथवा पोपकी शक्तिको निर्मूल कर देना चाहते हों। जर्मनीवाले इतना ही चाहते थे कि जो कुछ भी द्रव्यराशि किसी न किसी बहानेसे रोममें खिंची चली जाती है वह उनके देशमें ही रह जाय और पादरी लोग सज्जन तथा विश्वासी हों और अपने धर्मकार्यको ठीक तरहसे किया करें। जिस समय लूथरने पोपकी शक्तिपर आक्रमण किया ठीक उसी समय यलरिच वान हूटन नामका एक अन्य व्यक्ति भी धार्मिक क्रान्तिका प्रचार कर रहा था। हूटन एक गरीब नाइटका पुत्र था। छोटी ही अवस्थामें उसे अपने दुर्ग-प्रासादसे घृणा हो गयी। उसने प्राचीन साहित्यकी बड़ी चर्चा सुनी थी। इससे उसके तत्त्वको जाननेकी प्रबल अभिलाषासे वह विद्यापीठोंकी खोजमें इटली पहुँचा। वहाँपर पोप तथा इटलीके अन्य-धर्माध्यक्षोंके नीच कार्योंका उसपर प्रभाव पड़ा।

उसे प्रतीत हुआ कि वे लोग उसकी जन्मभूमिको सता रहे हैं। "लेटर्स आफ

आब्सक्योर*मैन''को पढ़कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसीसे उत्साहित होकर उसने उसकी परिशिष्ट निबन्धमाला लिखी जिसमें उसने धर्मशास्त्रियोंकी खूब खबर ली। सर्वसाधारणके कानतक धर्मसंस्थाकी पोल पहुँचानेके लिए उसने जर्मन तथा लैटिन भाषामें ग्रन्थ लिखने आरम्भ किये। एक छोटेसे निबन्धमें पोपपर आक्रमण करते हुए उसने लिखा कि ''मैंने अपनी आँखों देखा है कि जर्मनीसे आये हुए द्रव्यको दशम लियो किस विलासितामें व्यय करता है। उस द्रव्यका एक भाग तो उसके सम्बन्धियोंके पास चला जाता है, दूसरा उसके आलीशान दरबारको बनाये रखनेके लिए लगाया जाता है। तीसरा भाग उसके अयोग्य नीच साथियों तथा नौकरोंके पास जाता है जिनका दुराचार देखकर प्रत्येक ईसाईको घृणा उत्पन्न होगी।''

यूरोपके समस्त देशोंसे जर्मनीकी दशा ऐसी शोचनीय हो रही थी कि लूथरके अभ्युदयने समस्त जातिमें बिजलीका-सा काम किया। ऐसा कोई वर्ग न था जिसपर उसका प्रभाव न पड़ा हो। समस्त देशमें असन्तोष था और सुधारके लिए उतावलापन प्रकट हो रहा था। प्रत्येक मनुष्यकी भिन्न-भिन्न अभिलाषा थी, तब भी सब मिलकर एक महापुरुषकी शिक्षापर ध्यान देनेको उद्यत थे जो प्राचीन धर्मसंस्थाकी उपेक्षा करके उनको मुक्तिका नूतन मार्ग दिखलाये।

---

*एक पुस्तकका नाम। इसका शब्दार्थ ''तुच्छ मनुष्योंके पत्र'' है।

अध्याय २५

मार्टिन लूथर तथा धर्मसंस्थाके प्रतिकूल उसका आन्दोलन

मार्टिन लूथरका जन्म एक किसानके घर हुआ था जिसका पिता बहुत गरीब था। वह हर्ज पर्वतके निकट किसी खानमें काम करता था। उसी समय संवत् १५४० (सन् १४८३ ई०)में उसका प्रथम पुत्र मार्टिन उत्पन्न हुआ। बड़ा होनेपर मार्टिन अपने बचपनके समयकी अपने घरकी दरिद्रता तथा अन्धविश्वासोंका स्वयं वर्णन किया करता था। उसने लिखा है कि "मेरी माता कन्धेपर तो घरके कामके लिए लकड़ीका बोझ ढोया करती थी और मुझे जादूगरनियोंकी कहानियाँ सुनया करती थी जिन्होंने किसी प्रकार ग्रामके पादरीको गायब कर दिया था"। छोटेपनमें ही वह पाठशाला भेज दिया गया, क्योंकि उसके पिताकी आन्तरिक अभिलाषा अपने ज्येष्ठ पुत्रको वकील बनानेकी थी। अठारह वर्षकी अवस्थामें मार्टिन उत्तरीय जर्मनीके सबसे बड़े विद्यापीठ एर्फर्टमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ वह चार वर्षपर्यन्त शिक्षा पाता रहा। वहाँपर उससे अनेक युवक ह्यूमनिस्टोंसे परिचय हुआ। उनमेंसे वह व्यक्ति भी एक था जिसने 'लेटर्स आफ आब्सक्योर मेन"का अधिक भाग लिखा था। उसकी प्राचीन साहित्य लेखकोंपर विशेष प्रीति थी। अरस्तूके लेखों तथा तर्कशास्त्रसे भी उसको साधारणतः प्रेम था।

विद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर कानूनके विद्यालयमें प्रवेश करनेके पूर्व ही अन्तिम बार संसारी आनन्द मनानेके लिए उसने अकस्मात् अपनी सम्पूर्ण मित्र-मण्डलीको निमन्त्रित किया। दूसरे दिन उन सबको लेकर वह आगस्टिनियन मठके फाटकपर पहुँचा। उनको वहाँ वह अन्तिम प्रणाम कर संसारसे मुँह मोड़कर साधु हो गया। उस दिन अर्थात् संवत् १५६२ (सन् १५०५ ई०)के श्रावणके प्रथम दिवस जब कि वह नवयुवक विद्वान् अपने पिताके क्रोध तथा निराशाका विचार छोड़ मठमें जाकर मुक्तिके उपाय सोचने लगा, उसको एक ऐसे धार्मिक अनुभवका आरम्भ हुआ जिसका संसारभरपर विचित्र प्रभाव पड़ा।

इसके बहुत दिनों बाद उसने एक बार कहा कि यदि कोई साधु कभी स्वर्ग गया है तो मैं भी स्वर्ग जानेका अधिकारी हूँ। उसकी भक्ति इतनी अधिक और मोक्षकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह उपवास, जागरण, दीर्घकालीन भजन करते-करते अपने स्वास्थ्यको ही खो बैठा और उसकी निद्रा एकदम बन्द हो गयी। पहले तो

उसे निराशा हुई और पश्चात् उसका एकदम दिल टूट गया। मठके साधारण नियमोंके पालनसे ही लोग सन्तुष्ट रहते थे, पर उसे इतनेमें शान्ति नहीं मिली। उसे खयाल होता था कि कर्मणा सच्चरित्र रहनेपर भी चित्तकी वासनाओंको पूर्णतया शुद्ध करना कठिन है। संकल्प और वासनाएँ सब पवित्र नहीं हो सकेंगी। उसको इस बातका भी अनुभव हुआ कि धर्म-संस्था तथा मठोंमें ऐसा कोई भी उपाय नहीं जो उसे धर्म तथा सत्यपर जमाये रखे। इस कारण उसे प्रतीत होता था कि वे भी सफल नहीं हुए हैं और वे उसे भी घोर पापी बनाकर ईश्वरके क्रोधका पात्र बना रहे हैं।

धीरे-धीरे ईसाई-धर्मका नया स्वरूप उसके हृदयमें प्रकट हुआ। मठाधिपतिने उसे अपने पुण्यकार्योंपर भरोसा न रखकर ईश्वरकी कृपा तथा क्षमापर भरोसा रखनेके लिए कहा। वह महात्मा पाल तथा अगस्टाइनके लेखोंका स्वाध्याय करने लगा। उनको पढ़नेसे उसे ज्ञान हुआ कि मनुष्य कोई भी पुण्य करनेमें समर्थ नहीं है, उसकी मुक्ति केवल ईश्वरमें श्रद्धा और भक्ति करनेसे हो सकती है। इससे उसे विशेष सन्तोष मिला, परन्तु अपने विचारोंको परिमार्जित करनेमें उसे कई वर्ष लगे। अन्तमें उसने यह परिणाम निकाला कि तत्कालीन धर्मसंस्था भक्तिवादकी विरोधी थी, क्योंकि उसका बाह्य पूजा-पाठोंमें मिथ्या विश्वास था। सैंतीस वर्षकी अवस्थामें उसे दृढ़ निश्चय हो गया कि प्राचीन धर्म-व्यवस्था को मटियामेट कर देनेमें अग्रसर होना उसका कर्त्तव्य है।

मार्टिनकी भाँति बहुतसे नवयुवक संन्यासी जो संसारसे एकाएक अलग होकर आध्यात्मिक शान्तिकी आशा रखते थे, वे निराशाके अन्धकारमें गिरते थे। यह एक स्वाभाविक बात है, पर वह युद्धमें विजयी होनेतक बराबर डटा रहा। उसे ऐसा अवसर मिला कि वह अपने उन दूसरे भाइयोंको शान्तिरस पिला सका जो उसीकी भाँति इस संकल्प-विकल्पके जालमें पड़े थे कि ईश्वरको किस भाँति प्रसन्न किया जाय। संवत् १५६५ (सन् १५०८ ई०)में वह सैक्सनीके इलेक्टर बुद्धिमान् फ्रेडरिकके विटनबर्ग विद्यापीठमें अध्यापक नियुक्त हुआ। उसके जीवनके इस भागका बहुत कम वृत्तान्त ज्ञात है। लेकिन वह शीघ्र ही पालके पत्रोंकी तथा भक्तिसे मुक्ति पानेके सिद्धान्तकी शिक्षा देने लगा।

अबतक लूथरके हृदयमें धर्म-संस्थापर आक्रमण करनेका जरा भी भाव नहीं था। संवत् १५६८ (सन् १५११ ई०)में अपनी संस्थाके कार्यसे उसने रोमकी यात्रा की। वहाँपर आत्माकी शान्तिके लिए उसने सम्पूर्ण पवित्र स्थानोंका दर्शन किया। उसके हृदयमें उस समय यह इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि उसके माँ-बाप स्वर्गवासी होते तो अपने पवित्र आचरणसे वह उनकी आत्माको वैतरणीके पार कर देता।

पर इटलीके धर्मसंस्थावालोंका आचरण देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। उस समय षष्ठ अलेक्जेण्डर तथा द्वितीय जूलियसकी निन्दा चारों ओर फैल रही थी और उसी समय जूलियस उत्तरीय इटलीपर आक्रमण करनेमें लगा हुआ था। पोपके दुराचार देखकर उसके हृदयमें और भी दृढ़ विश्वास जम गया कि प्रधान धर्मसंस्था ही धर्मकी मुख्य शत्रु है। शीघ्र ही वह अपने छात्रोंको इस बातकी उत्तेजना देने लगा कि वे लोग जहाँ कहीं शास्त्रार्थमें भाग लें, अपने मतका समर्थन विधिपूर्वक करें। उसके एक छात्रने उत्साहित होकर प्राचीन धर्म-शास्त्रपर कटाक्ष किया जिसके प्रतिकूल ह्यूमनिस्ट लोग भी आन्दोलन कर रहे थे। उसने कहा था कि "यह कहना भूल है कि अरस्तूके लेखोंको पढ़े विना कोई धर्म-शास्त्रका पण्डित नहीं हो सकता। सच तो यह है कि जो अरस्तूके ग्रन्थोंको नहीं पढ़ता वही धर्म-शास्त्रका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।" लूथर अपने छात्रोंको बाइबिल, पालके निबन्ध और प्राचीन महात्माओं, विशेषकर आगस्टिनपर श्रद्धा रखनेके लिए उपदेश देता रहा।

संवत् १५७४ (सन् १५१७ ई०)के कार्त्तिकमें टेटजल नामी डोमिनिकन संन्यासीने व्रिटनवर्गके समीपके लोगोंको क्षमा प्रदान कर "कर" माँगना आरम्भ किया। यह लूथरको ईसाईधर्मके एकदम प्रतिकूल प्रतीत होता था। इस कारण उस समयके प्रथानुसार क्षमाप्रदानके सम्बन्धमें उसने पंचानवे नियम बनाये। उनको उसने प्रधान गिरजाके द्वारपर लटका दिया और घोषित कर दिया कि जिसे उत्सुकता हो वह इस विषयमें शास्त्रार्थ कर ले, क्योंकि उसे विश्वास था कि लोगोंने इस विषयको समझनेमें बड़ी भूल की है। नियमावलीके इन पर्चोंके चिपकानेसे उसका तात्पर्य धर्म-संस्थापर आक्षेप करनेका नहीं था और न उसे यही आशा था कि इससे किसी प्रकारका संक्षोभ होगा, क्योंकि वह नियम लैटिन-भाषामें लिखे थे और केवल बड़े-बड़े विद्वान् ही उन्हें समझ सकते थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि पढ़े अथवा अनपढ़े सभी लोग क्षमा-प्रदानके जटिल विषयपर विवाद करनेको उद्यत हो गये। उनका अनुवाद भी जर्मन-भाषामें करके समस्त जर्मन प्रदेशमें बाँट दिया गया।

क्षमाप्रदानकी विधिको भली भाँति समझनेके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि जो पापी अपने पापको पुरोहितके समक्ष स्वीकार कर उसपर पश्चात्ताप करता है उसको वह क्षमा प्रदान कर सकता है। पापमोचनसे पापी उस घोर पापसे मुक्त हो जाता है जिसके कारण उसे घोर नरक-यातना भोगनी पड़ती, परन्तु उसकी मुक्ति उस दण्डसे नहीं होती जो ईश्वर अथवा उसका प्रतिनिधि पुरोहित उसके लिए नियत करता है। प्राचीन कालमें पाप-कर्मके लिए धर्म-संस्थाने कठिन प्रायश्चित्त नियत किये थे। लेकिन लूथरके समयमें जो पापी क्षमा कर दिया जाता था वह

वैतरणीके दुःखोंकी यातनासे विशेष डरता था। वहाँकी यातनासे उसकी आत्मा पवित्र होकर स्वर्गको प्रस्थान करती थी। क्षमाप्रदान एक प्रकारकी क्षमा था, जिसको पोप प्रदान करता था। इसके द्वारा पश्चात्तापी पापीको पापमोचनके बाद भी बचे हुए पापके समस्त अथवा एक भागके दण्डसे रिहाई हो जाती थी। क्षमासे पापीका पापोंसे छुटकारा नहीं होता था, क्योंकि क्षमाप्रदानके पूर्व ही पापको दूर कर देना आवश्यक है। इससे केवल उस दण्डसे पूर्णतया अथवा अंशतः मुक्ति होती थी जिसे पापीको क्षमादान न देनेपर वैतरणी स्थान में भोगना पड़ता।

मृतकोंके लिए क्षमाप्रदान लूथरके जन्मके कुछ समय पूर्वसे ही प्रचलित हो पड़ा था। वैतरणी स्थानमें पड़े हुए लोगोंके सम्बन्धी अथवा मित्र क्षमाप्रदान कराकर स्वर्गमें जानेके पूर्वकी यातना जो उनको भोगनी पड़ती है उसमें कमी करा सकते थे। जो वैतरणी स्थानमें जाते थे उनकी मृत्युके पूर्वके पापोंसे मुक्ति हो जाती थी, नहीं तो उनकी आत्माका नाश हो गया होता और क्षमासे उन्हें कुछ भी लाभ न पहुँच सकता।

महात्मा पीटरकी बड़ी गिरजाके जीर्णोद्धारके लिए जर्मनोंसे द्रव्य-संग्रह करना जारी रखनेके लिए दशम लूईने मृत तथा जीवित दोनोंको धन लेकर क्षमाप्रदान करना आरम्भ किया, इस निमित्त द्रव्य भी भिन्न प्रकारसे लिया जाता था। धनी लोगोंको प्रचुर द्रव्य देना पड़ता था और बहुत गरीब लोगोंको मुफ्तमें क्षमा मिल जाती थी। पोपके प्रतिनिधि जहाँतक हो सकता था, द्रव्य एकत्र करनेकी चिन्तामें पड़े रहते थे और इसी कारण प्रत्येक मनुष्यको अपने अथवा वैतरणी स्थानमें पड़े हुए अपने मित्रोंके लिए क्षमा माँगनेकी प्रेरणा करते रहते थे। उस लालचमें क्षमा-प्रदानके लिए वे लोग अनेक प्रकारकी गहरी दक्षिणाएँ माँगते थे जिन्हें सुनकर ही साधारण जनको भी घृणा और रोष उत्पन्न होता था।*

क्षमाके प्रचलित भावका खण्डन करनेवालोंमें लूथर ही सबसे प्रथम नहीं था, पर उसके निबन्धकी भाषाकी तीव्रता तथा धर्मसंस्थाके शासनके प्रति जर्मनोंके उद्वेगने इस विषयको बड़ी मुख्यता दे दी। उसका कहना था कि क्षमाप्रदानसे विशेष लाभ नहीं होता। इससे अच्छा है कि दरिद्र आदमी अपने धनको अपने गृह-कार्यमें व्यय करे। जो सचमुच पश्चात्ताप करता है वह यातनासे भागता नहीं वरना पश्चात्तापकी चिरस्मृति रखनेके लिए उसे सहर्ष सहन करता है। यदि क्षमा मिल सकती है तो केवल ईश्वरमें भक्ति करनेसे, न कि पुरोहितोंकी कृपासे। जिस ईसाईको

* वैतरणी स्थान अँग्रेजोंके 'पर्गेटरी' के लिए प्रयुक्त हुआ है। वह नरक और स्वर्गके बीचमें है। स्वर्गमें प्रवेश करनेके पहले पुण्यात्मा पुरुष अपने बचे पापोंके लिए हल्का दण्ड यहीं भोगते हैं।

हृदयसे पश्चात्ताप होता है उसे अपने पापों तथा यातना दोनोंसे रिहाई हो जाती है। यदि पोप जानता है कि उसके प्रतिनिधि लोग किस भाँति बहकाकर बुरे तरीकोंसे धन-संग्रह करते हैं तो यह अच्छा होता यदि झूठे बहकाने और छल-कपटोंसे द्रव्योपार्जन कर उसका जीर्णोद्धार करनेके बदले वह महात्मा पीटरकी धर्म-संस्थाको जलाकर भस्म कर देता। लूथर कहता है—"हो सकता है, सर्वसाधारण बड़े बेढंगे प्रश्न पूछ बैठें। जैसे, यदि पोप द्रव्य लेकर लोगोंको वैतरणीसे मुक्त कर सकता है तो वह इस कार्यको खैरातमें क्यों नहीं करता। अथवा पोप तो कुबेरकी भाँति धनी है, वह गरीबोंसे धन लेनेके बदले अपने ही धनसे महात्मा पीटरके धर्ममन्दिरका निर्माण क्यों नहीं करता?"

लूथरके लेखोंकी प्रतियाँ रोममें भेजी गयीं। इनके भेजनेके थोड़े ही दिनों पश्चात् लूथरपर नास्तिकताका दोष लगाया गया और उसका उत्तर देनेके लिए वह पोपके दर्बारमें निमन्त्रित किया गया। लूथर अब भी पोपकी प्रधान धर्माध्यक्षके रूपमें प्रतिष्ठा करता था, लेकिन रोम जाकर वह अपनेको खतरेमें नहीं डालना चाहता था। इधर लूथरके पक्षमें सैक्सनीका इलेक्टर खड़ा हुआ। दशम लियो इसको प्रकुपित नहीं करना चाहता था। इस कारण उस मामलेपर विशेष विवाद न बढ़ाकर उसने अपने प्रतिनिधिको लूथरसे बातचीत करनेके लिए जर्मनीमें ही भेजा।

मार्टिनको कुछ समयपर्यन्त लोगोंने शान्त रहनेकी सलाह दी, पर इसकी शान्ति संवत् १५७६ (सन् १५१९ ई०) में लीपजिक सभाके शास्त्रार्थके अवसरपर पुनः टूट गयी। यहाँपर एक जर्मनीके नामी प्रसिद्ध शास्त्रीने जो कि पोपको देवताकी भाँति पूजता था और विवादमें भी विख्यात था, लूथरके कालैस्टेड नामी मित्रको कुछ ऐसे विषयोंपर सर्वसाधारणमें शास्त्रार्थ करनेके लिए आह्वान किया जिनमें लूथरको स्वयं भी बड़ी अभिरुचि थी। लूथरने इस विवादमें भाग लेनेकी आज्ञा माँगी।

विवादका विषय पोपका अधिकार था। लूथर ने धर्म-संस्थाका इतिहास पूर्णतया पढ़ा था, इससे उसने कहा कि पोपका अधिकार केवल चार सौ वर्षसे प्रचलित है। यह कथन ठीक नहीं था, परन्तु उसने रोमन कैथलिक मतवालोंकी प्रथाओंपर एक ऐसे तर्क द्वारा कुठाराघात किया जिसका आश्रय प्रोटेस्टेण्ट मतवाले अबतक लेते आये हैं। उनका कथन है कि पोपकी शक्तिकी वृद्धि धीरे-धीरे मध्य-युगमें हुई। इसके पूर्वके महात्माओंको न तो स्तुतियोंका, न वैतरणी स्थानका और न रोमन बिशपके अधिपति होनेका ही ज्ञान था।

एकने तत्काल ही सिद्ध किया कि विक्लिफ तथा हसके जिस मन्तव्यका कान्स्टेन्सकी महासभाने निन्दा की थी उससे लूथरका मत बराबर मिलता है। लूथरको भी बाध्य होकर कहना पड़ा कि उस सभाने भी ईसाई-धर्मके कई सच्चे उपदेशोंकी

अवहेलना की थी। इससे 'एक'के कथनका पूरी तौरसे समर्थन हो गया। अन्य जर्मनोंकी भाँति लूथर हस तथा बोहेमियनोंसे घृणा करता था और कान्स्टेन्सकी महती सभाका गौरव मानता था, जो जर्मनीमें स्वयं जर्मन सम्राटके निरीक्षणमें हुई थी। उसने कहा कि बड़ीसे बड़ी सभा भी भूल कर सकती है। हम सब अगत्या हसके अनुयायी हैं। पाल तथा महात्मा अगस्टाइन भी हसके अनुयायी थे। यूरोपके एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थीके साथ सर्वसाधारणमें शास्त्रार्थ करनेसे तथा उस आश्चर्यकारक मतको अङ्गीकार करनेसे उसे विश्वास हो गया कि धर्मसंस्थाके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें उसे नेता बनना ही पड़ेगा। उसे प्रतीत होने लगा कि विकट परिवर्तन तथा उलट-फेर होना अनिवार्य है।

अब जब कि लूथर प्रकट विरोधी हो गया, अन्य विद्रोही तथा सुधारक उसके मित्र बनने लगे। लिपजिकके शास्त्रार्थके पूर्व ही उसके बहुत अधिक प्रशंसक हो गये थे। इनमेंसे अधिकतर विटिनबर्ग तथा न्यूरम्बर्गके रहनेवाले थे। ह्यूमनिस्टोंका तो वह स्वाभाविक मित्र-सा था। वे उसके धार्मिक मन्तव्योंको भले ही न समझते हों, पर इतना तो अवश्य समझते थे कि वह भी उन्हीं लोगोंपर (विशेषकर प्राचीन पद्धतिके उन धर्मशास्त्रियोंपर जो अरस्तूकी विशेष प्रतिष्ठा करते थे) आक्रमण कर रहा था जिन्हें वे स्वयं घृणासे देखते थे। इन लोगोंकी भाँति उसे भी धर्म-संस्थाकी बुराइयोंपर शोक होता था और यद्यपि वह स्वयं विटनबर्ग मठका अधिपति था, वह भिक्षुक यतियोंपर भी सन्देह करने लगा था। इस कारण जिन लोगोंने रुचलिनकी सहायता की थी वे लूथरकी भी सहायता करनेके लिए उद्यत थे और उसके पास उत्साहजनक पत्र भेजने लगे। इस समय इराजमसके ग्रंथोंके मुद्रकने बेलनमें लूथरके लेखोंको प्रकाशित किया और फ्रांस, इटली, स्पेन तथा आंग्ल देशमें भेज दिया।

लेकिन इराजमसने जो उस समय विद्वानोंमें अग्रगण्य था, इस कलहमें भाग लेनेसे इनकार किया। उसने कहा कि "लूथरके लेखोंके मैंने दस या बारह पन्नोंसे अधिक नहीं पढ़े। यद्यपि उसके विचारमें भी पोपका राज्य उस समय ईसाई-धर्मके लिए कण्टक था, पर उसपर सीधे आक्रमण करना भी विशेष लाभदायक न था। वह कहता था कि अच्छा होता यदि लूथरके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हो जाता कि धीरे-धीरे मनुष्य अधिक बुद्धिमान् तथा पण्डित होकर अपने झूठे विचारको स्वयं छोड़ देगा।"

इराजमसका विश्वास था कि मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। उसे शिक्षा देकर उसकी बुद्धिका विकास किया जाय तो दिनपर दिन वह अच्छा होता जायगा। सारांश यह कि वह एक स्वतन्त्र कर्ता है, साधारणतः उसकी प्रवृत्ति ऊपरको जानेकी है। लूथरको विश्वास था कि मनुष्य एकदम भ्रष्ट है। उससे कुछ भी सत्कार्यकी

आशा नहीं, उसका मन बुराइयोंमें लिप्त है। उसकी मुक्तिकी आशा केवल इसीमें है कि वह अपने उद्धारमें अपनेको सर्वथा असमर्थ जानकर ईश्वरदयापर निर्भर रहना सीख ले। केवल भक्तिसे, न कि कार्यसे उसकी मुक्ति हो सकती है। जबतक सर्वसाधारण धर्मसंस्थाके सुधारके लिए न खड़े हों तबतक इराजमस भी मुँह खोलना नहीं चाहता था। लूथर ऐसी धर्मसंस्थाको देखकर पलमात्र भी नहीं रह सकता था जो केवल दान-पुण्यपर झूठ भरोसा देकर लोगोंकी आत्माका नाश कर रही थी। दोनोंको परस्पर योग करना असाध्य प्रतीत हुआ, कुछ समयपर्यन्त वे दोनों एक दूसरेकी प्रतिष्ठा करते रहे, पर आगे चलकर दोनोंमें परस्पर भयानक विवाद खड़ा हो गया जिससे दोनोंकी मित्रता भी जाती रही। इराजमसका कहना था कि सम्पूर्ण अच्छी बातोंको घृणासे देखकर तथा यह घोषित कर कि कोई भी पुण्य कर ही नहीं सकता, लूथरने अपने अनुयायियोंको लापरवाह बना दिया और जिन लोगोंने लूथरकी शिक्षा ग्रहण की वे लोग भी इतने अविनीत तथा धृष्ट हो गये थे कि मार्गमें मिलनेपर वे उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते थे।

उधर यूलरिक वान हूटनने लूथरके मतका समर्थन किया। उसने लूथरको जर्मनीका सच्चा हितैषी तथा रोमके अत्याचारोंका कट्टर शत्रु समझा और लिखा कि "हम लोगोंको अपनी स्वतन्त्र रक्षा और पितृभूमिको दासतासे मुक्त करना चाहिये। हम लोगोंके सहायक स्वयं परमेश्वर हैं और ऐसी दशामें हम लोगोंका कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकता।" अनेक वीरभट इसके समर्थक हुए। उन लोगोंने कहा कि "यदि धर्म-संस्थावाले लूथरपर आक्रमण करेंगे तो हम लोग उसकी रक्षा करेंगे" और उन्होंने अपने प्रासादोंमें रहनेके लिए उसे निमन्त्रित किया।

लूथर जो कभी-कभी अपने उद्दण्ड स्वभावको नहीं दबा सकता था, इस प्रकार उत्साह पाकर अब धमकी भी देने लगा और पादरियों तथा मठवालोंके सुधारकी ओर सरकारका ध्यान खींचने लगा। "हम लोग चोरको फाँसी देते हैं, ठगोंको तलवारसे मार डालते हैं, नास्तिकोंको आगमें जला देते हैं तो हम लोग अधःपतनके मुख्य कारण रोमन धर्मके अङ्गभूत इन पोप और पादरियोंको हर प्रकारके दण्डसे क्यों न दण्डित करें?" उसने अपने एक मित्रको लिखा था—"हमने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। जितनी घृणा मुझे रोमकी कृपासे है उतना ही उसके क्रोधसे भी है। मैं भविष्यमें भी उनसे किसी प्रकारसे सुलह न करूँगा। उसे मेरे निबन्धोंको जलाने तथा मुझसे घृणा करने दो। यदि अग्नि वर्तमान रही तो किसी न किसी समयमें पोपके समस्त नियमोंको जला दूँगा।"

संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)में हूटन तथा लूथर दोनोंने पोप तथा उसके प्रतिनिधियोंपर एकसे एक बढ़कर तीव्र कटाक्ष किये। दोनोंके दोनों जर्मन

भाषामें निपुण थे और रोमसे दोनोंको जलन थी। हूटनको लूथरकी भाँति धार्मिक उत्तेजना नहीं थी, पर पोपके दरबारके लोभको अपने देशनिवासियोंके सामने सविस्तर वर्णन करनेके लिए उसको उपयुक्त शब्द नहीं मिलते थे। उसका कहना था कि रोम गहरी गुफा है जिसमें जर्मनीसे जितना धन छीना जा सका, सब गाड़कर रखा जाता है। उसने अनेक छोटे-छोटे निबन्ध लिखे। उनमेंसे सबसे पहले वह विख्यात हुआ जिसमें उसने जर्मनीके उच्च श्रेणीके पुरुषोंको सम्बोधित किया था। उसने जर्मनीके शासकोंको विशेषतः, नाइटोंको, लिखा था कि "बुराइयोंके दूर करनेका स्वयं प्रयत्न कीजिये, धर्मसंस्थाके भरोसे रहना व्यर्थ है।"

उसने स्पष्ट दिखलाया है कि जब कोई पोपकी धर्म-संस्थामें सुधार करना चाहता है तो वह तीन बड़ी दीवारोंकी शरण लेती है। प्रथम तो उसका यह दावा है कि पादरियोंकी श्रेणी ही अलग है और सरकारसे भी उच्च है, धर्म-संस्थावाले लोग कितने ही बुरे क्यों न हों, सरकार उनको दण्ड नहीं दे सकती। दूसरे, पोप सभासे भी उच्च है इसलिए धर्मसंस्थाके प्रतिनिधि भी उसको नहीं सुधार सकते। तीसरे, धर्म-पुस्तककी व्याख्याका अधिकार केवल पोपको ही है, इस कारण बाइबिलके सूत्रों द्वारा वह हटाया भी नहीं जा सकता। इस प्रकार तीनों नियन्त्रणोंकी कुन्जी पोपने अपने हाथमें कर ली थी। लूथरने इन आयोजनोंकी अवहेलना इस प्रकार करनी आरम्भ की। उसने कहा कि जिन कर्त्तव्योंके पालनके लिए पादरीकी नियुक्ति है उनके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके लिए पादरी पवित्र माने जायँ। यदि वे अपने काममें उचित ध्यान न दें तो वे किसी समय भी उस पदसे पृथक् किये जा सकते हैं और तब उनकी गणना साधारण जनोंमें की जायगी। लूथरने कहा कि यदि कोई भी धर्मसंस्थाका अपराध करे तो सरकारका कर्तव्य है कि साधारण जनकी भाँति उसे दण्डित करे। जब प्रथम रक्षास्थानका नाश कर दिया जाय तो और स्थान आप ही नष्ट हो जायँगे, क्योंकि मध्य-युगकी धर्म-संस्थाका प्रधान ही पादरियोंकी रक्षाका प्रधान साधन था।

उस निबन्धमें उसने बुराइयोंकी एक फिहरिस्त भी दे दी थी। उसने लिखा है कि "यदि जर्मनी समृद्ध होना चाहता है तो इन बुराइयोंको शीघ्र दूर करे।" लूथरको ज्ञात था कि उसका धार्मिक आन्दोलन वस्तुतः सामाजिक आन्दोलन था। उसने लोगोंसे कहा कि मठोंकी संख्या दशमांश कर देनी चाहिये और जो लोग उनमें निवास करनेसे प्राप्त लाभोंसे सन्तुष्ट न हों उनको उससे सम्बन्ध तोड़नेके लिए स्वतन्त्रता होनी चाहिये। वह चाहता था कि मठको बन्दीघरोंके तुल्य न बनाकर उनको व्यथित आत्माओंके लिए शान्ति तथा विश्राम-स्थान बनाया जाय। तीर्थ-यात्राओं तथा धार्मिक अवकाशोंसे जो कुछ दैनिक कार्यकी हानि होती

है उसको भी उसने भली भाँति दर्शाया। उसका मत था कि अब नागरिकोंकी भाँति पादरी लोग भी विवाहादि किया करें और कुटुम्बी बनकर रहें। विद्यापीठोंका भी सुधार होना चाहिये और "विधर्मी पोखण्डी अरस्तू"को भूल जाना चाहिये।

यह जान लेना आवश्यक है कि लूथर अधिकारी वर्गको धर्मके नामपर नहीं बल्कि समाजकी शान्ति तथा समृद्धिके नामपर सम्बोधित करता था। उसने दिखलाया है कि आल्प्स पर्वतको पार कर जर्मनीसे इटलीमें असंख्य धन जाता है, पर कभी एक पैसा भी लौटकर नहीं आता। उसने प्रभावशाली भाषापर अपना पूर्ण अधिकार प्रकट किया। उसका शङ्खनाद उसके देशवासियोंके कानमें गूँज गया।

अपने प्रथम निबन्धमें लूथरने धर्मसंस्थाके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें अधिक नहीं लिखा था। उसके दो या तीन ही मास पश्चात् उसने दूसरा निबन्ध प्रकाशित किया जिसमें उसने तेरहवीं शताब्दीमें धर्मशास्त्रियों तथा पीटर लोम्बार्डकी उपदेश की हुई संस्कार-पद्धतिको रद्द कर देनेका प्रयत्न किया। सात संस्कारोंमेंसे चार (अभिषेक, विवाह, अनुमोदन तथा अवलेपन)को तो उसने एकदम अस्वीकार कर दिया। उसने स्तुति तथा भगवत्-भोगके तात्पर्यको एकदम उलट दिया। उसके मतसे पुरोहितका काम केवल उपदेश देना है।

लूथर बहुत पहलेसे ही धर्मसंस्थासे बहिष्कृत किये जानेकी प्रतीक्षा कर रहा था, पर संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०) पर्यन्त कुछ भी न हुआ। इस वर्ष लूथर-का विरोधी 'एक' पोपका आज्ञापत्र लेकर जर्मनीमें आया और लूथरकी उक्तियोंको नास्तिकताका मूल बतलाकर उन्हें वापस लेनेके लिए उसे साठ दिनकी अवधि दी। उसे यह धमकी दी गयी कि तुम यदि इस समयके भीतर अपनेको न सुधार लोगे तो तुम तथा तुम्हारे समस्त अनुयायी बहिष्कृत किये जायँगे और जो लोग तुम्हें शरण देंगे वे शापित समझे जायँगे। 'एक'को यह आशा थी कि जब प्रधान धर्माध्यक्ष-ने लूथरको नास्तिक बतलाया तो सब जर्मनीके अधिकारीवर्ग निःसंकोच उसे बन्दी कर पोपके हवाले करेंगे, पर उसको बन्दी करनेका किसीने विचार भी न किया। उलटे उस आज्ञापत्रसे जर्मनीके राजा बिगड़ गये। चाहे वे लूथरको पसन्द करते या न करते हों, परन्तु उनको यह कभी भी रुचिकर नहीं था कि पोप उनपर आज्ञा-पत्र निकाले। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी बुरा लगा कि इस आज्ञापत्रको प्रका-शित करनेका कार्य लूथरके शत्रुको दिया गया। यहाँतक कि जो राजा तथा विद्या-पीठ पोपके सहायक थे उन्होंने भी इस आज्ञापत्रको अन्यमनस्क होकर प्रकाशित किया। इर्फर्ट तथा लीपजिकके छात्रोंने तो 'एक'को शैतान तथा फेरिसीका दूत कहकर उसका पीछा किया। कितने स्थानोंमें तो आज्ञापत्रकी किसीने परवाह ही न की। यद्यपि सैक्सनीका इलेक्टर, जो लूथरका राजा था, नूतन मतावलम्बी नहीं

था, तथापि यह चाहता था कि लूथरके मतपर पूर्णरूपसे विचार होना चाहिये और वह बराबर उसकी रक्षा करता रहा। सम्राट् पञ्चम चार्लसने इच्छापूर्वक आज्ञा-पत्रको प्रकाशित किया, पर वह भी सम्राट्की हैसियतसे नहीं, प्रत्युत आस्ट्रिया तथा नेदरलैण्डके शासककी हैसियतसे। हाँ, लूथरके निबन्ध प्राचीन धर्म-शास्त्रके केन्द्र-स्थान लौवन, मेयेन्स तथा कोलोनमें जला दिये गये।

दुःखित-हृदय लूथरने कहा था कि "समस्त राजाओं तथा पादरियोंके मतका विरोध करना अति दुष्कर है, पर नरक तथा ईश्वरके कोपसे बचनेका कोई दूसरा मार्ग भी नहीं है। उसकी भाँति खुल्लमखुल्ला किसी व्यक्तिने समस्त धर्मसंस्थाके प्रतिकूल इस प्रकार अकेले आन्दोलन नहीं मचाया था। जिस भाँति कोई मनुष्य अपने बराबरके प्रति-द्वन्द्वीका सामना करता है उसी भाँति विटिनबर्गके अध्यापक लूथरने पोप तथा सम्राट्की शक्तिका प्रतिरोध बराबरीमें किया था। उसने दशम लियोके आज्ञापत्र धर्मसंस्थाके नियम तथा सम्प्रदायियोंकी धर्मशास्त्रकी एक पुस्तकको जिसने वह बहुत घृणा करता था, अग्निमें जला दिया। इस पवित्र तथा धार्मिक होलीको देखनेके लिए उसने अपने समस्त छात्रोंको निमन्त्रित किया था।

धर्मसंस्थाके पुराने भवनको ढहा देनेकी जितनी अधिक वासना लूथरके हृदयमें आने लगी वैसी पहले कभी भी नहीं आयी थी। हूटन चाहता था कि जितना शीघ्र हो सके, आन्दोलन आरम्भ कर दिया जाय। वह और लूथर दोनों जन अपने शक्ति-शाली लेखों द्वारा उसको वर्द्धित कर रहे थे। हूटनने जर्मनीके वीरभटोंके नेता फ्रैंज वान सिकिन्जनके महलमें शरण ली थी। उसको विश्वास था कि आगामी स्वतन्त्रता तथा सद्धर्मके युद्धमें उससे मुझे उपयुक्त सैनिक सहायता मिलेगी। हूटनने युवक सम्राट्से स्पष्ट रूपमें कहा था कि "पोपपद तोड़ देना चाहिये, संस्थाकी सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्यमें मिला लेनी चाहिये और सौ पादरियोंमेंसे निन्यानबे पाद-रियोंको व्यर्थ समझकर निकाल देना चाहिये। केवल एकमात्र यही उपाय है जिससे जर्मनीके पादरियों तथा उनकी बुराइयोंसे मुक्ति हो सकती है। उनकी सम्पत्ति जब्त कर लेनेसे साम्राज्यकी पुष्टि तथा आर्थिक दशाकी उन्नति होगी और उसकी रक्षाके लिए वीरभटोंकी सेना नियुक्त की जायगी।"

लोकमत भी क्रान्तिके लिए तैयार दिखाई देता था। लियोके प्रतिनिधि अलेक्जेण्डरने कहा था—"मैं जर्मन जातिके इतिहासको भली भाँति जानता हूँ। मैं उसकी पूर्व समयकी नास्तिकता, सभा तथा कलहको भी जानता हूँ, लेकिन इतनी विकट अवस्था कभी भी नहीं हुई थी। आधुनिक दशासे मिलान करनेपर चतुर्थ हेनरी तथा सप्तम ग्रेगरीके कलह तुच्छ प्रतीत होते हैं। ये पागल कुत्ते अब विद्या तथा शस्त्रसे सुसम्पन्न हो गये हैं। इनको अभिमान है कि अपने पूर्वजोंकी भाँति अब

ये मूर्ख नहीं रह गये हैं। इनका कहना है विद्याका केन्द्र इटली ही नहीं रह गया, क्योंकि जर्मनीने अपने यहाँ भी इटलीकी विद्याका खूब प्रचार किया है। जर्मनीके नौ भाग तो लूथरका समर्थन कर रहे हैं और दशम भी रोमकी सभाका अन्त ही किया चाहता है।

लूथर भी अपने लेखोंमें खूब फटकार बताता था। उसने यहाँतक लिख मारा था कि 'यदि परमेश्वर रोमकी अविनीत तथा कुटिल जनताको दण्डित करना चाहता है तो रक्तपात रोका नहीं जा सकता।'' इतना होनेपर भी वह अन्धाधुन्ध सुधारका विरोधी था। वह केवल लोगोंके विश्वासमें परिवर्तन करना चाहता था। उसका कहना था कि कोई भी संस्था जबतक गलत रास्तेपर नहीं ले जाती, कुछ भी हानि नहीं कर सकती। सारांश यह कि वह उद्भ्रान्त नहीं था। उत्साहके आरम्भकालमें भी लूथरको पूर्ण विश्वास था कि ''पोपने अपना अधिकार बिना किसी शक्तिके स्थापित किया है और बिना किसी शक्तिके प्रयोगके वह परमेश्वरके शब्दसे ही दलित किया जायगा।'' पर लूथरको यह बात जाननेका पूरा अवसर नहीं मिला कि उसके तथा हूटनके इस विचारमें कितना मतभेद है, क्योंकि वीर कवि हूटन थोड़ी ही अवस्थामें परलोक सिधार गया। फ्रैंज वान सिकिंजनके बारेमें उसे शीघ्र प्रतीत होने लगा कि वह निर्दयी है और उसके उग्र कामोंके कारण सुधारकी बड़ी अप्रतिष्ठा हुई है।

जर्मनीके सुधारकोंका सम्राट्से बढ़कर दूसरा कोई भी कट्टर शत्रु नहीं था। संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०) के अन्तमें चार्ल्स जर्मनीमें आया। उसने एक्स-ला-शापलेमें गद्दीपर बैठकर पोपकी अनुमतिसे अपने पितामह मेक्सिमिलनकी भाँति सम्राट्की उपाधि ली। तब उसने वर्मकी ओर प्रस्थान किया। यहीं उसने अपनी सभाको निमन्त्रित कर जर्मनीकी दशापर विचार करना निश्चित किया।

यद्यपि चार्ल्स अभी नवयुवक ही था, तथापि राज्य-कार्य विचारपूर्वक करता था। उसने स्थिर कर लिया था कि मेरे साम्राज्यका केंद्रस्थान जर्मनीमें न होकर स्पेनमें होगा। अपनी स्पेनकी शिक्षित प्रजाकी भाँति वह भी धर्म संस्थामें सुधार चाहता था, पर सिद्धान्तोंके परिवर्तनसे उसे कुछ भी सहानुभूति नहीं थी। अपने कट्टर पूर्वजोंकी भाँति वह भी कट्टर कैथलिक ही रहना चाहता था। इसके अतिरिक्त उसने अपने सम्पूर्ण विच्छिन्न राज्यमें भी वही धर्म चलाना चाहा। उसने सोचा कि यदि हम आज जर्मनोंको अनुज्ञा दे दें कि वे धर्म-संस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़कर स्वतन्त्र हो सकते हैं तो कल ही वे सम्राट्का ध्यान छोड़ अपना शासन भी स्वतन्त्र करना चाहेंगे।

ज्योंही चार्लस् वर्ममें पहुँचा त्योंही पोपके उद्यमी और सावधान प्रतिनिधि अलिएण्डरने उसका ध्यान लूथरके मामलेकी ओर आकर्षित किया। वह उसको बराबर

उत्तेजित करता रहा कि विना विलम्बके वह इस नास्तिकको 'अरक्ष्य'* घोषित कर दे। चार्लसको विश्वास हो गया कि लूथर अपराधी है, पर वह उसपर अभियोग लगानेसे डरता था, क्योंकि वह समाजमें सबसे पूज्य था और सैक्सनीका इलेक्टर उसका सहायक था। अन्य नरेश भी, जो नास्तिककी रक्षा नहीं करना चाहते थे, समझते थे कि धर्म-संस्थाकी बुराइयों तथा पोपके घृणित कार्योंकी आलोचना लूथरने यथार्थ की है। बहुत विवादके बाद यह निश्चित हुआ कि "लूथर वर्ममें बुलाया जाय, वहाँ उसे जर्मन-जाति तथा सम्राट्का सामना करनेका अवसर दिया जाय, उससे यह भी प्रश्न किया जाय कि क्या इन नास्तिकतापूर्ण पुस्तकोंका वही लेखक है और अब भी उन सिद्धान्तोंको मानता है, जिनको पोपने धर्म-विरुद्ध बतलाया है?" यह कार्यवाही अलिएण्डरको बहुत बुरी लगी।

तदनुसार सम्राट्ने "पूज्य तथा प्रतिष्ठित" लूथरके पास विनीत भावसे एक पत्र लिखा। उसने लूथरको वर्ममें बुलाया और मार्गमें रक्षाकी प्रतिज्ञा की। पत्र पाकर लूथरने कहा—"यदि वर्ममें केवल अपने सिद्धान्तको छोड़नेके लिए जाना है तो अच्छा यह होगा कि मैं विटिनबर्गमें ही रहूँ और यदि हो सके तो अपनी बुराइयोंको दूर करूँ, पर यदि सम्राट् मेरी हत्या करनेके लिए वर्गमें बुलाता है तो मैं जानेके लिए सन्नद्ध हूँ, क्योंकि प्रभु ईसाकी कृपासे मैं अपनी धर्मपुस्तकको इस बुरी दशामें छोड़कर भाग नहीं सकता। पूर्वमें मैंने कहा था कि पोप ईश्वरका प्रतिनिधि है। अब मैं उस वचनको काटकर कहता हूँ कि पोप प्रभु ईसाका शत्रु और शैतानका दूत है।

राजदूतके साथ लूथरने वर्मको प्रस्थान किया। मार्गमें उसको आशासे अधिक सफलता मिली। वह नास्तिकताके दोषमें निकाल दिया गया था तो भी वह मार्गमें बराबर अपने मतका उपदेश देता ही गया। उसने राजसभाको विप्लवकी दशामें पाया। पोपके प्रतिनिधिका प्रतिदिन तिरस्कार होता था। हूटन और सिकिंजन यह धमकी दे रहे थे कि हम इबर्नबर्गकी गढ़ीसे निकलकर लूथरके शत्रुओंको मार भगायेंगे।

सभाके सामने अपने मतका समर्थन करनेका अवकाश उसे नहीं दिया गया। जब वह सम्राट् तथा सभाके सामने उपस्थित हुआ तो उससे केवल दो प्रश्न पूछे गये—"क्या जर्मन तथा लैटिन भाषामें लिखित किताबोंका यह संग्रह तुम्हारा ही

---

* अरक्ष्य=यह अंग्रेजी आउटला शब्दका अनुवाद है। जब कोई मनुष्य 'अरक्ष्य' घोषित कर दिया जाता है तो फिर उसे कोई व्यक्ति किसी प्रकारकी सहायता नहीं दे सकता और सबको यह अधिकार होता है कि उसको दण्ड दे। कानून उसकी रक्षा करनेसे इनकार कर देता है।

लिखा है और यदि लिखा है तो क्या तुम अपने मतको बदलनेके लिए प्रस्तुत हो ?" लूथरने प्रथम प्रश्नका उत्तर तो धीरेसे दिया कि हाँ, यह सब मेरा ही लिखा है, पर दूसरे प्रश्नके उत्तरके लिए उसने कुछ समय माँगा, क्योंकि अपनी आत्माके कल्याण तथा ईश्वरवाक्यकी समस्या उसके अन्तर्गत थी।

दूसरे दिन उसने सभामें लैटिन भाषामें अपना भाषण उपस्थित किया और उसका अनुवाद जर्मन भाषामें भी पढ़ सुनाया। उसने कहा कि "मैंने अपने शत्रुओं-की कार्यवाहीकी आलोचना कड़ी भाषामें की है, पर यहाँ कोई नहीं है जो इस बातसे इनकार करे कि पोपकी आज्ञाओंसे सच्चे ईसाइयोंकी आत्माएँ बेतरह मोहग्रस्त हो गयी हैं और पीड़ित हो रही हैं और उनकी सम्पत्तियाँ, विशेषकर जर्मनीमें, हड़प ली गयी हैं। यदि मैं पोपके प्रतिकूल कहे हुए अपने वचनोंको लौटाऊँगा तो पोपके दुराचारोंकी केवल बढ़ती ही होगी और नये-नये माल हड़पनेका उसे अवसर मिलेगा। यदि मेरे विचारके विरुद्ध धर्मपुस्तकमें कोई भी उपपत्ति मिले तो मैं अपने कामसे मुँह मोड़नेको तैयार हूँ। मैं पोप अथवा सभाकी मन्त्रणा माननेको प्रस्तुत नहीं हूँ, क्योंकि दोनोंने भूल की है और स्वयं अपने मन्तव्योंके प्रतिकूल कार्य किया है। मेरे विचार केवल ईश्वरके सहारे हैं। अपने कार्यसे मुँह मोड़ना तो कठिन है और वह मुझसे हो भी नहीं सकता, क्योंकि अपनी विवेक-बुद्धिके विरुद्ध कार्य करना भयावह तथा असंगत है"।

अब लूथरको अरक्ष्य घोषित करनेके अतिरिक्त सम्राट्‌को कुछ भी नहीं करना था, क्योंकि उसने धर्मसंस्थाके प्रधानाध्यक्ष तथा ईसाई जनताकी सबसे बड़ी सभाकी अवहेलना की थी। लूथरके इस कथनपर कि उसका आन्दोलन धर्मपुस्तकके अनु-कूल है, राजसभाने कुछ ध्यान नहीं दिया।

वर्मके प्रसिद्ध आज्ञापत्रको लिखनेका कार्य अलिएण्डरको दिया गया। इस आज्ञा-पत्र द्वारा निम्न लिखित कारणोंसे लूथर अरक्ष्य घोषित किया गया। उसने संस्कारों-की प्रचलित संख्या और पद्धतिमें उथल-पुथल की और बाधा डाली। उसने विवाहके नियमोंका अपवाद किया। उसने पोपकी अवहेलना तथा निन्दा की। पुरोहित-पदकी निन्दा की और लोगोंको पुरोहितोंकी हत्याके लिए उत्तेजित किया। उसने मनुष्यके संकल्प स्वातन्त्र्य-सिद्धान्तकी अवहेलना की तथा दुश्चरित्रताकी शिक्षा दी। वह अधि-कारीवर्गसे घृणा करता है, पशुजीवनका उपदेश देता है और राजा तथा धर्म दोनोंके लिए भयका कारण है। प्रत्येक व्यक्तिके लिए इस नास्तिकको भोजन, पान और आश्रय देना मना है। यह प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह इसको पकड़कर राजाके हवाले कर दे।

इसके अतिरिक्त आज्ञा-पत्रमें यह भी लिखा था कि आजसे मार्टिन लूथरकी

पुस्तकोंको कोई भी मनुष्य खरीद, बेच, पढ़, रख, छाप, नकल करवा अथवा छपवा नहीं सकता, क्योंकि वह पोपसे दण्डित है और ये पुस्तकें कलुषित, अनिष्टकारी तथा शंकास्पद हैं और अविनीत नास्तिक द्वारा रचित हैं। उनके विचारोंका समर्थन या संरक्षण, किसी भी प्रकारसे नहीं किया जा सकता, चाहे जनसाधारणको धोखा देनेके लिए उनमें कुछ अच्छी भी बातें क्यों न लिखी हों।

यह अन्तिम समय था जब कि सम्राट् रोमके विशपकी आज्ञाका प्रयोग करनेके लिए उद्यत हुआ था। हूटनने कहा कि "मुझे अपने देशपर लज्जा आती है।" उस आज्ञा-पत्रकी इतनी अधिक निन्दा हुई कि उसको माननेके लिए बहुत कम लोग प्रस्तुत हुए। चार्ल्स् तुरन्त ही जर्मनीसे चला गया और दस वर्षपर्यन्त स्पेनके शासन तथा कई लड़ाइयोंमें लगा रहा।

अध्याय २६

जर्मनीमें प्रोटेस्टेण्ट क्रान्तिकी प्रगति

(संवत् १५७८-१६१२)

वर्मसे लौटकर लूथर घर जा रहा था। मार्गमें ज्योंही वह आरसेनके समीप पहुँचा कुछ लोगोंने उसे पकड़कर सेक्सनीके इलेक्टरके वार्टबर्ग नामी दुर्गमें पहुँचाया। उसमें वह तबतक छिपाकर रखा गया जबतक सम्राट् तथा सभाकी ओरसे किसी कार्रवाईका कुछ भी भय रहा। उस कई मासके गुप्तवासमें उसने बाइबिलका जर्मन भाषामें नया अनुवाद आरम्भ किया। संवत् १५७९ के चैत्र (सन् १५२२ ई०के मार्च)में वार्टबर्ग छोड़नेके पूर्व उसने न्यूटेस्टामेण्ट समाप्त कर दिया था।

इस समयपर्यन्त धर्मपुस्तकका जर्मन-भाषामें अनुवाद यद्यपि दुर्लभ नहीं था, तथापि स्पष्ट नहीं था। लूथरका कार्य कठिन था। उसने सच ही कहा था कि "अनुवादका काम सबके लिए नहीं है। इसके लिए ऐसे ईसाईकी आवश्यकता है जो शुद्ध, पवित्र, सच्चा, मिहनती, पूज्य, पण्डित, अनुभवी तथा मतिमान हो।" उसने ग्रीक भाषाको केवल तीन ही वर्ष पढ़ा था और हेब्रू भाषा तो और भी कम जानता था। इसके अतिरिक्त जर्मनीमें कोई भी ऐसी प्रान्तीय भाषा नहीं थी जिसे वह राष्ट्रभाषा मानकर प्रयोग करता। प्रत्येक प्रदेशकी अलग-अलग भाषा थी जो समीपके प्रदेशको विदेशी प्रतीत होती थी।

उसे इस बातकी भी चिन्ता थी कि बाइबिलकी भाषा इतनी सरल होनी चाहिये जो सर्वसाधारणकी समझमें बखूबी आ सके। इस हेतु वह घर-घर घूम स्त्रियों, बालकों तथा सेवकोंसे ऐसे प्रश्न पूछता था जिनके उत्तरमें उसको उपयोगी वाक्य मिल जाते थे। कभी-कभी तो उचित शब्दोंके अन्वेषणमें कई सप्ताह लग जाते थे, पर इतनी कठिनाइयोंके रहते हुए भी उसने अपना काम इस सफलतासे पूरा किया कि उसकी अनूदित बाइबिलको जर्मन भाषाके इतिहासमें सीमा-चिह्न कह सकते हैं। आधुनिक जर्मन भाषामें यह प्रथम पुस्तक थी जो कुछ महत्त्व रखती थी और यह पुस्तक जर्मन भाषाकी एक प्रामाणिक पुस्तक मानी गयी है। संवत् १५७५ (सन् १५१८ ई०)के पूर्व जर्मन भाषामें बहुत कम पुस्तकें थीं। बाइबिलका ऐसी सरल भाषामें अनुवाद किया जाना जिसका उपयोग अनपढ़ आदमी भी कर सकता है, उस प्रयत्नका एक अंशमात्र था जो उस समय जर्मनीकी जनताको उन्नत बनानेके लिए

किया जा रहा था। लूथरके मित्र तथा शत्रु सभी जर्मन भाषामें किताबें लिखने लगे। अब साधारण लोग भी विद्वानोंके मुकाबिलेमें अपनी आवाज उठाने लगे।

उस समयके सैकड़ों लेख, आलोचनात्मक रचनाएँ, गीत तथा व्यंग्यचित्र अबतक पाये जाते हैं जिनसे विदित होता है कि जिस प्रकार आजकलके पत्रोंमें राजनीतिक विषयोंपर कटाक्ष होते हैं उसी प्रकार उस समय धार्मिक तथा अन्य विषयोंपर भी कटाक्ष होते थे, जैसे एक लेखमें दशम लिओ तथा शैतानकी बातचीत दी गयी है और दूसरेमें स्वर्गके द्वारपर महात्मा पीटर तथा फ्रैंज वान सिकिंजनसे प्रश्नोत्तर है। एक तीसरे निबन्धमें दिखलाया गया है कि पीटरका कहना है कि मुझे "मुक्ति तथा बद्ध करनेकी" प्रथा ज्ञात ही नहीं जिसका मेरे उत्तराधिकारी इतना समर्थन करते हैं। दूसरे आक्षेपपूर्ण गीतमें महात्मा पीटरका इस पृथ्वीपर आनेका वर्णन किया गया है। एक सरायमें सैनिकोंके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता है। वह स्वर्गको भागते हैं और जर्मनीकी बुरी दशाका वर्णन करते हैं।

अबतक सुधारके विषयमें केवल बातें ही बहुत होती रहीं, वस्तुतः सुधार कुछ भी नहीं हुआ था। भिन्न-भिन्न सुधारोंमें कोई बड़ा भेद नहीं था। सभीकी इच्छा थी कि धर्मसंस्थाकी दशाका सुधार होना चाहिये, पर इस बातको विरले लोग सोचते थे कि आपसके दृष्टिकोणोंमें कितना भेद है। राजा लोग लूथरको इस आशासे मानते थे कि धर्म-संस्थावालों तथा उसकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार हो जायगा और रुपयेका रोम जाना बन्द हो जायगा। सिकिंजनके वीरभट राजाओंसे घृणा करते थे, क्योंकि वे लोग उनकी वृद्धिसे जलते थे। "न्याय"का यह अभिप्राय था कि "वर्त्तमान शासकोंका नाश कर अपने वर्गको उच्च पद दे दिया जाय।" कृषक लोग लूथरको इस कारणसे मानते थे कि वह इस बातका नया-नया सबूत दिखलाता था कि ग्रामपति इनसे अनुचित कर लेते हैं। ऊँचे पादरी पोपके अधिकारसे स्वतन्त्र होना चाहते थे और सामान्य पादरी विवाह करना चाहते थे। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि प्रायः सबके ही चित्तमें धर्मके विचारका स्थान गौण था।

जब लूथरने इन भिन्न-भिन्न दलोंको अपना पृथक्-पृथक् मत प्रकाश करते देखा तो उसे अत्यन्त खेद तथा सन्ताप हुआ। उसके मतको समझनेमें लोगोंने भूल की थी। उसपर आक्षेप किये गये तथा अनादर भी किया गया। कभी-कभी तो उसे यह भी सन्देह होने लगता था कि कहीं "भक्तिसे मुक्ति"के सिद्धान्तमें उसने स्वयं तो भूल नहीं की है। प्रथम आघात उसे विटिनबर्गसे ही पहुँचा।

जिस समय लूथर वार्टबर्गमें था, विटिनबर्गके विद्यापीठमें रहनेवाले उसके सहकारी कार्ल्स्टाटके हृदयमें यह बात जम गयी कि महन्त तथा महन्तिनोंको चाहिये कि कि वे मठको छोड़कर सर्वसाधारणकी भाँति विवाह करें। दो कारणोंसे यह सिद्धान्त

अति गम्भीर हो गया था। प्रथम, जो लोग मठ छोड़ रहे थे वे लोग अपनी की हुई शपथको तोड़ रहे थे। दूसरे, यदि मठ तोड़ दिये गये तो उनकी सम्पत्तिका प्रश्न उठ खड़ा होता। यह सम्पत्ति शुद्ध हृदयसे सद्गृहस्थोंने अपनी आत्माकी शान्तिके लिए प्रदान की थी और वे लोग यह आशा रखते थे कि महन्तोंकी प्रार्थनाओंका लाभ उन्हें भी मिलेगा। इस बातपर ध्यान न देकर महन्त लोग लूथरके ही मठको छोड़कर जाने लगे और छात्रगण तथा अन्य लोग गिरजोंमें रखी हुई महात्माओंकी मूर्तियोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे। अब स्तुतिके रूपमें भगवद्-भोग लगना बन्द हो गया, क्योंकि लोगोंका मत यह हो गया कि वह "रोटी तथा मद्य"की ही उपासना है। कालस्टॉटकी यह भी धारणा हो गयी कि विद्या पढ़ना व्यर्थ है, क्योंकि बाइबिलमें ईश्वरने कहा है कि "मैं अपनेको बुद्धिमानोंसे छिपाता हूँ और बच्चोंको सन्मार्ग बतलाता हूँ।" वह अशिक्षित व्यापारियोंसे बाइबिलके उन सूत्रोंके विषयमें प्रश्न करता था जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं था। इससे वे लोग आश्चर्यान्वित होते थे। विटिनवर्गकी पाठशाला रोटीकी दूकान बन गयी। जर्मनीके सभी प्रान्तोंसे आये छात्र अपने-अपने घर लौटने लगे और अध्यापकोंने दूसरे स्थानोंमें जाना निश्चित किया।

जब यह सब वृत्तान्त लूथरको विदित हुआ तो वह अपने भयका विचार त्यागकर गुप्त वाससे निकल विटिनवर्ग आ पहुँचा। वहाँपर उसने लगातार गम्भीर शब्दोंमें उपदेश देना आरम्भ किया। इन उपदेशोंमें उसने समझदारी, शान्ति और नरमीपर जोर दिया। कालस्टॉटके किये हुए कुछ परिवर्त्तनोंसे वह सहमत भी था; मगर वह मठोंको बिना विवेक तोड़ देना नहीं चाहता था, यद्यपि वह यह मानता था कि जिन लोगोंने भक्तिसे मुक्तिका मत ग्रहण किया है वे लोग यदि चाहें तो गृहस्थाश्रममें फिर जा सकते हैं, क्योंकि जिस समय उन लोगोंने शपथ ली थी उस समय उन्हें यह अन्धविश्वास था कि मुक्तिका कोई अन्य साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त अबसे मठवालोंको भीख माँगकर जीवन-निर्वाह नहीं करना पड़ेगा, बल्कि परिश्रम करके पैदा करना पड़ेगा।

लूथरको अब प्रतीत होने लगा कि धर्ममें जो कुछ परिवर्त्तन हो, सरकार द्वारा ही होना चाहिये। त्याज्य तथा अत्याज्यका विचार सर्वसाधारणके ऊपर न छोड़ना चाहिये। यदि अधिकारीवर्ग इस बातपर ध्यान न दे तो चुप रहकर भलाईके लिए प्रयत्न करते रहना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यका धर्म है कि वह लोगोंको शिक्षा दे कि मनुष्यके बनाये विधान सर्वथा तुच्छ हैं। लोगोंको उपदेश देना चाहिये कि अब कोई भी महन्त या महन्तिन न हो और जो लोग हो गये हों वे भी मठ छोड़ दें, पोपके स्मरण अथवा विलासिताके लिए द्रव्य देना बन्द करें और उनसे कहें कि सच्चा

ईसाईमत श्रद्धा तथा प्रेममें है। यदि हम लोग दो वर्षपर्यन्त इस विषयपर अमल करें तो पोप, बिशप, महन्त, महन्तिन तथा पोपके अधिकारके सम्पूर्ण मन्त्र-तन्त्रोंका लोप हो जायगा। लूथरका मन्तव्य था कि ईश्वरने हम लोगोंको विवाह करने, महन्त बनने, उपवास करने तथा मन्दिरोंमें मूर्ति-स्थापन करने या न करनेकी स्वतन्त्रता दे दी है। ये सब बातें मुक्तिके लिए आवश्यक नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने लिए जो विशेष लाभदायक प्रतीत हो उसे करनेके लिए स्वतन्त्र है।

लूथरने जो नरमी और शान्तिका उपाय सोचा था वह असाध्य था। प्राचीन मार्गका त्याग करनेवालोंका उत्साह इतना अधिक बढ़ा हुआ था कि वे प्राचीन प्रथाओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाली समस्त बातोंको एकदम निकाल देना चाहते थे। ऐसे बहुत कम थे जो उस धर्मके चिह्नों तथा रीतियोंको जिनसे वे घृणा करने लग गये थे, शान्तिपूर्वक देख सकें। जिन लोगोंको धर्ममें विशेष अनुराग नहीं था वे लोग केवल विप्लव करनेके लिए चित्रों, लिखित काँच-पटलों तथा मूर्तियोंके तोड़नेमें इन लोगों-का साथ देने लगे।

लूथरको विदित हो गया कि शान्तिपूर्वक आन्दोलन असम्भव है। उसके वीरभट साथी हूटन तथा फ्रैंज वान सिकिंजनने ही पहले-पहल बलप्रयोग करके धार्मिक आन्दोलनकी अप्रतिष्ठा की। संवत् १५७९ (सन् १५२२ ई०)की शरदऋतु-में सिकिंजनने ट्रिवीजके आर्क-बिशपपर आक्रमण किया। यह उस आक्रमणका केवल प्रारम्भ था जिसको वीरभट लोग राजाओंके प्रतिकूल प्रयोगमें लानेका निश्चय कर चुके थे। उसने ट्रिवीज-निवासियोंसे प्रतिज्ञा की थी कि "मैं तुम लोगोंको पादरियों-के भीषण तथा ईसाईधर्मके प्रतिकूल बन्धनसे छुड़ाकर अप्रमेय मुक्तिका मार्ग दिखला दूँगा।" उसने अपने प्रासादमें स्तुतिपाठ बन्द कर दिया था और लूथरके अनुयायियोंको शरण दी थी। लेकिन उसका धार्मिक प्रचारके अतिरिक्त और भी उद्देश्य था। लूथर को वह जिस प्रीतिभावसे देखता था वह उस प्रबल इच्छासे सर्वथा भिन्न था जो सिकिंजनको घृणित धर्मसंस्थाके एक उच्च अधिकारीको उतार-कर उसकी सम्पत्ति हड़प लेनेके लिए प्रेरित कर रही थी।

परन्तु ट्रिवीजका आर्क-बिशप बुद्धिमान तथा वीर निकला। उसने अपनी प्रजा-को अपने साथ मिला लिया। ऐसी दशामें फ्रैंजको अपने प्रासादमें शरण लेनेको बाधित होना पड़ा, पर वहाँ भी उसे पैलेटिनेटके इलेक्टर तथा लूथरके मित्र हीसी-के लैण्डग्रेवने घेर लिया। दुर्गकी दीवारोंपर तोपके गोले बरसाये गये और सत्य-प्रचारक फ्रैंज धरन (कड़ी)के गिरनेसे घायल हो गया। हूटन स्विट्जरलैण्डमें भाग गया और कुछ मास पश्चात् वह दरिद्र होकर मर गया। वीरभटोंके एक संघने जिसका सिकिंजन मुखिया था, राजाओंमें भय उत्पन्न कर दिया। इन नरेशोंने कितने

ही नाइटोंके स्थानोंका नाश कर डालनेके लिए सैन्य एकत्र किया। इसका परिणाम यह हुआ कि नाइटोंको प्राचीन अधिकार प्राप्त करानेके लिए हूटनका सब प्रयत्न सर्वथा निष्फल हो गया। ऊपरकी बातोंसे प्रकट होता है कि इनके तथा लूथरके कार्योंमें बड़ा अन्तर था तो भी वे लोग "धार्मिक सुधार"के विषयोंमें अधिक चर्चा करते थे, और इस कारण उन लोगोंके कार्यके लिए लूथरकी बड़ी निन्दा हुई। प्राचीन धर्मसंस्थाके अनुयायियोंको प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि नास्तिकतासे अराजकता उत्पन्न हुई है। इससे सरकार तथा धर्मसंस्था दोनोंको हानि पहुँचनी संभव थी, इस कारण चाहे जैसे हो, उसका समूल दमन आवश्यक है।

जिस समय लूथर वार्टबर्गमें था, दशम लियोकी मृत्यु हुई और उसके स्थानपर छठा हैड्रियन पोप बना। वह किसी समय पञ्चम चार्लसका शिक्षक था और धर्मशास्त्र-का पूर्ण विद्वान् था। वह ईमानदार तथा सीधा-सादा था और विश्वासके परिवर्तन बिना सुधारका पक्षपाती था। उसे विश्वास था कि जर्मनीकी क्रान्ति पादरियों तथा पुरोहितोंके अत्याचारके कारण परमेश्वरसे प्रेरित है। राजसभाकी न्यूरम्बर्गवाली बैठकमें उसने अपने दूत द्वारा स्पष्ट कह दिया था कि पोप ही सबसे बढ़कर पापी थे। उसने कहा कि "हम लोगोंको भली भाँति ज्ञात है कि कितने वर्षपर्यन्त इसी रोमके धर्मक्षेत्रमें अनेक प्रकारके गर्हित कर्म हुए हैं। सारांश यह कि जो कुछ होना चाहिये सब ठीक उसीके प्रतिकूल हुआ करता था तो इसमें आश्चर्यकी ही क्या बात है यदि बुराई प्रधानसे लेकर साधारण जनपर्यन्त अर्थात् पोपसे लेकर साधारण पादरीपर्यन्त फैल गयी। हम पादरी लोग सन्मार्गसे विचलित हो गये हैं, कितने दिनोंतक तो हम लोगोंमेंसे कोई भी सन्मार्गपर नहीं रहा है।"

इन बातोंको स्वीकार करनेपर भी हैड्रियन जर्मनीकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए तबतक प्रस्तुत नहीं था जबतक वे लोग लूथर तथा उसके नास्तिकताके उपदेशका नाश न कर दें। उस पोपने कहा कि "लूथर ईसाई-मतका तुर्कोंसे भी बढ़कर शत्रु है। लूथरके उपदेशके बराबर हानिकारक तथा अप्रतिष्ठित दूसरी कोई वस्तु नहीं हो सकती। वह धर्म तथा सदाचारकी जड़ ही उड़ा देना चाहता है। वह मुहम्मदसे भी खराब है, क्योंकि वह अभिषिक्त महन्तों तथा महन्तिनियोंका विवाह करवाना चाहता है। यदि प्रत्येक धृष्ट नवागन्तुक इस बातका उपदेश दे कि शताब्दियोंसे महात्मा तथा साधुओंसे प्रचलित प्रथाको उलट देनेके लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है तो किसी वस्तुकी स्थिति रह ही नहीं सकती।"

इस पोपके अपने पूर्वाधिकारियोंके पापको स्वीकार करनेसे सभा बड़ी प्रसन्न हुई। उसे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पोप जड़से ही सुधार करना चाहता है, लेकिन धर्मके आज्ञापत्रका प्रयोग करनेसे उसने स्पष्ट शब्दोंमें इनकार किया, क्योंकि

उसे नये उपद्रवके खड़े हो जानेका भय था। जर्मनीवालोंको विश्वास हो गया था कि लूथरको हानि पहुँचानेमें रोमकी धर्मसभा उसके साथ कठोरताका व्यवहार कर रही थी। उसको बन्दी करना धर्मपुस्तककी स्वतन्त्र शिक्षापर आक्षेप तथा प्राचीन प्रथाका समर्थन करना था। इससे पारस्परिक युद्धकी भी सम्भावना थी। इन कारणोंसे सभाने यह निर्णय किया कि जर्मनीमें एक सभा की जाय जिसमें साधारण जन तथा पादरी लोग–दोनोंके प्रतिनिधि निमन्त्रित किये जायँ। उनको स्वतन्त्र राय देनेका अधिकार रहे और वे लोग बिना प्रिय-अप्रियका लिहाज किये शुद्ध 'सत्य'-के विषयमें अपना मन्तव्य प्रकट करें। इस बीचमें ईसाई-धर्मसंस्थाके मतानुसार केवल गास्पलका उपदेश होना चाहिये। पोपकी इस परिदेवनाके विषयमें कि मठाधिपतियोंने मठ छोड़ दिया और पुरोहितोंने विवाह कर लिया, राजसभाने कहा कि अधिकारीवर्गको इससे कोई भी प्रयोजन नहीं है। सैक्सनीके इलैक्टरने कहा कि जब महन्त मठमें प्रवेश करते हैं तो हम लोगोंसे पूछा नहीं जाता, अतः जब वे लोग भाग जाते हैं तो हम लोग क्यों हस्तक्षेप करें। अब लूथरकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं की जायँगी। विद्वान् लोग भूले उपदेशकोंकी भर्त्सना करें। लूथरको चुप रहना पड़ेगा। इससे जर्मनीके लोगोंकी दशाका पूरा पता चलता है। यहाँपर यह जान लेना आवश्यक है कि राजसभाके मतसे लूथर बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं था और उसने उसको कोई विशेषता नहीं दी।

बुराइयोंको दूर करनेका निष्फल प्रयत्न करते-करते बिचारा हैड्रियन शीघ्र ही मर गया। उसके पश्चात् मेडची-वंशका सप्तम क्लेमेण्ट पोपपदपर आया। वह दशम लियोके बराबर बुद्धिमान् तो नहीं था, पर उसकी बुद्धि भी उतनी ही सांसारिक थी। संवत् १५८१ (सन् १५२४ ई०)में एक नयी सभा बैठी। उसने भी पहिली सभाकी नीतिका समर्थन किया। उसने लूथरके कार्यका समर्थन नहीं किया, पर उसके मार्गमें किसी प्रकारकी रुकावट भी नहीं डाली।

पोपका दूत कुछ कालतक इस बातका प्रयत्न करता रहा कि राजसभामें समस्त सभासदोंको एकमत करके वह उनकी सहायतासे समस्त जर्मनीको पुनः पोपके आधिपत्यमें लावे, पर उसे यह काम दुःसाध्य प्रतीत होने लगा। इस कारण उसने रेगेन्स्बर्गमें केवल उन शासकोंकी एक सभा की जो पोपके विशेष पक्षपाती प्रतीत होते थे। उस सभामें पञ्चम चार्ल्सका भाई तथा आस्ट्रियाका ड्यूक फर्डिनण्ड, बवेरियाके दो ड्यूक, सलजबर्ग तथा ट्रेण्टके आर्क-बिशप तथा बैम्बर्ग, स्पेयर, स्ट्रासबर्ग आदि स्थानोंके बिशप उपस्थित थे। पोपके कुछ सुधारोंकी प्रतिज्ञा करनेपर उसने इन लोगोंको लूथरकी नास्तिकताका प्रतिरोध करनेके लिए उत्तेजित किया। उनमेंसे सबसे भारी सुधार यह था कि आगेसे वही लोग धर्मोपदेश देने पायेंगे जिनकी

विधिवत् नियुक्ति होगी और पाल अगस्टाइन ग्रेगरीके उपदेशोंके आधारपर ही धर्म-शिक्षा देनी होगी। पादरियोंपर कड़ी दृष्टि रखी जायगी। द्रव्यके लिए जनताको दुःख न दिया जायगा और पुरोहिती कृत्योंके लिए अनुचित शुल्क न लिया जायगा। क्षमा-प्रदानसे जो बुराइयाँ पैदा होती हैं उनको दूर करनेका प्रयत्न किया जायगा और छुट्टियों और उत्सवोंके दिन घटा दिये जायँगे।

रेगेन्सबर्गका यह समझौता बड़े महत्वका है, क्योंकि यहींसे जर्मनी दो दलोंमें विभक्त हुआ। आस्ट्रिया, बवेरिया तथा दक्षिणके धर्मसंस्थासम्बन्धी राज्योंने लूथरके प्रतिकूल पोपका पक्ष ग्रहण किया और वे आजतक रोमन कैथलिक धर्मावलम्बी हैं। उत्तरमें लोग दिनपर दिन कैथलिक धर्मसंस्थासे संबन्ध तोड़ने लगे। इसके अतिरिक्त जर्मनीकी प्राचीन धर्मसंस्थाके सुधारका आरम्भ पोपके दूतकी चतुर नीति ही थी। कितनी ही बुराइयाँ दूर हो गयीं और नीति तथा संस्थामें वे लोग भी सन्तुष्ट हो गये जो यह चाहते थे कि आवश्यक सुधार हो जाय, परन्तु धर्मके सिद्धान्तों और संस्थाओंमें कोई गम्भीर परिवर्तन न हो। कैथलिक धर्मावलम्बियोंके लिए जर्मन भाषामें शीघ्र ही नयी बाइबिल प्रकाशित की गयी और एक नये धार्मिक साहित्यकी उत्पत्ति हुई जिसका उद्देश्य रोमन कैथलिक विश्वासोंकी सद्यताको प्रमाणित करना तथा उस मतकी संस्थाओं तथा प्रथाओंमें नये प्राणका संचार करना था।

परिवर्तनके विरोधी लूथरके उपदेशोंसे सर्वदा भयभीत रहते थे। संवत् १५८२ (सन् १५२५ ई०)में उन्हें लूथरके उपदेशके अनिष्टकारी प्रभावका दूसरा तथा भयानक प्रमाण मिला। परमेश्वरके न्यायको साक्षी देकर अपने दुःखोंका प्रतिकार तथा अपने स्वत्वोंकी रक्षा करनेके लिए कृषकोंने विद्रोह मचाया। आपसकी इस लड़ाईका भार लूथरके ऊपर तनिक भी नहीं था, पर यह अशान्तिके लिए अवश्य अंशतः जिम्मेदार था। उसने दिखलाया था कि छोटे-छोटे रेहननामे लिखवानेकी प्रथाके कारण कोई भी मनुष्य जिसके पास सौ रुपये भी हों, प्रत्येक वर्ष एक कृषकका नाश कर सकता है। जर्मन मनसबदारोंको उसने हत्यारा बतलाया था, क्योंकि वे लोग केवल कृषकों तथा दरिद्रोंको ठगना जानते थे। "पूर्वकालमें इन्हें लोग धूर्त कहते थे, अब हम लोग इन्हें धर्मात्मा तथा आदरणीय राजा कहते हैं। अच्छे तथा बुद्धिमान शासक तो बहुत कम देखनेमें आते हैं। साधारणतः या तो ये लोग बड़े बेवकूफ हैं या दुष्टोंके सिरताज हैं।" यद्यपि लूथर इन लोगोंको इस प्रकार कटुवचन कहता था, तथापि अपने मतके लिए वह अधिक भरोसा इन्हींपर करता था। उसने पोपका अधिकार नष्ट कर इनकी शक्ति बढ़ा दी थी और प्रत्येक कार्यमें पादरियोंको शासकवर्गके अधिकारमें कर दिया था।

कृषकोंकी कुल माँगे उचित थीं। उनकी माँगोंका सबसे उत्तम निरूपण यह था

जो 'द्वादश वक्तव्य'के नामसे प्रकाशित किया गया था। इनमें उन लोगोंने दिखलाया था कि सामन्त लोग बहुतसे कर ऐसे लेते हैं जिन्हें धर्मपुस्तक अनुमोदित नहीं करती और ईसाई-धर्मके अनुसार वे लोग दास नहीं समझे जा सकते थे। वे लोग समस्त उचित करोंको देनेके लिए प्रस्तुत थे, पर उनका कहना यह था कि यदि हमसे अधिक श्रम लिया जाय तो उसके लिए हमें वेतन भी दिया जाना चाहिये। उन लोगोंके मतसे प्रत्येक समुदायको अपने इच्छानुसार अपना पादरी चुननेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये और यदि वह लापरवाह और अयोग्य प्रतीत हो तो उसे निकाल देनेका भी अधिकार होना चाहिये।

किसी-किसी नगरमें काम करनेवाले मजदूरोंने भी कृषकोंके विद्रोहमें भाग लिया था। इन लोगोंकी माँगें कहीं अधिक कड़ी थीं। हाइल ब्रान नगरमें निर्धारित माँगोंके पढ़नेसे असन्तोषके कारणोंका पूरा पता चलता है। इसके अनुसार गिर्जोंकी सारी सम्पत्ति छीनकर सर्वसाधारणके हितके लिए व्यय की जानी चाहिये थी। उसमेंसे केवल प्रजासे नियुक्त पादरियोंके पालन-पोषणके लिए आवश्यक अंश छोड़ देना चाहिये था। पादरियों तथा जागीरदारोंके समस्त अधिकारोंको छीनना चाहिये था जिससे वे लोग दरिद्र जनताको न सता सकें।

इन लोगोंके अतिरिक्त और नेता थे जो उन लोगोंसे कहीं अधिक तीव्र थे। उन लोगोंका मत था कि ये अधर्मी पादरी तथा जागीरदार मार डाले जायँ। क्रोधोन्मत्त कृषकोंने सैकड़ों प्रासाद तथा मठ ध्वस्त कर डाले और कितने ही जागीरदार बड़ी कठोरतासे मारे गये। कृषकका पुत्र होनेके कारण लूथर कृषकोंसे विशेष सहानुभूति रखता था। इस कारण प्रथम तो उसने उन्हें शान्ति रखनेकी मन्त्रणा दी, पर जब उसने देखा कि यह सब समझाना निष्फल गया तो उसने उनकी तीव्र आलोचना की। उसने कहा कि "ये लोग घोर पापके अपराधी हैं और इनकी आत्मा तथा शरीरको अनेक बार घोर यातना मिलनी चाहिये। इन लोगोंने राजभक्तिसे मुँह मोड़ा है, प्रमादसे प्रासादों तथा मठोंको लूटा है और अपने घोर पाप कर्मोंके लिए बाइबिलकी आड़ ढूँढ़ते हैं।" उसने सरकारको इस विद्रोहका दमन करनेके लिए उत्तेजित किया। "इन दरिद्रोंपर किसी प्रकारकी दयाकी आवश्यकता नहीं है।"

जर्मन शासकोंने लूथरकी मन्त्रणाका अक्षरशः पालन किया। सर्दारोंने कृषकोंकी लूट-मारका विकट बदला लिया। संवत् १५८२ (सन् १५२५ ई०)की गरमीमें कृषकोंका प्रधान नेता मारा गया। लोगोंका अनुमान है कि करीब दस सहस्र कृषकोंकी हत्या की गयी। उनमेंसे कितनोंके साथ अतीव क्रूर व्यवहार किया गया। बहुत ही कम ऐसे शासक थे जिन्होंने किसी प्रकारका सुधार किया हो। सम्पत्तिके नाश और कृषकोंकी निराशामयी चित्तवृत्तिसे जो लूट-मार, दुरवस्था उत्पन्न हुई वह

वर्णनातीत है। नाशका तो कोई ठिकाना नहीं था। लोगोंको विश्वास हो गया कि नया धर्म उनके लिए नहीं बना था और वे लूथरको "डाक्टर लूअर" अर्थात् "झूठा आचार्य" कहने लगे। ग्रामपतियोंके पूर्व 'करों'में किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई। इस विद्रोहके सैकड़ों वर्ष पीछेतक कृषकोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय रही।

कृषकोंके विद्रोहसे भयभीत होकर धार्मिक परिवर्त्तनके प्रतिकूल नये नियम बनाये गये। मध्य तथा उत्तरीय जर्मनीके कुछ शासकोंने मिलकर डेसाउ संघ स्थापित किया जिसका अभिप्राय था लूथरके मतवालोंको दबाना।

उस संघमें लूथरके विषम शत्रु सैक्सनीका ड्यूक जार्ज ब्रैंडनबर्ग तथा मेयन्सके इलेक्टर तथा ब्रुन्सविकके दो राजा सम्मिलित थे। इसी समय यह कथा फैली कि सम्राट् चार्ल्स जो अबतक प्रथम फ्रेन्सिसके साथ युद्धमें निमग्न था, नास्तिकताका उन्मूलन करनेके लिए जर्मनी आ रहा है। इस वृत्तान्तका यह परिणाम हुआ कि जो थोड़ेसे राजा लोग लूथरके पक्षपाती थे उन्होंने अपना एक संघ बनाया। इनमें सेक्सनीके नये इलेक्टर जान फ्रेडरिक और हिसीके लैण्डग्रेव फिलिप प्रधान थे। ये दोनों जर्मनीमें प्रोटेस्टेण्ट मतके कट्टर पक्षपाती थे।

इसी बीचमें सम्राट्को फैन्सिस तथा पोपसे लड़ना पड़ा जिससे वह बहुत दिनोंतक जर्मनी नहीं आ सका। उसने वर्मके आज्ञापत्रको लूथरके अनुयायियोंके प्रतिकूल काममें लानेका ध्यान भी छोड़ दिया। उस समय समस्त राजाओंके लिए धर्म निर्धारित करनेवाला कोई नहीं रह गया।

स्पेयरकी सभाने संवत् १५८३ (सन् १५२६ ई०)में निर्धारित किया कि जबतक सर्वसाधारणकी सभा न हो तबतक सम्राट्के अधीन प्रत्येक शासक तथा वीरभटको उचित है कि अपने राज्यमें प्रचार करनेके लिए धर्मको स्वयं निर्धारित कर ले। प्रत्येक राजा तथा वीरभटको सम्राट् तथा ईश्वरके समक्ष अपने रहन-सहन तथा धर्मकार्यके लिए जवाबदेह होना पड़ेगा। कुछ समयके लिए जर्मनीके भिन्न-भिन्न राजा अपने-अपने राज्यके लिए धर्म नियुक्त करनेमें स्वच्छन्द हो गये।

इतनेपर भी सबको आशा थी कि अन्ततोगत्वा कोई एक ही धर्म सर्वमान्य हो जायगा। लूथरको भी विश्वास था कि कभी न कभी सभी ईसाई नये मतका आदर करेंगे। वह इस बातपर राजी था कि बिशप-पद भी बना रहे और पोप भी धर्मसंस्थाका प्रधान माना जाय। इधर उसके शत्रुओंको भी विश्वास था कि पूर्वकी भाँति इस बार भी नास्तिकताका लोप हो जायगा और शान्ति स्थापित हो जायगी। इनमेंसे किसी भी दलका अनुमान ठीक न निकला, क्योंकि स्पेयरकी सभाकी निर्धारणा चिरस्थायी हो गयी और जर्मनी भिन्न-भिन्न मतोंमें बँट गया।

प्राचीन धर्मके विरोधी कई नये सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हो रही थी। स्विट्जरलैण्ड-

का ज्विंगली नामक सुधारक लोगोंका विश्वासपात्र हो रहा था और अनाबैप्टिस्ट लोगोंने कैथलिक धर्मको उठा ही देनेका प्रयत्न आरम्भ किया था, जिससे लूथरको भी भय उत्पन्न हो रहा था। बीचमें ही सम्राट्को क्षणिक शान्ति मिली। उसने संवत् १५८६ (सन् १५२९ ई०)में स्पेयरमें पुनः सभाको निमन्त्रित किया। उसमें उसने कहा कि धर्म-विद्रोहियोंके प्रतिकूल आज्ञा-पत्रका प्रयोग किया जाय।

इसका मतलब यह था कि नवीन दलके विश्वासी राजाओंको भी सभी रोमन कैथलिक प्रथाओंका अनुसरण करना होगा। सभामें उनकी संख्या कम थी इस कारण उन्होंने अपना विरोध प्रकाशित किया जिसपर जान फ्रेडरिक, फिलिप, हिसी तथा साम्राज्यान्तर्गत चौदह स्वतन्त्र नगरोंके हस्ताक्षर थे। उस विरोधमें उन लोगोंने लिखा था कि अधिक संख्याको कोई भी अधिकार नहीं है कि स्पेयरके पूर्वनिर्धारण-को काट दे, क्योंकि उसको सबने एक स्वरसे स्वीकार किया था और सबने उसके पालन करनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस कारण उन लोगोंकी यह प्रार्थना थी कि बहु-संख्यक दलके इस अत्याचारपर सम्राट् तथा कोई दूसरी भावी सभा विचार करे। जिन लोगोंने इसपर हस्ताक्षर किये थे वे लोग प्रोटेस्टेण्ट कहलाये, क्योंकि उन्होंने प्रोटेस्ट (विरोध) किया था। इस प्रकारसे उस नामकी उत्पत्ति हुई जिससे उन लोगोंका बोध होता है जो रोमन कैथलिक धर्मको नहीं मानते।

वर्मकी सभाके समयसे ही सम्राट् स्पेनमें रहता था। वह उन दिनों फ्रांसके साथ युद्धमें लगा हुआ था। पाठकोंको स्मरण होगा कि चार्ल्स तथा फ्रांसिस दोनों मिलन तथा बर्गण्डीका राज्य चाहते थे और कभी-कभी इनके कलहमें पोपको भी सम्मिलित होना पड़ता था, परन्तु संवत् १५८७ (सन् १५३०ई०) में सम्राट्को कुछ कालके लिए शान्ति मिली। उसने जर्मनीकी प्रजाकी एक सभा औग्सबर्गमें की। उसे आशा थी कि इस सभा द्वारा मैं धार्मिक व्यवस्थाका निर्णय कर सकूँगा, पर बात यह है कि वह धार्मिक प्रश्नको समझता ही न था उसने प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंको अपने विश्वासकी व्यवस्था लिख डालनेकी आज्ञा दी, क्योंकि उन्हीं विषयोंपर शास्त्रार्थ होनेवाला था। यह उत्कृष्ट कार्य लूथरके घनिष्ठ मित्र तथा साथी मेलांकटनको दिया गया। वह विद्या तथा नरमीके लिए प्रसिद्ध था।

मेलांकटनकी व्यवस्था जिसे औग्सबर्ग कंफेशन कहते हैं, प्रोटेस्टेण्ट-विद्रोहको जाननेकी इच्छा रखनेवाले छात्रके लिए विशेष ऐतिहासिक महत्त्वकी है। उसने अपनी बुद्धिमानी तथा नरमीके कारण दोनों मतोंके विभेदको अत्यन्त ही कम करके दिखलाया। उसने दिखलाया कि वास्तवमें दोनों दलवाले ईसाई मतको प्रायः एक ही दृष्टिसे देखते हैं। हाँ, प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने रोमन कैथलिक धर्म-संस्थाकी कितनी ही प्रथाओंको उठानेका समर्थन अवश्य किया। उनका कहना था

कि पादरियोंके अविवाहित रहने तथा उपवासादि करनेकी प्रथा उठा दी जाय। धर्मसंस्थाके संगठनके विषयमें उस व्यवस्थापत्रमें कुछ भी नहीं लिखा था।

उस सभामें 'एक'के समान अनेक धर्मशास्त्री वर्तमान थे जो लूथरके घोर विरोधी थे। सम्राट्ने उन लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट मतका खण्डन करनेकी आज्ञा दी। कैथलिक मतवालोंने भी स्वीकार किया कि मेलांक्टनके कुछ मन्तव्य अवश्य युक्त हैं, परन्तु उक्त व्यवस्थापत्रके जिस भागमें प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने व्यावहारिक सुधारकी आयोजना की थी उस मार्गको वे माननेको तैयार न थे। चार्ल्सने कैथलिक मतवालों-के मन्तव्यको धार्मिक तथा ईसाई मतानुकूल बतलाकर प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंको उसका अनुकरण करनेको कहा। उसने आज्ञा दी कि "आजसे तुम लोग कैथलिक मताव-लम्बियोंको किसी प्रकार तंग न करो और जितने मठों तथा गिरजोंकी सम्पत्ति तुम लोगोंने छीन ली है, सब लौटा दो।" सम्राट्ने पोपसे एक वर्षके भीतर दूसरी सभा निमन्त्रित करनेके लिए अनुरोध करना स्वीकार किया। इससे सम्राट्को आशा थी कि सब मतभेद दूर हो जायगा और कैथलिकोंके इच्छानुसार धर्मसंस्थामें सुधार भी हो जायगा।

औगसबर्गकी सभाके बाद आधी शताब्दीके भीतर जर्मनीमें प्रोटेस्टेण्ट धर्मकी जो उन्नति हुई उसका वृत्तान्त लिखना अनावश्यक है। विद्रोहकी दशा तथा भिन्न-भिन्न राजाओंके मतको प्रकट करनेके सम्बन्धमें काफी कहा जा चुका है। औगसबर्ग-से जानेके पश्चात् दश वर्षतक सम्राट् नवीन युद्धमें संलग्न रहा। प्रोटेस्टेण्ट मत-वालोंकी सहायता लेनेके लिए उसने धर्मके विषयमें उन्हें स्वतन्त्र रहने दिया। परि-णाम यह हुआ कि लूथरके आदेशको ग्रहण करनेवाले राजाओंकी संख्या बढ़ती गयी। थोड़े ही दिन पश्चात् चार्ल्स तथा प्रोटेस्टेण्ट राजाओंमें युद्ध हुआ, पर इस युद्धका कारण धार्मिक न होकर प्रधानतया राजनीतिक ही था। सैक्सनीके ड्यूक नवयुवक मारिसके दिलमें यह बात आयी कि "यदि मैं प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके प्रतिकूल सम्राट्की सहायता करूँ तो शायद मुझे अपने प्रोटेस्टेण्ट सम्बन्धी जान फ्रेडरिकको उसके इलेक्टरेट (निर्वाचनाधिकार)* से अलग करनेका अवसर मिले।" विशेष युद्धकी आवश्यकता न पड़ी, क्योंकि चार्ल्सने अपनी स्पेनकी समस्त सेना जर्मनीमें लाकर जान फ्रेडरिक तथा उसके मित्र हिसीके फिलिप दोनोंको बन्दी कर लिया और कई वर्षपर्यन्त कारागारमें रखा। ये दोनों प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रधान समर्थक थे।

---

*जर्मन-रोम-साम्राज्यके दिनोंमें जिन सात या अधिक राजाओंको सम्राट्के चुननेका अधिकार प्राप्त था वे 'इलेक्टर' कहलाते थे। 'इलेक्टरेट' से यहाँ उनके पद या राज्यका अभिप्राय है। पृष्ठ २१६-२१७ देखिये।

इससे प्रोटेस्टेण्ट मतकी वृद्धिमें रुकावट न पड़ी। मारिस जिसे फ्रेडरिकका इलेक्टरेट मिला था, शीघ्र ही प्रोटेस्टेण्टोंसे जा मिला। फ्रांसके राजाने अपने शत्रु चार्ल्सके प्रतिकूल उन लोगोंको सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की। अब चार्ल्सको लाचार हो प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंसे सन्धि करनी पड़ी। तीन वर्ष पश्चात् संवत् १६१२ (सन् १५५५ ई०)में औग्सबर्गकी धार्मिक सन्धिका समर्थन किया गया। इसकी शर्तें स्मरण रखने योग्य हैं। इस सन्धिके अनुसार प्रत्येक राजा, नगर तथा नाइट (सैनिक वीर) कैथलिक मत तथा औग्सबर्गके समझौतेमेंसे किसी भी धर्मको ग्रहण करनेके विषयमें स्वतन्त्र था। यदि कोई धार्मिक अधिपति— प्रधान धर्माध्यक्ष, धर्माध्यक्ष तथा महन्त—प्रोटेस्टेण्ट मत ग्रहण करना चाहे तो उसे अपनी सम्पत्ति धर्मसंस्थाको दे देनी पड़ेगी। जर्मनीके प्रत्येक मनुष्यको इन दोनों धर्मोंमेंसे किसी एकको ग्रहण करना होगा, नहीं तो देश छोड़कर चला जाना पड़ेगा।

इस धार्मिक सन्धिसे भी राजाओंके अतिरिक्त और किसीको भी अपने अन्तःकरणका आदेश माननेकी स्वतन्त्रता न मिली। राजाओंकी शक्ति बढ़ गयी, क्योंकि उन्हें धार्मिक तथा राज्य सम्बन्धी, दोनों ही विषयोंका अधिकार दे दिया गया। उस समय ऐसा प्रबन्ध अर्थात् राजाको अपने राज्यके लिए धर्म-निर्धारणका अधिकार देना आवश्यक था। शताब्दियोंसे धर्म तथा शासन-प्रबन्धमें घनिष्ठ सम्बन्ध चला आ रहा था। उस समयतक यह कोई भी नहीं सोचता था कि प्रत्येक मनुष्य यदि वह राज्यके नियमोंका उल्लङ्घन नहीं करता हो तो अपने इच्छानुसार धार्मिक व्यवस्थाका अनुकरण करनेके लिए स्वतन्त्र है।

औग्सबर्गकी संधिमें दो प्रधान त्रुटियाँ रह गयी थीं जो पुनः शान्तिभङ्गकी कारण हुईं। प्रथम तो उसमें प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंका एक ही दल प्रवेश करने पाया था। फ्रेंच सुधारक कैल्विन तथा स्विस सुधारक ज्विंगलीके अनुयायी जिनसे कैथलिक तथा लूथरके भी अनुयायी बराबर घृणा करते थे, इस सभामें नहीं प्रविष्ट कराये गये। जर्मनीके प्रत्येक निवासीको एक न एक मत ग्रहण ही करना पड़ता था, तभी वह देशमें रह सकता था। दूसरी बात यह थी कि यद्यपि कैथलिक मत छोड़कर प्रोटेस्टेण्ट मत ग्रहण करनेवाले धर्माधिपोंके निमित्त यह शर्त रखी गयी थी कि उन्हें अपनी सम्पत्ति धर्मसंस्थाको दे देनी होगी, तो भी इसका अनुपालन करानेवाला कोई भी नहीं था, अतः यह कार्यमें परिणत न की जा सकी।

अध्याय २७

आंग्ल देश तथा स्विट्ज़र्लैंण्डमें प्रोटेस्टेण्ट विद्रोह

लूथरकी मृत्युके एक शताब्दी पश्चात्‌तक यूरोपके अधिकांश देशोंके इतिहासमें प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक मतवालोंके कलहकी प्रधानता है। केवल इटली तथा स्पेन इससे बचे थे, क्योंकि इन देशोंमें प्रोटेस्टेण्ट मतने जड़ नहीं पकड़ी थी। स्विट्ज़र्लैंण्ड, आंग्ल देश, फ्रांस तथा हालैण्डमें इस धार्मिक विद्रोहसे इतना अधिक परिवर्तन हुआ कि इन देशोंकी भावी वृद्धि समझनेके लिए इनका कुछ वृत्तान्त जान लेना आवश्यक है।

प्रथम स्विट्ज़र्लैंण्डकी दशा देखनी चाहिये। यह देश भूमध्यसागरसे लेकर विएना-पर्यन्त फैले हुए आल्प्स पर्वतके मध्यमें बसा है। जो प्रदेश आज स्विट्ज़र्लैंण्ड नामसे प्रसिद्ध है, मध्ययुगमें वह जर्मन साम्राज्यका भाग था और वह प्रायः दक्षिणी जर्मनीसे भिन्न न था। तेरहवीं शताब्दीमें अपने पड़ोसी हैप्सबर्गवालोंकी आक्रान्तसे अपने स्वत्वोंकी रक्षा करनेके लिए लुसर्न झीलके तटस्थ तीन जंगली प्रान्तोंने एक संघ स्थापित किया था। स्विट्ज़र्लैंण्डके राज्य-संस्थापनका यही बीज था। संवत् १३७२ (सन् १३१५ ई०) में इन लोगोंने अपने शत्रु हैप्सबर्गवालोंको मार्गार्टनके युद्धक्षेत्रमें परास्त किया और उन्होंने अपनी पारस्परिक मैत्रीको नूतन रूपसे दृढ़ किया। शाही नगर ज्यूरिच और बर्न भी इसमें सम्मिलित हो गये। हैप्सबर्गवालोंने नयी शक्ति संग्रह कर पुनः आक्रमण किया। स्विट्ज़र्लैंण्डवाले बड़ी वीरतासे लड़े और अन्तमें उन लोगोंको पुनः परास्त किया। इसके पश्चात् वीर चार्ल्सने इनको परास्त करनेका प्रयत्न किया। वह कहीं बढ़कर वीर था, पर इन लोगोंने संवत १५३३ (सन् १४७६ ई०) में ग्रेसन्स तथा मर्टनके युद्धस्थलपर उसकी सेनाको भी विध्वस्त कर दिया।

धीरे-धीरे आसपासके बहुत-से प्रान्त इस संघमें सम्मिलित हुए। इटलीके आल्पसपर्वतीय प्रदेश भी उसके आधिपत्यमें आ गये। कुछ दिनमें संघके सदस्यों तथा साम्राज्यके बीचका सम्बन्ध भी टूट गया। अब वे लोग साम्राज्यके 'सम्बन्धी' कहे जाने लगे। अन्तको संवत् १५५६ (सन् १४९९ ई०)में स्विट्ज़र्लैंण्ड साम्राज्यसे पृथक् होकर एक स्वतन्त्र देश बन गया। उस संघके आदिम भागोंमें जर्मन भाषा बोली जाती थी, पर बादके सम्मिलित हुए अधिकतर प्रदेशोंके लोग इटालियन तथा

फ्रेंच भाषा ही बोलते थे। इस कारण वे लोग दृढ़ तथा सुसज्जित जातिकी नींव नहीं डाल सके। कई शताब्दियोंपर्यन्त वह संघ निर्बल तथा कुसंगठित ही रहा।

स्विट्ज़र्लैण्डमें धर्मके विद्रोहियोंका नेता ज़्विगली था। वह लूथरसे एक वर्ष कनिष्ठ था और उसीकी भाँति एक किसानका लड़का था। उसके पिताकी आर्थिक अवस्था अच्छी थी और उसने अपने पुत्रको बेसल तथा विएनामें अच्छीसे अच्छी शिक्षा दिलायी। धर्मसंस्थाके प्रति उसके असन्तोषका कारण लूथरकी भाँति कठिन तपश्चर्या नहीं था, बल्कि प्राचीन यूनानी ग्रन्थों तथा लैटिन भाषामें न्यूटेस्टामेण्टका अध्ययन था। ज़्विगली पुरोहितका पद पाकर ज्यूरिच झीलके निकटवर्ती इनसीडनके विख्यात मठमें रहने लगा। यहाँपर अधिकतर यात्री महात्मा माइनरेडकी विभूतिमयी मूर्त्तिको देखने आते थे। उसने लिखा है कि "संवत् १५७३ (सन् १५१६ ई०)में मैंने यहाँ-पर ईसामसीहके 'गास्पल' (सुसमाचार)का उपदेश देना आरम्भ किया। उस समय-तक यहाँपर किसीने लूथरका नामतक नहीं सुना था।"

तीन वर्ष पश्चात् उसे ज्यूरिचके बड़े गिरजेमें उपदेशकका उच्चपद मिला। यहींसे उसके कार्यका आरम्भ होता है। एक डोमिनिकन जो 'क्षमाप्रदान'का उपदेश दिया करता था, ज़्विगलीके प्रयत्नसे निकाला गया। अब उसने धर्मसंस्थाकी बुराइय की कड़ी आलोचना आरम्भ की। सैनिकोंकी दुर्वृत्तिका भी घोर प्रतिवाद किया। उसके मतसे ये बातें उसके देशकी प्रतिष्ठाकी घातक थीं। स्विस सेनाकी सहायत पोपके लिए अत्यन्त आवश्यक थी। इस कारण उसने धर्मसंस्थामें उन लोगोंको प्रधान-प्रधान स्थान दे रखा था जो उसके पक्षपाती थे। इन कारणोंसे ज़्विगलीको धार्मिक सुधारके साथ-साथ राजनीतिक सुधार भी हाथमें लेना पड़ा, क्योंकि वह चाहता था कि भिन्न-भिन्न नगरोंके लोग परस्पर विद्वेषको छोड़कर प्रेमसे रहें और ऐसे युद्धोंमें अपने नवयुवकोंकी हत्या न करावें जिनसे उनको किसी प्रकारके लाभ-की सम्भावना न थी। संवत् १५७८ (सन् १५२१ ई०)में पोपने पुनः स्विट्ज़लैंण्डसे सेनाकी सहायता चाही। उस समय ज़्विगलीने पोप तथा उसके दूतोंकी घोर निन्दा की। उसने कहा कि "इनकी टोपियों तथा लबादोंका लाल रंग कैसा उचित है! यदि हम इन कपड़ोंको हिलायें तो इनमेंसे अशर्फियाँ बरसती हैं; यदि हम उन्हें निचोड़ें तो इनमेंसे तुम्हारे भाइयों, बेटों तथा अन्य सम्बन्धियोंकी रक्तकी धार बह निकलती है।"

इस वार्ताके सम्बन्धमें लोगोंमें वाद-विवाद होने लगा। अन्य प्रदेशोंके निवासी तो नये उपदेशकको दबाना चाहते थे, पर ज्यूरिचकी सभाने उसके मतका समर्थन किया। ज़्विगलीने उपवास तथा पादरियोंके अविवाहित रहनेकी प्रथापर आक्षेप करना आरम्भ किया। संवत् १५८० (सन् १५२३ ई०)में उसने करीब पचपन

प्रतिबन्धोंमें अपना पूरा मत प्रकाशित किया। उनमें उसने दिखलाया कि केवल ईसामसीह ही मुख्य पुरोहित हैं। उसने वैतरणी स्थानके अस्तित्वको असिद्ध बतलाया और धर्मसंस्थाकी उन प्रथाओंको उठाना चाहा जिनको लूथर जर्मनीमें उठवा चुका था। जिंवगलीका खण्डन करनेके लिए कोई भी खड़ा नहीं हुआ, इस कारण नगरकी सभाने उसके मन्तव्योंको स्वीकार कर रोमन कैथलिक धर्मसंस्थासे सम्बन्ध तोड़ दिया। दूसरे वर्षसे सारी रोमन कैथलिक पूजा-पद्धति हटा दी गयी।

और कई नगरोंने भी ज्यूरिचका अनुकरण किया। लेकिन लूसर्न झीलके किनारेके निवासियोंने प्राचीन धर्मकी रक्षाके लिए युद्ध करना निश्चय किया। उन्हें भय था कि कहीं हमारा प्रभाव देशसे उठ न जाय, क्योंकि इतने छोटे होनेपर भी उन्होंने अधिक रोब जमा रखा था। प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक मतवालोंका अंशतः धार्मिक तथा अंशतः राजनीतिक युद्ध संवत् १५८८ (सन् १५३१ ई०)में कपेलमें हुआ। इस युद्धमें जिंवगली मारा गया, पर उन नगरोंमें धार्मिक ऐकमत्य कभी नहीं हुआ। वर्तमान समयमें भी स्विट्जर्लैण्डका कुछ भाग कैथलिक और कुछ प्रोटेस्टेण्ट मतानुयायी है।

आंग्ल देश तथा अमेरिकाके लिए कैल्विनकी शिक्षा जिंवगलीकी शिक्षासे कहीं विशेष महत्त्वकी थी। स्विससंघकी सीमापर स्थित जिनी नगरमें इसका कार्य आरम्भ हुआ था। प्रेसबीटीरियन सम्प्रदायका जन्मदाता तथा उसके मतका संस्थापक कैल्विन ही था। उसका जन्म संवत् १५६६ (सन् १५०९ ई०)में फ्रांस देशमें हुआ था। उस समय फ्रांस देशमें लूथरके मतका प्रचार हो रहा था, कैल्विनपर भी इसी मतका प्रभाव पड़ा। प्रथम फ्रैन्सिसने प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंको सताना आरम्भ किया। इस कारण वह देश छोड़कर भाग गया और कुछ समयपर्यन्त वासेलमें रहा।

यहाँपर उसने इंस्टिट्यूट आफ क्रिश्चियानीटी नामकी अपनी प्रथम पुस्तक प्रकाशित की। प्रोटेस्टेण्ट धर्म-पुस्तकोंमें इस किताबका बहुत महत्त्व है, क्योंकि जितना शास्त्रार्थ इसके विषयमें हुआ है उतना और किसीके विषयमें नहीं हुआ है। प्रोटेस्टेण्ट मतानुसार यह ईसाईधर्मकी प्रथम शास्त्रीय पुस्तक थी। यह भी पीटर लम्बार्डके 'सेन्टेन्सेज'की भाँति अध्ययन तथा शास्त्रार्थके लिए अच्छा संग्रह थी। इस पुस्तकमें धर्मसंस्था तथा पोपकी अप्रामाणिकता एवं बाइबिलकी पूर्ण निर्दोषता और प्रामाणिकता दिखलायी गयी है। कैल्विनका मस्तिष्क प्रतिभाशाली था और उसकी लेखनशैली अतीव प्रौढ़ थी। आजतक किसी भी तार्किक पुस्तकमें फ्रेंच भाषाका इतना अच्छा उपयोग नहीं हुआ था जितना कि कैल्विनकी पुस्तकके फ्रेंच अनुवादमें हुआ। संवत् १५९७ (सन् १५४० ई०)में कैल्विन जिनोवा नगरमें

निमन्त्रित किया गया और उस नगरके सुधारका भार उसको सौंपा गया। उस समयतक वह नगर संनायके ड्यूकके अधिकारसे स्वतन्त्र हो गया था। उसने एक नूतन शासनपद्धति बनायी जिसमें कैथलिक देशोंकी भाँति धर्मसंस्था और मुल्की शासनमें घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया। फ्रांस तथा स्काटलैण्डमें लूथरके नहीं, प्रत्युत कैल्विनके ही प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार हुआ।

आंग्ल देशमें मध्ययुगकी धर्मसंस्थाके प्रतिकूल आन्दोलन बहुत धीरे-धीरे हुआ। जिस समय लूथरने धर्मसंस्थाके नियमोंको जलाया था उसके थोड़े ही समय पश्चात् आंग्ल देशमें प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रवेश होने लगा, परन्तु इस मतकी प्रधानता संवत् १६१५ (सन् १५५८ ई०)में महारानी एलिजाबेथके शासन-कालमें ही हुई। इतिहाससे प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन राजा अष्टम हेनरीके क्रोधके कारण ही आरम्भ हुआ था। बात यह थी कि हेनरी एक युवा स्त्रीपर आसक्त था और उससे विवाह करना चाहता था। इस कारण उसने अपनी प्रथम पत्नीका त्याग करनेके लिए पोपसे आज्ञा माँगी, पर पोपने इसका अनुमोदन नहीं किया। यही हेनरीके क्रोधका कारण था। परन्तु यह बात सहसा विश्वासमें नहीं आती कि हेनरी ऐसे स्वेच्छाचारी राजाका प्रकोप भी धर्ममें इतना भारी परिवर्तन करानेमें समर्थ हो सकता था। आन्दोलनके पूर्वसे ही, जर्मनीकी भाँति यहाँ भी लोगोंके विचारोंमें परिवर्तन हो रहा था। विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें इटलीसे आये हुए नये साहित्यका लोगोंपर बहुत असर पड़ा। कोलेट तथा अन्य लोगोंने आक्सफर्डमें यूनानी साहित्यका प्रचार करना चाहा। लूथरके समान उसे भी महात्मा पालमें विशेष श्रद्धा थी। जर्मनीके लूथरका नाम सुननेके पूर्वसे ही उसने धार्मिक श्रद्धाद्वारा मुक्तिका उपदेश देना आरम्भ कर दिया था।

उस समयका सबसे प्रसिद्ध लेखक "टामस मूर" था। उसकी "यूटोपिया" नामकी पुस्तक संवत् १५७२ (सन् १५१५ ई०) में प्रकाशित हुई थी। यूटोपियाका अर्थ है 'कहीं नहीं'। आजकल यह शब्द लोकोन्नतिके अव्यवहार्य उपायोंका पर्यायवाची हो गया है। इस पुस्तकमें उसने किसी अज्ञात देशकी सुसम्पन्न दशाका वर्णन किया है। उसने दिखलाया है कि तत्कालीन आंग्ल देशमें जितनी बुराइयाँ दीख पड़ती थीं उन सबको यूटोपियाकी उत्तम शासन-व्यवस्थाने दूर कर दिया था। यूटोपियावासी केवल आक्रान्तियोंसे बचनेके लिए ही अथवा दुर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए ही युद्ध करते थे। वे अष्टम हेनरीके समान किसीके राज्यपर बलात् कब्जा करनेके लिए युद्ध नहीं करते थे। यूटोपियामें सब प्रकारके धार्मिक विचार समदृष्टिसे देखे जाते थे।

जब इराजमस संवत् १५५७ (सन १५०० ई०)में आंग्ल देशमें आया तो

वहाँके समाजसे उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँपर अधिकतर लोग उसे ऐसे मिले जो उसके विचारोंसे सहमत थे। मूरके साथ रहकर उसने "प्रेज आफ फाली" नामक पुस्तक समाप्त की थी। आंग्ल देशमें उसको अध्ययनमें इतनी सहायता मिली तथा इतने समविचार साथी मिले कि उसने उच्च शिक्षाके लिए इटली जाना व्यर्थ समझा। आंग्ल देशमें अवश्य ही ऐसे लोग रहे होंगे जो धर्माध्यक्षोंकी बुराइयोंसे परिचित थे और ऐसी किसी प्रथाको स्वीकार करनेके लिए उद्यत थे जिससे धर्म-सम्बन्धी कुरीतियाँ दूर हो जायँ।

अष्टम हेनरीके मन्त्री "वुल्सी" नामक धर्माध्यक्षने राजाको महाद्वीपके युद्धमें भाग लेनेसे अनेक बार रोका था। वुल्सीका कथन था कि आंग्ल देशकी विशेष उन्नति युद्धसे नहीं, बल्कि शान्तिसे होगी। शान्तिका मुख्य उपाय उसे यह दीख पड़ता था कि सभी राष्ट्रोंकी शक्ति बराबर बनी रहे, क्योंकि इससे कोई भी शासक अपनी शक्तिको अधिक बढ़ाकर औरोंके लिए भयावह नहीं बन सकता। इसलिए जब फ्रैंसिसने चार्ल्सपर विजय पायी तो उसने चार्ल्सका पक्ष ग्रहण किया और पीछेसे जब चार्ल्सने संवत् १५८२ (सन १५२५ ई०)में पेवियाके युद्धस्थलमें फ्रैंसिसको परास्त किया तो उसने फ्रैंसिसका पक्ष ग्रहण किया। पश्चात् यूरोपवालोंने अपनी नीति स्थिर करनेमें इस शक्ति-तुलाको बड़ी प्रधानता दी, परन्तु वुल्सी इसका प्रयोग अधिक कालपर्यन्त नहीं कर सका। अष्टम हेनरीके पत्नी-त्यागकी प्रसिद्ध घटना तथा आंग्ल देशमें प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रचार और वुल्सीके पतनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है।

हेनरीका विवाह पञ्चम चार्ल्सकी बुआ अरागानकी कैथराइनसे हुआ था। उसकी मेरी नामकी एक ही पुत्री जीवित बची थी। हेनरी चाहता था कि मुझे एक पुत्र हो जाय जो मेरे बाद सिंहासनपर बैठे। उसका जो भी कैथराइनसे मर गया था। उसने उसे पृथक् करनेका एक बहाना ढूँढ निकाला। पहिले कैथराइनका विवाह हेनरीके बड़े भाईसे हुआ था। इसके मरनेपर उसने हेनरीसे विवाह किया। उस समय धार्मिक विचारोंके अनुसार मृत भाईकी पत्नीसे विवाह करना नियमविरुद्ध था। हेनरीने प्रकट किया कि कैथराइनको अपनी पत्नी बनानेमें मुझे पाप लगेगा। उसने कहना शुरू किया कि यह विवाह न्यायविरुद्ध था। इसलिए उसने से तलाक देना चाहा। उसी समय उसका एनबोलीन नामकी एक सुन्दर युवतीसे प्रेम हो गया। इस कारण कैथराइनके त्यागकी इसे और भी अधिक चिन्ता बढ़ गयी।

पर अभाग्यवश नियमविरुद्ध होनेपर भी पहलेके पोपने कैथराइनके विवाहको जायज ठहराया था। राजाने पोप सप्तम यलेमेण्टसे इस सम्बन्धको तोड़ देनेके लिए अनुरोध किया, परन्तु पोप राजी न हुआ, क्योंकि एक तो कैथराइनके भांजे चार्ल्स-को नाराज करना पड़ता, दूसरे अपने पूर्ववर्ती पोपकी आज्ञाको रद्द करना पड़ता।

हेनरी चाहता था कि वुल्सी पोपको समझा-बुझाकर राजी कर ले, पर वुल्सी ऐसा न कर सका। इससे असन्तुष्ट होकर हेनरीने उसको निकाल दिया और उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हरण कर ली। राजकीय भोगविलाससे वह घोर दरिद्रताके गर्तमें आ गिरा। उसके किसी अविवेकपूर्ण कार्यने उसके शत्रुओंको मौका दिया। उसपर राज-द्रोहका दोष लगाया गया और वह बन्दी कर लिया गया, पर दैवात् वह शिरच्छेदनार्थ लन्दन पहुँचने के पूर्व ही मर गया।

इसके पश्चात् हेनरीने आंग्ल देशके समस्त पादरियोंपर यह मिथ्या दोषारोपण किया कि बतौर पोपके दूतके वुल्सीका आधिपत्य मानकर उन लोगोंने उस प्राचीन प्रथाका उल्लङ्घन किया जिसके अनुसार पोपका कोई भी प्रतिनिधि राजाकी आज्ञा बिना आंग्ल देशमें नहीं आ सकता था। पर वुल्सीके प्रतिनिधित्वका अनुमोदन स्वयं हेनरीने ही किया था। पादरी लोग कैंटरबरीमें एकत्र हुए और बहुत-सा धन देकर क्षमाके प्रार्थी हुए, परन्तु हेनरीने कहा कि "यदि तुम लोग हमें आंग्ल देश-की धर्मसंस्थाका प्रधान मान लो तो क्षमा मिल सकती है।" उन लोगोंने इसे स्वीकार किया * और साथ ही साथ यह भी स्वीकार किया कि "राजाकी आज्ञा बिना न तो हम लोग कोई सभा करेंगे, न कोई नया नियम बनावेंगे।" पादरियोंके इस प्रकार दब जानेसे हेनरीको निश्चय हो गया कि पत्नी-परित्यागके मामलेमें अब ये लोग किसी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं मचा सकेंगे।

अब उसने पार्लमेण्टको उभाड़ा कि वह पोपको नये बिशपोंकी नियुक्तिपर जो द्रव्य मिलता था उसको बन्द कर देनेकी धमकी दें। राजाको आशा थी कि इस प्रकार सप्तम क्लेमेण्ट वशीभूत होगा, पर उसे सफलता न हुई। अधीरताके कारण परित्यागकी अनुमतिका इन्तजार न कर उसने गुप्तरूपसे एनबोलीनसे विवाह कर लिया। तत्पश्चात् पार्लमेण्टने यह नियम बनाया कि प्रत्येक अभियोगका अन्तिम विचार राष्ट्रमें ही किया जाय। यदि राज्यके बाहर विचार हो तो वह असंगत समझा जाय। इसी भाँति पोपके यहाँ पुनर्विचारकी कैथराइनकी प्रार्थना सर्वथा असंगत समझी गयी। इसके थोड़े ही दिन बाद हेनरीने पादरियोंकी एक सभा की। उस सभाने कैथराइनके विवाहको नियम-विरुद्ध ठहराया। नये नियमके अनुसार अब कैथ-राइनके लिए अपने उद्धारका कोई भी उपाय नहीं था। पार्लमेण्टने भी कैथराइनके साथ हेनरीका विवाह असंगत तथा एनके साथ संगत ठहराया। इसका परिणाम यह

---

* वस्तुतः पादरियोंने पोपकी धर्माध्यक्षताका खण्डन नहीं किया। उन्होंने केवल यह स्वीकार किया कि जहाँतक ईसाकी आज्ञाओंके अनुकूल होगा, राजा धर्मका अध्यक्ष होगा।

हुआ कि हेनरीकी मृत्युके पश्चात् आंग्ल देशका राज्य कैथराइनकी पुत्री मेरीको न मिलकर एनकी पुत्री एलिज़ाबेथको मिला।

संवत् १५९१ (सन् १५३४ ई०)में पार्लमेण्टने पोपके प्रतिकूल इंग्लैण्डके धार्मिक आन्दोलनको यों समाप्त किया। उसने राजाको समस्त पादरी नियुक्त करनेका तथा उस रकमके भोग करनेका अधिकार दे दिया जो पूर्वमें रोम भेजी जाती थी। उसने यह भी निर्धारित किया कि राजा ही आंग्ल देशका प्रधान धर्माध्यक्ष है। उसने प्रधानाध्यक्षके समस्त अधिकारोंके उपभोगका अधिकार राजाको दे दिया। दो वर्ष पश्चात् राज्यके सभी कर्मचारियोंको चाहे वे सामान्य जन हों अथवा पादरी हों, यह शपथ लेनी पड़ी कि हम लोग रोमके बिशपका आधिपत्य नहीं स्वीकार करेंगे। इस शपथको लेनेसे मुँह मोड़ना राजाके प्रति विश्वासघात समझा जाता था। कितनोंने तो पोपके आधिपत्यको केवल राजा तथा पार्लमेण्टकी निन्दाके भयसे ही नहीं स्वीकार किया। इस नियमके अनुसार राजद्रोहका दोषारोपण कर लोगोंपर अभियोग चलाया जाता था। धर्मके नामपर जो अभियोग चलाया जाता था उससे यह कहीं भीषण था।

इस बातको जान लेना आवश्यक है कि हेनरी लूथरके मतका प्रोटेस्टेण्ट नहीं था। उसने आंग्ल देशकी तथा रोमकी धर्मसंस्थामें विच्छेद केवल इस कारण डाला कि क्लेमेण्टने उसे पत्नी-परित्यागकी अनुमति देना स्वीकार नहीं किया और इसी कारण उसने वहाँके पादरी तथा पार्लमेण्टको अपना प्रधानत्व स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया। पूर्व समयमें जब कभी रोमसे कलह हुआ था उस समय भी आंग्ल देशका कोई राजा इतना कार्य नहीं कर सका था। आगे विदित होगा कि वह इन सब मठोंको दुश्चरित्र तथा अयोग्य कहकर उनकी सम्पत्ति भी हरनेको प्रस्तुत था। इतना होते हुए भी हेनरीने लूथर, ज़्विंगली आदि किसी भी प्रोटेस्टेण्ट नेताके मतको स्वीकार नहीं किया। सामान्य जनताकी तरह उसे इन मतोंमें विश्वास नहीं था। वह प्राचीन मतको ही लोगोंको समझाकर उसके दोषोंको दूर करना चाहता था। राजाकी ओरसे घोषणा की गयी और उसमें बपतिस्मा, तप तथा मास या पवित्र भोजकी धार्मिक प्रथाओंका वर्णन किया गया। हेनरीने बाइबिलका आंग्लभाषामें नया अनुवाद करवाया। यह संवत् १५९६ (सन् १५३९ ई०)में प्रकाशित किया गया और इसकी एक-एक प्रति मुहल्लेके प्रत्येक गिरजाघरमें रखी गयी ताकि इसको सभी लोग उसे पढ़ सकें।

मठोंकी सम्पत्ति तथा कुमाधिकोंके रत्नोंको जब्त करनेके बाद हेनरी संसारको यह दिखलाना चाहता था कि मैं कट्टर धर्मावलम्बी हूँ। किसीने ज़िंगलीके इस मतका अनुमोदन किया कि उस धार्मिक संस्कारके समय प्रभु ईसामसीहकी आत्मा अथवा शरीर उपस्थित नहीं रहता। उसपर अभियोग चलाया गया और स्वयं हेनरी उसका

मुखिया बना। हेनरीने उसके प्रतिरोधमें बाइबिलका उदाहरण दिया और उसपर नास्तिकताका दोष लगाकर उसे जलवा दिया।

संवत् १५९६ (सन् १५३९ ई०) में पार्लमेण्टने "छः धाराओंका कानून" बनाया। कहा गया था कि पवित्र भोजकी रोटी तथा मद्यमें प्रभु ईसाइमसीहकी आत्मा तथा रक्त रहता है। जो मनुष्य इसका प्रतिरोध करेगा वह जिन्दा जला दिया जायगा। धर्मकी पाँच रस्मोंके सम्बन्धमें यह कहा गया था कि जो लोग पहले-पहल इनका उल्लङ्घन करेंगे उन्हें कारावासका दण्ड दिया जायगा तथा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी और जो उसे दोहरावेंगे वे प्राण-दण्डसे दण्डित किये जायेंगे। अनुसरणमें दो विशप (धर्माध्यक्ष) हेनरीसे भी आगे बढ़ गये थे। उसीका परिणाम यह हुआ कि वे पदच्युत कर दिये गये। कुछ और अपराधियोंको भी इस नये नियम-के अनुसार प्राण-दण्ड दिया गया था।

हेनरी निर्दयी तथा दुराचारी था। उसने निर्दयताके साथ अपने पुराने सच्चे मित्र तथा मन्त्री टामस मूरका शिरश्छेदन करवा डाला, क्योंकि उसने कैथराइनके विवाहको असंगत बतलानेसे इन्कार किया था। उसने अनेकों महन्तोंकी हत्या करवा डाली, क्योंकि उन लोगोंने भी मूरकी भाँति उसके प्रथम विवाहको नियमविरुद्ध तथा उसके आधिपत्यको उचित बतलानेसे इन्कार किया था। कितनोंको उसने गन्दे बन्दीगृहोंमें डालकर भूखों मार डाला। अनेक अंग्रेजोंके विचार उस यती-के विचारोंसे मिलते थे जिसने कहा था कि "मैं किसी विद्रोह तथा बुराईके कारण नहीं, परमेश्वरके भयसे राजाकी अवज्ञा करता हूँ। मुझे भय है कि ईश्वर कहीं इससे क्रोधित न हो जाय, क्योंकि धर्मसंस्थाकी नियोजना राजा तथा पार्लमेण्टकी नियोजनासे भिन्न है।"

हेनरीको धनकी भी आवश्यकता थी। कितने ही मठ प्रचुर धन सम्पन्न थे और मठवाले अपने विरुद्ध लाये गये अभियोगोंसे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे। राजा-ने मठोंकी धार्मिक अवस्थाकी जाँच करनेके लिए निरीक्षक भेजे। अनेक प्रकारकी अपवादजनित बातें अनायास ही उपस्थिति की गयीं, उनमेंसे बहुतसी सच भी थीं। इसमें सन्देह नहीं कि महन्त लोग आलसी तथा दुष्ट होते थे। इतना होनेपर भी ी कृषकोंपर दयालु, विदेशियोंके लिए सत्कारशील तथा दरिद्रोंके उपकारी होते थे। ोटे-छोटे मठोंकी सम्पत्ति जब्त करनेके बाद बलवा हो गया, क्योंकि बड़े-बड़े रजाघरोंके अधीशोंको भी यह सन्देह हुआ कि अबकी हमारी ही बारी गी। जिन मठाधीशोंने इसमें भाग लिया था वे लोग मार डाले गये और उनकी पत्ति जब्त कर ली गयी। भयके मारे अन्य लोगोंने भी स्वीकार किया कि लोग दुराचारी हैं और उन्होंने अपने-अपने मठ राजाको अर्पित कर दिये।

राजाके प्रतिनिधियोंने उनपर अधिकार जमा उनकी समस्त सामग्री बेच डाली। उक्त धर्मसंस्थाओंकी अद्भुत और चित्ताकर्षक अवशिष्ट वस्तुएँ आंग्ल देशके दर्शकोंके लिए अब भी विशेष दर्शनीय हैं। मठकी भूमिको राजाने ले लिया और यां तो वह सरकारके लाभके लिए बेच दी गयी अथवा उन कुलीन वंशजोंको दे दी गयी जिनकी सहायताकी राजाको आवश्यकता थी।

इन मठोंके नाशके साथ ही साथ धर्ममन्दिरोंकी उन मूर्तियोंपर भी हाथ लगाया गया जो रत्नजटित थीं। कैंटरबरीके महात्मा टामसकी मूर्ति तोड़ डाली गयी और उस महात्माकी हड्डियाँ जला दी गयीं। वेल्समें एक काठकी मूर्तिकी पूजा होती थी। उसका उपयोग एक साधुके जलानेमें किया गया, क्योंकि उसने कहा था कि धार्मिक विषयमें राजाकी आज्ञा न मानकर पोपकी आज्ञा ही मानी जानी चाहिये। जर्मनी, स्विट्जर्लैण्ड तथा नेदरलैण्डके प्रोटेस्टेण्टोंने मूर्तियोंपर जो आक्रमण किये थे उनसे ये आक्रमण बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। राजा तथा उसके दलकी इच्छा केवल धन इकट्ठा करनेकी थी, पर लोगोंको दिखलानेके लिए कहा जाता था कि इनमें भग्नावशिष्ट वस्तुओं तथा मूर्तिपूजाका अन्धविश्वास प्रविष्ट हो गया है।

एनबोलीनके साथ विवाह करनेसे ही हेनरीको शान्ति नहीं मिली। तीन वर्ष पश्चात् उसे उससे भी घृणा उत्पन्न हो गयी। उसने घृणित दोष लगाकर उसे मरवा डाला। दूसरे ही दिन उसने जेसमूरसे विवाह किया। उसीका पुत्र षष्ठ एडवर्ड उसका उत्तराधिकारी हुआ। पुत्रोत्पत्तिके तीन दिन पश्चात् जेनका देहान्त हुआ। हेनरीने और तीन विवाह किये, पर इतिहासमें इनसे कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि उन तीनोंमेंसे किसीके भी संतान नहीं थी जो राज्यकी अधिकारिणी होती। हेनरी चाहता था कि मैं अपनी तीनों संतानोंका हक प्रतिनिधि सभा (पार्लमेण्ट) द्वारा निश्चित करा दूं। उसकी मृत्यु संवत् १६०४ (सन् १५४७ ई०)में हुई। प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक मतके झगड़ेका निबटारा उसके लड़के तथा लड़कियोंके हाथ पड़ा।

जिस समय आंग्ल देशमें प्राचीन धर्मसंस्थाके प्रतिकूल आन्दोलन चल रहा था उस समय अधिकतर लोग कैथलिक धर्मको ही मानते थे, पर हेनरीके राज्यमें ऐसे प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायवालोंकी संख्या बढ़ रही थी जो इस परिवर्तनसे सहमत थे। एडवर्डके ६ वर्षके शासनकालमें अधिकारिवर्ग प्रोटेस्टेण्ट धर्मका पक्षपाती था। यहाँतक हो चला था ये लोग बाहरसे प्रोटेस्टेण्ट उपदेशक बुलाकर लोगोंका मत-परिवर्तन करनेका प्रयत्न करते थे।

तमाम प्राचीन मूर्तियोंको तोड़नेकी आज्ञा दी गयी। यहाँतक कि गिरजोंकी सुशोभित खिड़कियोंके रंगीन काँच भी तोड़ दिये गये, क्योंकि बहुधा उनमें भी मूर्तियों

बनी रहती थीं। चुनावकी प्राचीन प्रथाको तोड़कर अब यह निश्चिय हुआ कि राजा स्वयं बिशपकी नियुक्ति करे। अब धर्मसंस्थाके उच्च पदपर अधिकतर प्रोटेस्टेण्ट मतवाले नियुक्त होने लगे। पार्लमेण्टने वह धन राजाको दे दिया जो मृतकोंकी शान्तिके लिए प्रार्थना करनेके निमित्त संगृहीत था। पादरियोंको विवाह करनेकी स्वतन्त्रता भी दे दी गयी।

पार्लमेण्टके अनुकूल प्रोत्साहनसे एक धर्मपुस्तक बनायी गयी जो आधुनिक आंग्ल देशकी धर्मपुस्तकके ही सदृश थी। इसके अतिरिक्त सरकारकी ओरसे धर्मके बयालीस निबन्ध बनाये गये जो कि समस्त देशके धर्मके निष्कर्ष थे। महारानी एलिजाबेथके राज्यमें इनका पुनः संशोधन हुआ और ये उनचालीस निबन्धोंमें परिणत किये गये। आंग्ल देशकी वर्तमान धर्मसंस्थामें ये ही निबन्ध अबतक प्रचलित हैं।

इन परिवर्तनोंसे आंग्ल देशके अधिक निवासियोंको दुःख हुआ होगा, क्योंकि प्राचीन धर्मसंस्थाकी अनेक पूजाओं तथा उत्सवोंके कार्योंको वे लोग भय तथा आकाङ्क्षाकी दृष्टिसे देखते थे। जिन लोगोंने वास्तविक रूपसे एडवर्डके राज्यकालमें प्रोटेस्टेण्ट धर्मके नामपर शासन-प्रबन्ध करनेवालोंकी बद-इन्तजामीको देखा उन्हें प्रतीत हुआ होगा कि ये लोग धर्मकी आड़में सुधारक बनकर धर्मसंस्थाओंको अपनी ही भलाईके लिए लूट रहे थे। उस समयके धार्मिक अधःपातका पता इसीसे चलता है कि एडवर्डको बाध्य होकर धर्मसंस्थामें युद्ध तथा गोली चलाना बन्द करना पड़ा था। उसने यह भी आज्ञापत्र निकाला था कि कोई भी मनुष्य गिरजोंके भीतरसे घोड़ा या खच्चर न ले जाय और उन्हें इस कार्य द्वारा अस्तबल या मामूली सराय न बना डाले। यद्यपि इस समय अनेक मनुष्य ऐसे थे जो नये परिवर्तनोंके पक्षमें थे, तो भी एडवर्डकी मृत्युके साथ ही पुनः प्राचीन मतका जोर होने लगा।

षष्ठ एडवर्डके पश्चात् संवत् १६१० (सन् १५५३ ई०) में उसकी सौतेली बहिन मेरी रानी बनी। उसने अपने राज्यमें पुनः प्राचीन धर्मका प्रचार करना चाहा और उसमें उसे उचित सफलता प्राप्त होना असम्भव भी न था, क्योंकि उसके देश-निवासी विशेषतः रोमन कैथलिक ही थे। जो लोग रोमन कैथलिक नहीं थे वे भी एडवर्डके मन्त्रियोंकी नीतिके विरोधी थे।

मेरीने चार्ल्सके पुत्र द्वितीय फिलिपसे विवाह किया। चार्ल्स कट्टर कैथलिक था, इस कारण मेरीके कार्यमें और सुगमता हो गयी। फिलिपने अपने राजत्वकालमें प्रचलित धर्मके विरोधको मिटानेके लिए बड़ी निर्दयताके साथ व्यवहार किया, पर आंग्ल देशमें उसका कुछ भी वश न चला। मेरीसे विवाह करनेपर उसने राजाकी

उपाधि तो अवश्य ग्रहण कर ली, पर आंग्ल देशवालोंने सर्वदा इस बातका ध्यान रखा कि न तो वह यहाँके शासन-प्रबन्धमें ही दखल दे सके और न मेरीके मरने-पर राज्यका अधिकारी ही बन सके।

मेरीने अपने प्रयत्नसे आंग्ल देश तथा रोमन कैथलिक मतमें क्षणिक मेल करा दिया। संवत् १६११ (सन् १५५४) में पोपके प्रतिनिधिने कैथलिक धर्मसंस्थाको पार्लमेण्टका अधिकार समर्पित कर दिया और इसमें सन्देह नहीं कि कमसे कम नामके लिए तो पार्लमेण्ट ही राष्ट्रकी प्रतिनिधि थी। मेरीके राज्यके अन्तिम चार वर्षोंमें बहुत भयानक धार्मिक अनाचार हुए। रोमन धर्मसंस्थाके उपदेशकी अवज्ञा करनेके अपराधमें दो सौ सतहत्तर मनुष्य मारे गये। उनमेंसे अधिकतर साधारण कारीगर तथा किसान थे। इनमें दो बड़े विख्यात थे जिनका नाम लेटिमर तथा रिडले था। ये दोनों आक्सफोर्डमें जलाये गये थे। जलते-जलते लेटिमरने चिल्लाकर अपने धार्मिक साथीसे पुकारकर कहा—"प्रसन्नचित्त होकर अपना कार्य कीजिये, आज हम लोग आंग्ल देशमें उस अग्निको प्रज्वलित करते हैं जो कभी भी न बुझेगी।"

मेरीको आशा थी कि इतने लोगोंकी हत्या करनेसे प्रोटेस्टेण्ट लोग भयभीत हो जायँगे और नूतन मतका प्रचार रुक जायगा। पर उसकी आशा निष्फल हुई और लेटिमरकी भविष्यवाणी सार्थक हुई। कैथलिक धर्मकी उन्नति नहीं हुई, बल्कि जिन लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट मतके सम्बन्धमें अभीतक कुछ सन्देह बना हुआ था उनके हृदयमें भी इन लोगोंकी दृढ़ता देखकर नूतन धर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

अध्याय २८

कैथलिक मतका सुधार—द्वितीय फिलिप

पूर्वमें लिखा जा चुका है कि लूथरके पहले भी धर्मसंस्थाकी स्थिति तथा उपदेश-में किसी भाँतिका परिवर्तन किये बिना ही उद्धारका प्रयत्न किया गया था। पोपसे प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके सम्बन्ध-विच्छेदके पहले ही इस प्रकारके अन्यमनस्क सुधारसे आशापूर्ण उन्नति की जा चुकी थी। प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके विद्रोहसे उस प्राचीन धर्म-संस्थाका सुधार और भी द्रुतगतिसे हुआ जिसके अनुयायी पश्चिमीय यूरोपके अधिक-तर लोग अबतक बने हुए थे। रोमन कैथलिक धर्मसंस्थावाले भी सचेत हो गये, क्योंकि उन्हें प्रतीत हो गया कि अब हमपर सर्वसाधारणका विश्वास नहीं रह गया। उन लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके आक्रमणसे अपने सिद्धान्तों तथा रीतियोंकी रक्षाका प्रयत्न किया, क्योंकि सम्पूर्ण देश उन्हींका सहगामी हो रहा था। उन्होंने देख लिया कि हम लोग धर्म-विरोधियोंसे अपने पद और अपनी शक्तिकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उचित है कि सर्वसाधारणको अपनी तथा धर्मसंस्थाकी ओर खींचें और यह तभी सम्भव है जब हम लोग प्राचीन बुराइयोंको छोड़ पवित्र जीवन बिताने-का प्रयत्न कर उन लोगोंके विश्वासभाजन बनें जिनके धार्मिक उद्धारका कार्य हमारे सुपुर्द किया गया है।

तदनुसार ट्रेन्टमें एक सार्वजनिक सभा की गयी। इस सभाका उद्देश्य चिरागत बुराइयोंको दूर करना तथा जिन प्रश्नोंके सम्बन्धमें धार्मिक लोगोंमें मतभेद था उनका निर्णय करना था। नये-नये धार्मिक दलोंकी उत्पत्ति हुई जिनका काम पुरो-हितोंको सुधारना तथा लोगोंको धर्मका तत्त्व समझाना था। जिन नगरोंमें उस समय-पर्यन्त रोमन कैथलिक धर्मका प्रचार था उन नगरोंमें प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार तथा उसके सिद्धान्तोंको प्रकट करनेवाली किताबों और निबन्धोंका प्रकाशित होना रोकने-का कड़ा प्रयत्न किया गया। इसके अतिरिक्त पोपके पदसे लेकर साधारण पदपर्यन्त अधिक योग्य मनुष्य नियत किये गये। जैसे कार्डिनल (धर्माध्यक्ष) पदपर अब ह्यूमनिस्ट तथा दरबारी लोग ही न नियत किये जाकर इटलीके बड़े-बड़े धार्मिक नेता भी नियत किये जाते थे। कितनी ही प्रथाएँ जो लोगोंको रुचिकर न थीं, उठा दी गयीं। इन कार्यवाहियोंसे प्राचीन धर्मसंस्थामें वे सुधार हो गये जिनके लिए कान्स्टेन्सकी सभाने व्यर्थ प्रयत्न किया था। इन दोनों मतावलम्बी दलोंके नेदरलैण्ड

उपाधि तो अवश्य ग्रहण कर ली, पर आंग्ल देशवालोंने सर्वदा इस बातका ध्यान रखा कि न तो वह यहाँके शासन-प्रबन्धमें ही दखल दे सके और न मेरीके मरने-पर राज्यका अधिकारी ही बन सके।

मेरीने अपने प्रयत्नसे आंग्ल देश तथा रोमन कैथलिक मतमें क्षणिक मेल करा दिया। संवत् १६११ (सन् १५५४) में पोपके प्रतिनिधिने कैथलिक धर्मसंस्थाको पार्लमेण्टका अधिकार समर्पित कर दिया और इसमें सन्देह नहीं कि कमसे कम नामके लिए तो पार्लमेण्ट ही राष्ट्रकी प्रतिनिधि थी। मेरीके राज्यके अन्तिम चार वर्षोंमें बहुत भयानक धार्मिक अनाचार हुए। रोमन धर्मसंस्थाके उपदेशकी अवज्ञा करनेके अपराधमें दो सौ सतहत्तर मनुष्य मारे गये। उनमेंसे अधिकतर साधारण कारीगर तथा किसान थे। इनमें दो बड़े विख्यात थे जिनका नाम लेटिमर तथा रिडले था। ये दोनों आक्सफोर्डमें जलाये गये थे। जलते-जलते लेटिमरने चिल्लाकर अपने धार्मिक साथीसे पुकारकर कहा—"प्रसन्नचित्त होकर अपना कार्य कीजिये, आज हम लोग आंग्ल देशमें उस अग्निको प्रज्वलित करते हैं जो कभी भी न बुझेगी।"

मेरीको आशा थी कि इतने लोगोंकी हत्या करनेसे प्रोटेस्टेण्ट लोग भयभीत हो जायँगे और नूतन मतका प्रचार रुक जायगा। पर उसकी आशा निष्फल हुई और लेटिमरकी भविष्यवाणी सार्थक हुई। कैथलिक धर्मकी उन्नति नहीं हुई, बल्कि जिन लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट मतके सम्बन्धमें अभीतक कुछ सन्देह बना हुआ था उनके हृदयमें भी इन लोगोंकी दृढ़ता देखकर नूतन धर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

अध्याय २८

कैथलिक मतका सुधार—द्वितीय फिलिप

पूर्वमें लिखा जा चुका है कि लूथरके पहले भी धर्मसंस्थाकी स्थिति तथा उपदेश-में किसी भाँतिका परिवर्तन किये बिना ही उद्धारका प्रयत्न किया गया था। पोपसे प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके सम्बन्ध-विच्छेदके पहले ही इस प्रकारके अन्यमनस्क सुधारसे आशापूर्ण उन्नति की जा चुकी थी। प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके विद्रोहसे उस प्राचीन धर्म-संस्थाका सुधार और भी द्रुतगतिसे हुआ जिसके अनुयायी पश्चिमीय यूरोपके अधिक-तर लोग अबतक बने हुए थे। रोमन कैथलिक धर्मसंस्थावाले भी सचेत हो गये, क्योंकि उन्हें प्रतीत हो गया कि अब हमपर सर्वसाधारणका विश्वास नहीं रह गया। उन लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके आक्रमणसे अपने सिद्धान्तों तथा रीतियोंकी रक्षाका प्रयत्न किया, क्योंकि सम्पूर्ण देश उन्हीका सहगामी हो रहा था। उन्होंने देख लिया कि हम लोग धर्म-विरोधियोंसे अपने पद और अपनी शक्तिकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उचित है कि सर्वसाधारणको अपनी तथा धर्मसंस्थाकी ओर खींचें और यह तभी सम्भव है जब हम लोग प्राचीन बुराइयोंको छोड़ पवित्र जीवन बिताने-का प्रयत्न कर उन लोगोंके विश्वासभाजन बनें जिनके धार्मिक उद्धारका कार्य हमारे सुपुर्द किया गया है।

तदनुसार ट्रेंस्टमें एक सार्वजनिक सभा की गयी। इस सभाका उद्देश्य चिरागत बुराइयोंको दूर करना तथा जिन प्रश्नोंके सम्बन्धमें धार्मिक लोगोंमें मतभेद था उनका निर्णय करना था। नये-नये धार्मिक दलोंकी उत्पत्ति हुई जिनका काम पुरो-हितोंको सुधारना तथा लोगोंको धर्मका तत्व समझाना था। जिन नगरोंमें उस समय-पर्यन्त रोमन कैथलिक धर्मका प्रचार था उन नगरोंमें प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार तथा उसके सिद्धान्तोंको प्रकट करनेवाली किताबों और निबन्धोंका प्रकाशित होना रोकने-का कड़ा प्रयत्न किया गया। इसके अतिरिक्त पोपके पदसे लेकर साधारण पदपर्यन्त अधिक योग्य मनुष्य नियत किये गये। जैसे कार्डिनल (धर्माध्यक्ष) पदपर अब ह्यूमनिस्ट तथा दरबारी लोग ही न नियत किये जाकर इटलीके बड़े-बड़े धार्मिक नेता भी नियत किये जाते थे। कितनी ही प्रथाएँ जो लोगोंको रुचिकर न थीं, उठा दी गयीं। इन कार्यवाहियोंसे प्राचीन धर्मसंस्थामें वे सुधार हो गये जिनके लिए कान्स्टेन्सकी सभाने व्यर्थ प्रयत्न किया था। इन दोनों मतावलम्बी दलोंके नेदरलैण्ड

तथा फ्रांसके युद्धोंका वर्णन करनेके पूर्व यहाँ हम ट्रेण्टकी सभाका तथा जेसुइट नामक नये सम्प्रदायके आविर्भावका कुछ वृत्तान्त देना चाहते हैं।

पञ्चम चार्ल्स प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक धर्मावलम्बियोंके कठिन मतभेदको भली भाँति न समझकर दोनोंको मिला देनेके लिए व्यर्थ परिश्रम करता रहा। इसी विश्वासपर उसने प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंको वह मत ग्रहण करनेकी आज्ञा दी जिसे वह ईसाई धर्मका सामान्य तत्त्व समझता था। उसे पूरा विश्वास था कि यदि नये तथा प्राचीन दोनों मतोंके प्रतिनिधि धर्मसभामें एकत्र हो सकें तो वे तुरन्त ही अपने विरोधको भूल जायँ और सम्पूर्ण मामला आपसमें ही तय हो जाय। पोप जर्मनीमें सभा करनेका विरोधी था। जर्मनीके प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी या तो आते ही नहीं और यदि आते भी तो वे उस सभाके निर्णयको कार्यमें परिणित नहीं करते, क्योंकि वे समझते थे कि इसकी कार्यवाही पोपके आधिपत्यमें हुई है। कई वर्षोंके विलम्बपर, लूथरकी मृत्युके ठीक पहले, संवत् १६०२ (सन् १५४५ ई०)में जर्मनी तथा इटलीकी सीमाके बीचमें ट्रेण्ट नामक नगरमें सर्वसाधारणकी एक सभा की गयी।

जर्मनीके प्रोटेस्टेण्ट उस समय सम्राट्के साथ होनेवाले आगामी युद्धकी तैयारीमें संलग्न थे और इस सभासे उन्हें विशेष लाभकी आशा भी नहीं थी, इस कारण वे लोग उस सभामें उपस्थित ही नहीं हुए। अतः सभामें पोपके प्रतिनिधि तथा कैथलिक पादरियोंकी प्रधानता रही। सभाने एकदमसे उसी प्रश्नका विचार आरम्भ किया जिसमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका प्राचीन धर्मके साथ सबसे अधिक मत-भेद था। बैठकके आरम्भकालमें उन लोगोंने घोषणा करा दी कि जो लोग यह उपदेश देते हैं कि केवल धार्मिक श्रद्धासे पापीकी मुक्ति हो सकती है और जो इस प्रथामें विश्वास नहीं करते कि परमेश्वरकी सहायतासे मनुष्य सत्कार्यों द्वारा लोगोंकी मुक्ति करा सकता है, वे लोग नर्कगामी समझे जायँगे। और यदि कोई कहेगा कि धार्मिक संस्कारोंकी उत्पत्ति ईसामसीहसे नहीं है, अथवा ये संस्कार सातसे अधिक या कम हैं, जैसे बपतिस्मा, अनुमोदन, भोग, तपस्या, अन्त्यलेपन, नियोग तथा विवाह—अथवा इनमें कोई भी संस्कार नहीं है, तो वह भी नर्कगामी है। बाइबिलका प्राचीन लैटिन अनुवाद ही सर्वमान्य समझा गया। यह भी निश्चय हुआ कि किसी धर्म सिद्धान्तके विवादमें इस अनुवादकी सत्यताके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये और धर्मसभामें प्रामाणिक बाइबिलके अनुवादके अतिरिक्त और किसी अनुवादके प्रचारकी भी अनुमति नहीं देनी चाहिये।

इस प्रकार प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने सुधारका जो आधार बनाया उसको इस सभाने रद्द कर दिया, पर इसने प्रोटेस्टेण्ट मतवालों द्वारा की गयी शिकायतोंको दूर करनेका प्रयत्न अवश्य किया। किन्तु जो [illegible] प्रसिद्ध [illegible] रहे-

की कड़ी आज्ञा दी गयी। उनको इस बातका भी आदेश दिया गया कि वे लोग ठीक-ठीक उपदेश दें और इस बातका भी ध्यान रखें कि जो लोग धर्मशिक्षकके पदपर नियुक्त किये जाते हैं वे अपने कामको योग्यतासे करें, केवल इसकी आमदनीका ही उपभोग न करें। शिक्षाकी उन्नतिका तथा गिरजों, मठों और पाठशालाओंमें बाइबिलके पढ़ानेका प्रयत्न भी किया गया।

सभाके अधिवेशनका एक वर्ष समाप्त हो जानेके बाद अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए। कई वर्षोंतक तो कोई भी कार्य नहीं हुआ, पर संवत् १६१९ (सन् १५६२ ई० में सभासद लोग नये उत्साहसे कार्य करनेकी इच्छासे पुनः एकत्र हुए। रोमन कैथलिक सम्प्रदायके सिद्धान्तके विषयमें अब भी जो सन्देह रह गया था वह भी दूर कर दिया गया और धर्मविरोधियोंकी शिक्षाका तिरस्कार किया गया। वर्तमान बुराइयोंके सम्बन्धमें जो आज्ञापत्र निकले थे उनका भी समर्थन किया गया। ट्रेण्टकी सभाने जो नियम बनाये तथा मन्तव्य प्रकाशित किये उनकी एक पूरी पुस्तक बन गयी। उसने रोमन कैथलिक धर्मसंस्थाके नियम तथा पद्धतिके लिए नवीन तथा दृढ़ आधार बना दिया। इतिहासकी दृष्टिसे वे मन्तव्य विशेष उपयोगी थे। उन्हें हम रोमन कैथलिक-धर्मसंस्थाके मतका सच्चा और पूरा वर्णन कह सकते हैं, पर वास्तवमें देखा जाय तो उनके द्वारा केवल वे ही प्राचीन सिद्धान्त दुहराये गये थे जो चिरकालसे प्रचलित थे तथा जिनका वर्णन पन्द्रहवें परिच्छेदमें हो चुका है।

सभाकी बैठकके अन्तिम दिनोंमें जिन लोगोंने पोपके अधिकारमें किसी प्रकारकी न्यूनता की जानेका प्रतिरोध किया था उनमें एक मनुष्य उस नयी धर्मसंस्थाका प्रधान था जो यूरोपमें सबसे शक्तिशाली हो रही थी। स्पेननिवासी इग्नेशियस लायलाने 'जेसुइट संस्था' अथवा जीससकी सभाकी स्थापना की। जवानीमें वह वीर सैनिक था। किसी समय युद्धमें अपने राजा पंचम चार्ल्सके लिए लड़ता हुआ वह गोलीसे आहत हो गया। लाचार होकर उसे कई दिन बेकाम पड़े रहना पड़ा। यह समय उसने महात्माओंके जीवनचरित्र पढ़नेमें बिताया, इससे उसका उत्साह इतना बढ़ा कि उसे उनका अनुकरण करनेकी इच्छा हुई। अच्छा होनेपर उसने परमेश्वरकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की। भिखारीका वस्त्र पहिनकर उसने जेरुसलमकी यात्रा की। वहाँ पहुँचनेपर उसे विदित हुआ कि विद्याके बिना हम कोई काम नहीं कर सकते। इस विचारसे वह स्पेन लौट आया और यद्यपि उसकी तैंतीस वर्षकी अवस्था थी, तथापि छोटे-छोटे बच्चोंके साथ बैठकर वह भी लैटिनका व्याकरण पढ़ने लगा। दो वर्षके पश्चात् उसने स्पेनके विद्यापीठमें प्रवेश किया और तदनन्तर वह धार्मिक शिक्षा ग्रहण करनेके लिए पेरिस नगर गया।

पेरिसमें रहकर वह विद्यापीठके सहपाठियोंको उत्तेजित करने लगा और संवत् १५९१ (सन् १५३४ ई०)में उसके साथ सात सहपाठियोंने फिलिस्तीन जानेकी और यदि वहाँ जानेसे रोके गये तो पोपकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की। वेनिस पहुँचनेपर इन्हें विदित हुआ कि तुर्की तथा वेनिसके प्रजातन्त्रमें युद्ध छिड़ गया है। इस कारण पूर्वके मूर्तिपूजकोंके मतपरिवर्तनका ध्यान छोड़कर वे पोपकी आज्ञा ले आस-पासके नगरोंमें उपदेश देने, बाइबिलके मतको समझाने तथा अस्पतालोंमें पड़े हुए आहत व्यक्तियोंके आरामका प्रयत्न करने लगे। पूछनेपर वे लोग कहते थे कि "हम लोग जिससकी संस्थाके हैं।"

संवत् १५९५ (सन् १५३८ ई०)में लायलाने अपने अनुयायियोंको रोमसे बुलाकर अपने सम्प्रदायका कार्य वहीं आरम्भ किया। पोपने इन मन्तव्योंको अपने आज्ञापत्रमें सम्मिलित कर लिया और उसीमें नयी संस्थाकी स्वीकृति भी दे दी। निश्चय हुआ कि यह संस्था एक प्रधानके आधिपत्यमें रखी जाय जिसकी नियुक्ति जन्मभरके लिए संस्थाकी साधारण समिति द्वारा की जाय। लायला सैनिक था, इस कारण प्रत्येक स्थानमें वह सैनिक प्रथाको प्रधानता देता था। वह कहता था कि धर्मके विषयमें सबको बिना उज्रके प्रधानकी आज्ञा माननी चाहिये। उसका मत था कि इसीसे सद्गुणों तथा सुखकी वृद्धि होती है। यात्रियोंको केवल ईसामसीहके प्रतिनिधि पोपको ही अपना प्रधान नहीं मानना पड़ता था और प्रत्येक यात्रापर जिसकी वह आज्ञा दे, चाहे वह कितनी ही दूरकी क्यों न हो, जाना पड़ता था, परन्तु प्रत्येक मनुष्यको अपनी संस्थाके अन्य उच्च पदाधिकारियोंकी आज्ञाको भी उसी प्रकार मानना पड़ता मानो ईसामसीह स्वयं ही आज्ञा दे रहे हों। उसकी निजकी कोई भी इच्छा नहीं हो सकती। उसे अपने अधिपतिकी आज्ञाके अनुरूप कार्य करना पड़ता था। यही संगठन तथा अद्वितीय शिक्षा जेसुइट संस्थाके बादके प्रभावका कारण थी।

[illegible] सम्मिलित कर लोगोंमें दया तथा ईश्वर-भक्तिका संचार करना ही इस संस्थाका उद्देश्य था। सदस्योंको दरिद्रता तथा त्यागसे जीवन बिताना पड़ता था। उनको अपनी दशा इस प्रकारकी रखनी पड़ती थी कि देखनेवाले उन्हें निर्धन तथा [illegible] उनके संसर्गमात्रसे ही ईश्वरकी सेवा करनेके लिए आकर्षित हो जावें। अपने कार्योंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए जो उपचार इस सम्प्रदायने किये वे बड़े महत्त्वके थे। इस संस्थाके अनेक सदस्य सुशिक्षित थे। वे नगरोंमें जाकर लोगोंको उपदेश देते थे, उनकी [illegible] ध्यानसे सुनते थे और भक्तिके लिए लोगोंको उत्साहित करते थे। जब लोगोंने यह भी देखा कि युवक [illegible] शिक्षा विशेष [illegible] और इससे लाभ भी विशेष होगा, इस कारण उन्होंने शिक्षा [illegible]

अध्यापक भी हो गये। उनकी शिक्षाका इतना प्रभाव पड़ता था कि कभी-कभी तो प्रोटेस्टेण्ट लोग भी उन्हींकी पाठशालाओंमें अपने लड़कोंको भेजते थे।

पहले यह निश्चय किया गया था कि इस संस्थामें साठसे अधिक सदस्य नहीं रखे जायँगे, पर यह नियम शीघ्र ही तोड़ दिया गया और लायलाकी मृत्युके समय इसमें करीब एक सहस्र सदस्य हो चुके थे। उसके उत्तराधिकारीके समयमें सदस्यों-की संख्या तिगुनी हो गयी। दो शताब्दियोंतक इसी प्रकार वृद्धि होती गयी। हम देख ही चुके हैं कि इस संस्थाका प्रवर्तक प्रारम्भसे ही धर्मप्रचारकके कार्यमें विशेष रुचि रखता था। इस कारण जेसुइट संस्थाके सदस्य शीघ्र ही केवल यूरोप ही नहीं, प्रत्युत समस्त संसारमें फैल गये। लायलाके प्राचीन साथियोंमें फ्रेंसिस जेवियर था। उसने भारत, मलाका तथा जापानकी यात्रा की। जिस समय प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके मनमें मूर्तिपूजकोंके देशमें ईसाईमतके विस्तारका ध्यान भी नहीं आया था उस समय ब्रेजिल, फ्लोरिडा, मेक्सिको तथा पेरूमें जेसुइट लोग धर्म-प्रसारका कार्य कर रहे थे। जिस समय श्वेताङ्ग लोग कनाडा तथा मिसिसीपी प्रान्तका प्रथमान्वेषण कर रहे थे उस समयके अमेरिकाकी दशाका पता हम लोगोंको जेसुइट लोगोंके वर्णनसे ही मिलता है। लायलाके अनुयायी युरोपियनोंसे अपरिचित प्रदेशमें स्वच्छन्द प्रवेश कर वहाँके निवासियोंको धर्मकी शिक्षा देनेके तात्पर्यसे उन्हींके साथ बस गये।

जेसुइट लोग पोपके भक्त थे इस कारण उन लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रतिकूल प्रयत्न आरम्भ किया। उन लोगोंने दूतोंको जर्मनी तथा नेदरलैण्डमें भेजा और आंग्ल देशको परिवर्तित करनेके लिए कठिन प्रयास किया। दक्षिणी जर्मनी तथा आस्ट्रियामें उनका प्रभाव अधिक स्पष्ट था, क्योंकि उन स्थानोंमें वे लोग शासकोंके गुप्त मन्त्री तथा संस्थापक बन गये थे। इन प्रान्तोंमें उन लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट मतकी उन्नति तो रोक ही दी, साथ ही जिन प्रान्तोंने प्राचीन मतको त्याग दिया था उनमें भी रोमन कैथलिक मतका प्रचार कर पोपकी सत्ता स्थापित कर दी।

प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको प्रतीत होने लगा कि यह नयी संस्था हमारी सबसे बड़ी शत्रु है। इस धारणाके कारण वे लोग उससे घृणा करने लगे और उसके संस्थापकों-के उच्च विचारको भूलकर जेसुइट लोगोंके प्रत्येक कार्यकी निन्दा करने लगे। प्रोटे-स्टेण्ट मतवालोंने कहा कि इन लोगोंका विनीत भाव दिखाऊ है। इसकी आड़में ये लोग अपने दुष्कर्मोंका साधन करते हैं। जेसुइट लोग प्रत्येक परिस्थितिमें अपना निर्वाह कर लेते थे और तरह-तरहके कार्योंको सम्पादित भी करते थे। इससे उनके शत्रु यह समझते थे कि ये लोग अपना मतलब साधनेके लिए ये सब चालें चल रहे हैं। उन लोगोंका विश्वास था कि जेसुइट लोग सबसे पतित तथा नीतिविरुद्ध कारवाईको भी "ईश्वरकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाली" कहकर उचित बतलाते हैं। उनकी

आज्ञाकारिताको प्रोटेस्टेण्ट लोग गुण न मानकर बड़ा भारी दोष ही बतलाते थे। उन लोगोंका कहना था कि इस संस्थाके सदस्य अपने प्रधानके अन्ध-भक्त हैं, और आदेश पानेपर वे लोग गुनाह करनेमें भी न हिचकेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि जेसुइट लोगोंमें भी कई अविचारी तथा दुरात्मा व्यक्ति थे। समयके परिवर्तनके साथ-साथ इस संस्थाकी भी दशा अन्य प्राचीन संस्थाओंकी तरह बिगड़ती गयी। अठारहवीं शताब्दीमें इसपर व्यापार करनेका अभियोग लगाया गया और उसी समयसे कैथलिक लोगोंका भी विश्वास इसपरसे हट गया पहले-पहल पुर्तगालके राजाने इन्हें निर्वासित किया। उसके पश्चात् संवत् १८२१ (सन् १७६४ ई०)में फ्रांसके उस कैथलिक दलने इन्हें निकाल भगाया जिसके साथ इनका बहुत समयसे विद्रोह चल रहा था। पोपको निश्चय हो गया कि अब इस संस्थासे विशेष काम नहीं हो सकता, इस कारण उसने संवत् १८३० (सन् १७७३ ई०)में इसे उठा दिया। संवत् १८७१ (सन् १८१४ ई०)में इसकी पुनरुत्पत्ति हुई और अब फिर इसके हजारों सभासद हैं।

सोलहवीं शताब्दीके अवसान कालमें प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रचारको रोकनेके लिए पोप तथा जेसुइटके द्वारा किये गये प्रयत्नमें पञ्चम चार्ल्सका पुत्र द्वितीय फिलिप सहायक था। जेसुइटकी भाँति वह भी प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंमें अति विख्यात था। शासकोंमें इससे बढ़कर उनका दूसरा कोई कट्टर शत्रु नहीं था। कैथलिक धर्मकी उन्नति करनेकी अभिलाषासे वह जर्मनी तथा फ्रांसकी कार्यवाहीको बारीकीसे देखता रहा। आंग्ल देशीय प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बिनी महारानी एलिजाबेथके प्रतिकूल वह अनेक प्रकारका विद्रोह उठाता रहा और अन्तको उनका नाश करनेके लिए उसने एक नाविक बेड़ा भी भेजवा दिया। उसने नेदरलैण्डके राज्यमें कैथलिक धर्मका प्रचार करनेके लिए उसने अतिशय निर्दयताका प्रयोग किया।

गठिया रोगसे पीड़ित तथा अशान्त चित्त होनेके कारण संवत् १६११-१२ (सन् १५५५-५६ ई०)में पञ्चम चार्ल्सने राज-कार्यसे मुँह मोड़ा। चार्ल्सने हैप्सबर्ग-का अधिकार अपने भाई फर्डिनण्डको, जिसने विवाह-सम्बन्धसे बोहेमिया तथा हंगरीको पाया था बहुत पूर्व ही दे दिया था। उसने अपने पुत्र द्वितीय फिलिपको स्पेनका राज्य जिसमें अमेरिकाके प्रदेश सम्मिलित थे, तथा मिलन, सिसिलीके राज्य और नेदरलैण्ड दिया।

[illegible] अपने राज्यमें प्राचीन धर्म [illegible] स्थापित करनेका निश्चय प्रकट किया [illegible] इसमें [illegible] प्रयोग करनेमें कभी आगा-पीछा न किया। उसकी अपने जीवनमें यह कामना [illegible] हो रही थी कि [illegible] एक [illegible] प्रोटेस्टेण्ट [illegible] हो जाय। [illegible] होनेपर भी वह अपने-

न्मत्त नहीं था। प्रौढ़ धार्मिक प्रवृत्ति न होते हुए भी उसे कुछ तत्कालीन राजाओंकी भाँति धर्म-सम्बन्धी कार्योंमें भाग लेनेको बाध्य होना पड़ा। अपने विच्छिन्न राज्यपर अधिकार रखनेके लिए कैथलिक धर्मका पक्षपात करना उसने आवश्यक समझा, पर उसके पुत्र फिलिपका समस्त जीवन तथा नीति प्राचीन धर्मके प्रति प्रगाढ़ भक्ति-से प्रणोदित थी। वह राज्यमें तथा उसके बाहर भी प्रोटेस्टेण्टोंके साथ युद्ध करनेमें भपनेको तथा अपने राज्यको खो देनेके लिए सदा सन्नद्ध था। उसके पास साधन भी खूब थे, क्योंकि अमेरिकन प्रदेशके कारण स्पेन विशेष सम्पत्तिशाली था और उस समय वहाँकी सेना भी यूरोपके समस्त देशोंकी सेनासे अधिक बलिष्ठ तथा संचालित थी।

जर्मनी तथा स्पेनराज्योंमें विभक्त हैप्सवर्गका राज्य

प्रथम मैक्सिमिलियन (मृत संवत् १५७६), पत्नी वरगण्डीकी मेरी (मृत संवत् १५४९)

फिलिप (मृत संवत् १५६३), पत्नी उन्मत्त जोना (मृत संवत् १६१२)

पञ्चम चार्ल्स (मृत संवत् १६१५)
[सम्राट्, संवत् १५७६–१६१३]

द्वितीय फिलिप (मृत संवत् १६५५)
हैप्सवर्गके अधीन इटलीके राज्य,
स्पेन तथा नेदरलैण्डका राजा

फर्डिनण्ड (मृत संवत् १६२१), पत्नी अन्ना जो बोहेमिया तथा हंगरीके राज्यकी अधिकारिणी थी।
[सम्राट संवत् १६१३-१६२१]

द्वितीय मैक्सिमिलियन (मृत संवत् १६३३)
सम्राट् तथा हैप्सवर्गके आस्ट्रियन राज्य,
बोहेमिया एवं हंगरीका राजा

नोट— तेईसवें परिच्छेदमें सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भका यूरोपका जो मानचित्र दिया गया है उसे देखनेसे हैप्सवर्गके स्पेन तथा जर्मनीके विस्तृत राज्यका पता लगता है।

नेदरलैण्डमें सत्रह प्रान्त सम्मिलित थे। इनको पञ्चम चार्ल्सने अपनी दादी बर्गण्डीकी मेरीसे पाया था। यहीं फिलिपकी सबसे पहली और सबसे बड़ी कठिनाईका आरम्भ हुआ था। वर्तमान हालैण्ड तथा बेल्जियमका राज्य जिस स्थानपर स्थापित है वहीं पहले नेदरलैण्डका राज्य था। प्रत्येक प्रान्तके पृथक्-पृथक् शासक थे, पर चार्ल्सने इन सबको एकमें संगठित कर जर्मन-साम्राज्यकी रक्षामें रखा था। उत्तरमें जर्मनीके बलिष्ठ अधिवासियोंने समुद्रजलका निवारण करनेवाले परकोटेकी सहायतासे निम्न देशका अधिकांश अपने अधिकारमें कर लिया था। यहाँपर कालान्तरमें अनेक नगर बस गये, जैसे, हार्लेम, लीडन, आमस्टर्डम तथा राटर्डम। दक्षिणमें गेण्ट, ब्रुजेज, ब्रुसेल्स तथा एण्टवर्पके समृद्ध स्थान थे, जो शताब्दियोंसे कारीगरी तथा व्यवसायके केन्द्र थे।

यद्यपि चार्ल्सने नेदरलैण्डवालोंके साथ कुछ अनाचार किया था, तथापि वह उन्हें राजभक्त बनाये रखनेमें समर्थ हो सका। इसका कारण यह था कि चार्ल्स भी नेदरलैण्डका निवासी था, अतः उसकी सफलतामें वे अपना गौरव समझते थे, पर फिलिपके प्रति उनका व्यवहार बिलकुल भिन्न था। जिस समय पञ्चम चार्ल्सने ब्रुसेल्समें फिलिपको भावी शासक बताकर लोगोंको उसका परिचय दिया उस समय वे उसका रूखा चेहरा तथा उद्दण्ड स्वभाव देखकर बड़े असन्तुष्ट हुए। स्पेन-निवासी होनेके कारण वह उन लोगोंके लिए विदेशी था और स्पेन लौट जानेपर उसने उनका शासन भी विदेशियोंकी भाँति ही आरम्भ किया। उनकी उचित माँगोंको पूरा कर उन्हें अपने पक्षमें मिलानेके बजाय उसने बर्गण्डीके राज्यमें प्रत्येक कार्यसे लोगोंको अपनेसे अलग ही किया और हृदयमें स्पेनवालोंकी ओरसे सन्देह तथा घृणा उत्पन्न करा दी। उन लोगोंको बाध्य होकर स्पेनिश सैनिकोंको अपने घरोंमें स्थान देना पड़ता था। उनके कठोर व्यवहारोंसे वहाँके लोग उद्विग्न हो जाते थे। राजाकी सौतेली बहिन पार्माकी डचेज जो उनकी भाषा भी नहीं जानती थी, उनको राज्य-प्रबन्धक बनायी गयी। फिलिप प्रान्तके कुलीन जनोंमें विश्वास न कर कुछ नवोन्नत युवकोंका विश्वास करता था।

इससे भी बुरी बात यह हुई कि फिलिपने प्रस्ताव किया कि 'इंक्वीजिशन' नामक विचारक सभा अधिक तत्परतासे अपने कार्यका सम्पादन करे और नास्तिकता-का शीघ्र दमन करे, क्योंकि उससे उसका पवित्र राज्य कलङ्कित हो रहा था। विचारक सभा उन प्रान्तोंके लिए नयी बात नहीं थी। पञ्चम चार्ल्सने लूथर ज्विंगली तथा काल्विनके अनुयायियोंके प्रतिकूल कठोरसे कठोर नियम बनाये थे। संवत् १६०७ (सन् १५५० ई०)के नियमानुसार जो धर्मविद्रोही अपने कार्यसे मुँह मोड़नेसे लगातार इनकार करते थे वे जीते जी जला दिये जाते थे। जो लोग अपनी भूल स्वीकार

करते थे और धर्म विद्रोहका परित्याग करनेके लिए शपथ खाते थे वे भी यदि पुरुष होते थे तो शिरश्छेदनका दण्ड पाते थे, यदि स्त्रियाँ होती थीं तो जीवित जला दी जाती थीं। दोनों ही हालतोंमें उनका माल जब्त कर लिया जाता था। चार्ल्सके राज्यकालमें कमसे कम पचास सहस्र मनुष्योंकी हत्या की गयी थी। यद्यपि इन सब कठोर प्रयत्नोंसे प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार रुक नहीं सका तो भी अपने राज्यके प्रथम मासमें ही फिलिपने चार्ल्सके बनाये हुए समस्त नियमोंको पुनः जारी किया।

दस वर्षतक राज्यसे लोगोंको बड़ा दुःख हुआ, किन्तु राजा फिलिप कैथलिक नेताओंके विरोधका ख्याल ही नहीं करता था, प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस प्रदेशका विध्वंस करनेपर उतारू है। इस कारण संवत् १६१३ (सन् १५५६ ई०)में पाँच सौ कुलीन मनुष्योंने कुछ और निवासियोंके साथ स्पेनके दुराचार तथा विचारक सभाका विरोध करनेका निश्चय किया। उन लोगोंको उस समयपर्यन्त विद्रोहका तनिक भी ध्यान नहीं था, पर उन लोगोंने विरोध करनेके लिए एक महती सभा निमन्त्रित की और उसीके द्वारा उन लोगोंने राजाकी लिखित आज्ञाओंको कार्यमें परिणत होने देनेके लिए पार्माकी डचेजके पास प्रार्थनापत्र भेजा। लोगोंका कथन है कि डचेजके किसी मन्त्रीने उससे कहा था कि इन 'भिक्षुकों'से भयकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रार्थियोंने उसी समयसे अपनेको भिक्षुक कहना शुरू किया। बादमें विद्रोह करनेवाला एक दल 'भिक्षुकों'के नामसे विख्यात हुआ।

अब प्रोटेस्टेण्ट मतके उपदेशकोंने विशेष साहस दिखलाया। उनका उपदेश सुननेके लिए बहुतसे लोग एकत्र होने लगे। उनकी शिक्षासे उत्तेजित होकर बहुतसे लोगोंने नये मतको ग्रहण किया और कैथलिक मन्दिरोंमें प्रवेश कर मूर्तियोंको तोड़ डाला, रंगीन शीशोंको चूर-चूर कर डाला तथा वेदियोंको नष्ट कर दिया। पार्माकी डचेज अपनी बुद्धिमत्तासे शान्ति स्थापन कर ही रही थी कि इतनेमें फिलिपके अदूरदर्शी कार्यसे नेदरलैण्डमें विद्रोह आरम्भ हो गया। उसने निम्न प्रदेश (नेदरलैण्ड्स्) में अल्वाके ड्यूकको भेजना स्थिर किया। वह बड़ा निर्दयी था और उसका नाम लेनेसे ही लोगोंको अविवेकपूर्ण तथा अपरिमित निर्दयताका ध्यान आ जाता था।

अलवाके आनेका संवाद पाते ही जो उसके आगमनसे डरते थे वे लोग तो देश छोड़कर भाग गये। आरेंजका विलियम, जो इस युद्धमें स्पेनवालोंके प्रतिकूल सेनापति होनेवाला था, जर्मनी गया। फ्लेम्सके सहस्रों जुलाहे उत्तरीय समुद्र लाँघकर आंग्ल देशको भाग गये। थोड़े ही दिनोंमें उनके हाथका बुना कपड़ा आंग्ल देशकी बनी वस्तुओंके निर्यातमें सबसे प्रसिद्ध हो गया।

अलवाके साथ स्पेनके दस सहस्र सैनिक आये जो बड़े वीर तथा सुसज्जित थे। उसने सोचा कि असन्तुष्ट प्रदेशको शान्त करनेका केवल यही उपाय है कि जो लोग

राजाकी निन्दा करते हैं उनकी हत्या कर दी जाय। इस कारण उसने फिलिपके विद्रोहियोंका विचार करनेके लिए शीघ्रताके साथ एक विचारालय स्थापित किया। वह 'हत्याकारिणी' सभाके नामसे विख्यात था, क्योंकि इसका काम न्याय करना नहीं, परन्तु हत्या करना था।

अलवाने संवत् १६२४ से १६३० (सन् १५६७ से १५७३ ई०) पर्यन्त शासन किया। उसका शासन यथार्थमें अत्याचारपूर्ण तथा क्रूर शासन था। वह बड़ी अकड़के साथ कहा करता था कि मैंने अठारह सहस्र मनुष्योंकी हत्या करायी है, पर यथार्थमें छः सहस्रसे अधिक मनुष्य नहीं मारे गये।

आरेंजका राजा तथा नेसाका काउण्ट, विलियम, नेदरलैण्डका सच्चा सेनापति बन गया। वह राष्ट्रीय वीर था, उसका चरित्र वाशिंगटनके चरित्रसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। अमेरिकाके विख्यात देशभक्त वाशिंगटनकी भाँति उसने भी विदेशी राजाके अत्याचारसे अपने देश भाइयोंको मुक्त करनेका असम्भव कार्य अपने हाथमें लिया था। स्पेनवालोंकी दृष्टिमें वह केवल एक निर्धन कुलीन वंशज था जो थोड़ेसे कृषक तथा साधारण सैनिक लेकर संसारके सबसे श्रीसम्पन्न राज्यके अधिपतिका सामना करनेका साहस करता था।

विलियम पञ्चम चार्ल्सका विश्वासपात्र तथा भक्त नौकर था। यदि स्पेनवालोंका अत्याचार असह्य न हो गया होता तो वह चार्ल्सके पुत्र फ़िलिपकी भी उसी प्रकारसे सेवा करता। अलवाके व्यवहारसे उसे विश्वास हो गया कि फिलिपके पास शिकायत भेजना व्यर्थ है। तदनुसार संवत् १६२५ (सन् १५६८ ई०)में छोटी-सी सेना एकत्र कर उसने स्पेनसे विद्रोह आरम्भ किया।

विलियमको उत्तरीय प्रदेशोंसे, विशेषकर हालैण्डसे, अधिक सहायता मिली। डच लोगोंने अधिक संख्यामें प्रोटेस्टेण्ट मत ग्रहण किया था, वे लोग जर्मन जातिके थे और दक्षिणी प्रान्तके लोग जिन्होंने कैथलिक मत ग्रहण किया था, उत्तरी फ्रांसकी प्रजासे विशेष मिलते-जुलते थे।

विलियमकी संगृहीत सेनाको परास्त करनेमें स्पेनकी सेनाको जरा भी कठिनाई न पड़ी। वाशिंगटनके सदृश वह भी प्रत्येक युद्धमें हारता ही प्रतीत होता था, पर वास्तवमें वह कभी भी परास्त नहीं किया गया। डच लोगोंकी प्रथम विजय "समुद्री भिक्षुकों" द्वारा प्राप्त हुई। ये लोग लुटेरे थे, इन्होंने स्पेनकी नावोंको पकड़कर आंग्ल देशके प्रोटेस्टेण्टोंके हाथ बेच दिया। अन्तको इन लोगोंने स्पेनके ब्राइल नगरपर अधिकार जमाकर उसे अपना मुख्य वासस्थान बनाया। हालैण्ड तथा जीलैण्डके अनेक उत्तरीय नगरोंने इससे उत्साहित होकर विलियमको अपना शासक

बनाया, यद्यपि उन लोगोंने इस समय भी फिलिपका साथ नहीं छोड़ा था। इस प्रकार ये दो प्रदेश संयुक्त नेदरलैण्डके केन्द्र हुए।

अलवाने कई विद्रोही नगरोंपरः पुनः अधिकार किया और वहाँके निवासियोंके साथ अपनी स्वभावगत क्रूरतासे व्यवहार किया, यहाँतक कि बच्चों तथा स्त्रियोंकी भी निरर्थक हत्या की गयी। विद्रोह-शान्तिके बदले उसने दक्षिणी कैथलिक मतवालों-को भी भड़का दिया जिससे वे भी विद्रोही बन गये। उसने एक अनुचित कर लगाया जिससे बिक्रीकी आमदनीका दसवाँ भाग सरकारको देना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि दक्षिणी नगरोंके कैथलिक सौदागरोंने निराश होकर अपना व्यवसाय बन्द कर दिया।

छः वर्षके दुराचारपूर्ण शासनके पश्चात् अलवा बुला लिया गया। उसके स्थानपर जो शासक हुआ वह शीघ्र ही मर गया और देशको पूर्वसे भी शोचनीय दशामें छोड़ गया। अलवाके सिद्धान्तोंकी शिक्षा पाये हुए सैनिक बिना सेनापतिके होनेपर रात्रिमें लूट-मार तथा हत्या करनेकी ओर प्रवृत्त हो गये। उन लोगोंने लूट-लूटकर एण्टवर्पके समृद्ध नगरका नाश कर डाला। स्पेनके इस 'प्रकोप' तथा घृणित कार्यने सर्वसाधारणमें इतनी उत्तेजना उत्पन्न कर दी कि फिलिपके समस्त बर्गण्डी प्रदेशके प्रतिनिधि संवत् १६३१ (सन् १५७६ ई०)में स्पेनके अत्याचारको दूर करने-के विचारसे घेण्टमें एकत्र हुए।

इन लोगोंने जो संघ स्थापित किया वह थोड़े ही दिनोंतक रहा। फिलिपने नेदरलैण्डमें दूरदर्शी तथा शान्त शासकोंकी नियुक्ति किया और उन लोगोंने पुनः दक्षिणी प्रदेशोंको अपने वशमें कर लिया, पर उत्तरीय प्रदेश फिर भी स्वतन्त्र रहे। विलियमके नेतृत्वमें रहकर उन लोगोंने फिलिपको राजा बनानेका ध्यान ही छोड़ दिया। संवत् १६३६ (सन् १५७९ ई०)में हालैण्ड, जीलैण्ड, यूट्रेक्ट, गेल्डरलैण्ड, ओव्हर-आइसेल, ग्रोनिंगन तथा फ्रीजलैण्ड, इन सात प्रदेशोंने जो कि राइन तथा स्केल्ट नदीके उत्तर बसे थे, यूट्रेक्टमें दूसरी प्रबल संस्था स्थापित की। दो वर्ष पश्चात् जब इन प्रदेशोंने स्वतन्त्रताका अवलम्बन किया तो संघकी शर्तें ही संयुक्त राज्यके लिए नियम बन गयीं।

फिलिपको विदित हो गया कि इस विद्रोहकी जड़ विलियम ही था और उसके न रहनेपर सहजमें ही इसका दमन किया जा सकता था। यह सोचकर उसने उस मनुष्यको कुलीन पद तथा असंख्य धन देनेकी प्रतिज्ञा की जो इस उच्च देशा-भिमानीको परास्त करे। उस समय विलियम संयुक्त राज्यका शासक था। अनेक निष्फल प्रयत्नोंके पश्चात् संवत् १६४१ (सन् १५८४ ई०)में वह अपने घरमें गोली-

से मारा गया। उसने मरते समय ईश्वरसे अपनी आत्मा तथा अपने निःसहाय साथियोंपर दया रखनेके लिए प्रार्थना की।

बहुत दिनोंसे डच लोग महारानी एलिजावेथ अथवा फ्रांसके राजासे सहायताकी आशा लगाये थे, पर उस समयपर्यन्त उन्हें हताश होना पड़ा था। अन्तको आंग्ल देशीय महारानीने उनकी सहायताके लिए सेना भेजना स्थिर किया। आंग्ल देशवाले वास्तवमें कुछ भी सहायता न करने पाये थे कि इसी समय एलिजावेथकी कारवाईसे फिलिप इतना चिढ़ा कि उसने आंग्ल देशको जीतनेका निश्चय किया। इस कार्यके लिए उसने एक भारी बेड़ा तैयार किया, जो शीघ्र ही नष्ट कर दिया गया। उसके नष्ट होनेसे संयुक्त राज्यको जीतनेका प्रयत्न रुक गया। यदि वह नष्ट न हुआ होता तो प्रयास करने पर भी संयुक्त राज्यकी स्वतन्त्रता नहीं बच सकती थी। इसके अतिरिक्त स्पेनकी सम्पत्तिका अवसान हो रहा था और समुद्रके पारके प्रदेशसे धन आनेपर भी स्पेन राज्य क्षीण हो चला था। यद्यपि अब स्पेनको संयुक्त राज्य जीतनेकी आशा छोड़ देनी पड़ी; तथापि उसने संवत् १७०५ (सन् १६४८ ई०)के पूर्वतक उसकी स्वतन्त्रता नहीं स्वीकार की।

सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भका फ्रांस राज्यका इतिहास केवल प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक धर्मावलम्बियोंके पारस्परिक रक्तस्रावी युद्धवृत्तान्तसे भरा है। दोनों दलोंमें राजनीतिक तथा धार्मिक उद्देश्य वर्तमान था और कभी-कभी तो सांसारिक अभिलाषाके सामने धार्मिक उद्देश्य बिलकुल लुप्त हो जाता था।

प्रोटेस्टेण्ट मतका आरम्भ जिस प्रकार आंग्ल देशमें हुआ था उसी प्रकार फ्रांसमें भी हुआ। इटलीवालोंके संसर्गसे जिन लोगोंके हृदयमें ग्रीक भाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था उन लोगोंने मौलिक भाषामें सूक्ष्म रीतिसे न्यूटेस्टामेण्टका अध्ययन किया। सुधारके सम्बन्धमें उनके विचार इरेजमसके सदृश थे। उनमें सबसे प्रसिद्ध लफेव्हर था। उसने बाइबिलका अनुवाद फ्रांसीसी भाषामें किया। वह लूथरका नाम सुननेके पहलेसे ही 'श्रद्धा द्वारा मुक्ति' का उपदेश दे रहा था। उसको तथा उसके अनुयायियोंको फ्रैंसिस प्रथमकी बहिन, नवार राज्यकी रानी मारगरेटसे सहायता मिली। उसकी संरक्षकतामें वे लोग कई वर्षपर्यन्त निर्भय रहे। अन्तको पेरिसके सॉर्बोन नामी धर्म-विद्यापीठने नये मतके विरुद्ध राजाको भड़काना शुरू किया। अपने कालके राजाओंकी भाँति फ्रैंसिसको भी धर्मकार्यमें विशेष श्रद्धा न थी, परन्तु प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंपर जो दोष लगाया गया था उससे क्षुब्ध होकर उसने प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार करनेवाली पुस्तकोंका प्रकाशन एकदम बन्द कर दिया। संवत् १५९२ (सन् १५३५ ई०)में प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी अनेक मनुष्य जीवित जला दिये गये और कैल्विनको भागकर बेसिलमें शरण लेनी पड़ी। वहाँपर उसने "इन्स्टिट्यूट्स

आफ क्रिश्चियानिटी" (खीष्ट धर्मके सिद्धान्त) नामकी पुस्तक लिखी, जिसमें उसने अपने मतका भली भाँति समर्थन किया है। उसने अनुक्रमणिकामें फ्रैंसिसके नाम एक पत्र लिखकर प्रोटेस्टेण्ट मतकी रक्षाके लिए प्रार्थना की है। मृत्युके पूर्व फ्रैंसिस इतना दुर्दम हो गया कि उसने आल्पसनिवासी तीन सहस्र कृषकोंकी हत्या इस कारण करवा डाली कि वे लोग केवल वाल्डन्सियन लोगोंके उपदेशका समादर करते थे।

उसका पुत्र द्वितीय हेनरी संवत् १६०४ (सन् १५४७ ई०)से लेकर संवत् १६१६ (सन् १५५९ ई०)पर्यन्त राज्य करता रहा। उसने प्रोटेस्टेण्ट मतको निर्मूल करनेकी प्रतिज्ञा की और सैकड़ों प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बियोंको जलवा दिया, पर हेनरीके धार्मिक विश्वासने उसे अपने शत्रु पञ्चम चार्ल्सके प्रतिकूल जर्मनीके प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंकी सहायता करनेसे नहीं रोका, क्योंकि उन लोगोंने फ्रांसके सीमास्थित मेज, व्हर्डुन तथा टूलके धर्माध्यक्ष नियुक्त करनेका अधिकार उसे देनेका प्रतिज्ञा की थी।

एक सैनिक मुठभेड़में द्वितीय हेनरी अचानक मारा गया और उसका राज्य उसके तीन निर्बल पुत्रोंके हाथ पड़ा। ये लोग वालवा-वंशके अन्तिम कठपुतले थे जिन्होंने अदृष्टपूर्व गृहकलह तथा असन्तोषके समयमें बारी-बारीसे राज्य किया। हेनरीका सबसे ज्येष्ठ पुत्र द्वितीय फ्रैंसिस गद्दीपर बैठा। उसके राजगद्दीपर बैठनेसे फ्रांसके लिए महत्वका विषय केवल इतना ही था कि उसने स्काटलैण्डके राजा पञ्चम जेम्सकी पुत्री मेरी स्टुअर्टसे विवाह किया था जो बादको स्काटकी महारानी मेरीके नामसे विख्यात हुई। उसकी माता गाइजके ड्यूक तथा लोरेनके कार्डिनल, इन दो फ्रांसीसी महत्वाकाङ्क्षी सरदारोंकी बहिन थी। फ्रैंसिस इतना अबोध था कि मेरीके पितृव्य गाइजोंने उसके राज्यका प्रबन्ध अपने हाथमें ले लिया। गाइजके ड्यूकने सेनाकी तथा लोरेनके कार्डिनलने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। केवल एक वर्ष राज्य करनेके पश्चात् राजा फ्रैंसिसकी मृत्यु हुई। अब ये दोनों भाई अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। बादके चालीस वर्षोंमें फ्रांसको जो जो कष्ट सहने पड़े उनमेंसे अधिकांश इन्हीं लोगोंके उन षड्यन्त्रोंके परिणाम थे जो पवित्र कैथलिक धर्मके नामकी ओटमें रचे जाते थे।

...मेरी स्टुअर्ट, आलवा तथा बूर्बनोंका सम्बन्ध।

क्लॉड, गाइजका ड्यूक
(मृत, संवत् १५८४)

फ्रैंसिस, गाइजका ड्यूक
(सं० १६२० में मारा गया)

चार्ल्स लोरेनका
कार्डिनल

मेरी, अष्टम हेनरीकी
बहिनके पुत्र, स्काटलैण्डके
पञ्चम जेम्सकी स्त्री

हेनरी, गाइजका ड्यूक
(संवत् १९४५ में हत)

मेरी स्टुअर्ट, स्काट्सकी
रानी, पहला विवाह
द्वितीय फ्रैंसिसके साथ

स्काटलैण्डका षष्ठजेम्स,
इंग्लैण्ड का प्रथम जेम्स,
(लार्ड डार्थलीके साथ मेरी-
के दूसरे विवाहसे उत्पन्न)

द्वितीय फ्रैंसिस, मेरी स्टु-
अर्टका पति, निःसन्तान
(मृत संवत् १६१७)

प्रथम फ्रैंसिस
(मृत संवत् १६०४)

द्वितीय हेनरी (मृत संवत् १६१६)
कैथरिन डे मेडीचीका पति

नवम चार्ल्स
निःसन्तान
(मृत संवत् १६३१)

तृतीय हेनरी, निःसन्तान
(मृत संवत् १६४६)

मारगरेट, हेनरी चतुर्थकी स्त्री
(यह नवारका राजा था व
सेण्ट लुईसे छोटे बूर्बनकी
शाखाका वंशज था। मृत संवत् १६६७)

तेरहवाँ लुई, मेरी डे मेडीचीके
साथ हेनरीके दूसरे विवाहसे
उत्पन्न (मृत सवत् १७००)

चौदहवाँ लुई (मृत सवत् १७७२)

पन्द्रहवाँ लुई (मृत संवत् १८३१),
चौदहवें लुईका प्रपौत्र

उसके पश्चात् नवम चार्ल्सने संवत् १६१७से लेकर १६३१ (सन् १५६०-१५७४ ई०) पर्यन्त राज्य किया। वह केवल दस वर्षका था, इस कारण उसकी माताने जो लोरेण्टाइन-वंशकी थी, अपने पुत्रकी ओरसे स्वयं राज्य-प्रबन्ध करनेका अपना हक पेश किया। फ्रांसके बूर्बन राजघरानेकी एक और छोटी शाखा थी जिसका एक व्यक्ति नवारका राजा था। इस परिवारने भी राज्यपर अपना स्वत्व प्रकट किया। फ्रांसका इस समयका इतिहास इन्हीं दोनोंकी प्रतिद्वन्द्विताकी जटिलतासे परिपूर्ण है। बूर्बन-वंशवालोंने फ्रांसके कैल्विन मतावलम्बियोंसे जो ह्यूगेनाटके नामसे पुकारे जाते थे, मित्रता कर ली।

ह्यूगेनाट लोगोंके अनेक नेता तथा उनके मुखिया 'कॉलिग्नी महाशय' कुलीन वंशके थे और वे लोग तत्कालीन राजनीतिमें भाग लेनेके लिए उत्सुक थे। इसका परिणाम यह हुआ कि धार्मिक तथा राजनीतिक भावोंके सम्बन्धमें बड़ी गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी, जिससे फ्रांसमें प्रोटेस्टेण्ट मतको बड़ी चोट लगी। पर कुछ कालके लिए ह्यूगेनाट लोगोंका दल इतना बलशाली हो गया था कि राज्यशासनपर इनके अधिकारारूढ़ हो जानेकी आशंका हो रही थी।

पहले तो कैथराइनने दोनों दलोंको शान्त करनेका प्रयत्न किया। उसने संवत् १६१९ (सन् १५६२ ई०)में एक आदेश निकाला जिसके द्वारा प्रोटेस्टेण्टोंको धार्मिक स्वतन्त्रता मिल गयी और उनके प्रतिकूल पूर्वके आदेशोंका प्रयोग बन्द कर दिया गया। साथ ही साथ उन्हें दिनके समयमें तथा नगरके बाहर भी एकत्र होकर प्रार्थना करनेकी अनुमति भी मिली। प्रोटेस्टेण्टोंकी यह धार्मिक स्वतन्त्रता भी दुराग्रही कैथलिकोंको घृणास्पद प्रतीत हुई। गाइजके ड्यूकके एक अशिष्ट कार्यने शीघ्र गृहयुद्ध उपस्थित कर दिया।

एक दिन रविवारको वह वासी नगरसे होकर जा रहा था। उसने एक खलिहानमें उपासनाके लिए एकत्र हुए करीब एक सहस्र ह्यूगेनाटोंको देखा। ड्यूकके अनुयायियोंने उनकी उपासनामें विघ्न डाला, जिससे गुलगपाड़ा उत्पन्न हो गया। ड्यूकके सैनिकोंने सैकड़ों अरक्षित मनुष्योंको मार डाला। इस हत्याकाण्डके समाचारसे ह्यूगेनाट लोग बहुत ही उत्तेजित हो गये और यहींसे उस युद्धका श्रीगणेश हुआ जो बीच-बीचमें क्षणिक सन्धियोंके होते हुए भी, वास्तवमें वालवा वंशके अन्तिम निर्बल राजाके शासनकी समाप्तितक चलता ही रहा। अन्य धार्मिक युद्धोंकी भाँति इस युद्धमें भी दोनों दलोंने अत्यन्त अमानुषिक निर्दयताका परिचय दिया। एक पीढ़ीपर्यन्त फ्रांसमें अग्निदाह, लूट-मार तथा बर्बरताका पूर्ण साम्राज्य बना रहा। इस गृहयुद्धके कारण प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक, दोनों दलोंके नेता और फ्रांसके

दो राजा भी घातकोंके शिकार हुए। चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दीके आंग्ल आक्रमणके समय जो अत्याचार हुए थे, इस समय उनकी पुनरावृत्ति हुई।

संवत् १६२७ (सन् १५७० ई०)में कुछ कालके लिए सन्धि हो गयी। ह्यूगेनाटोंकी धार्मिक स्वतन्त्रता मानी गयी और उन्हें कुछ नगर दे दिये गये। इन नगरोंमें ला रोशेल नगर भी था, जहाँ रहकर वे लोग कैथलिकोंके पुनराक्रमणसे अपनी रक्षा कर सकते थे। कुछ समयपर्यन्त राजा तथा राजमाता, दोनोंका ह्यूगेनाटोंके नेता कालिन्यीके साथ बड़ा मित्रभाव रहा और वह एक प्रकारसे प्रधान मन्त्री भी बन गया। वह चाहता था कि कैथलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट, दोनों दल मिलकर स्पेनके विरुद्ध राष्ट्रीय महायुद्धमें लड़ें। उसे आशा थी कि इस तरह फ्रांसके लोग देश-सेवाके अभिप्रायसे अपने धार्मिक मत भेदका ध्यान छोड़कर परस्पर ऐक्यसूत्रमें आबद्ध हो जायँगे और बर्गण्डीके राज्यको तथा उत्तर-पूर्वके उन दुर्गोंको स्पेनसे जीतनेका उद्योग करेंगे जिनपर स्पेनकी अपेक्षा फ्रांसका ही अधिकार होना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता था। साथ ही उसे यह भी आशा थी कि मैं इस तरह नेदरलैण्डके प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंको भी सहायता पहुँचा सकूँगा।

गाइजके कट्टर कैथलिक दलने भयंकर उपायके प्रयोग द्वारा इस कार्यक्रमपर पानी फेर दिया। उन लोगोंने कैथरिन डे मेडीचीको सहज ही यह विश्वास करा दिया कि कालिन्यी तुम्हें धोखा दे रहा है। उसकी हत्या करनेके लिए एक घातक भी नियुक्त किया गया, पर भाग्यवश घातकका निशाना चूक गया और कालिन्यीको केवल चोट ही आयी। युवक राजा और कालिन्यीमें प्रगाढ़ मित्रता थी, अतः इस राजाको हत्याके प्रयत्नका कहीं पता न लग जाय, इस विचारसे भयभीत होकर राजमाताने ह्यूगेनाटोंके एक बड़े षड्यन्त्रकी झूठी वार्ता गढ़ ली। इस प्रकार सरलप्रकृति राजाके साथ विश्वासघात किया गया। पेरिसके कैथलिक नेताओंने निश्चित किया कि केवल कालिन्यी ही नहीं, बल्कि जितने ह्यूगेनाट लोग नवारके प्रोटेस्टेण्ट नरेश हेनरीके साथ राजाकी बहिनका विवाहोत्सव देखनेके लिए नगरमें एकत्र हैं, सबके सब महात्मा बार्थलोम्यूके उपासना-दिनके ठीक पहले एक नियत संकेतपर मार डाले जायँ।

संकेत ठीक समयपर दिया गया और दूसरा दिवस समाप्त होते-होते पेरिस नगरमें दो सहस्र मनुष्य निर्दयताके साथ मार डाले गये। इस घटनाकी खबर चारों ओर फैल गयी। नगरके बाहर भी कमसे कम दस हजार प्रोटेस्टेण्ट मारे गये। पोप तथा (फ्रांसके) राजा द्वितीय फिलिपने धर्मसंस्थाके प्रति फ्रांसीसियोंकी इस अद्वितीय भक्तिपर बड़ी प्रसन्नता तथा कृतज्ञता प्रकट की। गृहकलह पुनः आरम्भ हुआ और

अपने मतके अभ्युदयार्थ तथा धर्म-विरोधको निर्मूल करनेके उद्देश्यसे कैथलिक मत-वालोंने गाइजके ड्यूक हेनरीके नेतृत्वमें प्रसिद्ध धर्मसंघ (होली लीग) स्थापित किया।

नवें चार्ल्सकी मृत्युके पश्चात् द्वितीय हेनरीका सबसे छोटा पुत्र तृतीय हेनरी राजा हुआ। उसको कोई भी सन्तति नहीं थी, इससे अब राज्यका उत्तराधिकारी कौन होगा, यह जटिल समस्या उपस्थित हो गयी। सबसे निकटवर्ती सम्बन्धी नवार-का हेनरी था। संघवाले यह कदापि नहीं चाहते थे कि फ्रांसकी गद्दी किसी धर्म-विरोधीके चरणसे अपवित्र हो। इसके अतिरिक्त उनका नेता गाइजका हेनरी भी स्वयं राजा बनना चाहता था।

तृतीय हेनरीको अब इधरसे उधर भागकर कभी एक दलकी और कभी दूसरे-की शरण लेनी पड़ी। अन्तमें तीनों हेनरियों—तृतीय हेनरी, नवारके हेनरी तथा गाइजके हेनरी—में परस्पर युद्ध छिड़ गया। इस युद्धका अवसान भी बड़े विचित्र रूपसे हुआ। राजा हेनरीने गाइजके हेनरीकी हत्या करा दी। गाइजके सहायकोंने राजा हेनरीको मार डाला। परिणाम यह हुआ कि नवारके हेनरीका मार्ग निष्कण्टक हो गया वह संवत् १६४७ (सन् १५९० ई०)में चतुर्थ हेनरीके नामसे सिंहासना-सीन हुआ। फ्रांसके राजाओंमें वह अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध है।

नये राजाके अनेक शत्रु थे। कई वर्षोंकी लगातार लड़ाईसे उसका राज्य नष्टप्राय तथा आचारभ्रष्ट हो गया। उसे यह बात शीघ्र ही विदित हो गयी कि यदि मैं राज्य करना चाहता हूँ तो मुझे अपनी बहुसंख्यक प्रजाका मत ग्रहण करना ही पड़ेगा। इस उद्देश्यसे उसने यह कहकर रोमन कैथलिक धर्मको पुनः स्वीकार करना चाहा कि फ्रांसका राज्य इतनी नहीं अभिलषणीय वस्तु है कि उसके लिए धर्म बदल डालना कोई बड़ी बात नहीं। फिर भी वह अपने पूर्व मित्रोंको भूल नहीं गया। उसने संवत् १६५५ (सन् १५९८ ई०)में नाण्टका आज्ञापत्र निकाला। इस आज्ञापत्र द्वारा उसने केल्विनके अनुयायियोंको उन स्थानोंमें उपासना करनेकी आज्ञा दे दी, जहाँ वे पहले उपासना करते थे, किन्तु पेरिस तथा अन्य दो-चार नगरोंमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको उपासना करनेकी मनाही थी। प्रोटेस्टेण्टोंको कैथलिकोंके समान ही राज-नीतिक अधिकार दिये गये और राजकीय पद-प्राप्तिमें कोई रुकावट न रही। कई किलेबन्दीवाले नगर, विशेषकर ला रोशल तथा माण्टोबान ह्यूगेनाट लोगोंको दे दिये गये। इन सुरक्षित नगरोंको अपने कब्जेमें रखनेका तथा उनके शासनका विशेष अधिकार ह्यूगेनाट लोगोंको देकर हेनरीने बड़ी भूल की। दूसरी पीढ़ीमें राजाके मन्त्री रीशल्येको ह्यूगेनाटोंके इस विशेषाधिकारसे खटका पैदा हुआ। उसने उन लोगोंपर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणका कारण धर्म न होकर राज्यमें उनकी

वह स्वतन्त्र स्थिति थी जो प्राचीन समयके क्षत्रियतन्त्र (जागीरदारीकी प्रथा)-की द्योतक थी।

चतुर्थ हेनरीने कैल्विन मतानुयायी 'सली' नामके एक साधुप्रकृति व्यक्तिको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। वालवा-वंशके अन्तिम तीन राजाओंकी निर्बलताके कारण राजाकी शक्ति नष्टप्राय हो गयी थी। सलीने पहले इस शक्तिको पुनः स्थापित करनेका कार्य आरम्भ किया। ऋणके असह्य बोझसे देश बिलकुल दबा हुआ था। वह इस भारको कम करनेका प्रयत्न भी करने लगा। उसने नयी-नयी सड़कें तथा नहरें बनवाकर कृषि तथा व्यापारको प्रोत्साहन दिया। उसने ऐसे अयोग्य सर्दारों तथा कर्मचारियोंको, जिनको व्यर्थ ही राज्यकी ओरसे निर्वाहके लिए व्यय दिया जाता था, पृथक् कर दिया। यदि उसके शासनमें असामयिक विघ्न न डाला गया होता तो कुछ ही दिनोंमें फ्रांस अति समृद्ध तथा शक्तिशाली हो जाता, पर धार्मिक प्रमादने उसकी सुधार सम्बन्धिनी योजनाओंका अन्त कर दिया।

संवत् १६६७ (सन् १६१० ई०)में विलियम दि साइलेण्टकी भाँति हेनरीकी हत्या भी ऐसे समय की गयी जब कि फ्रांस देशको उसकी बड़ी आवश्यकता थी। हेनरीकी विधवा पत्नीके साथ जो नाबालिग युवराजकी प्रतिपालिका थी, सलीकी पटरी नहीं बैठती थी, इस कारण सली राज्य-प्रबन्धसे हाथ खींचकर अपने घर लौट गया। वहाँ रहकर उसने अपना वृत्तान्त लिखवाया जिससे उस समयकी विक्षुब्ध परिस्थितिका पूरा पता चलता है। कुछ ही वर्षोंके बाद रीशल्येका सितारा चमक उठा। वह प्रधान मन्त्रियोंमें सबसे बढ़-चढ़कर था। संवत् १६८१ (सन् १६२४ ई०)से लेकर अपनी मृत्युपर्यन्त हेनरीके पुत्र १३ वें लूईकी ओरसे वह फ्रांसका राज्य करता रहा। तीस वर्षीय युद्धके सम्बन्धमें उसकी शासन-नीतिका कुछ उल्लेख किया जायगा।

१६वीं सदीके कैथलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बियोंके पारस्परिक युद्धसे फ्रांस तो तहस-नहस हो गया, पर सौभाग्यवश आंग्ल देशमें ऐसी कोई घटना नहीं हुई। महारानी एलिज़ाबेथने अपनी चतुराईसे केवल घरमें ही शान्ति नहीं रखी, प्रत्युत फिलिपके षड्यन्त्रों एवं आक्रमणके सारे प्रयत्नोंको भी निष्फल कर दिया। नेदरलैण्डके विषयमें हस्तक्षेप कर उसने डच लोगोंको स्पेनसे स्वतन्त्र होनेमें बहुत कुछ सहायता भी दी।

मेरीकी मृत्यु तथा संवत् १६१५ (सन् १५५८ ई०)में एलिज़ाबेथके राज्यारोहणके पश्चात् आंग्ल राज्यका प्रबन्ध पुनः प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके हाथ आ गया। यदि एलिज़ाबेथने अपने पिता अष्टम हेनरीकी नीतिका अनुकरण किया होता तो उसकी प्रजाके अधिकांश लोग अति प्रसन्न हुए होते। यद्यपि अपने देशपर वे लोग पोपका आधिपत्य नहीं चाहते थे, तथापि स्तुति (मास) तथा प्राचीन-कालागत रीति-रस्मोंको

वे अब भी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। एलिजाबेथको विश्वास था कि अन्तमें प्रोटेस्टेण्ट मतकी ही जय होगी। इस कारण उसने षष्ठ एडवर्डकी प्रार्थना-पुस्तकमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कराकर पुनः उसीका प्रयोग कराया और यह आज्ञा दी कि सारी प्रजा राज्यकी ओरसे निर्दिष्ट उपासनाको ही अङ्गीकार करे। प्रेस्बीटेरियन धर्मसंस्थाके भी अनेक अनुयायी थे, पर एलिजाबेथने उनकी प्रार्थनाको अङ्गीकार न कर धर्मसंस्थाके प्रबन्धमें आर्कबिशपों (प्रधान धर्माध्यक्षों), बिशपों (धर्माध्यक्षों) तथा डीनोंको ही रखा। परिवर्तन केवल इतना ही हुआ कि मेरीके समयके कैथलिक पादरियोंके स्थानपर प्रोटेस्टेण्ट पादरी नियुक्त किये गये। एलिजाबेथके शासनकालकी प्रथम व्यवस्थापक सभाने उसे आंग्ल देशकी धर्मसंस्थाकी सर्वोच्च अधिष्ठात्रीकी उपाधि तो नहीं दी, पर वैसा ही अधिकार अवश्य दे दिया।

धार्मिक विषयमें एलिजाबेथके अधिकारपर पहला वार स्काटलैण्डकी ओरसे हुआ। उसके राज्यारूढ़ होनेके थोड़े ही दिन पश्चात् स्काटलैण्डमें प्राचीन धर्म-प्रणाली उठा दी गयी। इसके प्रधान कारण वे सर्दार थे जो बिशपोंकी सम्पत्ति हड़पकर उसकी आयका स्वयं उपभोग करना चाहते थे। जान नाक्सने जो उत्साहमें दूसरा कैल्विन ही प्रतीत होता था, प्रेस्बीटेरियन सम्प्रदायको स्थान दिलाया जो स्काटलैण्डमें अबतक वर्तमान है।

संवत् १६१८ (सन् १५६१ ई०)में स्काटकी रानी मेरी स्टुअर्ट अपने पति द्वितीय फ्रैंसिसके मरते ही लीथ पहुँची। उसकी अवस्था केवल उन्नीस वर्षकी थी, और वह बहुत ही सुन्दर थी, पर वह कैथलिक धर्मको मानती थी तथा उसने फ्रांस देशमें शिक्षा पायी थी, इस कारण प्रजाके लिए वह विदेशी स्त्रीके तुल्य ही थी। उसकी दादी अष्टम हेनरीकी बहिन थी, इस कारण एलिजाबेथके सन्तानरहित मर जानेपर न्यायतः आंग्ल देशके राज्यकी वही उत्तराधिकारिणी थी। इस कारण द्वितीय फिलिप, गाइज-वाले मेरीके सम्बन्धियों तथा अन्यान्य लोगोंकी जो आंग्ल देश तथा स्काटलैण्डपर कैथलिक धर्मका अधिकार देखना चाहते थे, सारी आशा स्काटलैण्डकी इसी सुन्दर रानीके साथ बँधी हुई थी।

मेरीने जान नाक्सके प्रयत्नोंको निष्फल करनेका कोई भी उपाय नहीं किया, पर उसने प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक दोनों ही सम्प्रदायवालोंको अपने व्यवहारसे असन्तुष्ट कर दिया। उसने अपने दूसरे चचेरे भाई लार्ड डार्नलीसे विवाह कर लिया। विवाहके पश्चात् उसे विदित हुआ कि वह (लार्ड डार्नली) अनियन्त्रित तथा दुराचारी है। इस कारण वह उससे घृणा करने लगी। तदनन्तर वह बॉथवेल नामक एक विवेक-शून्य कुलीन व्यक्तिके प्रेम-पाशमें बँध गयी। एडिनबरोके पास किसी मकानमें बिचारा डार्नली बीमार पड़ा हुआ था। रातमें वह मकान बारूदसे उड़ा दिया गया

जिससे डार्नलीकी मृत्यु होग यी। सर्वसाधारणको इस बातका सन्देह था कि यह कार्य मेरी तथा बॉथवेल, दोनोंकी ही साजिशसे हुआ है, पर इस मृत्युमें मेरीने कितना भाग लिया था, कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता। इतना जरूर है कि पतिकी मृत्युके बाद जब उसने बॉथवेलसे विवाह किया तब प्रजाने हत्याका दोष लगाकर उसे गद्दीसे उतार दिया। राज्य-प्राप्तिके प्रयत्नोंको असफल होते देख उसने अपने नाबालिग पुत्र छठे जेम्सके लिए राज्य छोड़ दिया और स्वयं मामलेकी फरियाद करनेके लिए एलिजाबेथके पास इङ्गलैण्ड चली। इधर तो एलिजाबेथने स्काटलैण्डवालोंके इस प्रकार अपनी रानीको गद्दीसे उतार देनेके अधिकारका खण्डन किया, उधर चालाकीसे अपनी प्रतिद्वन्द्विनी रानीको बन्दी भी कर रखा।

कुछ समयके पश्चात् एलिजाबेथको यह प्रतीत होने लगा कि कैथलिक मतवालोंके साथ अब रिआयत करनेसे काम नहीं चल सकता। संवत् १६२६ (सन् १५६९ ई०) में आंग्ल देशके उत्तरीय प्रदेशमें विद्रोह खड़ा हुआ, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वहाँके अधिकतर लोग कैथलिक धर्मको स्थापित करनेके लिए मेरीको स्वतन्त्र कर आंग्ल देशकी गद्दीपर बैठाना चाहते हैं। इधर पोपने एलिजाबेथका धार्मिक बहिष्कार कर दिया और साथ ही साथ उसकी प्रजाको धर्मविरोधी शासकके अधिकार न माननेके दोषसे बरी कर दिया। एलिजाबेथके भाग्यसे विद्रोही लोगोंको न तो अलवासे ही और न फ्रांसके राजासे ही सहायताकी आशा थी। स्पेनवालोंको अपने देश नेदरलैण्डके ही झगड़ोंसे अवकाश नहीं था और नवम चार्ल्स जिसने कालिन्योको अपना मन्त्री बना लिया था, ह्यूगेनाट लोगोंसे सहमत था। उत्तरीय प्रदेशका विद्रोह तो दबा दिया गया, पर आंग्ल देशके कैथलिकोंमें विश्वासघातके चिह्न अब भी दिखाई देते थे और उन्हें फिलिपसे सहायताकी भी आशा थी। उन लोगोंने अलवाको छः सहस्र स्पेनी सैनिक लेकर आंग्ल देशपर चढ़ाई करने और एलिजाबेथको उतारकर स्काटलैण्ड-की रानी मेरीको सिंहासनारूढ़ करनेके लिए लिखा। अलवा चिन्तामें पड़ गया, क्योंकि उसकी समझमें एलिजाबेथको मार डालना अथवा कमसे कम बन्दी कर लेना कहीं अच्छा था, पर इस मामलेका पता लग गया और सब बातें जहाँकी तहाँ रह गयीं।

यद्यपि फिलिपने इङ्गलैण्डका नुकसान करनेमें अपनेको असमर्थ पाया तो भी इङ्गलैण्डके नाविकोंने हालैण्डनिवासी 'समुद्री भिक्षुओं'की तरह स्पेनको बहुत नुकसान पहुँचाया। इङ्गलैण्ड और स्पेनके बीच खुल्लमखुल्ला युद्धकी घोषणा न होते हुए भी अंग्रेज नाविकोंने 'वेस्ट इण्डीज' (पश्चिमी द्वीपपुञ्ज)तक उत्पात मचाना शुरू

किया। उन्होंने इस दृढ़ विश्वासपर स्पेनके खजानेके जहाज पकड़ लिये कि फिलिपकी सम्पत्ति लूटकर हम परमात्माकी सेवा कर रहे हैं। सर फ्रैंसिस ड्रेकने तो साहस-पूर्वक प्रशान्त सागरतकमें प्रवेश किया, जहाँ अभीतक केवल स्पेनवाले ही पहुँच पाये थे। वे अपने 'पेलिकन' जहाजमें बहुतसा लूटका माल लादकर लौटे। अन्तमें उन्होंने एक ऐसा जहाज पकड़ा जिसमें बहुतसे जवाहरात, चाँदीके सिक्कोंसे भरे तेरह सन्दूक, एक मन सोना तथा २६ टन (टन = २७¾ मन) चाँदी थी। फिर उन्होंने पृथिवीके चारों ओर यात्रा की और वापस पहुँचकर वे जवाहरात एलिजाबेथको भेंट किये। स्पेनके राजाने बहुत कुछ कहा-सुना, पर एलिजाबेथने कुछ ध्यान न दिया।

कैथलिक मतवालोंका एक और आशा-प्रदीप अभी टिमटिमा रहा था जिसके विषयमें अबतक कुछ भी नहीं लिखा गया है, वह था आयर्लैण्ड। आरम्भसे लेकर आजतक आयर्लैण्ड तथा आंग्ल देशमें परस्पर जो सम्बन्ध रहा है उसका वर्णन अत्यन्त नैराश्यपूर्ण है। महान् ग्रेगरीके समय जिस प्रकार आयर्लैण्ड विद्या तथा ज्ञानका केन्द्र था, वैसा अब नहीं रहा था। उसके निवासी कई जातियोंमें विभक्त हो गये थे जिनके सर्दार आपसमें लड़ा करते थे। कभी-कभी उनसे आंग्ल देशीयोंके साथ भी मुठभेड़ हो जाया करती थी, क्योंकि वे लोग निष्प्रयोजन ही उस द्वीपको दबाना चाहते थे। द्वितीय हेनरी तथा उसके बादके राजाओंके समयमें आंग्ल देशीयोंने आयर्लैण्डके पूर्व प्रदेशमें एक नगर जीत लिया और अन्य स्थानोंमें अराजकता रहनेपर भी वे लोग उसपर अपना अधिकार बनाये रखनेमें समर्थ हुए। अष्टम हेनरीने आयर्लैण्डवालोंका विद्रोह दमन कर आयर्लैण्डके राजाकी उपाधि ग्रहण की मेरीने किंग्स काउण्टी तथा क्वीन्स काउण्टीमें अंग्रेजोंको बसाकर इस सम्बन्धको और भी मजबूत करना चाहा। इससे बड़ा भारी कलह आरम्भ हुआ, जिसका अन्त अधिवासियों द्वारा सारे मूलनिवासियोंके मारे जाने-पर ही हुआ।

एलिजाबेथको इस बातकी आशंका हुई कि कहीं आयर्लैण्ड कैथलिक धर्मवालोंका कार्यक्षेत्र न बन जाय, क्योंकि उस देशमें प्रोटेस्टेण्ट मतका बहुत कम प्रचार हुआ था और वहाँके लोग सीधे सादे तथा असभ्य थे। इस आशंकाके कारण ही उसका ध्यान आयर्लैण्डकी ओर आकर्षित हुआ। यह आशंका सच निकली। कैथलिक नेताओंने आंग्ल देशपर आक्रमण करनेके लिए आयर्लैण्डमें जाकर सेना रखनेका कई बार प्रयत्न किया। एलिजाबेथके अफसरोंने इन प्रयासोंको निष्फल किया, पर इसके परिणामस्वरूप अशान्तिके कारण आयर्लैण्डका कष्ट बढ़ता ही गया। कहा जाता

है कि फसल न होनेके कारण संवत् १६३९ (सन् १५८२ ई०)में तीस सहस्र मनुष्य भूखसे तड़प-तड़पकर मर गये।

दक्षिणी नेदरलैण्डमें सैनिकोंकी सफलतासे आंग्ल देशपर आक्रमण करनेके लिए फिलिपका उत्साह बढ़ने लगा। संवत् १६३७ (सन् १५८० ई०)में आंग्ल देशमें दो 'जेजूइट' इसलिए भेजे गये कि वहाँ जाकर वे लोग अपने मतवालोंके दलकी पुष्टि करें और उनसे अनुरोध करें कि यदि कोई विदेशी सेना रानीपर आक्रमण करे तो वे रानीका साथ छोड़कर उस विदेशीकी सहायता करें। पार्लमेण्ट अब धार्मिक मामलोंमें कड़ाईसे काम लेने लगी। उसने आंग्ल देशीय उपासनामें भाग न लेने-वालों या 'स्तुति'-पाठ करनेवालोंको अर्थदण्ड तथा कारावासका दण्ड देना आरम्भ कर दिया। एक जेजूइट तो पकड़ लिया गया और कठिन यातनाके बाद विश्वास-घातके अपराधमें मारा गया, पर दूसरा निकल भागा।

संवत् १६३९ (सन् १५८२ ई०)में फिलिपकी मन्त्रणासे धर्मविरोधिनी रानी एलिजाबेथकी हत्याका प्रथम प्रयास हुआ। यह प्रस्ताव किया गया कि एलिजाबेथसे पिण्ड छूटनेपर गाइजका ड्यूक कैथलिक मत-विस्तारके लिए आंग्ल देशपर आक्रमण करे पर तीनों हेनरियोंके युद्धमें गाइजके फँसे रहनेके कारण आंग्ल देशके आक्रमण-का भार केवल फिलिपके ऊपर पड़ा।

पर मेरीके भाग्यमें यह प्रयत्न देखना नहीं बदा था। उसने एलिजाबेथकी हत्या-के लिए एक और षड्यन्त्रमें भाग लिया। पार्लमेण्टने देखा कि मेरी जबतक जीवित रहेगी, एलिजाबेथकी जान संकटमें रहेगी और मेरीके न रहनेपर फिलिप भी एलिजा-बेथको मारनेका प्रयास न करेगा, क्योंकि मेरीका पुत्र षष्ठ जेम्स प्रोटेस्टेण्ट था। इन कारणोंसे एलिजाबेथके मन्त्रियोंने संवत् १६४४ (सन् १५८७ ई०)में मेरीको शूलीपर चढ़ानेके लिए आज्ञापत्र निकालनेको उसे बाधित किया।

इसपर भी फिलिपने प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी आंग्ल देशको अपने अभीष्ट मार्गपर लानेका प्रयत्न नहीं छोड़ा। संवत् १६४५ (सन् १५८८ ई०)में उसने अपने समस्त बड़े-बड़े युद्धपोतोंको एकत्र कर एक जंगी बेड़ा तैयार किया जिसको स्पेनवाले अजेय समझते थे। यह प्रबन्ध किया गया था कि यह बेड़ा चैनलसे होकर फ्लैण्डर्समें पहुँचे और वहाँ पार्माके ड्यूक तथा उसके उन अनुभवी सैनिकोंको भी अपने साथमें ले ले जो एलिजाबेथके अशिक्षित सैन्यदलको बातकी बातमें समाप्त कर देंगे। आंग्ल देशके जहाज स्पेनके जहाजोंसे छोटे थे, लेकिन उनके सेनापति ड्रेक तथा हाकिन्स जैसे सुशिक्षित लोग थे। ये वीर सेनापति पहलेसे ही स्पेनके साथ समुद्रमें डटे हुए थे। ये लोग आर्मेडाके निकट जाकर छोटी बंदूकोंसे हानि उठानेके बदले दूरसे ही उसपर अपनी तोपोंसे गोला बरसाना चाहते थे। स्पेनके जहाजी बेड़ेके पहुँचने

इन लोगोंने उसे चैनलतक जाने दिया। उस समय बड़े वेगकी हवा उठी जो तूफ़ानमें परिणत हो गयी। अवसर देखकर आंग्ल देशीय बेड़ेने उसका पीछा किया और दोनों बेड़े फ्लैण्डर्सके तटसे दूर बह निकले। आर्मडाके एक सौ बीस जहाजोंमें केवल चौवन वापिस आये, शेष जहाज या तो शत्रुओंद्वारा नष्ट कर दिये गये या तूफानसे स्वयं नष्ट हो गये। एलिजाबेथने इस विजयका श्रेय तूफानको ही दिया। आर्मडा(बेड़े)की हारके साथ-साथ स्पेनकी ओरसे आक्रमणका भय भी जाता रहा।

यदि द्वितीय फिलिपके राजत्वकालका सिंहावलोकन किया जाय तो विदित होगा कि वह कैथलिक सम्प्रदायके इतिहासकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस समय वह गद्दीपर बैठा उस समय जर्मनी, नेदरलैण्ड तथा स्विटजलैंण्ड करीब-करीब प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी हो गये थे। हाँ, आंग्ल देश अवश्य उसकी कैथलिक पत्नी मेरीके शासनके कारण प्राचीन धर्मकी ओर झुकता-सा प्रतीत होता था। फ्रांसके शासक विधर्मी कैल्विन्के अनुयायियोंको देखना भी नहीं चाहते थे। इसके अतिरिक्त जेजूइट-की नयी संस्था स्थापित हुई, जिसने बड़े प्रयत्नसे असन्तुष्ट जनोंको पुनः विश्वास दिलाकर पोपकी प्रधानताको तथा ट्रेण्टकी सभा द्वारा अनुमोदित प्राचीन मतके मन्तव्योंको ग्रहण करनेके लिए उद्यत किया। फिलिप अपने देशमें प्रचलित धर्मका विरोध नष्ट करने तथा सारे पश्चिमी यूरोपसे प्रोटेस्टेण्ट धर्मका लोप करनेके लिए स्पेनकी सम्पूर्ण शक्ति तथा असीम सम्पत्ति प्रदान करनेको सन्नद्ध था।

फिलिपके मरनेपर सब बातें बदल गयीं। आंग्ल देश कट्टर प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी हो गया। स्पेनके आर्मडाकी बुरी गति हुई और आंग्ल देशको पुनः रोमन कैथलिक सम्प्रदायका अनुयायी बनानेका फिलिपका सम्पूर्ण प्रयास सर्वदाके लिए विफल हो गया। फ्रांसके भयानक धर्मयुद्धोंका अन्त हो गया और वहाँकी गद्दीपर जो राजा बैठा वह कुछ ही काल पूर्वतक प्रोटेस्टेण्ट था। वह प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके साथ केवल रिआयत ही नहीं करता था, प्रत्युत उसने एक प्रोटेस्टेण्टको अपना प्रधान मन्त्री भी बनाया। वह फ्रांसके कार्योंमें स्पेनका हस्तक्षेप भी नहीं सहन कर सकता था। 'संयुक्त नेदर्लैण्ड' नामक एक नया प्रोटेस्टेण्ट राज्य फिलिपके पितृदत्त राज्यकी सीमाके अन्तर्गत ही आविर्भूत हो गया। उस समयसे लेकर यूरोपके इतिहासमें उक्त राज्यने वैसा ही महत्त्वपूर्ण भाग लिया जैसा उसके साथ क्रूर विमाताका-सा वर्त्ताव करनेवाले स्पेनने लिया था जिसकी अधीनतासे उसने अपना पिण्ड छुड़ाया था।

किन्तु फिलिपके राज्यसे सबसे अधिक क्षति स्वयं स्पेनकी ही हुई। यह राज्य वास्तवमें कभी भी शक्तिशाली नहीं था। फिलिपके लम्बे-लम्बे युद्धों तथा आन्तरिक

शासनके कुप्रबन्धसे यह और भी निर्बल हो गया। विदेशकी आमदनी भी कम हो गयी, क्योंकि वहाँकी खानें खतम हो चलीं। फिलिपकी मृत्युके थोड़े ही दिन पश्चात् स्पेनके कारीगर मूर लोग भी निकाल दिये गये। परिणाम यह हुआ कि स्पेनवाले केवल कृषिके आधारपर रह गये, पर उनका कृषिकार्य इतनी लापरवाही-से होता था कि थोड़े ही दिनोंमें खेतोंकी उर्वरता भी कम हो गयी। दरिद्र रहनेमें कुछ भी शर्म नहीं थी, पर हाथसे काम करनेमें लाज लगती थी। किसीने स्पेनके राजासे कहा कि सोना-चाँदी तो नहीं, बल्कि परिश्रम ही सबसे कीमती धातु है, इसकी मुद्रा सर्वदा प्रचलित रहती है और कभी इसके मूल्यका पतन नहीं होता, पर स्पेनमें परिश्रमकी यह मुद्रा प्रचलित न थी। फिलिपकी मृत्युके पश्चात् स्पेनकी गणना यूरोपकी द्वितीय श्रेणीकी शक्तियोंमें होने लगी।

अध्याय २९

तीस वर्षीय युद्ध

प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथलिक मतवालोंका अन्तिम महायुद्ध जर्मनीमें विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुआ था। यह तीस वर्षीय युद्धके नामसे विख्यात है। वास्तवमें इसे युद्ध न कहकर युद्धोंकी परम्परा कहनी चाहिये। यद्यपि युद्ध जर्मनीमें हुआ; पर स्पेन, फ्रान्स तथा स्वीडनने भी उसमें काफी भाग लिया था।

लूथर मतावलम्बी राजाओंने सम्राट् पञ्चम चार्ल्ससे, उसके पद-त्यागके पूर्व ही, बलपूर्वक अपने धर्म तथा गृहीत सम्पत्तिपर अपना अधिकार स्वीकृत करा लिया था। पहले कहा जा चुका है कि औग्सबर्गकी धर्म-सन्धिमें दो बड़ी त्रुटियाँ थीं। पहली तो यह कि केवल लूथरके अनुयायी प्रोटेस्टेण्टोंकी ही धार्मिक स्वतन्त्रताका अधिकार स्वीकृत किया गया था। कैल्विनके अनुयायी जिनकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जाती थी सन्धिमें सम्मिलित नहीं किये गये। दूसरी यह कि उस सन्धिने प्रोटेस्टेण्ट राजाओंको धर्मसंस्थाकी सम्पत्ति अपहरण करनेसे नहीं रोका।

प्रथम फर्डिनण्डके राज्यावसानके दिनोंमें तथा उसके उत्तराधिकारीके राज्यारम्भके समय प्रायः कोई झगड़ा नहीं हुआ। प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने बड़ी शीघ्रतासे उन्नति कर बवेरिया, आस्ट्रियाके प्रदेश तथा बोहीमियापर आक्रमण किया, जहाँसे उसके उपदेशोंका प्रभाव कभी दूर नहीं हुआ। इस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जर्मनीके ईसवर्ग राज्यतकका अधिक भाग प्राचीन संस्थासे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेगा, पर कैथलिकोंकी सहायताके लिए योग्य जेजूइट लोग तैयार थे उन लोगोंने केवल उपदेश देनेका तथा विद्यालय स्थापित करनेका ही काम नहीं किया, प्रत्युत जर्मनीके कुछ राजाओंके विश्वासपात्र बनकर वे उनके मन्त्री भी हो गये। सत्रहवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध धार्मिक युद्ध छेड़नेके लिए बड़ा ही अनुकूल समय था।

डोनावर्थ नगरमें लूथर मतवालेके कैथलिक सम्प्रदायका एक मठ था। संवत् १६६४ (सन् १६०७ ई०)में जब उसके महन्त जुलूसके साथ नगरमें घूम रहे थे तब प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके एक दलने उनपर आक्रमण कर दिया। यह नगर बवेरियाके ड्यूक मैक्सिमीलियनके राज्यकी सीमापर था। वह कट्टर कैथलिक था, इस कारण उसने इस अत्याचारके लिए दण्ड देना चाहा। उसने सेनाके साथ डोनावर्थमें प्रवेश कर कैथलिक मठकी पुनः स्थापना की और लूथरके सम्प्रदायके आचार्यको भगा

दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने पैलेटिनेटके इलेक्टर फ्रेडरिकके नेतृत्वमें एक प्रोटेस्टेण्ट संघ स्थापित किया। इस संघमें सम्पूर्ण प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी राजा सम्मिलित नहीं थे। उदाहरणार्थ लूथरके अनुयायी सैक्सनीके इलेक्टरने कैल्विनके अनुयायी फ्रेडरिकके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर दिया। दूसरे वर्ष कैथलिक मतवालोंने भी फ्रेडरिककी अपेक्षा अधिक योग्य नेता बवेरियाके ड्यूक मैक्सिमीलियनके नेतृत्वमें कैथलिक लीग नामक एक संघ स्थापित किया।

यहींसे तीस वर्षीय युद्धका आरम्भ होता है। प्रथम फर्डिनण्डके विवाह-सम्बन्धसे बोहीमिया हैप्सबर्गके राज्यान्तर्गत हुआ था, इसी नगरमें विरोधका सूत्रपात हुआ। इस नगरके प्रोटेस्टेण्ट इतने अधिक शक्तिशाली थे कि उन्होंने फ्रांसमें ह्यूगेनाट लोगोंको जो विशेष अधिकार प्राप्त थे उनसे भी अधिक अधिकार बलपूर्वक मंजूर करा लिये थे। सरकार इस सन्धिका पालन न कर सकी। दो प्रोटेस्टेण्ट गिरजोंके गिराये जानेपर संवत् १६७५ (सन् १६१८)में प्रेग नगरमें बलवा हो गया। बोहीमियाके क्रोधित नेताओंने सम्राट्के तीन प्रतिनिधियोंको बन्दी कर राजप्रासादकी एक खिड़कीसे बाहर फेंक दिया। सरकारके अन्यायपूर्ण कार्योंका इस भाँति जोरदार विरोध कर बोहीमियाने पुनः स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न किया। हैप्सबर्गका शासन न मानकर बोहीमियावालोंने पैलेटिनेटके इलेक्टर फ्रेडरिकको अपना राजा बनाया। इसे राजा बनानेमें उन्हें दो बातोंका लाभ दीख पड़ा, एक तो वह प्रोटेस्टेण्ट-संघ (यूनियन) का प्रधान था, दूसरे वह आंग्ल देशके राजा प्रथम जेम्सका जामाता था जिससे उन्हें सहायता मिलनेकी आशा थी।

बोहीमियाके इस साहसका परिणाम जर्मनी तथा प्रोटेस्टेण्ट मतके लिए बहुत ही हानिकारक हुआ। नया सम्राट् द्वितीय फर्डिनण्ड कट्टर कैथलिक तथा बहुत ही योग्य मनुष्य था। उसने लीगसे सहायताके लिए प्रार्थना की। बोहीमियाके नये राजा फ्रेडरिकमें ऐसे अवसरके लिए काफी योग्यता न थी। उसका तथा उसकी पत्नी कुमारी एलिजाबेथका प्रजापर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा और उन लोगोंको दूसरे मतावलम्बी सैक्सनीके इलेक्टरसे भी सहायता नहीं मिली। संवत् १६७७ (सन् १६२० ई०)में 'हेमंतनरेश'* पहले ही युद्धमें मैक्सिमीलियन द्वारा संचालित संघकी सेनासे पराजित हो भाग खड़ा हुआ। सम्राट् तथा बवेरियाके ड्यूक दोनों मिलकर प्रोटेस्टेण्ट मतको अपने राज्यसे निर्मूल करनेका कठिन प्रयत्न करने लगे। सम्राटने

---

*फ्रेडरिककी व्यंग्यसूचक उपाधि। यह केवल हेमन्तऋतुभर ही बोहीमियाका राज्य कर पाया था।

सभाकी अनुमति लिये विना ही मैक्समीलियनको पैलेटिनेटका पूर्वी भाग देकर उसे इलेक्टरकी पदवीसे विभूषित कर दिया।

अब प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंके लिए कठिन समय आ रहा था। आंग्ल देश भी इसमें हस्तक्षेप किये बिना न रहता, पर प्रथम जेम्सको विश्वास था कि मैं केवल अपने व्यक्तिगत प्रभावसे ही यूरोपमें शान्ति स्थापित कर दूँगा और राजा फ्रेडरिकको पैलेटिनेट वापस देनेके लिए सम्राट् तथा बवेरियाके ड्यूक मैक्सिमीलियनको बाधित करूँगा। फ्रांस भी चुपचाप न बैठता, क्योंकि यद्यपि उस समयके प्रधान रीशल्येंत की प्रोटेस्टेण्ट लोगोंसे किसी प्रकारकी सहानुभूति नहीं थी, तो भी वह हैप्सवर्गवालोंसे और भी अधिक जलता था। किन्तु उस समय वह लाचार था, क्योंकि वह ह्यूगेनाटोंसे उनके प्रधान नगरोंको छीन लेनेके प्रयत्नमें लगा हुआ था।

पर भाग्यवश एक बाहरी घटनाने परिस्थिति बिलकुल पलट दी। संवत् १६८२ (सन् १६२५ ई०)में डेनमार्कके राजा चतुर्थ क्रिश्चियनने अपने सहधर्मी प्रोटेस्टेण्टवालोंकी रक्षा करनेके लिए उत्तरी जर्मनीपर आक्रमण किया। कैथलिक संघकी सेना तो उसका सामना करनेके लिए भेजी ही गयी, साथ ही वालेन्स्टाइनने अपनी अध्यक्षतामें एक और सेना तैयार की। सम्राट् दरिद्र हो गया था, इस कारण उसने इस उत्साही बोहेमियन सर्दारकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लूट-मार तथा अपहरणसे अपना निर्वाह कर सकनेवाली एक सेना तैयार करनेकी मंजूरी दे दी। उत्तरी जर्मनीमें क्रिश्चियन दो बार बुरी तरह पराजित हुआ और सम्राट्की सेनाने उसके प्रायद्वीपपर भी चढ़ाई कर दी। संवत् १६८६ (सन् १६२९ ई०)में उसने युद्धसे अलग होनेकी प्रतिज्ञा की।

कैथलिक सेनाके जयलाभसे उत्साहित होकर सम्राट्ने उसी वर्ष 'पुनः-प्राप्ति'का आज्ञापत्र निकाला। इस आज्ञापत्र द्वारा प्राचीन धर्मसंस्थाकी वह सब सम्पत्ति लौटा देनेको कहा गया था जो औग्सबर्गकी सन्धिके पश्चात् प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने हरण की थी। इस सम्पत्तिमें दो प्रधान धर्माध्यक्षोंके अधीन प्रदेश, नौ धर्माध्यक्षोंके अधीन जिले, एक सौ बीस मठ तथा धर्मसंस्थाकी अन्य इमारतें इत्यादि थीं। इसके अतिरिक्त सम्राट्ने यह आज्ञा भी दी कि केवल लूथरमतावलम्बी प्रोटेस्टेण्ट ही अपने धर्मकी उपासना कर सकते हैं, अन्य उपसम्प्रदाय तोड़ दिये जायँ। वालेन्स्टाइन अपनी स्वाभाविक क्रूरताके साथ आज्ञापत्रका प्रयोग करना ही चाहता था कि युद्धने दूसरा रूप धारण कर लिया। वालेन्स्टाइन अत्यन्त शक्तिशाली हो रहा था, इस कारण संघ उससे जलने लगा। उसके सैनिकोंके दुराचार तथा बलात् अपहरणका दुःखद संवाद चारों ओरसे आ रहा था। संघने भी इसका समर्थन करना आरम्भ किया।

† Richelieu.

सम्राट्ने उस सेनापतिको अलग कर दिया। ऐसा करनेसे उसे अपनी सेनाका एक बड़ा भाग भी खो देना पड़ा। जिस समय कैथलिक सम्प्रदायवालोंकी शक्ति इस प्रकार क्षीण हो रही थी, उसी समय उन्हें एक और बड़े भारी शत्रुका सामना करना पड़ा। वह स्वीडनका राजा गस्टवस अडाल्फस था।

इसके पहले हमें स्कैण्डिनेवियाके नार्वे, स्वीडन तथा डेनमार्कके राज्योंके संबन्धमें कुछ भी कहनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। इन राज्योंकी स्थापना शार्लमेनके समयमें उत्तरीय जर्मनीके रहनेवालोंने की थी। अब उन लोगोंने भी मध्य यूरोपके कार्योंमें भाग लेना आरम्भ किया। पूर्वमें ये राज्य अलग-अलग थे, पर संवत् १४५४ (सन् १३९७ ई०)में कामरकी संन्धिसे ये सब राज्यमें संगठित हो गये। जिस समय जर्मनीमें प्रोटेस्टेण्ट मतका विद्रोह आरम्भ हुआ उस समय स्वीडनके अलग हो जानेके कारण यह गुट टूट गया। स्वीडनके एक कुलीन गस्टवस वासाने इस विच्छेद-आन्दोलनका आरम्भ किया था और बादमें वही वहाँका प्रथम राजा बनाया गया। उसी साल वहाँपर प्रोटेस्टेण्ट मतका प्रचार भी हुआ। गस्टवसने धर्मसंस्थाकी भूमि छीन ली और कुलीन जनोंको अपने वशमें कर स्वीडनको राष्ट्रीय अभ्युदयके मार्गपर प्रवृत्त किया। उसके उत्तराधिकारीके समय बाल्टिक समुद्रका पूर्वी तट जीत लिया गया और रूसके निवासी समुद्रके लाभसे वञ्चित कर दिये गये।

गस्टवसके आक्रमणके दो कारण थे। पहले तो वह सच्चा तथा उत्साही प्रोटेस्टेण्ट था और अपने समयका सबसे उदार तथा प्रसिद्ध राजा था। सहधर्मी प्रोटेस्टेण्ट मत-वालोंकी विपत्तिसे उसे विशेष दुःख हुआ और वह उनके कल्याणके लिए चिन्तित हुआ। दूसरे वह अपने राज्यको इतना विस्तृत करना चाहता था जिससे किसी दिन बाल्टिक समुद्र स्वीडन राज्यके अन्तर्गत एक झीलकी तरह हो जाय। उसे आशा थी कि आक्रमण द्वारा मैं अपने सहधर्मियोंको सम्राट्की तथा कैथलिक संघकी यातनासे छुड़ा सकूँगा और स्वीडनके लिए कुछ भूमि भी हस्तगत कर सकूँगा।

पहले तो जर्मनीके उत्तर प्रदेशीय प्रोटेस्टेण्ट राजाओंने गस्टवसका हार्दिक स्वागत नहीं किया, परन्तु जब सेनापति टिलीके सेनापतित्वमें कैथलिक संघकी सेनाने मागडेबर्ग नगरको नष्ट कर दिया तब उसकी आँखें खुलीं। यह उत्तरीय जर्मनीका सबसे प्रधान नगर था। बड़े कठिन तथा दृढ़ घेरावके उपरान्त इसका पतन हुआ। इसके बीस सहस्र निवासी मार डाले गये और नगर जला दिया गया। यद्यपि निर्दयतामें टिली वालेन्स्टाइनसे किसी प्रकार कम नहीं था तो भी सम्भवतः आग लगवानेका दायित्व उसके ऊपर न था। गस्टवस तथा टिलीसे लीपज़िगके समीप मुठभेड़ हुई जिसमें संघकी सेनाने गहरी हार खायी। अब प्रोटेस्टेण्ट राजाओंने विदेशी

राजा गस्टवसका विशेष सम्मान किया। इसके पश्चात् गस्टवस पश्चिमकी ओर बढ़ा। उसने शीतकाल राइन नदीके किनारे व्यतीत किया।

वसन्त ऋतुके आनेपर उसने बवेरियामें प्रवेश किया और टिलीको पुनः परास्त कर म्युनिकको अपने अधिकारमें कर लिया। इस युद्धमें टिली ऐसी बुरी तरह घायल हुआ कि उसका प्राणान्त ही हो गया ; अब उसे विएनाकी ओर प्रस्थान करनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं जान पड़ी। ऐसी परिस्थितिमें सम्राट्ने वालेन्स्टाइनको पुनः बुलाया। उसने एक सेना तैयार की जिसका पूर्ण अधिकार भी सम्राट्ने उसे ही दे दिया। कुछ दिनोंके पश्चात् संवत् १६८९ के कार्तिक मास (नवम्बर, १६३२ ई०)में लुटजनके युद्ध स्थलमें दोनोंका सामना हुआ। बड़े भीषण युद्धके पश्चात् स्वीडनवालोंकी जीत हुई, पर इस युद्धमें उन्होंने अपना नेता तथा प्रोटेस्टेण्ट मतवालोंने अपना सबसे बड़ा वीर खो दिया। शत्रुकी सेनामें बहुत दूरतक गस्टवसके घुस जानेपर शत्रुओंने उसको घेरकर मार डाला।

इतनेपर भी स्वीडनवाले जर्मनीसे नहीं हटे। वे लोग युद्धमें बराबर भाग लेते गये। पर वस्तुतः अब युद्ध रह नहीं गया था, केवल नेता लोग इधर-उधर लोगोंपर छापा मारा करते थे। उनके सैनिकोंने अकथनीय क्रूरतासे उस देशको मटियामेट कर डाला। वालेन्स्टाइनने रीशल्ये तथा जर्मनीके प्रोटेस्टेण्ट राजाओंके साथ गुप्त सन्धि कर ली, इससे कैथलिक मतवालोंको उसपर सन्देह होने लगा। इस विश्वास-घातकी वार्ता सम्राट्के कानोंतक पहुँची। वालेन्स्टाइनको कैथलिक लोग पहिले भी घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, अब उसके सैनिकोंने भी उसका साथ छोड़ दिया और संवत् १६९१ (सन् १६३४ ई०)में वह मार डाला गया। उसकी मृत्युसे सब दलके लोगोंको शान्ति मिली। उसी वर्ष सम्राट्की सेनाने नर्टलिंगनके युद्धस्थलमें विजय प्राप्त की। रक्तपातकी दृष्टिसे यह युद्ध अत्यन्त भयानक और जय-पराजयका स्पष्ट निर्णय कर देनेवाला था। इसके थोड़े ही दिनोंके पश्चात् सैक्सनीके इलेक्टरने स्वीडनकी सेनाका साथ छोड़कर सम्राट्से सन्धि कर ली। ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो जायगा, क्योंकि जर्मनीके कितने ही अन्य राजा शस्त्र रख देनेपर उद्यत थे।

इसी समय रीशल्येने सोचा कि यदि सम्राट्के प्रतिकूल सेना भेजकर हैप्सबर्गके साथ प्राचीन युद्ध पुनः आरम्भ किया जाय तो इससे फ्रांसको विशेष लाभ होनेकी सम्भावना है। पञ्चम चार्ल्सके समयसे ही फ्रांस हैप्सबर्ग राज्यकी भूमिसे घिरा हुआ था। समुद्रकी ओरके हिस्सेको छोड़कर उसकी सीमा बनावटी ही थी, जो किसी नदी या पहाड़से नहीं बनी थी। इस कारण फ्रांस दक्षिणके रूसीयन प्रान्तकी विजयसे अपने शत्रुको निर्बल कर अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था और पिरीनीज पर्वतको

फ्रांस तथा स्पेनका विभाजक बनाना चाहता था। वर्गण्डी प्रान्त जीतकर वह राइनकी ओर भी अपना अधिकार बढ़ाना चाहता था। उसी ओर बहुतसे सुदृढ़ दुर्ग भी थे, उन्हें भी वह अपनेको स्पेनके अधीन नेदरलैण्डमें रक्षित रखनेके लिए ले लेना चाहता था।

तीस वर्षीय युद्धकी तरफसे रीशल्ये किसी प्रकार उदासीन न था। उसने ही स्वीडनके राजाको युद्धमें प्रवृत्त होनेके लिए उत्साहित किया था और यदि सेनासे नहीं तो द्रव्यसे ही उसने उसकी सहायता भी की थी। इसके अतिरिक्त उत्तरीय इटलीमें उसने स्वयं ही स्पेनवालोंकी गति रोकी थी। संवत् १६८१ (सन् १६२४ ई०) में स्पेनकी सेनाने आडा घाटीपर आक्रमण किया। यह घाटी प्रोटेस्टेण्टोंके अधिकारमें थी, पर स्पेनवाले इसे अपने अधिकारमें लाना चाहते थे। रीशल्येको यह आक्रमण बहुत ही भयंकर प्रतीत हुआ, क्योंकि हैप्सबर्गके इटली तथा जर्मनीके राज्यके बीच यही एक रुकावट थी, यदि स्पेन इसे जीत लेता तो हैप्सबर्गके अधीन जर्मनी तथा इटलीका राज्य एक हो जाता। फ्रांसने स्पेनवालोंको भगा देनेके लिए तुरन्त ही सेना भेजी। यह कार्य विशेषकर फ्रांसके ही लाभके लिए किया गया था कैल्विनके मतानुयायियोंकी रक्षाके लिए नहीं, क्योंकि रीशल्येको उनसे अधिक प्रेम न था। थोड़े ही वर्ष पश्चात् मण्टुआके ड्यूकका पद रिक्त हुआ। अब यह प्रश्न उठा कि वहाँका भावी शासक स्पेन-निवासी हो या फ्रांस-निवासी। इसपर रीशल्ये स्पेनको नीचा दिखानेके लिए फ्रांसकी दूसरी सेना लेकर स्वयं गया। ऐसी दशामें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी कि जब लड़ाई हैप्सबर्गके पक्षमें समाप्त हो रही थी तब भी वह सम्राट्पर आक्रमण कर युद्ध जारी रखता।

संवत् १६९२ के ज्येष्ठ (मई, सन् १६३५ ई०) में रीशल्येने स्पेनके साथ युद्धकी घोषणा की। आस्ट्रियन वंशके प्रधान शत्रुओंके साथ उसने पूर्वसे ही सन्धि कर ली थी। स्वीडनने यह कबूल किया कि जबतक फ्रांस सन्धिके लिए तैयार न होगा तबतक हम भी सन्धि न करेंगे। संयुक्त-प्रदेश तथा जर्मनीके कई राजाओंने फ्रांसका साथ दिया। युद्ध आरम्भ हो गया और स्वीडन, फ्रांस जर्मनी तथा स्पेनके सैनिकोंने पूर्वसे ही पीड़ित देशको दस वर्षतक और विध्वस्त किया। भोजन-सामग्रीकी इतनी कमी थी कि भूखों मरनेसे बचनेके लिए सेनाको बराबर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर हटना पड़ता था। स्वीडनवालोंसे गहरी हार खाकर सम्राट् (तृतीय फर्डिनण्ड) ने एक डोमिनिकन महन्तको कार्डिनल रीशल्येके पास इसलिए भेजा कि वह रीशल्येसे जिसने प्राचीन धर्मके अनुयायी आस्ट्रियाके प्रतिकूल जर्मनी तथा स्वीडनके धर्मविरोधियोंकी सहायता करनेका पाप किया था, इस सम्बन्धमें

पर कार्डिनल रीशल्ये ठीक इसी समय अपनी कूटनीतिकी सफलतासे सन्तुष्ट होकर परलोक सिधार चुका था। रुसीयन, आर्टूवा, लोरेन तथा आलजास फ्रांस-वालोंके अधिकारमें थे। चतुर्दश लूईके राज्यके आरम्भकालमें फ्रांसके सेनापति टूरेन तथा काण्डेके सैनिक कार्योंसे यही प्रकट होता था कि नये युगका आरम्भ हो रहा है और अब स्पेनकी राजनीतिक तथा सांग्रामिक शक्ति उससे पृथक् होकर फ्रांसक आश्रय ग्रहण करेगी।

इस युद्धमें इतने अधिक लोगोंने भाग लिया था और उनके मन्तव्य इतने विभिन्न थे कि सन्धिके लिए सबके सम्मत होनेपर भी शर्तोंको ठीक करनेमें कई वर्ष लग गये। यह प्रबन्ध किया गया कि सम्राट् तथा फ्रांससे तो मुन्स्टरमें और सम्राट् तथा स्वीडनसे ओसनाब्रुकमें सन्धिकी बातचीत हो। ये दोनों नगर वेस्टफेलियामें थे। चार वर्षतक सभी राज्योंके प्रतिनिधि एक दूसरेको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते रहे। अन्तमें संवत् १७०५ (सन् १६४८) में वेस्टफेलियाकी दोनों सन्धियोंपर हस्ताक्षर कर दिये गये। उक्त सन्धिकी शर्तें फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके समयतक यूरोपके अन्तरराष्ट्रीय विधानोंकी आधारभूत थीं।

औग्सबर्गकी सन्धिकी शर्तोंमें लूथरके अतिरिक्त कैल्विनके अनुयायियोंको भी धार्मिक स्वतन्त्रता देकर जर्मनीका धार्मिक आन्दोलन समाप्त किया गया। 'पुनः-प्राप्त' की आज्ञापर ध्यान न देकर जर्मनीके प्रोटेस्टेण्ट राजाओंको वह भूमि अपने अधिकारमें रखनेका अधिकार दिया गया जो संवत १६८० (सन् १६२३) में उनके अधिकारमें थी और प्रत्येक राजाको अपने राज्यमें अपने इच्छानुसार अपने राज्यका धर्म निश्चित करनेकी स्वतन्त्रता भी दी गयी। इसके अतिरिक्त जर्मनीके सभी राज्योंको आपसमें तथा विदेशी राज्योंसे सन्धि करनेकी स्वतन्त्रता भी दी गयी, इससे जर्मन साम्राज्यका विध्वंस होना प्रत्यक्ष हो गया। इसके द्वारा उनकी प्राचीन स्वतन्त्रता भी मान ली गयी जिसका वे लोग बहुत दिनोंसे उपभोग करते आये थे। पोमेरेनिया तथा ओडर, एल्ब और वेजर नदीके मुहानेके निकटस्थ नगर स्वीडनको दे दिये गये। फिर भी यह प्रान्त जर्मन साम्राज्यसे पृथक् नहीं हो गया; क्योंकि उस समयसे स्वीडनको जर्मनीकी सभामें अपने तीन प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार मिला।

फ्रांसको धर्माध्यक्षोंके अधीन मेट्स, वर्डन तथा टूलके जिले मिले। एक सदी पूर्व द्वितीय हेनरीने प्रोटेस्टेण्टोंका साथ देते समय ही इसकी प्रतिज्ञा करा ली थी। सम्राट्ने स्ट्रासबर्ग नगरको छोड़कर आल्सासका सम्पूर्ण अधिकार फ्रांसको दे दिया। स्विट्जरलैण्ड तथा संयुक्त नेदरलैण्डकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गयी।

तीस वर्षीय युद्धके कारण जर्मनी कितना उत्पीडित और ध्वस्त-विध्वस्त हुआ,

इसका अनुमान करना कठिन है। सहस्रों ग्राम बिलकुल नष्ट हो गये। कितने स्थानोंकी जन संख्या आधी, कितनोंकी तिहाई और कितनोंकी इससे भी न्यून हो गयी। समृद्ध नगर औग्सबर्गकी जन-संख्या अस्सी हजारसे घटकर सोलह हजार हो गयी। सभी राष्ट्रोंके सैनिकोंने मनमानी लूट-मार तथा अत्याचारोंसे लोगोंको तबाह कर दिया था। जर्मनीकी दशा इतनी बिगड़ गयी थी कि उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध-पर्यन्त उसमें इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह यूरोपके ज्ञान-भण्डारकी वृद्धिमें कोई सहायता पहुँचाता। इस दुःखद वृत्तान्तको समाप्त करनेके पूर्व एक महत्त्वपूर्ण बातका उल्लेख कर देना आवश्यक है। वेस्टफेलियाकी सन्धिके पश्चात् सम्राट्के बाद जर्मनीके राजाओंमें ब्राण्डेनबर्गका इलेक्टर सबसे अधिक शक्तिशाली था। प्रशाके राजाकी हैसियतसे उसने यूरोपमें एक नयी शक्तिको जन्म दिया जिसने अन्तमें हैप्सबर्ग-वंशको नीचा दिखाकर आस्ट्रियासे पृथक् नूतन जर्मन साम्राज्य स्थापित किया।

अध्याय ३०

इंग्लैण्डमें वैध शासनका प्रयत्न

सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें इंग्लैण्डके सामने यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजाको ईश्वरके प्रतिनिधिकी तरह जनतापर शासन करने दिया जाय या उसपर देशके प्रतिनिधियोंकी सभा अर्थात् पार्लमेण्टका सतत नियन्त्रण रखा जाय। फ्रांसमें व्यवस्थापक सभा 'एस्टेट्स जनरल'की अन्तिम बैठक संवत् १६७१ (सन् १६१४) में हुई थी, इसके बादसे फ्रांसका राजा स्वयं ही कानून बनाने और उनका प्रयोग करने लगा। ऐसा करते समय वह अपने सन्निकट मन्त्रियोंके अतिरिक्त और किसीकी सलाह न लेता था। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि यूरोपीय देशोंके शासक अपनी अनियन्त्रित शक्तिका प्रयोग स्वेच्छापूर्वक कर सकते थे। इंग्लैण्डका राजा प्रथम जेम्स तथा उसके पुत्र प्रथम चार्ल्स भी स्वेच्छाचारी शासक बनकर बड़े प्रसन्न होते, क्योंकि राजाओंके 'ईश्वरदत्त अधिकार' (डिवाइन-राइट)-के सम्बन्धमें उनके विचार भी वैसे ही थे जैसे इंग्लिश चैनलके उस पार यूरोप महाद्वीपमें प्रचलित थे। किन्तु इंग्लैण्डमें बात अधिक नहीं बढ़ने पायी और वहाँ राजा तथा प्रतिनिधि-सभाका पारस्परिक सम्बन्ध ऐसी सन्तोषजनक रीतिसे निश्चित कर दिया गया कि जिसके परिणाममें वहाँ नियन्त्रित या वैध शासनकी उत्पत्ति हुई। इंग्लैण्डके स्टुअर्टवंशीय राजाओं तथा वहाँकी पार्लमेण्ट (प्रतिनिधि-सभा)के बीच जो लम्बी और गहरी खींचातानी होती रही उसे इंग्लैण्डके इतिहास तथा समस्त यूरोपके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विक्रमकी उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भ-में फ्रांसकी जो राज्यक्रान्ति हुई, उसके बादसे ही यूरोपके देशोंमें इंग्लैण्डकी शासन-पद्धति अधिक लोकप्रिय होने लगी और अब तो पश्चिमी यूरोपके सभी राज्योंमें उसने अनियन्त्रित शासन-पद्धतिका स्थान ग्रहण कर लिया है।

संवत् १६६० (सन् १६०३)में एलिजाबेथकी मृत्युके बाद स्टुअर्ट-वंशका पहला राजा 'प्रथम जेम्स' इंग्लैण्डमें गद्दीपर बैठा। वह स्काटलैण्डकी रानी मेरीका लड़का था और स्काटलैण्डमें षष्ठ जेम्सके नामसे प्रसिद्ध था। इस कारण उसके राजा होनेपर इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड दोनों एक ही शासकके अधीन हो गये, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि अब दोनों देशोंका पारस्परिक सम्बन्ध अधिक सन्तोषजनक हो गया। ऐसा होनेके लिए अभी कमसे कम एक शताब्दीकी देर थी।

जेम्सके शासनकी मुख्य बात यह है कि वह राजाके विशेषाधिकारोंको अत्यधिक महत्त्व देता था और अपने लेखों तथा व्याख्यानोंमें बराबर अनियन्त्रित शासनकी ही प्रशंसा किया करता था। राजा होते हुए भी वह असाधारण विद्वान् था, किन्तु सामान्य बुद्धिकी छोटी-मोटी बातोंमें उसकी विद्वत्ता कुछ काम न करती थी। साधारण मनुष्य और शासककी हैसियतसे वह अपने समकालीन, फ्रांसके राजा, अशिक्षित और चंचल-प्रकृति चतुर्थ हेनरीकी तुलनामें बहुत तुच्छ प्रतीत होता था। यों तो प्रथम जेम्सके पहले इंग्लैण्डका राजा अष्टम हेनरी भी पूरा स्वेच्छाचारी था और एलिजाबेथने भी शक्तिके साथ शासन किया था, किन्तु ये दोनों अपनेको लोकप्रिय बनाना जानते थे और इनमें इतनी सामान्य बुद्धि भी थी कि ये अपने अधिकारोंके विषयमें कुछ नहीं कहते थे। किन्तु इसके विपरीत जेम्सको हमेशा अपने ऊँचे पदके सम्बन्धमें ही चर्चा करते रहनेकी धुन सवार थी।

वह कहता है कि "राजाका अनियन्त्रित विशेषाधिकार (प्रेरोगेटिव्ह) ऐसा विषय नहीं है जिसके सम्बन्धमें कोई कानूनदां कुछ कह सके। उसके सम्बन्धमें शङ्का करना या तर्क-वितर्क करना ही कानूनकी दृष्टिसे जायज नहीं है। ईश्वर क्या कर सकता है, इस विषयपर विवाद करना नास्तिकता और ईश्वर-निन्दा है; इसी प्रकार प्रजाके लिए राजाके सम्बन्धमें यह कहना कि अमुक कार्य कर सकता है या अमुक कार्य नहीं कर सकता, राजनिन्दा तथा छोटे मुँह बड़ी बात होगी।" जेम्सका कहना था कि राजा जिस कानून या विधानका बनाना उचित समझे उसे वह पार्लमेण्टकी सम्मति लिये बिना ही बना सकता है; हाँ, यदि वह चाहे तो अपनी इच्छासे पार्लमेण्टका अनुरोध मान ले। "वह सारी जमीनका मालिक है। साथ ही वह उन सब मनुष्योंका भी अधिपति है जो उस जमीनपर बसते हैं। उसे उनमेंसे प्रत्येकको जिलाने या मारनेका अधिकार है; क्योंकि यद्यपि यह सत्य है कि कोई भी न्यायशील राजा, बगैर किसी स्पष्ट कानूनके, अपनी प्रजाके किसी भी व्यक्तिके प्राण न लेगा। तो भी जिन कानूनोंकी मददसे वह ऐसा करता है वे स्वयं उसीके या उसके पूर्वजोंके बनाये हुए हैं, अतः असलमें अधिकारोंका केन्द्र वही है। प्रजावत्सल राजा कानूनके मुताबिक ही काम करेगा, किन्तु वह कानूनसे परे है। यदि वह किसी कानूनका अनुसरण करता है तो केवल स्वेच्छासे ही अथवा प्रजाके सामने अच्छा आदर्श उपस्थित करनेके अभिप्रायसे ही ऐसा करता है।"

जेम्सकी पुस्तक 'अनियन्त्रित एकतन्त्र राज्योंका कानून'*से गृहीत ये सिद्धान्त हमें विचित्र और तर्कशून्य प्रतीत होते हैं, किन्तु इनका प्रतिपादन कर जेम्स

* The Law of Free Monarchies.

वास्तवमें उन्हीं अधिकारोंके उपभोगकी चेष्टा कर रहा था जो उसके पहलेके नराधिपोंको तथा राज्यक्रान्तिके पूर्वतक फ्रांसके राजाओंको भी प्राप्त थे। 'ईश्वरदत्त अधिकार'के सिद्धान्तके अनुसार राजाको अपनी शक्ति ईश्वरसे प्राप्त है, राष्ट्रसे नहीं—ईश्वरने ही पिताकी तरह प्रजाकी रक्षा करनेके लिए इसे नियुक्त किया है। व्यवस्था और न्यायके लिए जिन विशेषाधिकारोंकी आवश्यकता है वे सब उसे ईश्वरसे प्राप्त हैं; इसलिए अपनी शक्तिका प्रयोग करनेके निमित्त वह ईश्वरके सामने ही जवाबदेह है, जनताके सामने नहीं। जेम्स और पार्लमेण्टके बीच जो खींचातानी होती रही और पार्लमेण्टकी स्वीकृति न पाकर जेम्सने जिन तरीकोंसे द्रव्य एकत्र करना चाहा, उन सबका वर्णन करना यहाँ अनावश्यक है, क्योंकि ये समस्त घटनाएँ उस तिक्त अनुभवकी भूमिका मात्र हैं जो उसके पुत्र प्रथम चार्ल्सको प्राप्त हुआ था।

परराष्ट्रनीतिके सम्बन्धमें भी जेम्सका व्यवहार वैसा ही बुद्धिशून्य था जैसा अपनी प्रजाके साथ। जब उसका दामाद फ्रेडरिक * बोहीमियाका राजा हुआ तो उसने उसकी (दामादकी) मदद करनेसे इनकार कर दिया, किन्तु जब सम्राट्ने पैलेटिनेटका राज्य बवेरियाके मैक्सिमीलियनको दे दिया तब जेम्सको यह विचित्र उपाय सूझ पड़ा कि घृणित स्पेनके साथ मित्रता कर उसके राजासे यह अनुरोध किया जाय कि वह 'हेमन्त नरेश' (फ्रेडरिक)को पुनः उसका राज्य लौटा देनेके लिए सम्राट्को फुसलावे। स्वभावतः इंग्लैण्डके प्रोटेस्टेण्टोंको यह तरीका बिलकुल नापसन्द था और अन्तमें इसका परिणाम कुछ भी न निकला।

यद्यपि जेम्सके समयमें यूरोपके मामलोंपर इंग्लैण्डका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, तो भी उसके शासनकालमें जो अद्वितीय लेखक तथा कवि उत्पन्न हुए उन्होंने इंग्लैण्डमें जिस उज्ज्वल साहित्यकी रचना की उसकी आभाने यूरोपके अन्य सब देशोंके साहित्यको मात कर दिया। प्रायः सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि संसारके नाटककारोंमें शेक्सपियरका स्थान सबसे ऊँचा है। यद्यपि उसने अपने बहुतसे नाटक एलिजाबेथकी मृत्युके पहले ही बना डाले थे, तो भी 'ओथेलो', 'किंग लियर,' 'दि टेम्पेस्ट' इत्यादिकी रचना जेम्सके समयमें ही हुई थी। प्रसिद्ध दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ फ्रैंसिस बेकन भी जेम्सके ही समयमें हुआ था। उसने अरस्तूके तर्कशास्त्रपर आश्रित प्रणालीका परित्याग कर प्राकृतिक घटनाओंके ध्यानपूर्ण अवलोकनपर आश्रित मीमांसा करनेकी नयी पद्धतिके अवलम्बन द्वारा वैज्ञानिक खोजको उत्तेजना प्रदान किया। इस समयकी अंग्रेजी भाषाके सौन्दर्य और स्थिरताका सबसे अच्छा नमूना बाइबिलका वह तर्जुमा है जो जेम्सके शासनकालमें किया गया था और जो अब भी अंग्रेजी भाषा बोलनेवाले देशोंमें प्रचलित है।

* पृष्ठ ३०१ देखिये।

प्रथम चार्ल्स अपने पिताकी अपेक्षा अधिक ओजस्वी था, किन्तु वह भी उसीकी तरह केवल अपनी ही इच्छाके अनुसार चलनेका आग्रह करता था। प्रजाका विश्वास-भाजन बननेके प्रयत्नमें वह भी अपने पिताकी तरह चतुरतासे काम न ले सका। जेम्सके शासनकालका प्रजापर जो बुरा प्रभाव पड़ा था उसे दूर करनेके बजाय उसने शीघ्र ही पार्लमेण्टसे झगड़ना शुरू कर दिया। जब पार्लमेण्टने प्रधानतया यह सोचकर उसे रुपया देनेसे इनकार कर दिया कि उसका कृपापात्र, बकिंघमका ड्यूक, सारा रुपया सम्भवतः व्यर्थ ही उड़ा डालेगा, तब चार्ल्सने एक बड़ी सैनिक विजय द्वारा प्रजाको प्रसन्न करनेकी तरकीब सोची।

जब प्रथम जेम्सने स्पेनके साथ मित्रता करनेका विचार त्याग दिया तब चार्ल्स-ने चतुर्थ हेनरीकी लड़की, 'हेनरायटा मेरिआ' नामक फ्रांसीसी राजकुमारीके साथ अपना विवाह कर लिया। इस विवाह-सम्बन्धके होते हुए भी अब चार्ल्सने ह्यूगे-नाट लोगोंकी, जिन्हें रीशल्येने उनके नगर लारोशेलमें घेर लिया था, मदद करनेका निश्चय किया। इसके अतिरिक्त चार्ल्सने लोकप्रिय बननेकी आशासे स्पेनके राजाके साथ भी जो इस समय जर्मनके कैथलिक संघकी जोरोंसे मदद कर रहा था, लड़ाई छेड़नेकी ठानी। अतः पार्लमेण्टसे आवश्यक व्ययकी स्वीकृति न मिलनेपर भी उसने युद्ध छेड़ दिया। अनियमित उपायों द्वारा जो द्रव्य प्राप्त हो सका, उसीकी सहायतासे चार्ल्सने स्पेनका केडिज नामक बन्दरगाह छीननेके तथा प्रतिवर्ष सोने-चाँदीसे लदे हुए अमेरिकासे आनेवाले स्पेनके द्रव्यपूर्ण जलयानोंको पकड़ लेनेके अभिप्रायसे सेनाकी एक टुकड़ी भेजी। यह अपने कार्यमें असफल हुई। ह्यूगेनाट लोगोंकी मदद करनेका प्रयत्न भी निष्फल हुआ।

पार्लमेण्टसे नियमित द्रव्यकी स्वीकृति न मिलनेके कारण चार्ल्स रुपया प्राप्त करनेके लिए उत्पीड़क उपायोंका अवलम्बन करने लगा। कानूनके मुताबिक वह अपनी प्रजासे देनगी या नजरानेके तौरपर रुपया नहीं माँग सकता था, किन्तु ऋण-के रूपमें धन माँगनेकी मनाही उसे न थी, फिर चाहे उसकी अदायगीकी कितनी ही कम आशा क्यों न हो। इस प्रकार जबरदस्ती ऋण देनेसे इनकार करनेपर पाँच भद्र मनुष्य राजाकी आज्ञामात्रसे कैद कर दिये गये। उन्होंने प्रश्न किया कि 'क्या राजाको यह अधिकार है कि वह जिसे चाहे उसे, उसकी गिरफ्तारीके लिए कानूनके मुताबिक कोई कारण बतलाये बिना ही, अपनी इच्छासे ही बन्दी-गृहमें भेज सकता है ?'

इस घटनासे तथा प्रजाके अधिकारोंपर अन्य आघात होनेसे पार्लमेण्टमें उत्तेजना फैल गयी। संवत् १६८५ (सन् १६२८ ई०)में उसने 'पिटीशन आफ राइट' नामका वह सुप्रसिद्ध स्वत्वपत्र तैयार किया जो इंग्लैण्डकी शासन-व्यवस्थाके इतिहासका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। उसमें पार्लमेण्टने राजाका ध्यान उसकी

गैरकानूनी कार्रवाइयोंकी तरफ तथा उसके उन कार्यकर्त्ताओंके कार्योंकी तरफ आकर्षित किया जिन्होंने लोगोंके साथ कई तरहसे छेड़छाड़ की थी। इस कारण पार्लमेण्ट राजासे 'नम्रतापूर्वक प्रार्थना करती है' कि भविष्यमें पार्लमेण्टकी स्वीकृति बिना किसी भी मनुष्यके लिए राजाको कोई भेंट (गिफ्ट), ऋण, 'बीनेवोलेन्स' (कहलानेवाली अवैध आर्थिक सहायता), कर इत्यादि देना आवश्यक न हो। उसमें यह भी कहा गया था कि 'ग्रेट चार्टर' नामक अधिकारोंके घोषणापत्रमें उल्लिखित राज्यके कानूनोंके अनुसार ही कोई स्वतन्त्र मनुष्य गिरफ्तार या दण्डित किया जाना चाहिये, अन्य किसी हालतोंमें नहीं। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी कहा गया था कि किसी भी कारणसे जनताके ऊपर सैनिकोंकी नियुक्ति न की जानी चाहिये। चार्ल्सने बड़ी अनिच्छासे राजाकी शक्तिका नियन्त्रण करनेवाले उन प्रतिनिधियोंकी पुनर्घोषणा स्वीकार की जिन्हें अंग्रेज लोग हमेशासे ही, कमसे कम सिद्धान्ततः, मानते चले आ रहे थे।

चार्ल्स और पार्लमेण्टका झगड़ा धार्मिक मतभेदके कारण और भी गुरुतर हो गया। राजाका विवाह कैथलिक धर्मकी राजकुमारीके साथ हुआ और यूरोप महाद्वीपके देशोंमें भी कैथलिक मतकी ही वृद्धि होती नजर आती थी। डेनमार्कका प्रोटेस्टेण्ट राजा हालमें ही वालेन्स्टाइन तथा टिली द्वारा पराजित हुआ था और रीशलेने ह्यूगेनाटोंको उनके आश्रय-स्थानोंसे भगा देनेमें सफलता प्राप्त की थी। जेम्स तथा चार्ल्स दोनोंने ही इंग्लैण्डके कैथलिकोंकी रक्षाके लिए फ्रांस व स्पेनसे युद्ध छेड़ देनेकी तत्परता दिखलायी थी। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्डमें धर्मसंस्थाकी प्राचीन रीति-रस्मोंकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति फिर बढ़ने लगी थी, जिसे देखकर कामन्स सभाके अधिक कट्टर प्रोटेस्टेण्ट सदस्य विशेष चिन्तित हुए। कई पादरियोंने 'काम्यूनियन टेबिल' (जिसपर पवित्र धार्मिक भोजकी रस्म की जाती है) गिरजाघरके पूर्वी हिस्सेमें फिरसे रख दी जहाँ वह वेदीकी तरह अटल हो गयी और ईश-प्रार्थनाके कुछ अंश फिर गाये जाने लगे।

लोग समझते थे कि कैथलिक सम्प्रदायके अनुयायियोंकी इन रस्मोंके साथ राजाकी भी सहानुभूति है, इस कारण राजा तथा कामन्स सभाके बीच, जिसका आवाहन उसने स्वयं ही अपनी आवश्यकताके कारण कर-वृद्धिकी स्वीकृतिके लिए किया था, पारस्परिक मनोमालिन्य बढ़ता गया। घोर वाद-विवादके पश्चात् संवत् १६८६ (सन् १६२९ ई०) की पार्लमेण्ट राजाने भंग कर दी और भविष्यत्‌में अपनी ही रायसे देशका शासन करनेका निश्चय किया। ग्यारह वर्षोंतक किसी नयी पार्लमेण्टका उद्घाटन नहीं किया गया।

स्वभावसे ही प्रथम चार्ल्स स्वेच्छापूर्वक शासन करनेके अयोग्य था। इसके सिवा

उसके मन्त्री पार्लमेण्टकी सहायताके बिना जिन तरीकोंसे रुपया प्राप्त करनेका यत्न करते थे उनके कारण राजा और भी अप्रिय होता गया और साथ ही पार्लमेंटकी सत्ताके पुनरुद्धारका समय भी निकट आता गया।

इंग्लैण्डमें एक पुराना कानून यह था कि जो लोग एक निश्चत क्षेत्रकी भूमिके अधिकारी हों वे 'नाइट' अवश्य बनाये जायँ, किन्तु जागीरदारीकी प्रथा उठ जानेपर जमीन्दारोंने 'नाइट' की पदवीका प्रयोग करना छोड़ दिया था, क्योंकि अब उसका महत्त्व नहीं रह गया था। यह देखकर राजाके समर्थकोंने सोचा कि इन 'कर्त्तव्य-विमुख' व्यक्तियोंपर जुर्माना करनेसे बहुतसा द्रव्य मिल सकता है। इनके अतिरिक्त जो मनुष्य राजाके लिए रक्षित जंगलोंकी सीमाके भीतर बस गये थे उनपर भी खूब जुर्माना किया गया या बहुतसा पिछला भूमिकर वसूल किया गया।

इन उपायोंसे धन प्राप्त करनेके अतिरिक्त राजाने प्रजासे 'नौका-निर्माण-द्रव्य' (शिप मनी, एक प्रकारका जहाजकर) माँगा। वह एक जहाजी बेड़ा तैयार करना चाहता था। उसे चाहिये था कि भिन्न-भिन्न बन्दर स्थानोंसे ही जहाज बनवानेके लिए कहता जैसी कि प्राचीन प्रथा थी। ऐसा न कर उसने स्वयं जहाज बनानेकी इच्छा की। इस कार्यके लिए चन्दा देनेवालोंको वह जहाज बनवानेके दायित्वसे मुक्त कर देता था। समुद्रसे दूर, देशके भीतरी हिस्सोंमें रहनेवालोंसे भी यह द्रव्य माँगा गया। राजा कहता था कि 'नौका-निर्माण-द्रव्य' कोई कर नहीं है, वह एक प्रकारका चन्दा है जिसे देकर प्रजा अपने देशकी रक्षा करनेके दायित्वसे मुक्त हो जाती है। जान हैम्पडन नामक व्यक्तिने यह नाजायज रकम देनेसे इनकार किया। उसपर मुकदमा चला और यद्यपि राजाके न्यायाधीशोंने उसे दोषी ठहराया तो भी मुकदमेकी कार्रवाईसे यह स्पष्ट हो गया कि देश अधिक समयतक राजाकी स्वेच्छा-चारिता बरदाश्त न करेगा।

संवत् १६९० (सन् १६३३) में चार्ल्सने विलियम लॉडको कैण्टरबरीका प्रधान धर्माध्यक्ष (आर्कबिशप) बनाया। विलियम लॉडका विश्वास था कि रोमकी धर्मसंस्था (पोप-परिचालित कैथलिक सम्प्रदाय) तथा जेनीव्हाकी कैल्विनिस्टिक (प्रोटेस्टेण्ट) धर्मसंस्थाके मध्यवर्ती मार्गका अवलम्बन करनेसे इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाकी और साथ ही सरकारकी भी शक्ति बढ़ेगी। उसने घोषित किया कि प्रत्येक अच्छे नागरिकको राज्यकी ईश-स्तुति-विधिको कमसे कम ऊपरसे ही मंजूर कर लेना चाहिये। हाँ, बाइबिलका तथा धर्मके प्राचीन लेखकोंका अपनी इच्छाके अनुसार अर्थ करनेमें वह स्वतन्त्र है। उसमें राज्य हस्तक्षेप न करेगा। जब लॉड अपने प्रान्तका दौरा करने निकला तब जो पादरी राज्यकी प्रार्थना-पुस्तकको अङ्गीकार न करता, या 'कम्यू-निरन टेबिल' उठाकर गिरजाघरके पूर्वी भागमें रखी जानेका विरोध करता अथवा

ईसाका नाम लेनेपर मस्तक न नवाता वह हठ करनेपर राजाके विशेष धार्मिक न्यायालय (कोर्ट आफ हाई कमीशन)के सामने पेश किया जाता। दोषी साबित होनेपर गिरजेमें उसका जो पद होता वह उससे छीन लिया जाता।

प्रोटेस्टेण्टोंके दो दलोंमेंसे, एक अर्थात् 'साम्य प्रोटेस्टेण्ट दल' (हाई चर्च पार्टी)-वाले विलियम लॉडकी नीतिसे प्रसन्न हुए। ये लोग रोमन कैथलिक सम्प्रदायके धार्मिक भोज (मास)की प्रथा तथा पोपके आधिपत्यको न मानते हुए भी अब भी उक्त सम्प्रदायकी कई प्राचीन रस्मोंके पक्षमें थे। किन्तु 'कट्टर प्रोटेस्टेण्ट दल' (लो चर्च पार्टी)वाले जिन्हें प्यूरिटन भी कहते हैं लॉडकी नीतिके विरोधी थे। ये लोग धर्माध्यक्षोंका पद जारी रखनेके खिलाफ न थे, पर पादरियोंका कोई खास पोशाक पहनना, बपतिस्माके समय 'क्रास' (+)का चिह्न धारण करना इत्यादि 'अनावश्यक रीतियोंसे' उन्हें चिढ़ थी। प्रेस्बीटेरियन दलवाले प्यूरिटनोंसे ही मिलते-जुलते थे। हाँ, एक-दो बातोंमें वे इनसे भी बढ़े हुए थे और धर्मसंस्थाकी व्यवस्थामें कैल्विनकी प्रणालीका अनुगमन करना चाहते थे।

इनके अतिरिक्त एक 'स्वतन्त्र प्रोटेस्टेण्ट दल' (दि इण्डिपेण्डेण्ट्स या सेपरे-टिस्ट्स)भी था। इस दलवाले न तो इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाके संगठनको ही मानते थे और न प्रेस्बीटेरियन दलका ही संगठन उन्हें मंजूर था। वे इस बातके पक्षमें थे कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपना संगठन अपने स्वतन्त्र ढंगसे करे। सरकारने इन लोगोंको अपनी छोटी-छोटी सभाएँ करनेकी मुमानियत कर दी थी। इनके कोई १६०० अनुयायी हालैण्ड चले गये। दक्षिण हालैण्डके लाइडन नगरमें जो लोग जा बसे थे उन्होंने संवत् १६७७ (सन् १६२० ई०)में 'मेफलावर' जहाजमें अपने कुछ साथियोंको पश्चिमी गोलार्द्धमें बसनेके लिए भेज दिया। ये ही बादमें 'पिल-ग्रिम फादर्स' के नामसे विख्यात हुए और इन्होंने 'न्यू इंग्लैण्ड' (संयुक्तराज्य अमे-रिकाके उत्तर-पूर्वीय भाग) की नींव डाली।

स्काटलैण्डसे युद्ध छिड़ जानेके कारण चार्ल्सको धन प्राप्त करनेके लिए पार्लमेण्ट-का सहारा ताकनेके लिए विवश होना पड़ा। अब स्काटलैण्डसे युद्ध क्यों छिड़ा, इसका हाल भी सुनिये।

स्काटलैण्डमें रानी मेरीके समयमें ही जान नाक्सने प्रेस्बीटेरियन मत फैला दिया था, किन्तु धर्माध्यक्षोंका पद उन सर्दारोंके हितकी दृष्टिसे अभी तोड़ा नहीं गया था जो उनकी आमदनीसे लाभ उठाते थे। प्रथम जेम्स प्रेस्बीटेरियन लोगोंसे बहुत चिढ़ता था, क्योंकि वह उन्हें एकतन्त्र शासनका विरोधी समझता था। उसका कहना था कि प्रेस्बीटेरियन दलके मेंबरों अनुयायियोंकी अपेक्षा, जिनकी [illegible] [illegible] आगे मेरी कुछ न चलेगी, मेरे ही द्वारा नियुक्त किये गये

कुछ धर्माध्यक्षोंसे विशेष लाभ होगा। इसलिए उसके शासनके पूर्वकालमें स्काट-लैण्डमें धर्माध्यक्षोंकी नियुक्ति फिरसे की गयी और उन्हें कुछ प्राचीन अधिकार भी मिल गये, किन्तु प्रेस्बीटेरियन अब भी अधिक संख्यामें मौजूद थे और वे धर्माध्यक्षोंको राजाकी इच्छा-पूर्तिका साधन समझते थे।

जब चार्ल्सने इंग्लैण्डमें प्रचलित प्रार्थना-पुस्तकको संशोधित रूपमें अङ्गीकार करनेके लिए स्काटलैण्डवालोंको विवश करना चाहा तब संवत् १६९५ (सन् १६३८ ई०) में उन लोगोंने एक 'राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र' तैयार किया। इसपर हस्ताक्षर करनेवालोंने यह प्रतिज्ञा की कि हम 'गास्पेल' ('सुसमाचार', ईसाका उपदेश)की पवित्रता और स्वतन्त्रता पुनः स्थापित करेंगे। हस्ताक्षर करनेवाले अधिक-संख्यक सदस्योंके मतसे इसका अर्थ प्रेस्बीटेरियन मतका प्रसार करना ही था। यह देखकर चार्ल्सने स्काट लोगोंको बलपूर्वक दबाना चाहा। पैसा पासमें न होनेके कारण उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनीके जहाजोंमें आयी हुई काली मिर्च उधार खरीद ली और उसे सस्ते भावसे बेचकर नकद धन वसूल कर लिया, किन्तु जिन सैनिकोंको उसने स्काट लोगोंसे लड़नेके लिए एकत्र किया उन्होंने इसमें विशेष उत्साह न दिखलाया। अतः अन्तमें विवश होकर चार्ल्सने पार्लमेण्टको आमन्त्रित किया। यह कई वर्षोंतक कायम रहनेके कारण 'लम्बी पार्लमेण्ट' कहलाती है।

लम्बी पार्लमेण्टने सबसे पहले राजाके कृपापात्र मन्त्री स्ट्रैफोर्डको तथा प्रधान धर्माध्यक्ष विलियम लॉडको 'टावर आफ लण्डन' (लन्दन-दुर्ग)में कैद कर दिया। पार्लमेण्टके बिना शासन करनेमें राजाकी विशेष सहायता करनेके कारण ही स्ट्रैफोर्डसे कामन्स सभा बहुत चिढ़ गयी थी। उसपर राज्यको दगा देनेका दोष लगाया गया। संवत् १६९८ (सन् १६४१ ई०)में उसे फाँसी दे दी गयी। चार वर्ष बाद लॉडकी भी यही दशा हुई। पार्लमेण्टने अपनी स्थिति दृढ़ करनेके उद्देश्यसे एक 'त्रिवर्षीय विधान' भी बना डाला जिसके अनुसार तीन वर्षमें कमसे कम एक बार पार्लमेण्टका एकत्र होना आवश्यक था, चाहे राजा उसे आमन्त्रित करे या न करे। 'स्टार चैम्बर' नामक विशेष न्यायालय तथा 'हाई कमीशन कोर्ट' नामका धार्मिक न्यायालय—ये दोनों, जिनके द्वारा राजाके कई विरोधियोंको मनमानी सजा दी गयी थी, तोड़ दिये गये और 'नौका-निर्माण-द्रव्य' (शिप-मनी)का लेना कानून-विरुद्ध घोषित किया गया। इस समय चार्ल्सकी पत्नी पोपसे द्रव्य तथा सैनिक मँगानेका प्रयत्न कर रही थी। जब चार्ल्स स्वयं स्काटलैण्ड गया तो यह शङ्का की गयी कि वह उनसे सैनिक सहायता लेने गया है। परिणाम यह हुआ कि पार्लमेण्टने एक 'ग्रैण्ड रिमान्स्ट्रेन्स' (विस्तृत विरोधपत्र) तैयार किया। इसमें चार्ल्सकी सब गलतियोंकी फेहरिस्त दी गयी थी और इस बातपर जोर दिया गया था कि भविष्यत्में राजाके मन्त्री पार्ल-

मेण्टके सामने उत्तरदायी हों। पार्लमेण्टने इस विरोधपत्रको छपवाकर सारे देशमें वितरित करनेकी आज्ञा दी।

कामन्स सभासे तंग आकर चार्ल्सने पाँच मुख्य नेताओंको गिरफ्तार करनेकी धमकी देकर विरोधियोंको डरवाना चाहा, किन्तु जब वह कामन्स सभामें पहुँचा तो उसे विदित हुआ कि उक्त नेताओंने लन्दनमें आश्रय लिया है। बादमें लन्दननिवासी उन्हें फिर, खुशी मनाते हुए, वेस्टमिन्सटर वापस ले आये।

अब यह स्पष्ट हो गया कि पार्लमेण्ट और चार्ल्समें मुठभेड़ अवश्य होगी, इसलिए दोनों ओर सैनिकोंका संग्रह किया जाने लगा। चार्ल्सके समर्थक 'कैवेलियर' कहलाते थे। इनमें अधिकांश कुलीन सरदारों तथा तथा पोपके अनुयायियोंके अतिरिक्त कामन्स सभाके कुछ ऐसे सदस्य भी शामिल थे जिन्हें यह भय था कि इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाका स्थान कहीं प्रेस्बीटेरियन सम्प्रदाय न ग्रहण कर ले। पार्लमेण्टी दलवाले 'राउण्ड हेड'(गोल मस्तकवाले) कहलाते थे, क्योंकि उनमेंसे कई अपने बाल कतरवाकर बिलकुल छोटे-छोटे करा लेते थे।

'राउण्ड हेड' अर्थात् पार्लमेण्टी दलवालोंने थोड़े ही समयके बाद ओलिव्हर क्रॉमवेलको अपना नेता बनाया। क्रॉमवेलने ईश्वरको माननेवाले ऐसे मनुष्योंकी दृढ़ सेना संघटित की जो अपवित्र शब्दों या छिछोरपनकी बातें न करते हुए, प्रत्युत धार्मिक भजन गाते हुए शत्रुपर आक्रमण करते थे। उत्तरी इंग्लैण्ड राजाके पक्षमें था। आयर्लैण्डसे भी उसे मदद मिलनेकी आशा थी, क्योंकि वहाँ उसका तथा कैथलिक सम्प्रदायका समर्थन करनेवाले बहुत मनुष्य थे।

यह गृहयुद्ध कई वर्षोंतक चलता रहा और पहले वर्षको छोड़कर बादमें राजपक्षकी प्रायः हार ही होती गयी। मुख्य लड़ाई मार्स्टन मूरमें हुई। संवत् १७०१ (सन् १६४४ ई०) और फिर अगले वर्ष नेजबीका युद्ध हुआ जिसमें राजाको गहरी शिकस्त खानी पड़ी। राजाकी चिट्ठी पत्रियोंका संग्रह उसके शत्रुओंके हाथ लगा, जिससे उन्हें विदित हो गया कि किस तरह वह फ्रांस तथा आयर्लैण्डकी सेना इंग्लैण्डमें लानेका प्रयत्न कर रहा था। यह देखकर पार्लमेण्टने युद्धमें अपनी ओर भी अधिक शक्ति लगा दी। कई स्थानोंपर परास्त होकर राजाने संवत् १७०३ (सन् १६४६ ई०)में पार्लमेण्टकी मददके लिए आयी हुई स्काटलैण्डकी सेनाकी शरण ली। स्काटलैण्डवालोंने उसे शीघ्र ही पार्लमेण्टके हवाले किया। इसके बाद दो वर्षतक चार्ल्सने बन्दीकी ही हालतमें, बारी-बारीसे भिन्न-भिन्न दलोंके साथ सन्धिकी बातचीत की, किन्तु उसने सबको धोखा दिया।

कामन्स सभामें ऐसे बहुतसे मनुष्य थे जो अब भी राजाके पक्षमें थे। संवत् १७०५के पौष (दिसम्बर, सन् १६४८ ई०)में, राजाको वाइट द्वीपमें कैद करनेके बाद,

इन लोगोंने उसके साथ समझौता करनेका प्रस्ताव किया, किन्तु सैनिकोंका दल इसके विरुद्ध था। दूसरे ही दिन उनका एक प्रतिनिधि 'कर्नल प्राइड' थोड़ेसे सैनिकोंको साथमें लेकर सभा-भवनके द्वारपर खड़ा हो गया और राजाका पक्ष लेनेवाले सदस्योंको प्रवेश करनेसे रोकने लगा। यह जबरदस्ती इतिहासमें 'प्राइड्ज पर्ज' (प्राइड-कृत कामन्स सभाकी सफाई)के नामसे प्रसिद्ध है।

इस प्रकार कामन्स सभामें अब उन्हीं लोगोंका बोलबाला रह गया जो राजाके कट्टर विरोधी थे। उन्होंने राजापर मुकदमा चलानेका प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि जनता द्वारा निर्वाचित होनेके कारण कामन्स सभा ही इंग्लैण्डमें अधिपति संस्था है और सारी न्याय्य शक्तिका केन्द्र वही है, इसलिए किसी मामलेपर विचार करनेके लिए न तो राजाकी आवश्यकता है और न लार्ड सभाकी। इस अवशिष्ट पार्लमेण्टने एक विशेष उच्च न्यायालय स्थापित किया जिसमें चार्ल्सके कट्टर विरोधी ही न्यायाधीश बने। उनके फैसलेके अनुसार १७ माघ, संवत् १७०५ (३० जनवरी, सन् १६४८ ई०)को लन्दनमें अपने ह्वाइटहाल महलके सामने चार्ल्स फाँसीपर चढ़ा दिया गया। ऊपरके विवरणसे स्पष्ट है कि वास्तवमें जनता चार्ल्सके प्राणोंकी भूखी न थी, किन्तु अपनेको जनताके प्रतिनिधि कहनेवाले इने-गिने उग्र मतके व्यक्तियोंने ही उसे फाँसी दी थी।

अब इस बची-खुची पार्लमेण्टने, जिसे इतिहासमें 'रम्प पार्लमेण्ट' अर्थात् भग्नावशिष्ट पार्लमेण्ट कहते हैं, यह घोषणा कर दी कि आजसे इंग्लैण्ड एक प्रकारका स्वायत्त राष्ट्र-मण्डल या प्रजातन्त्र हुआ। अब न तो यहाँ कोई राजा होगा और न लार्ड सभा (कुलीनोंकी सभा) ही रहेगी। सेनाका अधिपति क्रामवेल ही इस समय इंग्लैण्डका वास्तविक शासक था। उसका प्रधान समर्थक 'स्वतन्त्र दल' ही था, अतः यह देखते हुए कि इस दलके लोगोंके धार्मिक विचारोंके साथ तथा राजाकी सत्ताका लोप करनेके साथ इंग्लैण्डके कितने कम लोगोंको सहानुभूति थी, क्रॉमवेलका इतने समयतक ठहरना आश्चर्यकी बात है। प्रेस्बीटेरियन लोगोंतककी सहानुभूति राज्यके न्याय्य उत्तराधिकारी द्वितीय चार्ल्सके साथ थी। इतना होते हुए भी क्रॉमवेल उन सिद्धान्तोंका प्रतिबिम्ब था जिनके लिए राजाके अत्याचारका विरोध करनेवाले स्वयं लड़े थे। इसके अतिरिक्त वह प्रबल एवं चतुर शासक भी था और पचास हजार सुसंगठित सेना उसके अधीन थी। यदि ऐसा न होता तो प्रजातन्त्र कुछ महीनोंसे अधिक समयतक कायम न रह सकता।

क्रॉमवेलके सामने कई कठिनाइयाँ थीं। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा आयर्लैण्ड ये तीनों राज्य अलग-अलग हो गये थे। आयर्लैण्डके कुलीन सरदारों तथा कैथलिकोंने द्वितीय चार्ल्सको राजा घोषित किया। प्रजातन्त्रको नष्ट करनेके लिए 'आरमण्ड'

नामके एक प्रोटेस्टेण्ट नेताने आयर्लैण्डके कैथलिकों तथा इंग्लैण्डके उन प्रोटेस्टेण्टोंकी एक सेना तैयार की जो राजाके पक्षमें थे। यह देखकर क्रॉमवेल आयर्लैण्ड पहुँचा। ड्रोघेड ले चुकनेके बाद उसने निर्दयतापूर्वक दो हजार 'असभ्य दुष्टों'की हत्या कर डाली। एक नगरके बाद दूसरे नगरने क्रॉमवेलके हाथ आत्मसमर्पण किया और संवत् १७०९ (सन् १६५२ ई०)में आयर्लैण्डको दुबारा जीतनेका काम समाप्त हुआ। उसका एक बड़ा हिस्सा छीनकर अंग्रेजोंको दे दिया गया और वहाँके जमींदार पहाड़ोंपर भगा दिये गये। इधर संवत् १७०७ (सन् १६५० ई०)में द्वितीय चार्ल्स स्काटलैण्ड पहुँचा। प्रेस्बिटेरियन-मतावलम्बी राजा बनना स्वीकार करनेपर सारा स्काटलैण्ड उसकी मददके लिए तैयार हो गया, किन्तु स्काटलैण्डका दमन करनेमें आयर्लैण्डसे भी कम समय लगा।

यह सच है कि क्रॉमवेलको घरके ही मामलोंसे फुरसत न थी, फिर भी वह देशके बाहर डच लोगोंको भी परास्त करनेमें समर्थ हुआ। ये लोग इस समय इंग्लैण्डके व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वी हो गये थे। हालैण्डके आम्स्टरडम तथा राटरडम नगरोंसे चलनेवाले जहाज संसारके व्यापारी जहाजोंमें सबसे अच्छे थे। यूरोप तथा उप-निवेशोंके बीच माल लाने-ले जानेका काम इन्हींके हाथमें था। यह देखकर इंग्लैण्ड-की पार्लमेण्टने एक 'नेव्हीगेशन एक्ट' (समुद्रयात्रा विधान) बनाया। इसके अनुसार इंग्लैण्ड आनेवाला माल केवल अंग्रेजी जहाजों द्वारा ही पहुँचाया जा सकता था या फिर जिस देशका माल हो उसी देशके जहाज उसे इंग्लैण्ड ले जा सकते थे, अन्य देशके नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि हालैण्ड और इंग्लैण्डमें व्यापारिक युद्ध छिड़ गया। यह पहला ही युद्ध था, जिसका कारण पूर्वके युद्धोंकी तरह धार्मिक मतभेद न होकर व्यापारिक प्रतियोगिता थी।

प्रथम चार्ल्सकी तरह क्रॉमवेलकी भी अधिक दिनोंतक पार्लमेण्टकी नहीं बनी। अवशिष्ट पार्लमेण्टके सदस्य घूस लेने तथा सार्वजनिक पदोंपर अपने ही सम्बन्धियों-को नियुक्त करनेका प्रयत्न करनेके कारण बदनाम हो गये। निदान क्रॉमवेलने उनको इस अन्याय और स्वार्थपरायणताके निमित्त उन्हें खूब फटकारा। एक सदस्यके बीचमें बोल उठनेपर उसने कहा "ठहरिये, ठहरिये, अब बहुत हुआ। मैं इस बकवासका अभी अन्त किये देता हूँ। यह उचित नहीं है कि आप लोग यहाँ अधिक समय तक बैठें।" यह कहकर उसने अपने सैनिकोंको बुलाकर सदस्योंको सभाभवनके बाहर निकलवा दिया। इस प्रकार संवत् १७१० (सन् १६५३ ई०)में पार्लमेण्टका अन्त कर उसने स्वयं एक नूतन पार्लमेण्ट आमन्त्रित की। इसमें ऐसे ईश्वरभक्त सदस्य निर्वाचित हुए जिन्हें उसने या उसकी सेनाके अफसरोंने चुना। इतिहासमें यह पार्लमेण्ट 'बेयरबोन पार्लमेण्ट'के नामसे प्रसिद्ध है। 'प्रेजगाड बेयरबोन'

नामका लन्दनका व्यापारी इसका एक प्रसिद्ध सदस्य था, उसीके कारण पार्लमेण्टका यह नाम पड़ा। इन धर्मशील मनुष्योंमेंसे अधिकांश व्यवहार-कुशल न थे और उन्हें कोई बात समझाना बड़ा कठिन था। एक दिन जाड़ेकी ऋतुमें (संवत् १७१०—सन् १६५३ ई०) इनमेंसे कुछ अधिक समझदार सदस्य बड़े तड़के ही सभाभवनमें पहुँच गये। विरोधियोंको कुछ कहने-सुननेका मौका देनेके पहले ही उन्होंने पार्लमेण्टके भंग होनेकी घोषणा कर दी और सर्वोच्च अधिकार क्रॉमवेलके हाथ सौंप दिया।

यद्यपि क्रॉमवेलने राजाकी उपाधि ग्रहण नहीं की तो भी 'लार्ड प्रोटेक्टर' (सर्वोच्च संरक्षक) होनेके कारण लगभग पाँच वर्षोंतक वह राजाके ही समान इंग्लैण्डका अधिपति रहा। आन्तरिक शासनकी स्थायी व्यवस्था करनेमें वह समर्थ नहीं हुआ, किन्तु परराष्ट्रनीतिके सम्बन्धमें उसने असाधारण योग्यता प्रकट की। उसने फ्रांससे मित्रता स्थापित की। अंग्रेजी सेनाने स्पेनपर विजय प्राप्त करनेमें फ्रांसकी मदद की। इसके बदलेमें इंग्लैण्डको डंकर्क तथा पश्चिमी द्वीपपुंजका जमैका द्वीप मिला।

संवत् १७१५के ज्येष्ठ (मई, सन् १६५८ ई०)में क्रॉमवेल बीमार पड़ा और इसी समय इंग्लैण्डमें एक बड़ा तूफान भी उठा। यह देखकर राजाके पक्षपाती 'कैव्हेलियर' लोग कहने लगे कि राज्यापहारीकी आत्माको ले जानेके लिए स्वयं शैतान आया है। यह सत्य है कि क्रॉमवेलका अन्तिम समय आ गया था, पर शैतानसे उसकी आत्माका कोई ताल्लुक न था। उसने अपने सजातीयोंके निमित्त सच्चे दिलसे काम करते हुए जीवन बिताया था। मृत्युके पहले उसने मर्मस्पर्शी शब्दोंमें यह प्रार्थना की थी—'परमात्मन्, यद्यपि मैं बिलकुल अयोग्य हूँ, तो भी तूने अपने मनुष्योंकी भलाई करनेके लिए मुझे अपना तुच्छ साधन बनाया और इस प्रकार अपनी सेवा करनेका अवसर दिया। उन लोगोंने मुझे बड़ा मान दे रखा है, यद्यपि कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो मेरी मृत्यु चाहते हैं और जो मेरे मरनेपर प्रसन्न होंगे। प्रभो, जो लोग इस तुच्छ कीड़ेके भस्मको पाँवोंके नीचे कुचलना चाहते हैं, उन्हें तू क्षमा कर, क्योंकि वे भी तेरे ही प्राणी हैं। साथ ही इस मूर्खतापूर्ण छोटीसी प्रार्थनाके लिए प्रभु ईसामसीहके नातेसे ही मुझे क्षमा कर और यदि तेरी कृपा हो तो मुझे शान्ति दे। ओम् शान्तिः।'

क्रॉमवेलकी मृत्युके बाद उसके लड़के रिचर्डने राजकाज चलानेमें अपनेको असमर्थ पाकर शीघ्र ही पदत्याग कर दिया। लम्बी पार्लमेण्टके बचे-खुचे सदस्य फिर एकत्र हुए, किन्तु वास्तवमें सब अधिकार सैनिकोंके ही हाथमें थे। संवत् १७१७ (सन् १६६० ई०)में जार्ज मौंक जो स्काटलैण्डकी सेनाका अध्यक्ष था, अराजकताका दमन करनेके लिए इंग्लैण्ड आया। उसे शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि अब अवशिष्ट पार्लमेण्ट-

का समर्थक कोई नहीं रहा। उसके सदस्योंने स्वयं ही पार्लमेण्टके भंग होनेकी घोषणा कर दी। राष्ट्रने द्वितीय चार्ल्सका स्वागत किया, क्योंकि सैनिकोंके शासनकी अपेक्षा लोग उसका शासन ही बेहतर समझते थे। नयी पार्लमेण्टने, जिसमें कामन-सभा तथा लार्ड-सभा दोनों ही सम्मिलित थीं, राजाके पाससे आये हुए दूतका स्वागत किया और यह निश्चय किया कि "इस देशके प्राचीन तथा मूल कानूनोंके अनुसार शासन-कार्य राजा, लार्ड-सभा तथा कामन-सभाके द्वारा होता है और होना चाहिये।" इस प्रकार प्यूरिटनोंकी राज्यक्रान्ति तथा क्षणिक प्रजातन्त्रके बाद स्टुअर्टवंशकी पुनः स्थापना हुई।

अपने पिताकी ही तरह द्वितीय चार्ल्स भी अपनी इच्छाके मुताबिक चलना ज्यादा पसन्द करता था, पर वह प्रथम चार्ल्सकी अपेक्षा अधिक योग्य था। उसे पार्लमेण्टकी इच्छाके अनुसार चलना अच्छा न लगता था, किन्तु साथ ही वह देशको अपने विरुद्ध उभाड़ना भी नहीं चाहता था। वह तथा उसके दरबारी हलके एवं सदाचारके विरुद्ध आमोद-प्रमोद पसन्द करते थे। पुनः स्थापना-कालके नीतिभ्रष्ट नाटकोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि जिन लोगोंको प्यूरिटनोंकी सत्ताके कारण उचित आमोद-प्रमोदसे वञ्चित रहना पड़ा था, उन्होंने मानों देशकी प्रथा एवं शालीनताके बन्धनोंकी अवहेलना करते हुए मनमाना आनन्दोपभोग करनेकी इच्छासे ही इस अवसरका स्वागत किया।

चार्ल्सकी प्रथम पार्लमेण्टमें दोनों दलोंके सदस्योंकी संख्या प्रायः बराबर ही थी, किन्तु दूसरी पार्लमेण्टमें राजाके पक्षवाले 'कैवेलियर' लोग ही अधिक थे। इसका मत राजाके इतना अनुकूल था कि अठारह वर्षतक राजाने इसका विसर्जन नहीं किया। यद्यपि इसका निपटारा अब भी नहीं हुआ था कि सर्वोच्च अधिकार राजाको प्राप्त है या पार्लमेण्टको, तो भी इस पार्लमेण्टने यह प्रश्न ही नहीं उठाया। किन्तु इसने कई प्रतिकूल कानून बनाकर जो इंग्लैण्डके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हैं, प्यूरिटनोंके प्रति [illegible] ही अपना विरोध प्रकट किया। इसने यह आज्ञा निकाली कि जो इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाके नियमानुसार पवित्र भोज (यूकेरिस्ट)में सम्मिलित नहीं हुए हैं वे म्युनिसिपैलिटियोंमें किसी पदपर नियुक्त नहीं हो सकते। प्रेस्बिटेरियन तथा स्वतन्त्र दलवालों, दोनोंही ओर इसका लक्ष्य था। संवत् १७१९ (सन् १६६२ ई०) में यूनीफार्मिटी एक्ट (धार्मिक शासन-विधान) बनाया गया। इसके अनुसार यदि कोई पादरी प्रार्थना-पुस्तकका कोई भी अंश न माने तो वह धर्मसंस्थाके किसी पदपर कायम नहीं रह सकता। इसपर दो हजार पादरियोंने अपने अन्तःकरणकी स्वतन्त्रताके खातिर त्यागपत्र दे दिया। इन कानूनोंके कारण वे सब लोग, जो इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाकी प्रत्येक बातसे सहमत न थे, एक ही दर्जेके [illegible]

होने लगे जो इस समय भी 'डिसेण्टर्स' अर्थात् पृथक् धर्मवादियोंका दल कहलाता है। इसमें 'इण्डिपेण्डेण्टस' (स्वतन्त्र प्रोटेस्टेण्ट दलवाले), प्रेसबिटेरियन दलवाले तथा 'बैप्टिस्ट' और 'मित्र-समिति' या 'क्वेकर्स' कहे जानेवाले नये दलोंके लोग शामिल थे। इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवालोंने देशके धर्म और राजनीतिमें हस्तक्षेप करनेका विचार छोड़ दिया। अब वे केवल इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थासे पृथक् अपने निजी तरीकेसे ईश्वरकी उपासना करनेकी स्वतन्त्रता चाहते थे।

इस समय सहसा राजाकी ओरसे धार्मिक सहिष्णुताको आश्रय मिला। यद्यपि राजा विशेष रूपसे सदाचारी न था तो भी वह धर्ममें काफी दिलचस्पी रखता था और वह भीतर ही भीतर धार्मिक मामलोंमें बड़ा उदार था। उसने पार्लमेण्टसे धार्मिक-साम्य-विधानमें कुछ अपवाद जोड़कर उसकी कठोरताको किञ्चित् कम कर देनेके लिए अनुमति माँगी। कैथलिकों तथा इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थासे सहमत न होनेवालोंकी स्थितिका सुधार करनेके अभिप्रायसे उसने धार्मिक सहिष्णुताके पक्षमें एक घोषणा भी निकाली। इससे यह शङ्का उत्पन्न हुई कि इस सहिष्णुताके कारण कहीं इंग्लैण्डके धार्मिक मामलोंपर पुनः पोपका आधिपत्य न स्थापित हो जाय। अतः पार्लमेण्टने संवत् १७२१ (सन् १६६४ ई०)में 'कनवेण्टिकल एक्ट' (प्रतिकूल-धर्म-सभा-विधान) नामका कठोर कानून बना दिया। जो मनुष्य किसी ऐसी सभामें सम्मिलित होता जो इंग्लैण्डकी धर्मसंस्थाके अनुकूल न हो, उसे इस कानूनके अनुसार किसी दूरस्थ उपनिवेशमें निर्वासित किये जानेतकका दण्ड दिया जा सकता था। कुछ वर्षोंके बाद चार्ल्सने पुनः एक घोषणा द्वारा रोमन कैथलिक मतवालों तथा 'पृथक्-धर्मवादियों' (डिसेण्टर्स) की पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता स्वीकार की। पार्लमेण्टने राजाको केवल अपना उदार मन्तव्य वापस करनेके लिए ही विवश नहीं किया, प्रत्युत उसने एक 'टेस्ट एक्ट' (परीक्षात्मक विधान) भी बना दिया जिसके अनुसार आंग्ल देशीय धर्मसंस्थाको न माननेवाले सार्वजनिक पदोंके अधिकारी नहीं हो सकते थे।

क्रामवेलने हालैण्डसे जो लड़ाई शुरू की थी उसे चार्ल्सने भी जारी रखा, क्योंकि चार्ल्स भी इंग्लैण्डका व्यापार बढ़ाना तथा नये उपनिवेश बसाना चाहता था। समुद्री शक्तिमें दोनों देश बराबर ही थे, किन्तु संवत् १७२१ (सन् १६६४ ई०)में अंग्रेजोंने हालैण्डवालोंके पश्चिमी द्वीपपुञ्ज—'वेस्ट इण्डीज'—के कुछ द्वीप छीन लिये और उनका मनहटन द्वीपका उपनिवेश भी अंग्रेजोंके अधिकार में आ गया जिसका नाम चार्ल्सके भाईके सम्मानमें 'न्यूयार्क' रखा गया। संवत् १७२४ (सन् १६६७ ई०)में इंग्लैण्ड और हालैण्डमें सन्धि हो गयी और जीते हुए प्रदेश इंग्लैण्डको ही मिले। तीन वर्षके बाद चौदहवें लूईने चार्ल्सको फुसलाकर उसके साथ एक गुप्त सन्धि की जिसके अनुसार चार्ल्सने हालैण्डसे फिर लड़ाई शुरू करनेमें लूईकी मदद करना मंजूर

किया। लूई हालैण्डसे चिढ़ा हुआ था, क्योंकि जब उसने अपनी स्त्री मेरिआथेरेसाके नामसे, जो स्पेनके राजा चतुर्थ फिलिपकी पुत्री थी, नेदरलैण्डका वह भाग जो स्पेनके अधीन था, छीन लेना चाहा, तब हालैण्डने उसका विरोध किया था। चार्ल्सने लूईकी सहायताका जो वचन दिया था उसके बदलेमें लूईने उस समय धन तथा सेनासे चार्ल्सकी सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। जब वह खुलेआम अपनेको कैथलिक मतका अनुयायी प्रकट करना उचित समझे—कुछ चुने हुए लोगोंके सामने तो उसने अपना कैथलिक मत ग्रहण करना कबूल ही कर लिया था, किन्तु चार्ल्सके भगिनी-पुत्र आरेञ्जके विलियमने, जो बादमें इंग्लैण्डका राजा हुआ, हालैण्डवालोंको सामना करते रहनेके लिए उत्साहित किया। फल यह हुआ कि लूईको इस दृढ़-संकल्पवाली जातिको जीतनेका विचार त्याग देना पड़ा। संवत् १७३१ (सन् १६७४)में सन्धि हुई और फिर शीघ्र ही लूईके विरुद्ध हालैण्ड तथा इंग्लैण्डमें मित्रता हो गयी, क्योंकि अब यूरोप मात्रके लिए लूई सबसे अधिक खतरनाक समझा जाने लगा।

द्वितीय चार्ल्सकी मृत्युपर उसका भाई द्वितीय जेम्स राजा हुआ। वह स्पष्ट रूपसे कैथलिक मतका उपासक था और उसकी द्वितीय स्त्री 'मोडेनाकी मेरी' भी कैथलिक मतको ही माननेवाली थी। जेम्स चाहता था कि चाहे जो हो, इंग्लैण्डमें कैथलिक मतकी स्थापना पुनः की जाय। जेम्सकी लड़की मेरीका विवाह, जो उसकी पहली स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी, ऑरेञ्जके राजकुमार विलियमके साथ हुआ था। इंग्लैण्ड-निवासी सम्भवतः इस आशासे जेम्सको राज्य करनेमें बाधा न देते कि उसके बाद उसकी लड़की मेरी जो प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बिनी थी, राजगद्दीके सिंहासनपर बैठेगी, किन्तु जब कैथलिक मतकी उसकी दूसरी रानीसे पुत्र उत्पन्न हुआ और जब जेम्सने कैथलिक लोगोंका पक्ष ग्रहण करनेका अपना उद्देश्य स्पष्ट प्रकट कर दिया, तब प्रोटेस्टेण्टोंके एक दलने ऑरेञ्जके विलियमके पास दूत भेजकर यह अनुरोध किया कि आप आइये और इंग्लैण्डका शासन कीजिये।

प्रथम चार्ल्स, हेनरायटा मेरिआका पति
(संवत् १६८२-१७०६)

- द्वितीय चार्ल्स (सं० १७१७-१७४२)
- मेरी, ऑरेंजके द्वितीय विलियमकी स्त्री
  - तृतीय विलियम, जेम्सकी पुत्री मेरीका पति (सं. १७४६-१७५९)
- द्वितीय जेम्स, एन हाइडका तथा मोडेनाकी मेरीका पति
  - मेरी, तृतीय विलियमकी स्त्री
  - एन (सं. १७५९-१७७१)
  - जेम्स एडवर्ड प्रिटेंडर
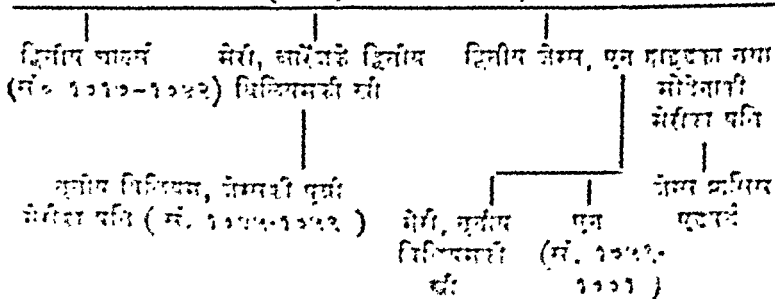
विलियम संवत् १७४५ के मार्गशीर्ष (नवम्बर १६८८ ई०)में इंग्लैण्ड पहुँचा। लन्दनमें सभी प्रोटेस्टेण्टोंने उसका स्वागत किया। जेम्सने विलियमका सामना करना चाहा, किन्तु उसकी सेनाने लड़नेसे इनकार कर दिया और सहायकों-ने भी साथ छोड़ दिया। निदान विवश होकर जेम्स फ्रांस चला गया। नयी पार्लमेण्टने सिंहासनके रिक्त होनेकी घोषणा कर दी, क्योंकि द्वितीय जेम्सने 'जेजूइट लोगोंकी तथा अन्य दुराचारियोंकी सलाह मानकर मूल कानूनोंका उल्लङ्घन किया है और देशके बाहर चले जाकर राज्यका परित्याग कर दिया है।'

अब एक स्वत्व-घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। इसमें जेम्स द्वारा देशके सांगठनिक कानूनके उल्लङ्घनकी निन्दा की गयी और विलियम तथा मेरी इंग्लैण्डके संयुक्त शासक मान लिये गये। इंग्लैण्डकी शासन-पद्धतिके इतिहासमें स्वत्व—आवे-दनपत्र (पिटीशन आफ राइटस) तथा बृहत् अधिकारपत्र (मैग्ना कार्टा) की तरह इस स्वत्व-घोषणापत्रको भी विशेष महत्वका स्थान प्राप्त है। इसमें भी उन्हींकी तरह अंग्रेज जातिके मूल अधिकारोंकी घोषणा की गयी थी और राजाकी स्वेच्छ:-चारिताके मार्गमें रुकावटें डाली गयी थीं। संवत् १७४५ (सन् १६८८ ई०)की इस शान्तिपूर्ण राज्यक्रान्ति द्वारा अंग्रेजोंने स्टुअर्टवंशीय राजाओं और ईश्वरदत्त अधिकार-से शासन करनेके उनके आग्रहसे अपना पीछा छुड़ाया तथा एक बार फिर अपनेको रोमके धार्मिक अधिपत्यका विरोधी प्रकट किया।

अध्याय २१

चौदहवें लूईके शासनकालमें फ्रांसका अभ्युदय

चौदहवें लूईके अनियन्त्रित शासनकालमें (संवत् १७००-१७७२) यूरोपीय मामलोंके लिहाजसे फ्रांसको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। धार्मिक युद्धोंके बन्द हो जानेपर चतुर्थ हेनरीकी बुद्धिमत्तासे राजाका प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया। चतुर्थ हेनरीने ह्यूगेनाट लोगोंको, उनकी रक्षाके विचारसे, जो विशेषाधिकार दे रखे थे उन्हें छीनकर रीशलूने राजाकी शक्ति दृढ़ बना दी थी। ह्यूगेनाटोंके युद्धकी गड़बड़ीके समय जिन फ्रांसीसी सर्दारोंकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी उनके परिवेष्टित दुर्गोंको भी उसने नष्ट कर दिया था। उसके बाद उसके पदपर कार्डिनल मेजरिन नियुक्त हुआ। चौदहवें लूईकी अवस्था छोटी होनेके कारण वही राज्यका काम सँभालता था। इसके समयमें असन्तुष्ट सर्दारोंने विद्रोह करनेका अन्तिम प्रयत्न किया, किन्तु वे शीघ्र ही दबा दिये गये।

संवत् १७१८ (सन् १६६१)में मेजरिनकी मृत्यु हो गयी। नवयुवक राजाके लिए वह जैसा राज्य छोड़ गया था वैसा फ्रांसके किसी भी राजाको अबतक प्राप्त नहीं हुआ था। जो सर्दार कई सदियोंसे फ्रांसनरेश ह्यू कैपेट तथा उसके उत्तराधिकारियोंसे शक्तिके लिए झगड़ते आये थे, वे अब प्रबल जागीरदार न होकर सिर्फ मामूली दरबारी ही रह गये थे। ह्यूगेनाटोंकी संख्या भी—जिनके उन्हीं स्थलोंको पानेके निमित्त प्रयत्नशील होनेके कारण जो राज्यमें कैथलिकोंको प्राप्त थे, फ्रांसमें जीवन मुश्किल हुए थे—अब बिलकुल कम रह गयी थी और अब उनकी अधीनता-में ऐसे दुर्गरक्षित नगर भी नहीं रह गये थे जहाँसे वे राजाके प्रतिनिधियोंको चुनौती दे सकते। तीस वर्षीय युद्धमें भाग लेकर रीशलू तथा मेजरिनने जो सफलता प्राप्त की थी, उसके परिणामस्वरूप फ्रांसीसी राज्यका विस्तार भी बढ़ गया था और साथ ही उसे यूरोपीय मामलोंमें अधिक महत्त्वका पद भी प्राप्त हो गया था।

इन दोनों मन्त्रियों, रीशलू तथा मेजरिनने जो काम किया था उससे चौदहवें लूईके [illegible] भी अधिक [illegible] थी। उससे फ्रांसकी राजव्यवस्थाको जो स्वरूप मिला वह फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके समयतक कायम रहा। चौदहवें लूईके शासनकालमें [illegible] उस अनियन्त्रित सत्ताका [illegible] राजाओंके लिए अनुकरणीय आदर्श और [illegible] की [illegible] थी। ये लोग [illegible]

अनियन्त्रित शक्तिके पूर्ण अधिकारके सम्बन्धमें लूईका सिद्धान्त तो मानते थे, किन्तु ये उसके आनन्दोपभोग तथा व्ययावह रहन-सहनका अनुकरण करनेमें असमर्थ थे। दूसरे राज्योंकी सीमापर आक्रमण कर निरन्तर युद्ध जारी रखनेके कारण उसने पचास वर्षतक यूरोपमें बड़ी खलबली उत्पन्न कर दी थी। उसकी नव-संगठित सेनाओंके विख्यात सेनापतियोंके कारण तथा उसकी ओरसे अन्य राज्योंके साथ मैत्री करने या सन्धिकी बातचीत करनेका कार्य करनेवाले सुचतुर कूटनीतिज्ञोंके कारण यूरोपकी अन्य बड़ी-बड़ी शक्तियाँ भी फ्रांससे डरती थीं और उसका समादर करती थीं।

राजाओंके सम्बन्धमें लूईका वही सिद्धान्त था जिसे ग्रहण करनेके लिए जेम्सने अंग्रेज जातिको राजी करनेकी असफल चेष्टा की थी। ईश्वरने ही सर्वसाधारणके लाभके लिए राजाओंकी सृष्टि की है और उसकी इच्छा है कि सब राजा उसके प्रतिनिधि समझे जायँ और उनके अधीन सारी जनता उनकी आज्ञाओंके सम्बन्धमें कोई प्रश्न अथवा आलोचना न करती हुई उनका पूर्ण रूपसे पालन करे। राजाकी आज्ञा मानना वास्तवमें ईश्वरकी ही आज्ञा मानना है। यदि कोई राजा बुद्धिमान् और सदाचारी हो तो उसकी प्रजाको चाहिये कि ईश्वरको धन्यवाद दे। यदि वह मूर्ख, दुष्ट अथवा स्वेच्छाचारी हो, तो लोगोंको ऐसे अनाचारी शासकको भी ईश्वर द्वारा दिया गया अपने पापोंका दण्ड समझकर स्वीकार करना चाहिये। किसी भी हालतमें उन्हें उसके अधिकारमें रुकावट न डालनी चाहिये और न उसके विरुद्ध बगावत करनी चाहिये।

दो बातोंके लिहाजसे जेम्सकी अपेक्षा लूईकी स्थिति अधिक अच्छी थी। प्रथम तो अंग्रेज जाति फ्रांसीसियोंकी अपेक्षा अपने शासकोंके हाथमें अनियन्त्रित शक्तिका अधिकार रहने देनेके अधिक विरुद्ध थी। उसने अपनी पार्लमेण्ट, अपने न्यायालयों तथा राष्ट्रके अधिकारोंकी भिन्न-भिन्न घोषणाओं द्वारा ऐसी परम्पराकी सृष्टि कर ली थी कि जिसके कारण स्टुअर्टवंशीय राजाओंके लिए अनियन्त्रित शासनका हक आरोपित करना असम्भव ही था। फ्रांसमें यह बात न थी। वहाँ न तो 'बृहद् घोषणापत्र' और न कोई 'स्वत्वपत्र' ही प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त आवश्यक व्ययकी स्वीकृति या अस्वीकृति देनेका अधिकार वहाँकी प्रतिनिधि-सभा 'एस्टेट्स जनरल' को न था। राजा उसकी अनुमतिके बिना ही अथवा उन शिकायतोंको दूर करनेके पूर्व ही जो उक्त सभा उसके सामने रखती, आवश्यक द्रव्य वसूल कर सकता था। इसीसे वहाँ प्रतिनिधि-सभाकी बैठक भी अनियमित अन्तरसे हुआ करती थी। जिस समय चौदहवें लूईने शासनका दायित्व ग्रहण किया, उस समय ४७ वर्ष पूर्वसे 'एस्टेट्स जनरल' का कोई अधिवेशन नहीं हुआ था और इसके बाद भी कोई सवा सौ वर्षोंतक अर्थात् संवत् १८४६ (सन् १७८९ ई०) तक प्रतिनिधि सभा

अध्याय २१

चौदहवें लूईके शासनकालमें फ्रांसका अभ्युदय

चौदहवें लूईके अनियन्त्रित शासनकालमें (संवत् १७००-१७७२) यूरोपीय मामलोंके लिहाजसे फ्रांसको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। धार्मिक युद्धोंके बन्द हो जानेपर चतुर्थ हेनरीकी बुद्धिमत्तासे राजाका प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया। चतुर्थ हेनरीने ह्यूगेनाट लोगोंको, उनकी रक्षाके विचारसे, जो विशेषाधिकार दे रखे थे उन्हें छीनकर रीशल्येने राजाकी शक्ति दृढ़ बना दी थी। ह्यूगेनाटोंके युद्धकी गड़बड़ीके समय जिन फ्रांसीसी सर्दारोंकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी उनके परिवेष्टित दुर्गोंको भी उसने नष्ट कर दिया था। उसके बाद उसके पदपर कार्डिनल मेजरिन नियुक्त हुआ। चौदहवें लूईकी अवस्था छोटी होनेके कारण यही राज्यका काम सँभालता था। इसके समयमें असन्तुष्ट सर्दारोंने विद्रोह करनेका अन्तिम प्रयत्न किया, किन्तु वे शीघ्र ही दबा दिये गये।

संवत् १७१८ (सन् १६६१)में मेजरिनकी मृत्यु हो गयी। नवयुवक राजाके लिए वह जैसा राज्य छोड़ गया था वैसा फ्रांसके किसी भी राजाको अभीतक प्राप्त नहीं हुआ था। जो सर्दार कई सदियोंसे फ्रांसनरेश ह्यू केपेट तथा उसके उत्तराधिकारियोंसे शक्तिके लिए झगड़ते आये थे, वे अब प्रबल जागीरदार न होकर सिर्फ मामूली दरबारी ही रह गये थे। ह्यूगेनाटोंकी संख्या भी—जिनके उन्हीं स्वत्वोंको पानेके निमित्त प्रयत्नशील होनेके कारण जो राज्यमें कैथलिकोंको प्राप्त थे, फ्रांसमें भीषण गृहयुद्ध हुए थे—अब बिलकुल कम रह गयी थी और अब उनकी अधीनतामें ऐसे दुर्गरक्षित नगर भी नहीं रह गये थे जहाँसे वे राजाके प्रतिनिधियोंको चुनौती दे सकते। तीस वर्षीय युद्धमें भाग लेकर रीशल्ये तथा मेजरिनने जो सफलता प्राप्त की थी, उसके परिणामस्वरूप फ्रांसीसी राज्यका विस्तार भी बढ़ गया था और साथ ही उसे यूरोपीय मामलोंमें अधिक महत्त्वका पद भी प्राप्त हो गया था।

इन दोनों मन्त्रियों, रीशल्ये तथा मेजरीनने जो काम किया था उसमें चौदहवें लूईने और भी अधिक संवृद्धि की। उसने फ्रांसकी राज्यव्यवस्थाको जो स्वरूप दिया वह फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके समयतक कायम रहा। वर्सेल्जमें उसकी आश्चर्यमयी राजसभा अपेक्षाकृत कम धनसम्पन्न तथा कम शक्तिवाले राजाओंके लिए अनुकरणीय आदर्श और साथ ही निराशा भी उत्पन्न करनेवाली थी। ये लोग राजाओंकी

अनियन्त्रित शक्तिके पूर्ण अधिकारके सम्बन्धमें लूईका सिद्धान्त तो मानते थे, किन्तु वे उसके आनन्दोपभोग तथा व्ययावह रहन-सहनका अनुकरण करनेमें असमर्थ थे। दूसरे राज्योंकी सीमापर आक्रमण कर निरन्तर युद्ध जारी रखनेके कारण उसने पचास वर्षतक यूरोपमें बड़ी खलबली उत्पन्न कर दी थी। उसकी नव-संगठित सेनाओंके विख्यात सेनापतियोंके कारण तथा उसकी ओरसे अन्य राज्योंके साथ मैत्री करने या सन्धिकी बातचीत करनेका कार्य करनेवाले सुचतुर कूटनीतिज्ञोंके कारण यूरोपकी अन्य बड़ी-बड़ी शक्तियाँ भी फ्रांससे डरती थीं और उसका समादर करती थीं।

राजाओंके सम्बन्धमें लूईका वही सिद्धान्त था जिसे ग्रहण करनेके लिए जेम्सने अंग्रेज जातिको राजी करनेकी असफल चेष्टा की थी। ईश्वरने ही सर्वसाधारणके लाभके लिए राजाओंकी सृष्टि की है और उसकी इच्छा है कि सब राजा उसके प्रतिनिधि समझे जायँ और उनके अधीन सारी जनता उनकी आज्ञाओंके सम्बन्धमें कोई प्रश्न अथवा आलोचना न करती हुई उनका पूर्ण रूपसे पालन करे। राजाकी आज्ञा मानना वास्तवमें ईश्वरकी ही आज्ञा मानना है। यदि कोई राजा बुद्धिमान् और सदाचारी हो तो उसकी प्रजाको चाहिये कि ईश्वरको धन्यवाद दे। यदि वह मूर्ख, दुष्ट अथवा स्वेच्छाचारी हो, तो लोगोंको ऐसे अनाचारी शासकको भी ईश्वर द्वारा दिया गया अपने पापोंका दण्ड समझकर स्वीकार करना चाहिये। किसी भी हालतमें उन्हें उसके अधिकारमें रुकावट न डालनी चाहिये और न उसके विरुद्ध बगावत करनी चाहिये।

दो बातोंके लिहाजसे जेम्सकी अपेक्षा लूईकी स्थिति अधिक अच्छी थी। प्रथम तो अंग्रेज जाति फ्रांसीसियोंकी अपेक्षा अपने शासकोंके हाथमें अनियन्त्रित शक्तिका अधिकार रहने देनेके अधिक विरुद्ध थी। उसने अपनी पार्लमेण्ट, अपने न्यायालयों तथा राष्ट्रके अधिकारोंकी भिन्न-भिन्न घोषणाओं द्वारा ऐसी परम्पराकी सृष्टि कर ली थी कि जिसके कारण स्टुअर्टवंशीय राजाओंके लिए अनियन्त्रित शासनका हक आरोपित करना असम्भव हो था। फ्रांसमें यह बात न थी। वहाँ न तो 'बृहद् घोषणापत्र' और न कोई 'स्वत्वपत्र' ही प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त आवश्यक व्ययकी स्वीकृति या अस्वीकृति देनेका अधिकार वहाँकी प्रतिनिधि-सभा 'एस्टेट्स जनरल' को न था। राजा उसकी अनुमतिके बिना ही अथवा उन शिकायतोंको दूर करनेके पूर्व ही जो उक्त सभा उसके सामने रखती, आवश्यक द्रव्य वसूल कर सकता था। इसीसे वहाँ प्रतिनिधि-सभाकी बैठक भी अनियमित अन्तरसे हुआ करती थी। जिस समय चौदहवें लूईने शासनका दायित्व ग्रहण किया, उस समय ४७ वर्ष पूर्वसे 'एस्टेट्स जनरल' का कोई अधिवेशन नहीं हुआ था और इसके बाद भी कोई सवा सौ वर्षोंतक अर्थात् संवत् १८४६ (सन् १७८९ ई०)तक प्रतिनिधि सभा

आमन्त्रित नहीं की गयी। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजोंकी अपेक्षा फ्रांसवाले प्रबल शासकमें अधिक विश्वास करते थे, जिसका कारण संभवतः यह है कि इंगलैण्डकी तरह फ्रांसके चारों ओर समुद्र न होनेकी वजहसे पड़ोसियोंका भय प्रायः बना ही रहता था। फ्रांस चारों ओरसे ऐसे दुश्मनोंसे घिरा हुआ था जो सब इस बातकी ताकमें रहते थे कि कब पार्लमेण्ट और राजामें मनमुटाव हो और हमें उस मनमुटावसे उत्पन्न कमजोरी या हिचकिचाहटसे लाभ उठानेका मौका मिले। इसलिए फ्रांसीसियोंने कुल बातोंका ख्याल कर सब कुछ राजाके ही ऊपर छोड़ देना उचित समझा, यद्यपि ऐसा करनेके कारण कभी-कभी उन्हें उसके अत्याचारोंसे पीड़ित भी होना पड़ता था।

जेम्सकी तुलनामें लूईको एक बातका लाभ और भी प्राप्त था। लूई बहुत रूपवान् था। उसका व्यवहार परिष्कृत और राजोचित था और उसकी चाल-ढाल भी ऊँचे दर्जेकी थी। बिलियर्ड खेलते समय भी उसके चेहरेसे ऐसी रौनक टपकती थी मानों वह संसारका शाहंशाह हो, किन्तु स्टुअर्ट-वंशका पहला राजा, प्रथम जेम्स बहुत बदसूरत था और उसकी ढीली-ढाली चाल, अप्रिय व्यवहार एवं बात-चीतके समय अपनी विद्वत्ता प्रकट करनेका प्रयत्न उस उच्च प्रतिष्ठाके उपयुक्त न था जिसका अधिकारी वह बनना चाहता था। लूईमें बाह्य रूपके अतिरिक्त उचित निर्णय करनेकी तथा वास्तविक परिस्थितिको तुरन्त ही ताड़ लेनेकी शक्ति भी थी। अन्य राजाओंकी तुलनामें वह विशेष परिश्रमी था और शासन सम्बन्धी मामलोंमें प्रतिदिन कई घण्टे खर्च करता था। सच तो यह है कि वास्तविक अनियन्त्रित शासक बननेमें बड़े परिश्रम और बड़े अध्यवसायकी आवश्यकता है। किसी बड़े राज्यके शासकके सामने जो समस्याएँ रोज-ब-रोज पेश होती रहती हैं उन्हें ठीक तरहसे समझने और सुलझानेके लिए यह आवश्यक है कि वह महान् फ्रेडरिक तथा नेपोलियनकी तरह प्रातःकाल शीघ्र उठकर रात्रिमें देरतक परिश्रम करता रहे। लूईको अपने योग्य मन्त्रियोंसे भी अच्छी सहायता मिलती थी, किन्तु प्रधान मन्त्री वह अपने आपको ही समझता था। किसी मन्त्रीकी रायको इतना अधिक महत्त्व देना उसे मंजूर न था जितना उसका पिता रीशल्येको देता था।

लूई इस बातका ध्यान रखता था कि जैसा प्रभावशाली मेरा पद है वैसी ही मेरी टीमटाम भी हो। उसका दरबार इतना सुसज्जित और प्रभावोत्पादक था कि पश्चिमी देशोंने स्वप्नमें भी वैसा दरबार नहीं देखा था। उसने पेरिस नगरके ठीक बाहर वर्सेलजमें एक विशाल राजप्रासाद बनवाया जिसमें खूब लम्बे-चौड़े कमरे तथा पीछेकी ओर खूब दूरतक फैला हुआ एक विस्तृत बाग भी था। इसके चारों ओर एक नगर बसाया गया जहाँ वे लोग रहते थे जिन्हें फ्रांस-नरेशके सम्पर्कका सौभाग्य प्राप्त था या जिनका वहाँ रहना शाही जरूरतोंके लिहाजसे आवश्यक था। इस महलके

तथा इसके समीपकी अन्य इमारतों व दो-तीन और कुछ कम प्रभावशाली महलोंके बनानेमें फ्रांसीसी राष्ट्रका कोई १० करोड़ डालर (लगभग २१ करोड़ रुपया) व्यय हुआ था। यह भी उस हालतमें जब कि हजारों किसानों तथा सैनिकोंको विवश होकर पारिश्रमिक लिये विना ही उनमें काम करना पड़ा था। इस भव्य राजप्रासाद-की सजावट भी वेशकीमति और आला दर्जेकी थी। एक शताब्दीसे भी अधिक समयतक वर्सेल्ज फ्रांसीसी राजाओं की राजधानी रहा।

इस ठाटवाटके कारण सर्दारोंका चित्त भी आकर्षित हुआ। सुरक्षित दुर्ग तो उनके अधिकारमें रह ही नहीं गये थे, अतः अब वे राजाकी आंखोंकी झलकके सामने ही रहने लगे। राजाके शयनागारमें प्रवेश करते समयतक वे उसके साथ रहते और सवेरे फिर शाही जुलूसमें सम्मिलित होकर उसका अभिवादन करते थे। राजाके समीप रहकर ही वे अपने तथा अपने मित्रोंके लिए उसका अनुग्रह, पेन्शन तथा बड़ी-बड़ी तनख्वाहोंवाले पद पा सकते थे, क्योंकि अब वे पूर्णतया राजाकी कृपादृष्टिपर ही निर्भर थे।

लूईने अपने शासनकालके प्रारम्भमें जो सुधार किये थे वे प्रसिद्ध अर्थनीतिज्ञ कोलबर्टके परिश्रमके परिणाम थे। उसे बहुत पहले ही इस बातका पता लग गया कि लूईके कर्मचारी बड़ी-बड़ी रकमें हड़प जाते हैं या उनका दुरुपयोग कर डालते हैं। जाँच करनेपर जो लोग दोषी पाये गये वे गिरफ्तार किये गये और उनसे हड़पी हुई रकम वसूल की गयी। साथ ही हिसाब रखनेकी नयी प्रणाली जैसी कि व्यापा-रियोंके यहाँ वर्ती जाती है, जारी की गयी। अब उसने नये उद्योगोंकी स्थापना कर तथा पुराने उद्योगोंको ऊँचे दर्जेका माल तैयार करनेको प्रोत्साहित कर फ्रांसमें बनने-वाली वस्तुओंकी ओर ध्यान दिया। उसका यह तर्क सत्य ही था कि यदि हम विदेशियों-को फ्रांसकी बनी हुई वस्तुएँ खरीदनेके लिए राजी कर सकें तो वस्तुओंकी बिक्रीसे जो सोना और चाँदी प्राप्त होगी उससे देशकी आर्थिक दशा सुधरेगी। कारखानोंमें कितनी अर्जका व किस कोटिका कपड़ा तैयार किया जाय, इस सम्बन्धमें उसने कड़े नियम बना दिये। उसने मध्यकालके व्यापारिक गुटोंका पुनः संगठन भी किया। इनके रहनेसे सरकार देशमें तैयार किये गये प्रत्येक मालपर अपनी नजर रख सकती थी। यदि सब मनुष्योंको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार, पृथक्-पृथक रूपसे व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता रहती तो उन सबोंपर दृष्टि रखना बहुत कठिन था। यह सच है कि इस प्रणालीमें कई बड़े-बड़े दोष थे किन्तु फिर भी फ्रांस बहुत वर्षोंतक इसका अनुसरण करता रहा।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह तो चौदहवें लूईकी ख्यातिका कारण था ही, किन्तु इससे भी अधिक यश उसे साहित्य तथा कलाओंके प्रोत्साहनसे मिला।

मोल्येअर, जो नाटककार तथा नट दोनों ही था, अपने सुखान्त नाटकोंमें तत्कालीन चरित्र-दोषोंके व्यङ्ग्यपूर्ण प्रदर्शन द्वारा राजा तथा उसके अनुयायियोंका मनोरञ्जन करता था। प्रसिद्ध दुःखान्त नाटक 'दि सिड' का लेखक कॉर्नेय * तो रीशल्येके समयमें ही प्रसिद्ध हो चुका था। अब उसका स्थान उससे भी अधिक ख्यातनामा नाटककार 'रेसीन' ने ग्रहण किया। मैडेम ही सेवीन्येके † पत्र गद्य लेखनशैलीके आदर्श हैं। उनमें राजाके पार्श्ववर्तियोंके अधिक परिष्कृत जीवनकी झलक देखनेको मिलती है। सैन सीमॉन ‡ की स्मृति-जीवनीमें राजाकी कमजोरियों व उसके पार्श्ववर्त्तियोंके षट्यन्त्र अद्वितीय कौशल एवं बुद्धिप्रखरताके साथ दिखलाये हैं।

साहित्यसेवियोंको राजाकी ओरसे उदारतापूर्वक वृत्तियाँ दी जाती थीं। रीशल्येने जिस 'फ्रांसीसी साहित्य-परिषद्' (फ्रेञ्च एकेडेमी) की स्थापना की थी उसे कोलबर्टने प्रोत्साहित किया। किस विशेष अर्थको प्रकट करनेके लिए किस विशेष शब्द या शब्दावलीका प्रयोग करना चाहिये, इसका निश्चय कर उक्त परिषद्ने फ्रांसीसी भाषाको अधिक ओजमय तथा अर्थपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस समय इस परिषद्के चालीस सभ्योंमें स्थान पाना प्रत्येक फ्रांसीसीकी दृष्टिमें विशेष गौरवका विषय समझा जाता था। विज्ञानकी उन्नतिके लिए 'जर्नल डेस सैवैण्ट्स' ‖ नामका एक मासिक-पत्र भी जारी किया जो अबतक चल रहा है। कोलबर्टने पेरिसमें वेधशाला भी स्थापित की। जिस राजकीय पुस्तकालयमें पहले १६ हजार पुस्तकें ही थीं, क्रमशः उसकी वृद्धिका प्रयत्न होता रहा, यहाँतक कि वर्त्तमान समयमें २५ लाखसे भी अधिक ग्रन्थोंका संग्रह वहाँ है। तात्पर्य यह कि लुई तथा उसके मन्त्रियोंकी दृष्टिमें साहित्य, विज्ञान तथा कलाओंकी उन्नति करना भी राज्यका प्रधान कर्त्तव्य था।

फ्रांसके दुर्भाग्यसे लुईकी महत्त्वाकांक्षाएँ शान्ति-संसारके भीतर ही परिमित न थीं। वस्तुतः युद्धोंमें भाग लेना वह विशेष कीर्त्तिजनक समझता था। उसने अपनी पुनः संगठित सेना तथा कुशल सेनाध्यक्षोंका प्रयोग कई बार अपने पड़ोसियोंपर अदम्य आक्रमण करनेमें किया। इस प्रकार उसने धीरे-धीरे राज्यकी वह सब सम्पत्ति उड़ा डाली जो कोलबर्टकी आर्थिक व्यवस्थाके कारण जुटायी जा सकी थी।

साधारणतया लुईके पूर्वगामी राजाओंको लड़ाई लड़कर देश जीतनेका विचार करनेकी फुरसत ही न थी। पहिले तो उन्हें अपने राज्यको दृढ़ बनानेका तथा अपने आश्रित जागीरदारोंको वशमें रखनेका प्रयत्न करना पड़ा, फिर इंग्लैण्डके एडवर्ड तथा हेनरी इत्यादि राजाओं द्वारा पेश किये गये हकका सामना करना पड़ा और फ्रांसकी भूमि उनके पञ्जोंसे छुड़ानी पड़ी और अन्तमें उन्हें उस धार्मिक कलहमें भी फँसन

* Corneille. † Madame de Sevigne. ‡ Saint-Simon.
‖ Journal das Savants.

पड़ा जिसकी समाप्ति कई वर्षोंके गृहयुद्धके बाद ही हुई, किन्तु लूई इन सब झंझटोंसे मुक्त रहनेके कारण अपने पूर्वजोंकी मनोभिलाषा पूरी करनेका उपाय सोचने लगा। फ्रांसकी स्वाभाविक सीमा यह प्रतीत होती थी—उत्तर तथा पूर्वमें राइन नदी, दक्षिण-पूर्वमें जूरा तथा आल्प्स पहाड़ और दक्षिणमें भूमध्यसागर तथा पिरीनीज पहाड़। रीशल्ये अपने मन्त्रित्वका प्रधान उद्देश्य इस 'स्वाभाविक सीमा'की पुनः-प्राप्ति समझता था। उसके बाद मैजरिनने सेवाय तथा नाइस जीत लेने और उत्तरमें राइन नदीतक पहुँचनेके लिए बड़ा परिश्रम किया था। उसकी मृत्युके पहले कमसे कम अलसेस फ्रांसके अधीन हो गया और दक्षिणी सीमा पिरीनीजतक पहुँच गयी।

लूईने पहिले 'स्पेनिश नेदरलैण्ड्ज' जीतनेका विचार किया। इन प्रान्तोंको पानेका हक उसने इस बुनियादपर पेश किया कि उसकी स्त्री स्पेनके राजा द्वितीय चार्ल्सकी बड़ी बहिन थी। संवत् १७२४ (सन् १६६७ ई०) में उसने एक पुस्तिका प्रकाशित कर सारे यूरोपको आश्चर्यमें डाल दिया। इसमें उसने अपनेको स्पेनिश नेदरलैण्ड्जका ही नहीं, स्पेनके समूचे राज्यतकका अधिकारी बतलाया था। फ्रांसके राज्यको व फ्रांक लोगोंके प्राचीन सम्राज्यको एक ही बतलाकर उसने यह साबित कर दिया कि नेदरलैण्ड्जके निवासी उसकी प्रजा थे।

लूई अपनी पुनः संघटित सेनाका अगुआ बनकर 'यात्रा' करने चला, मानों उसका यह आक्रमण वास्तवमें अपने ही राज्यके दूसरे भागकी यात्रामात्र था। उसने सीमाके कई नगर अनायास ही अपने अधीन कर लिये और 'फ्रांस कोंन्टे' * नामक प्रान्त भी जीत लिया। स्पेनका यह प्रान्त अन्य प्रान्तोंसे दूर होनेके कारण अकेला पड़ गया था, इसी कारण फ्रांसके भूखे राजाके लिए यह बड़ा भारी प्रलोभन था। इन विजयोंसे यूरोपमें, विशेषकर हालैण्डमें, आतङ्क छा गया। हालैण्डको यह सह्य न था कि फ्रांसकी सीमा उसके इतने समीप हो जाय, क्योंकि लूईका पड़ोसी बनना खतरेसे खाली न था। इस कारण फ्रांसको स्पेनके साथ मैत्री करनेके लिए फुसलानेके अभिप्राय से हालैण्ड, इंग्लैण्ड तथा स्वीडनका एक त्रिगुट बनाया गया। लूईने इस समय सीमाके उन बारह नगरोंको लेकर ही सन्तोष कर लिया जिनपर उसका अधिकार हो गया था और जिन्हें स्पेनने भी इस शर्तपर उसके हवाले किया कि वह 'फ्रांस-कॉण्टे' स्पेनको लौटा दे (एक्सला-शेपलकी सन्धि संवत् १७२५) (सन् १६६२ ई०)।

इंग्लैण्डके जहाजी बेड़ेके मुकाबलेमें हालैण्डने जिस सफलतासे अपनी रक्षा की थी तथा फ्रांसके अभिमानी राजाकी गति रोक दी थी, उसके कारण वह खुशीके मारे फूला न समाता था। यह देखकर लूईके हृदयमें बड़ी जलन होती थी। निदान

* Franche-Comte.

उसने इंग्लैण्डके राजा द्वितीय चार्ल्सको फुसलाया और उससे एक सन्धि कर त्रिगुटको भङ्ग कर दिया। सन्धिका आशय यह था कि हालैण्डके विरुद्ध इंग्लैण्ड फ्रांसकी सहायता करेगा।

अब लूईने सहसा लोरेन प्रान्तपर अधिकार जमा लिया जिसके कारण उसके राज्यकी सीमा हालैण्डकी सीमासे मिल गयी। संवत् १७२९ (सन् १६७२ ई०)में एक लाख सैनिकोंको लेकर उसने राइन नदी पार की और दक्षिणी हालैण्डको जीत लिया, किन्तु इसी समय आरेञ्जके विलियमने समुद्री बाँधके जल-द्वार खोलनेकी आज्ञा दी जिससे देशकी भूमि जल-प्लावित हो गयी और फ्रांसीसी सेनाको आम्स्टरडम लेकर उत्तरकी ओर बढ़नेका विचार त्याग देना पड़ा। इसी समय ब्रण्डनबर्गका इलेक्टर हालैण्डकी सहायताके लिए आ गया। अब युद्ध अधिक व्यापक हो गया। सम्राट्ने लूईके विरुद्ध सेना भेजी और इंग्लैण्डने उसका साथ छोड़कर हालैण्डसे सन्धि कर ली।

छः वर्षोंके बाद जब निमवेगेनमें सन्धि हुई तब उसकी मुख्य शर्तें ये थीं कि हालैण्डका राज्य ज्योंका त्यों रहने दिया जाय और फ्रांस-कॉण्टे प्रान्त जिसे लूईने स्वयं जीता था, फ्रांसके ही अधीन रहे। इस प्रकार प्राचीन बर्गण्डी राज्यका यह टुकड़ा, जिसके निमित्त कोई डेढ़ शताब्दीसे फ्रांस और स्पेन आपसमें लड़ते आ रहे थे, अब फ्रांसीसी राज्यमें संयुक्त हो गया। इसके बाद दस वर्षतक खुल्लमखुल्ला कोई युद्ध नहीं हुआ, किन्तु इस बीचमें लूई इस बातका निर्णय करनेके लिए फ्रांस तथा जर्मनीके बीचके विवादग्रस्त प्रदेशमें न्यायालय स्थापित करनेमें लगा रहा कि पड़ोसकी कौन-कौनसी भूमि उन भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा नगरोंमें शामिल है जो फ्रांसको वेस्टफेलिया तथा उसके बादकी सन्धियों द्वारा प्राप्त हुए थे। एक तो पुरानी जागीरदारियोंकी जटिलताओंके कारण किसी भूमिके लिए हक पेश करनेका काफी मौका था ही, दूसरे लूईके सैनिकोंके पहुँच जानेसे और भी दबाव पड़ता था। लूईने 'स्ट्रासबर्ग' नामक स्वतन्त्र नगर तथा और भी कई ऐसे स्थानोंपर कब्जा कर लिया जिन्हें लेनेका उसे कोई अधिकार न था।

चौदहवें लूईमें राजनीतिज्ञोचित चतुरताकी कमी थी। यह उसके भयावह युद्धोंके सिवा प्रोटेस्टेण्टोंके साथ उसके व्यवहारसे भी प्रकट है। सैनिक तथा राजनीतिक अधिकारोंसे वञ्चित हो जानेके कारण ह्यूगेनाटोंने व्यापार और शराफेका काम शुरू कर दिया था। डेढ़ करोड़ फ्रांसीसियोंके बीचमें उनकी संख्या दस लाखके लगभग थी और इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग बड़े अल्पव्ययी तथा उत्साही मनुष्य थे, किन्तु कैथलिक पादरियोंने प्रचलित धर्मके विरोधियोंको दबानेकी पुकार अब भी बन्द नहीं की थी।

लूईके सिंहासनारूढ़ होते ही प्रोटेस्टेण्टोंके साथ सदासे होते आये अन्यायोंकी

और भी वृद्धि हुई। एक न एक मिथ्या कारण बतलाकर उनके गिरजाघर तोड़ डाले गये। सात वर्षकी अवस्थाके बालकोंको प्रोटेस्टेण्ट मतका त्याग करनेका अधिकार दे दिया गया। उदाहरणार्थ यदि किसी खिलौनेके या मिठाईके लोभमें आकर कोई बालक 'आव्ह मेरिया' (भगवती मेरीका स्वागत) कह देता तो अपने माँ-बापसे छीना जाकर कैथलिक स्कूलमें भर्ती कर दिया जाता था। इस प्रकार बड़ी निर्दयताके साथ प्रोटेस्टेण्ट परिवारोंका अङ्ग-भङ्ग किया गया। ह्यूगेनाट लोगोंके सरपर इस अभिप्रायसे क्रूर सैनिक सदा सवार रहते थे कि उनके अपमानजनक व्यवहारसे तङ्ग आकर धर्मविरोधी लोग भी राज-धर्म (कैथलिक मत) ग्रहण कर लेंगे।

कर्मचारियोंके कहनेसे जब लूईको यह विश्वास हो गया कि इन निष्ठुर प्रयत्नोंके कारण प्रायः सभी ह्यूगेनाटोंका धर्म-परिवर्त्तन किया जा चुका है, तब उसने संवत् १७४२ (सन् १६८५ ई०) में नाण्टका आदेश-पत्र उठा लिया। इस कारवाईसे प्रोटेस्टेण्टोंका कानूनी बहिष्कार हो गया और उनके धर्माचार्य प्राणदण्डके भागी समझे जाने लगे। उदारहृदय कैथलिक मतावलम्बियोंने भी बड़ी खुशीके साथ इस 'धार्मिक एकता' का स्वागत किया। उन्होंने समझा कि अब बहुत थोड़े, विशेषकर राजद्रोही, मनुष्य ही कैल्विनके अनुयायी रह गये हैं, पर यह उनकी भूल थी। हजारों ह्यूगेनाट राजकर्मचारियोंकी दृष्टि बचाकर इंग्लैण्ड, प्रशा तथा अमेरिका भाग गये। उनकी कुशलता तथा उद्योगशीलता फ्रांसके व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धियोंकी शक्ति बढ़ानेमें सहायक हुई। यह उस धार्मिक असहिष्णुताका बड़ा तथा अन्तिम उदाहरण है जिसके परिणाम अलबिजेन्सियोंके * विरुद्ध लड़ी गयी धार्मिक लड़ाई, स्पेनका धार्मिक न्यायालय † तथा सन्त बार्थोलेम्यूकी हत्या ‡ थे।

* अलबिजेन्सी लोग फ्रांसके दक्षिणकी उन जातियोंके मनुष्य थे जो पुरोहितोंकी सत्ताको न मानती थी। संवत् १२६५ (सन् १२०८ ई०) में तीसरे पोप इन्नोसेण्टने उनके विरुद्ध धर्मयुद्ध करनेका उपदेश दिया। इसके अग्रणी सिटोके आरनोल्ड तथा साइमन डिमानफोर [Arnold of Citeaux and Simon de Montfort] थे। कई वर्षोंतक विनाश-युद्ध जारी रहा और इसमें बड़ी खून-खराबी हुई। (पृष्ठ १२४ में देखिये)

† स्पेनका धार्मिक न्यायालय—प्रारम्भमें धार्मिक न्यायालय (दि इन्क्वीजिशन) धर्मविरोधियोंको दण्ड देनेके लिए पोप द्वारा विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें स्थापित किया गया था। संवत् १५४० (सन् १४८३ ई०) में स्पेनकी रानी इजाबेलने विशेष करके धर्मविरोधी मूर तथा यहूदी लोगोंसे अपने राज्यको मुक्त करनेके लिए पुनः उसकी स्थापना की। हजारों मनुष्योंपर मिथ्या विचारोंके अनुयायी होनेका, ईश्वरकी निन्दा करनेका तथा जादू इत्यादि वर्जित कलाओंका अभ्यास करनेका दोष लगाया गया और वे कैद कर दिये गये, कोड़ेसे पीटे गये, जला दिये गये या फाँसीपर लटका दिये गये। (पृष्ठ १२४, व २१९ देखिये)

‡ पृष्ठ २९१ देखिये।

अब लूईने राईन पैलेटिनेट नामक राज्यपर अधिकार कर लेनेका इरादा किया। इसे पोपका हक छूद निकालनेमें कोई कठिनाई न हुई। उसके इस इरादेकी खबर फैलने तथा नाण्टका आदेश-पत्र उठा लेनेके कारण प्रोटेस्टेण्ट देशोंमें जो क्रोध-भावना उत्पन्न हो गयी थी, उसका परिणाम यह हुआ कि आरेंजके विलियमके नेतृत्वमें फ्रांसके राजाके विरुद्ध एक गुट बन गया। लूईने शीघ्र ही पैलेटिनेटको उजाड़ कर दिया। उसने समूचे नगरके नगर जला दिये और कई किलोंको भी नष्ट कर डाला जिनमें हाईडेलबर्गके इलेक्टरका अद्वितीय किला भी था। किन्तु दस वर्षोंके बाद सन्धि होनेपर लूईने सब वस्तुएँ फिर ज्योंकी त्यों करा देना स्वीकार किया। इस समय वह अपने जीवनकी उस अन्तिम महत्त्वाकाङ्क्षाको प्राप्त करनेकी तैयारी कर रहा था जिसके कारण उसे शीघ्र ही अपने राज्यकालकी सबसे लम्बी और सबसे भीषण (स्पेनके उत्तराधिकारकी) लड़ाई लड़नेमें प्रवृत्त होना पड़ा।

स्पेनका राजा द्वितीय चार्ल्स निःसन्तान था। उसके कोई भाई भी न था। हाँ, दो बहिनें अवश्य थीं। जिनमेंसे एक का विवाह लूईके साथ और दूसरीका पवित्र रोमसाम्राज्यके अधीश्वर प्रथम लीओपोल्डके साथ हुआ था। ये दोनों महत्त्वाकाङ्क्षी शासक कुछ समयतक इसका विचार करते रहे कि स्पेन-नरेशकी मृत्युके बाद उसका राज्य किस तरह बूर्वन तथा हेप्सबर्ग-वंशोंमें बाँटा जाय। किन्तु संवत् १७५७ (सन् १७०० ई०) में द्वितीय चार्ल्सकी मृत्यु होनेपर विदित हुआ कि वह एक दान-पत्र छोड़ गया है जिसमें उसने लूईके छोटे नाती फिलिपको अपना उत्तराधिकारी चुना था, पर शर्त यह थी कि फ्रांस और स्पेनका राज्य मिलाकर एक न कर दिया जाय।

अब लूईके सामने यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि वह अपने पौत्रको यह आपत्पूर्ण सम्मान स्वीकृत करने दे या न करने दे। यदि फिलिप स्पेनका राजा बन जाय तो हालैण्डसे लेकर सिसलीतक, यूरोपके दक्षिणी-पश्चिमी भागपर तथा उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके एक बड़े अंशपर लूई तथा उसके कुटुम्बियोंका ही नियन्त्रण स्थापित हो जायगा। तात्पर्य यह कि पञ्चम चार्ल्सके साम्राज्यसे भी बढ़कर साम्राज्य स्थापित हो जायगा। यह स्पष्ट था कि राज्य न पानेके अधिकारसे वञ्चित सम्राट् (प्रथम लिओपोल्ड) तथा आरेंजका विलियम, जो इस समय इंग्लैण्डका राजा था, फ्रांसके प्रभावकी यह अपूर्व वृद्धि न होने देंगे। उन्होंने तो फ्रांसकी इससे भी कम महत्त्वकी वृद्धि रोकनेके लिए बहुत कुछ आत्मत्याग करनेकी तत्परता दिखलायी थी। इतना जानते हुए भी लूईने अपनी महत्त्वाकाङ्क्षाके कारण देशको खतरेमें डाल दिया। उसने दानपत्रको अङ्गीकार कर स्पेनके राजदूतको खबर दी कि वह पञ्चम फिलिपको अपना

नया राजा समझकर अभिवादन कर सकता है। एक फ्रांसीसी संवादपत्रने तो यहाँ-तक लिख मारा कि अब पिरीनीजकी सीमा नहीं रह गयी।

इंग्लैण्डके राजा विलियमने शीघ्र ही नूतन रूपसे एक बड़ा गुट संगठित किया। इसमें प्रधानतया लूईके पूर्व-शत्रु, इंग्लैण्ड, हालैण्ड तथा सम्राट् लिओपोल्ड इत्यादि ही सम्मिलित थे। युद्धारम्भके ठीक पहले विलियमकी मृत्यु हो गयी, किन्तु स्पेनके उत्तराधिकारका युद्ध उसके बाद भी मार्लबरोके ड्यूक तथा आस्ट्रियाके सेनाध्यक्ष सेवायके यूजीनके सेनापतित्वमें जारी रहा। यह युद्ध तीस वर्षीय युद्धसे भी अधिक व्यापक था, यहाँतक कि अमेरिकामें भी फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी अधिवासियोंमें लड़ाई ठन गयी थी। प्रायः सभी बड़ी लड़ाइयोंमें फ्रांसकी हार हुई। दस वर्षोंके बाद विपुल जन-धन-संहार हो चुकनेपर लूई समझौता करनेको राजी हुआ। बहुत वाद-विवादके बाद संवत् १७७० (सन् १७१३ ई०) में यूट्रेक्टकी सन्धि हुई।

इस सन्धिके कारण यूरोपका मानचित्र इतना बदल गया जितना पहिले वेस्ट-फेलिया या अन्य किसी सन्धिके कारण न बदला था। लड़ाईमें भाग लेनेवाले सभी देशोंको स्पेनकी लूटका कुछ न कुछ हिस्सा मिला। बूर्बन-वंशका पञ्चम फिलिप स्पेन तथा उसके उपनिवेशोंका शासक मान लिया गया, पर शर्त यह थी कि स्पेन तथा फ्रांसका शासन एक ही व्यक्ति न करे। आस्ट्रियाको स्पेनी नेदरलैण्ड्ज मिले जो आगे भी फ्रांस तथा हालैण्डकी सीमाके बीच प्रतिबन्धक स्वरूप बने रहे। हालैण्डको कुछ ऐसे किले प्राप्त हुए जिनके कारण उसकी स्थिति और भी निरापद हो गयी। इटलीका जो भाग स्पेनके अधीन था वह भी अर्थात् नेपिल्स तथा मिलानके प्रान्तोंका हिस्सा भी आस्ट्रियाको सौंप दिया गया। इस प्रकार इटलीपर आस्ट्रियाका प्रभाव जम गया जो संवत् १९२३ (सन् १८६६ ई०) तक कायम रहा। इंग्लैण्डको फ्रांससे नोवास्कोशिआ, न्यूफाउण्डलैण्ड तथा हडसन बेका प्रान्त मिला। इस प्रकार उत्तरी अमेरिकासे फ्रांसीसियोंकी सत्ताका लोप होना शुरू हुआ। इनके अतिरिक्त इंग्लैण्डको मीनारका द्वीप और वहाँका दुर्ग तथा जिब्राल्टरका दुर्ग भी मिला।

चौदहवें लूईका शासनकाल अन्तरराष्ट्रीय विधानके विकासके लिए विशेष प्रसिद्ध है। लगातार युद्धोंके कारण, अनेक राष्ट्रोंके गुटोंके कारण तथा वेस्टफेलिया और यूट्रेक्टकी सन्धियोंके पहले शान्ति-स्थापनाके प्रयत्नमें जो विलम्ब लगा था उसके कारण यह अधिकाधिक रूपसे स्पष्ट होता गया कि चाहे शान्तिका समय हो, चाहे युद्धका, स्वतन्त्र राष्ट्रोंको परस्परके व्यवहारमें किन्हीं सुनिश्चित नियमोंका अनुसरण करनेकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ इस बातके निर्णयकी बड़ी आवश्यकता थी कि राजदूतोंके तथा उदासीन राष्ट्रोंके जलयानोंके अधिकार क्या हैं और युद्धमें किन तरीकोंका अवलम्बन करना तथा लड़ाईके कैदियोंसे कैसा व्यवहार करना न्यायसंगत है।

अन्तरराष्ट्रीय विधानका उचित ढंगसे वर्णन करनेवाली सबसे प्रथम पुस्तक ग्रोशिअसने संवत् १६८२ (सन् १६२५ ई०)में प्रकाशित की जब कि तीस वर्षीय युद्धकी भीषणता देखकर लोग इस बातका अनुभव कर रहे थे कि राष्ट्रोंके पारस्परिक झगड़ोंका निपटारा करनेके लिए युद्धके अतिरिक्त और कोई तरीका ढूँढ़ा जाय। ग्रोशिअसकी पुस्तक 'वार एण्ड पीस' (युद्ध तथा शान्ति) के बाद लूईके शासनकालमें पूफेण्डॉर्फने 'ऑन दि लॉ ऑफ नेचर एण्ड नेशन्स' ('प्राकृतिक विधान तथा राष्ट्रोंके विधानके सम्बन्धमें') नामकी पुस्तक प्रकाशित की (संवत् १७२९—सन् १६७२ई०)। यह सत्य है कि इन लेखकोंने तथा इनके बादके लेखकोंने जो नियम लिपिबद्ध किये उनके कारण युद्धका होना बन्द नहीं हो गया, फिर भी अनेक समस्याओंको सुलझाकर तथा उन उपायोंकी वृद्धि कर जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न राष्ट्र राजदूतोंकी सहायतासे, शस्त्रोंका अवलम्बन किये बिना ही, पारस्परिक झगड़े निपटा सकें, उन्होंने अनेक बार युद्धकी सम्भावना रोक दी।

लूई अपने लड़के तथा पोतेकी मृत्युके बादतक जीता रहा। अन्तमें वह अपने पाँच वर्षके पोते पन्द्रहवें लूईके हाथ फ्रांसका राज्य बुरी हालतमें छोड़कर संवत् १७७२ (सन् १७१५ ई०) में परलोक सिधारा। उस समय फ्रांसका राजकोष रिक्त हो चुका था। वहाँकी जनसंख्या कम हो गयी थी और वहाँके निवासी दुर्दशाग्रस्त हो रहे थे। फ्रांसकी सेना, जो कुछ समय पहले यूरोपमें अद्वितीय थी, इस समय इतनी शक्तिहीन हो गयी थी कि अब अन्य कोई विजय प्राप्त करनेकी सामर्थ्य उसमें न थी।

अध्याय ३२

रूस तथा प्रशाकी वृद्धि

पश्चिमी यूरोपके इतिहासका वर्णन करते समय हमें अभीतक स्लाव लोगोंके विषयमें प्रायः कुछ भी कहनेका मौका नहीं मिला। इन लोगोंमें रूसवाले, पोलैण्डवाले, बोहीमियावाले तथा पूर्वी यूरोपके अन्य देशोंके लोग शामिल हैं। यद्यपि इतिहासमें इन्हें विशेष महत्वका स्थान प्राप्त नहीं है तो भी यूरोपके मानचित्रका काफी विस्तृत भाग इनके अधीन है। विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके अन्तसे यूरोपीय मामलोंमें रूसका प्रभाव क्रमशः बढ़ने लगा, यहाँतक कि गत यूरोपीय युद्धके पहले संसारके राजनीतिक क्षेत्रमें रूसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था। वहाँके शासक 'जार'-का साम्राज्य यूरोपके चतुर्थ भागमें तथा उत्तरी और मध्य एशियामें फैला हुआ था। उसका विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिकाकी अपेक्षा तिगुना था।

ईसाके बहुत पहिले ही स्लाव लोग नीपर, डान तथा विस्टयूला नदियोंके किनारे आबाद हो गये थे। जब पूर्वी गाथ लोगोंने रोमसाम्राज्यमें प्रवेश किया, तब उन लोगोंकी देखादेखी इन्होंने भी बालकन प्रायद्वीपपर हमला किया और उसे जीत लिया। संवत् ६२६ (सन् ५६९ ई०)में जब जर्मनीके लम्बार्ड लोग दक्षिणकी ओर इटलीमें गये तब उनके पीछे-पीछे स्लाव लोग भी स्टिरिआ, करिन्थिया तथा कारनिओलामें घुसते गये। यहाँ ये लोग इस समय भी आबाद हैं। इनके कुछ झुण्ड जर्मनीवालोंको ओडर तथा उत्तरी एल्बके उस पार हटाकर उनकी जगहपर बस गये थे। बादमें शार्लमेन तथा जर्मनीके अन्य सम्राटोंने उन्हें वहाँसे भगाना शुरू किया, फिर भी बवेरिया तथा सैक्सनीकी सीमापर इस समयतक बोहीमियन तथा मोरेव्हियन स्लाव लोगोंकी काफी संख्या मौजूद है।

विक्रमकी नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कुछ 'उत्तरीय' लोगोंने बालटिक समुद्रके पूर्वके स्थानोंपर आक्रमण किया। उसी समय जब कि इनके अन्य सम्बन्धी तथा सहधर्मी फ्रांस और इंग्लैण्डमें उत्पात मचा रहे थे, कहते हैं कि इनके नेता रुरिकने संवत् ९१९ (सन् ८६२) में पहले पहल स्लाव लोगोंका संघटन किया और नाव्हगोरॉडके आसपास एक छोटासा राज्य स्थापित कर लिया। रुरिकके उत्तराधिकारीने राज्यकी सीमा बढ़ाकर नीपर नदीके किनारेवाला प्रसिद्ध नगर कीव्ह भी

राज्यमें मिला लिया। अंग्रेजीका शब्द 'रशा' (रूस्) सम्भवतः रोस या रौस*शब्दसे बना है। यह नाम निकटवर्त्ती फिन लोगोंने आक्रमण करनेवाले उत्तरीय लोगोंको दे रखा था। विक्रमकी दशवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें ग्रीक लोगोंमें प्रचलित ख्रीष्ट धर्मका प्रचार रूसमें भी किया गया और रूसके राजाको बपतिस्मा दिया गया। कुस्तुनतुनिया-के साथ बार-बार सम्पर्क होते रहनेके कारण रूस शीघ्रतासे सभ्यताके मार्गमें अग्रसर हो गया होता, किन्तु एक बड़ी भारी बाधा आ जानेके कारण वह सदियों पीछे रह गया।

भूगोलकी दृष्टिसे रूस केवल उत्तरी एशियाके मैदानका विस्तृत क्षेत्र ही है जिसे अन्तमें रूसियोंने अपने अधिकारमें कर लिया। यही कारण है कि वह तेरहवीं शताब्दीमें पूर्वके तातार या मंगोल लोगोंके आक्रमणसे बच न सका। प्रबल तातारी शासक जंगीजखाँ (चंगेजखाँ—संवत् १२१९–१२८४) ने उत्तरी चीन तथा मध्य एशियाको जीत लिया और उसके उत्तराधिकारियोंके अनुयायियोंके, जो घोड़ोंपर चढ़-कर इधर-उधर घूमा करते थे, दलोंने यूरोपकी सीमाके भीतर घुसकर रूसमें प्रवेश किया। रूस इस समय कई छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त हो गया था। इन राज्योंके शासकोंको चंगेजखाँकी अधीना स्वीकार करना पड़ी। उन्हें बहुधा कोई तीन हजार मील चलकर चंगेजखाँके दरबारमें उपस्थित होना पड़ता था। वहाँ उन्हें कभी-कभी अपने राजमुकुटसे और साथ ही अपने प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ता था। तातार लोग रूसवालोंसे कर वसूल किया करते थे, किन्तु उनके कानूनोंमें तथा धर्ममें हाथ न डालते थे।

उक्त मंगोल शासकके दरबारमें जितने राजा गये, उनमेंसे वह मॉस्काऊके राजापर सबसे अधिक प्रसन्न हुआ। जब कभी इस राजाके तथा इसके प्रतिद्वन्द्वी राजाओंके बीच कोई झगड़ा पेश होता तो मंगोल-नृपति अपने इस कृपापात्र राजाके पक्षमें ही निर्णय करता था। जब मंगोल नृपतियोंकी शक्ति घटने लगी और जब मॉस्काऊके राजा प्रबल होने लगे तब उन्होंने उन मंगोल राजदूतोंको मार डाला जो संवत् १५२७ (सन् १४७०)में राजस्व वसूल करनेके लिए आये थे और इस प्रकार उन्होंने मंगोलोंकी अधीनतासे अपना पीछा छुड़ाया। तातारोंका आधिपत्य न रहनेपर भी उसके कुछ न कुछ चिह्न शेष रह गये, क्योंकि मॉस्काऊके राजा पश्चिमी शासकों-की अपेक्षा मंगोल नृपतियोंका अनुसरण करते थे। संवत् १६०४ (सन् १५४७ ई०) में आईव्हन दि टेरिबिल (भयोत्पादक आईव्हन) राजाने 'झार' की एशियाई पदवी ग्रहण की, क्योंकि राजा या सम्राट्की अपेक्षा यही नाम उसे अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। उसके दरबारियोंकी पोशाक व उनकी शिष्टता इत्यादिके नियम भी एशियाई

* Ros or Rous.

ढंगके हो थे। रूसी कवच [जिरहबख्तर] चीनी तर्जका था और सिरकी पोशाक पगड़ी थी। रूसको यूरोपीय साँचेमें ढालनेका काम महान् पीटरके जिम्मे पड़ा।

यद्यपि आईवन दि टेरिबिल तथा अन्य पराक्रमी राजाओंके समयमें रूसने अच्छी उन्नति कर ली थी, तो भी पीटरके राज्यारोहणके समयतक भी उसकी सीमाके भीतर समुद्र-मार्गद्वारा बाहर जानेका कोई द्वार न था। पीटर जिस अनियन्त्रित शासन-पद्धतिका सञ्चालक बना उसके सम्बन्धमें उसे कोई शिकायत न थी, किन्तु उसने देखा कि रूस यूरोपके अन्य देशोंसे बहुत पिछड़ा हुआ है और उसके अर्द्धसज्जित; अर्द्धशिक्षित सैनिक पश्चिमी देशोंकी सुसज्जित एवं सुशिक्षित सेनाका सामना नहीं कर सकते। रूसका न तो कोई बन्दरगाह था और न उसके पास अपने जहाज ही थे ऐसी अवस्थामें संसारके मामलोंमें भाग लेना रूसके लिए आशातीत बात थी। अतः पीटरके सामने इस समय दो काम थे—पश्चिमी तरीकोंको जारी करना और एक 'ऐसी खिड़की तैयार करना' (बन्दरगाह बनाना) जिसके भीतरसे सिर निकालकर रूस बाहरका दृश्य भी देख सके।

संवत् १७५४ (सन् १६९७ ई०) में पश्चिमकी प्रत्येक कला तथा विज्ञान और भिन्न-भिन्न वस्तुएँ तैयार करनेके अच्छे-अच्छे तरीकोंकी खोज करनेके अभिप्रायसे पीटर स्वयं जर्मनी, हालैण्ड तथा इंग्लैण्ड गया। उत्तरके इस अर्द्धसभ्य विलक्षण जीवकी तीव्र दृष्टिसे कोई भी बात छूटने न पायी। एक सप्ताहतक उसने हालैण्डके कुलीकी पोशाक पहिनकर आम्सटरडमके पास सारडमके जहाजके कारखानेमें काम भी किया। इंग्लैण्ड, हालैण्ड तथा जर्मनीमें उसने कई कारीगरों, वैज्ञानिकों, शिल्पकारों, जहाजके कप्तानों तथा सैनिकोंको शिक्षा देनेवाले कुशल व्यक्तियोंको नौकर रखा और स्वदेशको लौटते समय रूसके संस्कार और विकासमें सहायता देनेके लिए उन्हें अपने साथ लिवाता गया।

राज-संरक्षक सैनिकोंके बागी हो जानेके कारण उसे घर लौटना पड़ा था। ये ...ग उन धनिकों तथा पादरियोंसे मिले हुए थे जो पीटरके अपने पूर्वजोंकी रीति-...मोंको त्याग देनेके कारण भयभीत हो गये थे। इन लोगोंको छोटे कोट पहिनने, ...ाखू पीने तथा दाढ़ी बनवा डालनेसे घृणा थी। इनकी दृष्टिमें ये 'जर्मनीवालोंके ...ाए' थे। पादरियोंने यहाँतक इङ्गित किया कि पीटर संभवतः ईसामसीहके ...द है। पीटरने विद्रोह करनेवालोंसे भीषण बदला लिया। कहते हैं कि बहुतोंके ...उसने अपने हाथसे काटे थे। बर्बर मनुष्यकी तरह तो वह था ही, उसने विद्रो-...के मस्तकों और मृत शरीरोंको तमाम जाड़ेके मौसिम भर यों ही इधर-उधर पड़े ...दिया, उन्हें गड़वाया नहीं, ताकि उसकी शक्तिके विरुद्ध उठनेवालोंकी कैसी ...होती है, यह सबकी समझमें साफ-साफ आ जावे।

पीटरके सुधार उसके शासनकालके अन्ततक बराबर होते रहे। उसने अपनी प्रजाको पूर्वीय ढंगकी दाढ़ी रखने तथा ढीले व लम्बे वस्त्र पहिननेसे रोक दिया। उच्च वर्गके लोगोंकी स्त्रियोंको, जो अभीतक एक तरहके पूर्वी अन्तःपुरमें रहती थीं, उसने बाहर आनेके लिए तथा पश्चिमी ढंगसे सभा-समाजोंमें पुरुषोंसे मिलनेके लिए विवश किया। उसने विदेशियोंको बुलाकर रूसमें बसाया और उन्हें उनकी रक्षाका, विशेष अधिकारोंका, तथा धार्मिक स्वतन्त्रताका विश्वास दिलाया उसने रूसी नव-युवकोंको विद्या सीखनेके लिए विदेशोंको भेजा और पश्चिमी राज्योंके ढंगपर अपने राजकर्मचारियों तथा सेनाका पुनः संगठन किया।

यह देखकर कि प्राचीन राजधानी मास्काऊके लोग पुरानी प्रथाओंको तोड़ना नहीं चाहते, वह नये रूसके लिए नयी राजधानी स्थापित करनेको तत्पर हुआ। इसके लिए उसने बाल्टिक समुद्रके किनारेकी भूमिका एक छोटा-सा टुकड़ा चुना जिसे उसने स्वीडनसे जीता था। यहाँकी जमीन तर तो जरूर थी, पर यहाँ उसे आशा थी कि कुछ समयके बाद रूसका पहला वास्तविक पोताश्रय बन सकेगा। यहाँ ही उसने राशि-राशि द्रव्य लगाकर सेण्ट पीटर्सबर्ग नामक राजधानी बसायी, जिसका नाम गत यूरोपीय युद्धके समयसे 'पेट्रोग्रेड' हो गया है। अब रूस धीरे-धीरे यूरोपीय शक्ति बनने लगा।

समुद्रतक राज्यका विस्तार बढ़ा देनेकी महत्वाकाङ्क्षाके कारण स्वीडनके साथ पीटरका झगड़ा हो जाना स्वाभाविक ही था, क्योंकि रूस और बाल्टिकके बीचकी भूमि स्वीडनके ही अधीन थी। स्वीडनमें या अन्य किसी देशमें पहले कभी ऐसा वीरप्रकृति राजा नहीं हुआ था जैसा असाधारण वीरत्व-सम्पन्न नवयुवक बारहवाँ चार्ल्स था, जिसका सामना पीटरको करना पड़ा। संवत् १७५० (सन् १६९३ ई०)में राज्या-रोहणके समय चार्ल्स केवल पन्द्रह वर्षका था। इसलिए बालक राजाको दुर्बल समझकर स्वीडनके स्वाभाविक शत्रु इस मौकेसे लाभ उठाना चाहते थे स्वीडनकी भूमि दबाकर अपने-अपने राज्यकी वृद्धि करनेकी इच्छासे डेनमार्क, पोलैण्ड तथा रूसका एक गुट बनाया गया, किन्तु सैनिक वीरतामें चार्ल्स दूसरा महान् अलैक्जण्डर प्रमाणित हुआ। उसने तुरन्त ही कोपेनहैगनको घेरकर डेनमार्कके राजाको सन्धिके लिए विवश कर यूरोपको आश्चर्यमें डाल दिया। फिर बिजलीकी तरह वह पीटरकी ओर चल पड़ा जो इस समय नारव्हाको घेरे हुए था। उसने केवल आठ हजार स्वीडनी सैनिकोंकी सहायतासे पचीस हजार रूसियोंका विध्वंस कर दिया (संवत् १७५७—सन् १७०० ई०)। इसके बाद उसने पोलैण्डके राजाको भी परास्त किया।

यद्यपि चार्ल्स बहुत योग्य सैनिक नेता था तो भी वह बुद्धिमान् शासक न

था। उसने पोलैण्डके राजासे पोलैण्ड छीन लेना चाहा, क्योंकि उसका ख्याल था कि इस राजाके प्रयत्नसे ही उसके विरुद्ध युद्ध बना था। उसने वारसामें एक अन्य व्यक्तिको राज्याभिषिक्त किया, जो बादमें उसके प्रयत्नसे राजा स्वीकृत कर लिया गया। अब उसने पीटरकी ओर दृष्टि फेरी जो इस बीचमें बाल्टिक प्रान्तोंको जीतनेमें लगा हुआ था। इस बार दैव स्वीडनके प्रतिकूल हो गया। मास्कोकी लम्बी यात्रा बारहवें चार्ल्सके लिए वैसी ही क्षतिपूर्ण प्रमाणित हुई जैसी एक शताब्दी बाद नेपोलियनको हुई थी संवत् १७६६ (सन् १७०९ ई०)में वह पुल्टोवाकी लड़ाईमें पूरी तरहसे हरा दिया गया। अब वह तुर्कीमें जाकर कई वर्षोंतक वहाँके सुलतानसे पीटर-पर आक्रमण करनेके लिए व्यर्थ ही अनुरोध करता रहा। अन्तमें वह स्वदेश लौट आया। संवत् १७७५(सन् १७१८ ई०)में एक नगरका अवरोध करते समय उसकी मृत्यु हो गयी।

चार्ल्सकी मृत्युके बाद शीघ्र ही स्वीडन तथा रूसमें एक सन्धि हुई जिसके कारण बाल्टिकके पूर्वीय छोरके लिव्होनिआ, एस्थोनिया तथा अन्य प्रान्त, जो स्वीडन राज्यके अधीन थे, रूसको दे दिये गये। कृष्ण सागरकी ओर पीटरको उतनी सफलता न हुई। उसने पहले अजफपर कब्जा किया, किन्तु स्वीडनके साथ युद्धमें लगे रहनेपर वह उसके हाथसे निकल गया। फिर कास्पियन समुद्रके किनारेके कुछ नगरों-पर उसका अधिकार हो गया। अब यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि यदि तुर्क लोग यूरोपसे हटा दिये जायँ तो उनके देशकी लूटमें रूस पश्चिमी शक्तियोंका बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी होगा

पीटरकी मृत्युके बाद कोई एक पीढ़ीतक रूस अयोग्य शासकोंके हाथमें रहा। जब संवत् १८१९ (सन् १७६२ ई०)में प्रसिद्ध रानी द्वितीय कैथरिन गद्दीपर बैठी तब फिर रूसकी गणना यूरोपीय राज्यमें होने लगी। इसके बादसे प्रायः सभी बड़े-बड़े मामलोंमें पश्चिमी देशोंको रूस-साम्राज्यका ख्याल हमेशा करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उन्हें जर्मनीके उत्तरके एक और राज्यका ध्यान भी रखना पड़ता था जो पीटरके शासनकालके प्रारम्भसे ही विशेष उन्नति करने लगा था। यह राज्य प्रशा था। अब हम इसीका वर्णन करेंगे।

ब्राण्डनबर्गका इलेक्टरेट जर्मनीके मानचित्रमें शताब्दियोंसे विद्यमान था, किन्तु वह एक दिन जर्मनीका प्रभावशाली राज्य बन जायगा ऐसी कल्पना करनेके लिए कोई विशेष कारण न था। कान्स्टेन्सकी सभा*के समयतक प्राचीन इलेक्टरोंका वंश समाप्त हो चुका था और धनकी आवश्यकता होनेके कारण सम्राट (जीजिसमॉण्ड) सिजिसमुण्ड† ने ब्राण्डनबर्गको इलेक्टरेट ऐसे वंशके हाथ बेच दिया जिसका नाम

---

* पृष्ठ १९२ देखिये † Sigismund

अभीतक सुननेमें न आया था। यह होएनत्सोल्लर्न ‡ वंश था। जर्मनीके पहले सम्राट् महान् फ्रेडरिक या प्रथम विलियमकी तथा वर्त्तमान राज्यच्युत सम्राट् कैसर-की गणना इसी वंशमें है। आरम्भमें यह राज्य बर्लिन नगरके पूर्व तथा पश्चिममें कोई ९० या १०० मीलतक ही फैला हुआ था, किन्तु इस वंशके भिन्न-भिन्न उत्तराधिकारियोंके समयमें क्रमशः इसकी वृद्धि होते-होते वर्त्तमान प्रशा जर्मनीके लगभग दो तिहाईके बराबर हो गया है। यों तो होएनत्सोल्लर्न वंशका यह अभिमान है कि उसके प्रत्येक वंशजने अपने पूर्वजोंसे प्राप्त राज्यकी कुछ न कुछ वृद्धि की, पर वास्तवमें तीस वर्षीय युद्धके पहले यह वृद्धि बिलकुल नाममात्रकी ही थी। उक्त युद्धके कुछ ही समय पूर्व ब्राण्डनबर्गके इलेक्टरको वंशानुक्रमके अधिकारसे क्लीव्ह प्रान्त प्राप्त हुआ, इस प्रकार राइन नदीकी भूमिपर पहले पहल उसका कब्जा हुआ।

इसी प्रकार प्रशाकी डची (ड्यूकके अधीन राज्य)की विजय भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रान्तको पोलैण्ड राज्यकी सीमा ब्राण्डनबर्गसे पृथक् करती थी। प्रशा पहले बाल्टिकके किनारेकी उस भूमिका नाम था जिसमें विधर्मी स्लाव लोग निवास करते थे। इन लोगोंको धर्मयुद्धकी यात्रा करनेवाले वीरभटों (नाइट्स)के एक दलने तेरहवीं शताब्दीमें जीत लिया, जब कि खीष्ट धर्मकी पवित्र भूमि जेरूसलमके उद्धारका विचार त्याग देनेके करण उन्हें और कोई खास काम नहीं रह गया था। इसमें जर्मनीके अधिवासी जा बसे, किन्तु बादमें उसपर पड़ोसके पोलैण्ड राज्यका आधिपत्य हो गया। यह प्रान्त जिन वीरभटोंके अधिकारमें था उनका दल ट्यूटानिक दल कहलाता था। पोलैण्डके राजाने इस दलके अधीन भूमिका पश्चिमार्द्ध प्रत्यक्ष रूपसे अपने राज्यमें मिला लिया। लूथरके समयमें संवत् १५८२ (सन् १५२५ ई०)में ट्यूटानिक दलके 'ग्राण्ड मास्टर' (अधिपति)ने, जो ब्राण्डनबर्गके इलेक्टरोंका सम्बन्धी था, अपने दलको भङ्ग कर पोलैण्डके राजाके अधीन प्रशाका ड्यूक बननेका निश्चय किया। कुछ समयके बाद उसका वंश समाप्त हो गया और डची ब्राण्डनबर्गके इलेक्टरके हाथ लगी। संवत् १७५८ (सन् १७०१ ई०)में जब सम्राट्ने ब्राण्डनबर्गके इलेक्टरको राजाकी उपाधि ग्रहण करनेकी अनुमति दी तब उसने अपनेको 'प्रशाका राजा' प्रसिद्ध करना ठीक समझा।

लूथरकी मृत्युके पहले ही ब्राण्डनबर्गने प्रोटेस्टेण्ट मत ग्रहण कर लिया था, किन्तु तीस वर्षीय युद्धमें उसने कोई विशेष प्रशंसनीय भाग नहीं लिया। उसकी वास्तविक महत्ताका प्रारम्भ महान् इलेक्टर (संवत् १६९७–१७४५) के समयसे होता है। वेस्टफेलियाकी सन्धिसे बाल्टिक समुद्रके किनारेकी भूमिका बड़ा भाग उसके कब्जेमें आ गया। अब वह अपने समकालीन चौदहवें लूईके ढंगपर एक

‡ Hohenzollerns

अनियन्त्रित शासनकी स्थापना करनेमें सफल हुआ। लूईका विरोध करनेमें उसने इंग्लैण्ड तथा हालैण्डका साथ दिया। इसके बादसे ब्राण्डनबर्गकी सेनाका नाम तथा आतङ्क फैलने लगा।

यद्यपि यूरोपमें खलबली उत्पन्न करनेका तथा यूरोपकी शक्तियोंमें प्रशाके नूतन राज्यकी गणना करानेका श्रेय महान् फ्रेडरिकको ही प्राप्त है, तथापि जिन साधनोंकी सहायतासे उसे विजय प्राप्त करनेमें सफलता हुई वे उसे अपने पिता फ्रेडरिक प्रथम विलियमसे मिले थे। फ्रेडरिक विलियमने अपने राज्यको मजबूत किया और प्रायः फ्रांस या आस्ट्रियाकी सेनाके बराबर ही सेना इकट्ठी कर ली। इसके अतिरिक्त उसने अपनी मितव्ययिताके कारण तथा सांसारिक सुखोपभोगकी ओरसे उदासीन रहकर महती सम्पत्तिका संचय भी कर लिया था। अतः शासनसूत्र ग्रहण करनेपर महान् फ्रेडरिकके पास सुसज्जित सेना तो तैयार थी ही, साथ ही उसके पास काफी द्रव्य भी मौजूद था।

यूरोपकी एक बड़ी शक्ति बन जानेके लिए प्रशाकी विस्तार-वृद्धि आवश्यक थी। इस प्रयत्नमें आस्ट्रियाके साथ उसकी मुठभेड़ होना अनिवार्य था। यह स्मरण रहे कि पञ्चम चार्ल्सने, राज्यारोहणके कुछ ही समयके बाद हैप्सबर्ग-वंशका जर्मन या आस्ट्रियन राज्य अपने भाई प्रथम फर्डिनण्डको दे दिया था और स्पेन, बर्गण्डी तथा इटलीका राज्य अपने अधीन रखा था। बोहीमिया तथा हंगरीके राज्योंकी उत्तराधिकारिणीके साथ विवाह होनेके कारण फर्डिनण्डके राज्यकी सीमा और भी बढ़ गयी, किन्तु उस समय हंगरीके प्रायः सारे राज्यपर तुर्कोंका कब्जा हो गया था, और विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीके मध्यतक आस्ट्रियाके शासक प्रायः मुसलमानोंका मुकाबिला करनेमें ही लगे रहे।

विक्रमकी चौदहवी शताब्दीके मध्यमें एक तुर्क जाति पश्चिमी एशियासे आकर एशियामाइनर (लघु एशिया) में बस गयी थी। उसके नेताका नाम था उस्मान (ओथमान*)। इसी व्यक्तिके नामपर उन लोगोंका नाम 'ओटोमन तुर्क' पड़ा है। ये लोग उन तुर्कोंसे विभिन्न हैं जो 'सेल्जुक' कहलाते थे और जिनका सामना धर्मयुद्धके यात्रियोंको करना पड़ा था। उसमानी तुर्कोंके नेताओंने अपने पुरुषार्थका अच्छा परिचय दिया। इन लोगोंने अपना एशियायी राज्य सुदूर पूर्वतक और बादमें अफ्रीकातक बढ़ा लिया। संवत् १४१० (सन् १३५३ई०) में इन लोगोंने यूरोपमें भी अपना पैर जमानेमें सफलता प्राप्त की इन लोगोंने धीरे-धीरे मकदूनियाके स्लाव लोगोंको अपने वशमें कर लिया और कुस्तुन्तुनियाके निकटवर्ती प्रदेशोंपर अधिकार

* othman.

जमा लिया, यद्यपि पूर्वीय साम्राज्यका यह प्राचीन राजनगर पूरी एक शताब्दीके बाद ही इनके हाथ आया।

तुर्क लोगोंकी इस प्रगतिको देखकर पश्चिमी यूरोपके राज्योंको स्वभावतः इस बातका भय होने लगा कि कहीं हमारी स्वाधीनता भी न छिन जाय। इस सामान्य शत्रु (तुर्कों)से बचावका भार वेनिस और जर्मनीके हैप्सबर्ग-वंशपर पड़ा। इन दोनोंने तुर्कोंके साथ लगभग दो सदियोंतक बराबर युद्ध जारी रखा। संवत् १७५० (सन् १६९३ ई०) में मुसलमानोंने एक बड़ी भारी सेना सुसज्जित कर वियेनापर घेरा डाला। यदि पोलैण्डके राजाने उस समय सहायता न पहुँचायी होती तो यह नगर मुसलमानोंके हाथ चला गया होता। इसी समयसे यूरोपमें तुर्कोंकी शक्ति क्रमशः क्षीण होती गयी और हैप्सबर्ग-वंशके शासकोंने हंगेरी और ट्रैनसिलवेनियाके समग्र प्रदेशपर पुनः अपना अधिकार जमा लिया। संवत् १७५६ (सन् १६९९ ई०) में सुलताननने हैप्सबर्गवालोंके इस अधिकारको नियमानुसार स्वीकार कर लिया।

संवत् १७९७ (सन् १७४० ई०)में, प्रशाके द्वितीय फ्रेडरिकके राज्यारोहणके कुछ मास पूर्व, हैप्सबर्ग-वंशके अन्तिम शासक सम्राट् षष्ठ चार्ल्सकी मृत्यु हुई इसने पहले ही समझ लिया था कि मेरी मृत्युके पश्चात् राज्याधिकारके सम्बन्धमें कुछ गड़बड़ी मचेगी, इसी विचारसे इसने बहुत दिनोंतक अपनी पुत्री मेरिआ थेरेसाको यूरोपीय शक्तियों द्वारा उत्तराधिकारिणी कबूल करानेका प्रयत्न किया था। इंग्लैण्ड, हालैण्ड तथा प्रशाकी भी यही इच्छा थी कि मेरिआ थेरेसा शीघ्र ही राज्यारूढ़ हो जाय, पर फ्रांस, स्पेन तथा पड़ोसी बवेरियाने, आस्ट्रियाके कुछ चिटफुट प्रदेशोंपर अधिकार जमा लेनेके उद्देश्यसे, इसका समर्थन नहीं किया। बवेरियाके ड्यूकने राज्यका न्याय्य उत्तराधिकारी समझे जानेका हठ किया और सप्तम चार्ल्सके नामसे अपनेको सम्राट् निर्वाचित करा लिया।

आरम्भमें द्वितीय फ्रेडरिकको सैनिक जीवनसे बड़ी घृणा थी। साहित्य तथा संगीतकी ओर ही उसकी विशेष प्रवृत्ति थी इसका उत्साही वृद्ध पिता इसके इस आचरणसे बहुत दुःखित था। फ्रेडरिकको फ्रांसीसी भाषाके प्रति विशेष श्रद्धा थी और वह इसे अपनी मातृभाषाकी अपेक्षा अधिकतर महत्त्व देता था, पर सिंहासनासीन होते ही सहसा फ्रेडरिकमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। वह युद्ध सम्बन्धी कार्योंमें आशातीत उत्साह और कौशल दिखलाने लगा। अब उसने प्रशाकी सीमा परिवर्द्धित करनेकी ठानी। इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए प्रकटतः निस्सहाय मेरिआ थेरेसाके अधीनस्थ ब्राण्डनबर्गके दक्षिणपूर्वीय एक छोटेसे प्रदेशको हस्तगत करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। तदनुसार वह अपनी सेना लेकर उक्त प्रदेशमें पहुँचा और बिना युद्धकी घोषणा किये या बिना कोई उचित

कारण दिखलाये ही उसने केवल सन्दिग्ध अधिकारके आधारपर ही उसपर कब्जा कर लिया।

फ्रेडरिकके उदाहरणसे उत्साहित होकर फ्रांसने भी मेरिआ थेरेसापर आक्रमण करनेमें बवेरियाका साथ दिया। कुछ दिनोंतक तो यह प्रतीत होता था कि वह अपने राज्यकी रक्षा न कर सकेगी; पर उसका पराक्रम और साहस देखकर सारी प्रजा राजभक्तिके आवेशमें आ गयी। फ्रांसीसी लोग शीघ्र ही मार भगाये गये, पर उसे फ्रेडरिकको, युद्धसे पृथक् होनेके लिए, साइलीशिआ देना पड़ा। अन्तमें इंग्लैण्ड तथा हालैण्डने बलसाम्य बनाये रखनेके विचारके परस्पर मैत्री कर ली, क्योंकि ये नहीं चाहते थे कि फ्रांस आस्ट्रियाके अधीन नेदरलैण्डपर अपना अधिकार जमा ले। सप्तम चार्ल्सके मरनेपर संवत् १८०२ (सन् १७४५ ई०)में मेरिआ थेरेसाका पति, लारेनका ड्यूक, फ्रैंसिस सम्राट् बनाया गया। कुछ वर्ष बाद संवत् १८०५ (सन् १७४८ ई०)में सभी शक्तियोंने युद्धसे ऊबकर शस्त्र रख दिये और सबने यह कबूल किया कि सब बातोंकी व्यवस्था फिर वैसी ही कर दी जाय जैसी युद्धके पूर्व थी।

साइलीशिआ फ्रेडरिकके ही अधिकारमें छोड़ दिया गया, इससे उसके राज्यमें तृतीयांशकी वृद्धि हो गयी। अब उसने अपनी प्रजाको अधिक सुखी और अधिक उन्नत बनानेकी इच्छासे दलदलोंको सुखाने, व्यवसायकी उन्नति करने तथा नवीन दण्डसंग्रह बनानेकी ओर दृष्टि फेरी। उसने विद्वानोंके सहवासमें अपनी विद्याभिरुचि-को पूर्ण करनेमें भी अपना समय लगाया और अठारहवीं सदीके सर्वप्रसिद्ध लेखक वाल्टेयरको बर्लिनमें निवास करनेके लिए आमन्त्रित किया। जो लोग इन दोनों व्यक्तियोंके स्वभावसे परिचित हैं उन्हें यह जानकर आश्चर्य न होगा कि दो ही तीन वर्ष बाद इन दोनोंकी आपसमें नहीं बनी और वाल्टेयर अत्यन्त अप्रसन्न होकर प्रशाके राजासे बिदा हुआ।

साइलीशिआके निकल जानेके कारण उत्पन्न मेरिआ थेरेसाके चित्तकी ग्लानि किसी प्रकार कम नहीं हुई। वह विश्वासघाती फ्रेडरिकको निकालकर उस प्रदेशको पुनः अपने अधिकारमें लाना चाहती थी। इसके परिणामस्वरूप जो युद्ध हुआ वह आधुनिक इतिहासमें सर्वप्रसिद्ध है। इसमें यूरोपकी लगभग सभी शक्तियाँ ही नहीं, बल्कि भारतीय राजाओंसे लेकर वर्जिनिया और न्यूइंग्लैण्डके अधिवासियोंतक, सारा संसार ही शामिल था। यह युद्ध सप्तवर्षीय युद्धके नामसे प्रसिद्ध है।

फ्रांसीसी राजाके दरबारमें मेरिआ थेरेसाका जो दूत था उसने अपना कार्य बड़ी कुशलतासे सम्पादित किया। यद्यपि हैप्सबर्गवंशके साथ २०० वर्षोंसे फ्रांसकी शत्रुता थी तो भी दूतने उसे प्रशाके विरुद्ध आस्ट्रियासे मैत्री करनेके लिए राजी कर लिया। रूस, स्वीडन तथा सैक्सनोंने भी आक्रमणमें साथ देना कबूल किया।

ऐसा प्रतीत होता था कि भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आयी हुई इनकी सेनाएँ आस्ट्रियाके प्रतिद्वन्द्वी प्रशाको पूर्णतः हड़प कर जायँगी।

फिर भी वास्तवमें इस युद्धके कारण ही फ्रेडरिकको 'महान्'की उपाधि प्राप्त हुई। सिकन्दरके समयसे नेपोलियनके समयतक जितने प्रधान वीर हुए थे, फ्रेडरिकने अपनेको उनमेंसे किसीसे भी कम प्रमाणित नहीं किया। इन मित्रोंके गुटका उद्देश्य विदित हो जानेपर उसने उनकी ओरसे युद्ध घोषणाकी प्रतीक्षा नहीं की, बल्कि तुरन्त ही सैक्सनीपर अधिकार कर लिया और बोहीमियाकी ओर भी बढ़ता चला गया, जहाँ वह राजधानी प्रेग भी हस्तगत करनेमें प्रायः सफल हुआ। यहाँ उसे हटना पड़ा, पर संवत् १८१४ (सन् १७५७)में उसने फ्रांसीसियों और जर्मन शत्रुओंको आगे रासबाचके प्रसिद्ध युद्धमें परास्त किया। इसके एक मास बाद ब्रेसलाके निकट लिउथनमें उसने आस्ट्रियाकी सेनाको तितर-बितर कर दिया। इसपर स्वीडन और रूसवाले युद्धसे पृथक् हो गये और उस समय फ्रेडरिकका सामना करनेवाला कोई न रहा।

अब इधर इंग्लैण्ड फ्रांसके साथ भिड़ गया, इससे फ्रेडरिकको और शत्रुओंका मुकाबला करनेका मौका मिल गया। यद्यपि प्रायः प्रत्येक युद्धमें वह असाधारण रण-कौशल प्रदर्शित करता था तो भी जितनी लड़ाइयाँ उसने लड़ीं उन सभीमें वह विजयी न हो सका। एक समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अन्तमें फ्रेडरिककी पराजय होगी, पर फ्रेडरिकके परम पक्षपाती नये जारके सिंहासनारूढ़ होनेके कारण रूसने प्रशाके साथ सन्धि कर ली। इसपर मेरिआ थेरेसाको एक बार फिर, इच्छा न होते हुए भी, अपने चिर शत्रुके साथ युद्ध बन्द कर देना पड़ा।

फ्रेडरिकने अपने शासनकालमें पोलैण्डके उस भागको जीतकर अपने राज्यकी वृद्धि की जो विस्ट्यूलाके उस पारके प्रदेशोंको उसके ब्राण्डनबर्गके अन्तर्गत प्रदेशोंसे पृथक् करता था। पोलैण्डका राज्य, जो बादमें अपनी अवनतिके दिनोंमें पश्चिमी यूरोपके लिए विशेष कष्टप्रद हुआ, रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशासे चारों ओरसे घिर गया था। संवत् १०५७ (सन् १००० ई०)में स्लाव जाति एक योग्य नेताकी अध्यक्षतामें यहाँ आकर बसी थी और यहाँके राजाओंने कुछ कालके लिए रूस, मोराविया तथा बाल्टिक प्रदेशोंके अधिक भागपर अपना आधिपत्य जमा लिया था, पर ये लोग उत्तम शासन-प्रणाली स्थापित करनेमें कभी भी कृतकार्य नहीं हुए। इसका कारण यह था कि यहाँ अमीर-उमराओं द्वारा राजा लोग निर्वाचित किये जाते थे, पड़ोसके राज्योंकी तरह वंशागत प्रथा प्रचलित नहीं थी। निर्वाचनके समयमें खूब गड़बड़ी मचती थी और प्रायः विदेशी लोग भी चुन लिये जाते थे। व्यवस्थापक सभामें पेश किये गये प्रत्येक विधानको कोई भी अमीर अस्वीकृत (विटो) कर सकता था,

जिसका परिणाम यह होता था कि अच्छीसे अच्छी योजना भी कार्यमें परिणत होनेसे रोक दी जा सकती थी। वहाँकी अराजकता तो प्रायः लोक-प्रसिद्ध ही हो गयी थी।

रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा—इन पड़ोसी राज्योंने यह बहाना पेश किया कि इस अव्यवस्थित राज्यसे हम लोगोंके हितमें बाधा पहुँचती है, फलतः इन लोगोंने इस हतभाग्य राज्यका थोड़ा-थोड़ा अंश आपसमें बाँटकर खतरेको दूर करनेकी तरकीब सोची। इसके परिणाममें पोलैण्डका पहला बँटवारा हुआ। इसके बाद दो बार इसका बँटवारा और हुआ। अन्तिम बँटवारेने मानचित्रसे इस प्राचीन राज्यका अस्तित्व ही मिटा दिया।*

फ्रेडरिकने अपने मरणकाल (सन् १७८६ ई०) तक अपने पितृदत्त राज्यको लगभग दूना कर दिया। उसने अपने सैनिक विक्रमसे प्रशा राज्यको विख्यात राज्य बना दिया और राज्यके प्राचीन भागोंकी जनताकी दशाका सुधार कर तथा पश्चिम भागमें जर्मन उपनिवेश बसाकर, राज्यकी आयके साधन बढ़ा दिये।

---

* यूरोपीय महायुद्धके बाद अब यह राज्य पुनः स्वतन्त्र हो गया है।

अध्याय ३३

आंग्ल देशका विस्तार

गत अध्यायमें पूर्वी यूरोपकी उन्नति और दो नयी शक्तियों—प्रशा और रूसके आविर्भावका उल्लेख किया गया है, साथ ही यह भी दिखलाया गया है कि किस प्रकार ये नयी शक्तियाँ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें आस्ट्रियाके साथ मिलकर अपने पड़ोसी निर्बल राज्यों—पोलैण्ड और तुर्की—का विनाश कर अपनी सीमावृद्धि करनेमें संलग्न थीं।

इसी समय पश्चिममें आंग्ल देश भी शीघ्रतापूर्वक अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। यद्यपि उस समयके यूरोपीय युद्धोंमें उसने विशेष भाग नहीं लिया, तो भी वह सामुद्रिक आधिपत्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करता रहा। स्पेनके उत्तराधिकारीकी लड़ाईके अनन्तर किसी भी यूरोपीय देशकी नौ-शक्ति इंग्लैण्डकी नौसेनाके मुकाबिलेकी न थी, क्योंकि फ्रांस और हालैण्ड दीर्घ कालव्यापी युद्धके कारण बहुत निर्बल हो गये थे। यूट्रेक्टकी सन्धिके ५० वर्ष बाद अंग्रेज लोग उत्तरी अमेरिका और भारतवर्ष, दोनों देशोंसे फ्रांसीसियोंको निकाल बाहर करनेमें कृतकार्य हुए, साथ ही वे विशाल औपनिवेशिक साम्राज्यकी नींव डालनेमें भी सफल हुए, जिसके कारण आज भी यूरोपीय देशोंमें आंग्ल देशकी व्यापारिक प्रधानता बनी हुई है।

विलियम और मेरीके सिंहासनारोहणसे आंग्ल देशने उन दो प्रश्नोंको भी हल कर दिया जिनके कारण गत ५० वर्षोंतक विषम कलह फैला हुआ था। पहले तो राष्ट्रने यह स्पष्टतः व्यक्त कर दिया कि वह प्रोटेस्टेण्ट रहना चाहता है आंग्ल देशकी धार्मिक संस्था तथा मतविरोधियोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी धीरे-धीरे सन्तोषजनक रूपसे ठीक होता जा रहा था। दूसरे, राजाके अधिकारोंकी सीमा सावधानीके साथ निश्चित कर दी गयी। विक्रमकी अठारहवीं सदीके उत्तरार्द्धसे आजतक किसी आंग्ल राजाने पार्लमेण्टके विधानको अस्वीकृत करनेका साहस नहीं किया है।

तृतीय विलियमके पश्चात् उसकी साली तथा द्वितीय जेम्सकी छोटी लड़की ऐन संवत् १७५९ (सन् १७०२)में सिंहासनासीन हुई। आंग्ल देश और स्काटलैण्डके अन्तिम सम्मिलनका महत्त्व उन युद्धोंसे कहीं बढ़कर था जो इंग्लैण्डके सेनाध्यक्षोंकी अधीनतामें स्पेनके विरुद्ध लड़े जा रहे थे। प्रथम एडवर्डने स्काटलैण्ट जीतनेका प्रयत्न किया था, परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं (पृष्ठ २२३-२४), वह सफल

न हो सका। उसी समयसे इन दोनों देशोंकी पारस्परिक कठिनाइयोंके कारण रक्तपात और कशीदा सिलसिला बराबर जारी था। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि दोनों देश प्रथम जेम्सके राज्यारोहण-कालसे एक ही शासकके अधीन थे, पर प्रत्येककी अपनी-अपनी स्वतन्त्र पार्लमेण्ट और शासनपद्धति थी। अन्ततः संवत् १७६४ (सन् १७०७ ई०) में दोनोंने मिलकर एक राज्यके अन्तर्गत रहना कबूल किया। उसी समयसे स्काटलैण्डकी ओरसे अंग्रेजी कामन सभाके लिए ४५ सदस्य और लार्ड सभाके लिए १६ लार्ड लिये जाने लगे। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेनका सम्पूर्ण द्वीप एक शासकके अन्तर्गत हो जानेसे पारस्परिक कलहके अवसर बहुत कुछ कम हो गये।

ऐनकी कोई सन्तान जीवित नहीं बची थी, इस कारण उसके राज्यारोहणके पूर्व ही किये गये निश्चयके अनुसार एक प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी उसका निकटतम उत्तराधिकारी इंग्लैण्डकी गद्दीपर बैठाया गया। यह प्रथम जेम्सकी पौत्री सोफियका पुत्र था। सोफियाने हनोवरके इलेक्टरसे अपना विवाह किया था, फलतः आंग्ल देशका नवीन राजा प्रथम जार्ज हनोवरका इलेक्टर और पवित्र रोमन साम्राज्यका सदस्य भी था।

नया राजा जर्मन होनेके कारण अंग्रेजी नहीं बोल सकता था, इस कारण उसे अपने मन्त्रियोंसे टूटी-फूटी लैटिनमें बातचीत करनी पड़ती थी राजाके प्रधान मन्त्रियोंने अपनी इच्छासे 'केबिनेट' अर्थात् मन्त्रिमण्डल नामकी एक छोटीसी सभा स्थापित कर ली थी। सभाके वाद विवाद समझ न सकनेके कारण जार्ज उसकी बैठकोंमें सम्मिलित नहीं होता था। इस कार्यसे उसने जो उदाहरण खड़ा कर दिया उसका अनुकरण उसके उत्तराधिकारी भी करते रहे। इस प्रकार मन्त्रि-सभा राजासे स्वतन्त्र होकर अपने अधिवेशन और कार्योंका सम्पादन करने लगी। शीघ्र ही आंग्ल देशमें यह निश्चित सिद्धान्त हो गया कि वास्तवमें उक्त सभा ही देशका शासन करती है, राजा नहीं,
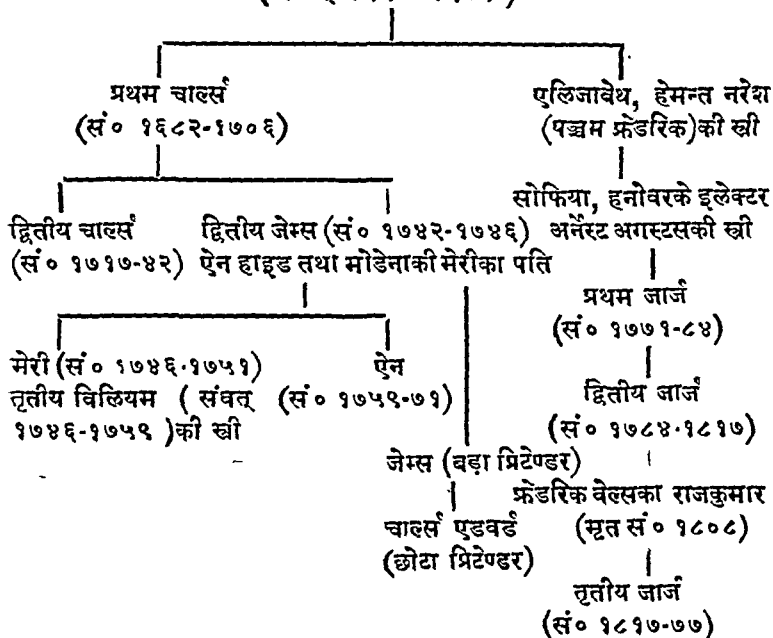
और इसके सदस्य, चाहे राजा उन्हें पसन्द करे या नहीं, तबतक अपने पदोंपर बने रह सकते हैं जबतक पार्लमेण्ट उनका विश्वास और समर्थन करती रहे।

ऑरेंजका विलियम आंग्ल देशका राजा होनेके पूर्व ही सारे यूरोपमें अपनी राजनीतिज्ञताके कारण प्रसिद्ध हो चुका था। वह सर्वदा फ्रांसको विशेष शक्ति-सम्पन्न होनेसे रोकनेका प्रयत्न करता रहा। भिन्न-भिन्न यूरोपीय देशोंमें बल-साम्य बनाये रखनेके लिए ही उसने स्पेनके उत्तराधिकारकी लड़ाईमें भाग लिया। इसी उद्देश्यसे इंग्लैण्ड भी विक्रमकी अठारहवीं सदीके उत्तरार्द्धसे उन्नीसवीं सदीके पूर्वार्द्ध-तक यूरोपीय शक्तियोंके युद्धोंमें थोड़ा-बहुत भाग लेता रहा, यद्यपि उसे ब्रिटिश चैनलके उस पार अपना राज्य बढ़ा सकनेकी आशा न थी। अपनी शक्ति-वृद्धि तथा साम्राज्य-विस्तारके लिए उसने जो युद्ध छेड़े वे संसारके सुदूरस्थ भागोंमें हुए। उनमें भी स्थल-युद्धकी अपेक्षा सामुद्रिक युद्धोंकी ही संख्या अधिक थी।

यूट्रेक्टकी सन्धिके २५ वर्ष बादतक आंग्ल देश निश्चिन्त रहा। वालपोलके प्रभावसे, जो २१ वर्षतक मन्त्रि-सभाका प्रधान रहा और सर्वप्रथम 'प्रधान मन्त्री' कहलाया, आंग्ल देशके भीतर और बाहर शान्ति विराजती रही। वह केवल अन्य देशोंके

साथ युद्धोंमें सम्मिलित होनेसे ही अलग नहीं रहा, बल्कि उसने देशके भीतर भी मनोमालिन्य दबानेका प्रयत्न किया जिसमें गृहकलह न छिड़ जाय। वह 'सोतेको न छेड़ो' नीतिका अनुयायी था, इसीलिए उसने मतविरोधियों और जैकोबाइट लोगों (जो स्ट्यूआर्ट-वंशके राज्याधिकारके पक्षपाती थे)को शान्त करनेका प्रयत्न किया।

संवत् १७९७ (सन् १७४० ई०)में जब फ्रेडरिक महान् और फ्रांसीसियोंने मेरिआ थेरेसापर आक्रमण किया तो आंग्ल देशने क्षतिग्रस्त रानीके साथ सहानुभूति दिखलायी। द्वितीय जार्जने जो संवत् १७८४ (सन् ७१२७ ई०)में अपने पिताके मरने पर सिंहासना-सीन हुआ था, हनोवरके इलेक्टरकी हैसियतसे एक जर्मन सेना लेकर फ्रांसीसियोंके विरुद्ध प्रस्थान किया और मेन नदीके तटपर उन्हें पराजित भी किया। इसपर फ्रेडरिकने आंग्ल देशके साथ युद्धकी घोषणा कर दी और फ्रांसकी ओरसे द्वितीय जेम्सका पौत्र, जो यंग प्रिटेण्डरके नामसे प्रसिद्ध था, आंग्ल देशपर आक्रमण करनेके लिए एक जहाजी बेड़ेके साथ भेजा गया। तूफानके कारण बेड़ेके तितर-बितर हो जानेसे यह प्रयत्न सफल न हो सका। संवत् १८०२ (सन् १७४५ई०)में फांसीसियों-ने अंग्रेजों और डचोंकी सम्मिलित सेनाको नेदरलैण्ड्जमें परास्त किया। इस विजयसे प्रोत्साहित होकर 'यंग प्रिटेण्डर'ने आंग्ल देशका राज्य जीतनेके उद्देश्यसे एक बार और प्रयत्न किया। वह स्काटलैण्डमें जा पहुँचा, जहाँ उत्तरीय भाग (हाइलैंड)-के सर्दारोंने उसका पक्ष ग्रहण किया और एडिनबरोने भी उसका स्वागत किया। छः सहस्र सैनिक एकत्र कर उसने आंग्ल देशमें पदार्पण किया, पर उसे शीघ्र ही स्काट-लैण्डको भागना पड़ा। संवत् १८०३ (सन् १७४६ ई०)में कलोडेन मूरपर वह बुरी तरह पराजित हुआ और जहाँ-तहाँ भटकता हुआ अन्तमें फ्रांस पहुँचा।

संवत् १८०५ (सन् १७४८ ई०)में आस्ट्रियाका उत्तराधिकार विषयक युद्ध समाप्त हो जानेके बाद शीघ्र ही आंग्ल देशको ऐसे युद्धोंमें प्रवृत्त होना पड़ा जिनका प्रभाव केवल आंग्ल देशकी ही स्थितिपर नहीं, बल्कि भूमण्डलके दूरस्थ भागोंपर भी विशेष रूपसे पड़ा। इन परिवर्त्तनोंको भली भाँति समझनेके लिए यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि किस प्रकार यूरोपीय राज्योंने समुद्र-पार स्थानोंपर अपना आधिपत्य जमाया।

सोलहवीं शताब्दीकी जिन समुद्रीय यात्राओंसे यूरोपको अमेरिका और भारतका ज्ञान प्राप्त हुआ था वे प्रायः पुर्तगालके निवासियों और स्पेनवालों द्वारा की गयी थीं। भारतमें और दक्षिणी अमेरिकाके ब्राजिल तटपर कोठियाँ खोलकर व्यापार-विस्तार करनेका उपाय प्रथम-प्रथम पुर्तगालवालोंको ही सूझा था। तदनन्तर स्पेनने मेक्सिको, वेस्ट इंडीज (पश्चिमी द्वीप-पुंज) और दक्षिणी अमेरिकापर हाथ बढ़ाया। सर्वप्रथम हालैण्डके निवासी इन दोनों शक्तियोंके प्रतिद्वन्द्वी बने। जब द्वितीय फिलिप

कुछ कालके लिए—संवत् १६३७-१६९७ तक—पुर्तगालको स्पेन-राज्यमें मिला लेनेमें समर्थ हुआ तो उसने शीघ्र ही लिस्बन बन्दरमें हालैण्डके जहाजोंका प्रवेश रोक दिया जिससे संयुक्तप्रान्त अर्थात् हालैण्ड और स्पेनी नेदरलैण्ड्जके सौदागरोंको पुर्तगालियों द्वारा पूर्वसे लाये गये मसालोंका मिलना बन्द हो गया। इसपर उक्त दोनों देशोंने जिन स्थानोंसे मसाले आते थे उन्हींपर अधिकार कर लेनेका निश्चय किया। इन्होंने पुर्तगालवालोंको भारत तथा मसालेके द्वीपोंकी उनकी बस्तियोंसे निकाल बाहर किया। अब जावा, सुमात्रा इत्यादि स्थान हालैण्डवासियोंके अधिकार में आ गये।

उत्तरी अमेरिकामें प्रधान प्रतिद्वन्द्वी आंग्ल देश और फ्रांस थे। विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें इस देशमें इन देशोंने अपने-अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। अंग्रेज लोग क्रमशः वर्जीनियाके जेम्स टाउन, न्यू इंग्लैण्ड, मेरीलैण्ड, पेन्सिलवेनिया तथा अन्यान्य स्थानोंमें बस गये। प्युरिटन, कैथलिक तथा क्वेकर लोगोंके धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भागकर आ बसनेके कारण इन उपनिवेशोंकी अभिवृद्धि हुई।

जिस प्रकार अंग्रेज लोग जेम्स टाउन बसा रहे थे उसी प्रकार फ्रांसीसी लोग नोवास्कोशिया तथा क्वेबेकमें सफलतापूर्वक अपनी बस्ती कायम कर रहे थे। यद्यपि अंग्रेजोंने फ्रांसीसियोंके कनाडापर अधिकार जमानेमें कोई रुकावट नहीं डाली, फिर भी यह कार्य बहुत ही धीरे-धीरे हुआ। संवत् १७३० (सन् १६७३ ई०)में मारकेट नामक एक जेजुइट पादरी और जालिवट नामक एक सौदागरने मिसिसीपी नदीका पता लगाया। लासालेने नदीके मुहानेकी ओर यात्रा की और जिस नये देशमें उसने प्रवेश किया उसका नाम, अपने राजाके नामपर लूईजआना रखा। संवत् १७७५ (सन् १७१८ ई०)में नदीके मुहानेके निकट न्युआर्लियन्स नामक नगर बसाया गया और फ्रांसीसियोंने इसके तथा माण्ट्रेआलके मध्य कई दुर्ग बनवाये।

यूट्रेक्टकी सन्धिसे अंग्रेज लोग उत्तरी प्रान्तमें बसनेमें समर्थ हुए, क्योंकि इस सन्धिसे फ्रांसीसियोंको न्यूफाउण्डलैण्ड, नोवास्कोशिया और हडसन उपसागरके तटवर्ती स्थान अंग्रेजोंको सिपुर्द करने पड़े थे। सप्तवर्षीय युद्धके आरम्भके समय उत्तरी अमेरिकामें जहाँ अंग्रेजोंकी संख्या दस लाखसे अधिक समझी जाती थी वहाँ फ्रांसीसियोंकी संख्या इसके बीसवें भागसे अधिक नहीं थी। इतना होनेपर भी उस समयके विज्ञ पुरुषोंका विश्वास था कि इस नवीन देशपर अपना विशेष प्रभुत्व जमानेमें आंग्ल देशकी अपेक्षा सम्भवतः फ्रांस ही अधिक समर्थ हो सकेगा।

आंग्ल देश और फ्रांसकी प्रतिद्वन्द्विता उत्तर अमेरिकाके उन जंगलोंतक ही व्याप्त नहीं थी, जहाँ लाल वर्णवाले पाँच लाख असभ्य मनुष्य निवास करते थे।

अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें इन दोनों शक्तियोंने बीस करोड़ मनुष्योंकी निवास-भूमि तथा उच्च कोटिकी प्राचीन सभ्यताके केन्द्रस्थान विशाल भारत साम्राज्यके तटवर्ती स्थानोंपर अपने पैर जमा लिये थे।

वास्कोडिगामाके कालीकटमें पदार्पण करनेके ठीक एक पीढ़ी बाद बाबरने भारतमें अपना साम्राज्य स्थापित किया। मुगलवंशके शासकोंने दो सदियोंसे अधिक ही सारे देशपर अपना अधिकार बनाये रखा। इसके पश्चात् उनका साम्राज्य शार्लमेनके साम्राज्यकी तरह विध्वस्त हो गया। कारोलिंजियन कालके काउण्टों तथा ड्यूकोंकी तरह साम्राज्यके अफसर, नवाब, सूबेदार और राजा लोग, जो कुछ कालके लिए मुगलोंके अधीन हो गये थे, अपने-अपने प्रदेशोंपर धीरे-धीरे अधिकार जमाते गये। विक्रमकी १८वीं सदीके उत्तरार्द्धमें, जब कि अंग्रेज और फ्रांसीसी भारतके तटवर्ती स्थानोंके लिए घात लगाना आरम्भ कर रहे थे, यद्यपि मुगल सम्राट् अपनी राजधानी दिल्लीमें राज्य कर रहे थे, तो भी सारे देशमें उनकी हुकूमत नहीं मानी जाती थी।

प्रथम चार्ल्सके राजत्वकालमें संवत् १६९६ (सन् १६३९ ई०)में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीने भारतके दक्षिण-पूर्वी तटपर एक ग्राम खरीदा था। पीछे यही स्थान मद्रासके नामसे अंग्रेजोंका प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया। लगभग एक पीढ़ी बाद बंगाल प्रान्तके एक भागपर कम्पनीका अधिकार हो गया और कलकत्ता नगरकी स्थापना की गयी। बम्बई पहलेसे ही अंग्रेजोंका व्यापारिक केन्द्र था। पहले तो मुगल सम्राट्ने अपने विशाल साम्राज्यकी सीमापर इने-गिने विदेशियोंके निवासका कुछ ख्याल नहीं किया, पर १८वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके लगभग देशी शासकों और अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बीच संघर्ष पैदा हो गया जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि विदेशियोंको स्वयं अपनी रक्षा करनेके लिए वाधित होना पड़ेगा।

अंग्रेजोंको केवल देशी लोगोंका ही नहीं, बल्कि एक यूरोपीय शक्तिका भी सामना करना पड़ा। फ्रांसकी भी एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी और पांडिचेरी, जिसकी ६२ हजारकी आवादीमें केवल दो सौ यूरोपियन थे, इस कम्पनीका केन्द्र-स्थान था। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गयी कि मुगल सम्राट्की ओरसे अब कोई खतरा नहीं रहा। इसके अतिरिक्त पुर्तगालवाले और हालैण्डवाले रङ्गभूमिसे पृथक् हो गये थे। अब केवल देशी नरेश, फ्रांसीसी और अंग्रेज लोग ही अपने-अपने भाग्यका निर्णय करनेके लिए शेष रह गये थे।

संवत् १८१३ (सन् १७५६ ई०)में सप्तवर्षीय युद्ध नामक यूरोपीय शक्तियोंका संघर्ष आरम्भ होनेके ठीक पहले अमेरिका और भारतमें आधिपत्य प्राप्त करनेके विषयसे अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंमें युद्ध छिड़ गया। अमेरिकामें यह युद्ध अंग्रेजों

और फ्रांसीसी औपनिवेशिकोंके बीच संवत् १८११ (सन् १७५४ ई०)में ही आरम्भ हो गया था। आंग्ल देशसे जेनरल ब्रैडक फ्रांसीसियोंके 'डूकेन' नामक दुर्गपर जिसे उन्होंने अपने शत्रु अंग्रेजोंको ओहियो प्रदेशसे दूर रखनेके विचारसे बनाया था, अधिकार कर लेनेके लिए भेजा गया। ब्रैडकको सीमान्त युद्धप्रणालीका जरा भी अनुभव न था। वह मारा गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। आंग्ल देशके भाग्यसे फ्रांसको आस्ट्रियाके मित्रकी हैसियतसे प्रशाके साथ युद्धमें संलग्न होना पड़ा जिसके कारण वह अपने अधीनस्थ अमेरिकन स्थानोंकी ओर समुचित ध्यान न दे सका। इस समय प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बड़ा पिट इंग्लैण्डका प्रधान मन्त्री था। उसने जन-धन द्वारा सहायता पहुँचाकर प्रशाके राजाको तबाही-से बचाया। इसके अतिरिक्त उसने अमेरिकाके १३ उपनिवेशोंकी सेनाको भी सहायता पहुँचायी। संवत् १८१६ (सन् १७५९ ई०)में फ्रांसीसी दुर्ग टाईकोंडेरोगा और नियागरापर अधिकार कर लिया गया। ऊल्फके वीरतापूर्ण आक्रमणसे क्वेबेकपर भी अधिकार हो गया और दूसरे ही वर्ष सारा कनाडा अंग्रेजोंके हाथ आ गया। जिस वर्ष क्वेबेक फ्रांसके हाथसे निकला उसी वर्ष इंग्लैण्डके नौ सेनापतियोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक फ्रांसीसी बेड़ेका विध्वंस कर अपने देशकी सामुद्रिक शक्तिकी प्रधानता प्रदर्शित की।

आस्ट्रियाके उत्तराधिकारके युद्धके समयमें ही भारतमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियों-के बीच मुठभेड़ शुरू हो गयी थी। पांडिचेरीकी फ्रांसीसी कोठीका गवर्नर ड्यूप्ले था। यह बड़ा ही वीर सैनिक था और अंग्रेजोंको निकालकर भारतवर्षमें फ्रांसका प्रभुत्व जमाना चाहता था। देशी शासकोंमें, जिनमेंसे कुछ तो हिन्दू थे और कुछ भारतके विजेता मुगलोंके वंशज थे, कलह फैल जानेके कारण ड्यूप्लेकी सफलताका मार्ग और भी निष्कण्टक हो गया। ड्यूप्लेके पास बहुत कम फ्रांसीसी सैनिक थे इसलिए उसने देशी सैनिकोंकी भरती करना आरम्भ किया। अंग्रेजोंने भी शीघ्र ही इस प्रथाका अवलम्बन किया। इन देशी सैनिकोंको, जिन्हें अंग्रेज लोग 'सिपाही' कहते थे, यूरोपीय ढंगपर युद्ध करना सिखलाया गया।

अंग्रेज औपनिवेशिकोंको, जिनका प्रधान काम प्रायः व्यापार करना ही था, इस बातका पता लग गया कि उनकी मद्रासकी कोठीमें एक ऐसा लेखक है जो साहस तथा युद्धकलामें ड्यूप्लेसे किसी प्रकार कम नहीं है। यह रावर्ट क्लाइव था। उसकी अवस्था इस समय केवल २५ वर्षकी थी। उसने सिपाहियोंकी एक बृहत् सेना तैयार की। अपनी असाधारण वीरताके कारण वह उनका प्रधान बन गया। ड्यूप्लेने एक्स-ला-शेपेलकी सन्धिपर कुछ भी ध्यान न देकर अंग्रेजोंके विरुद्ध

अपनी कार्रवाई जारी रखी, पर क्लाइव अपने प्रतिद्वन्द्वीसे बढ़-चढ़कर निकला और दो ही वर्षमें उसने दक्षिण-पूर्वी भारतमें अंग्रेजोंकी प्रधानता स्थापित कर दी।

जिस समय सप्तवर्षीय युद्ध आरम्भ हो रहा था उसी समय मद्राससे लगभग एक हजार मील उत्तर-पूर्व कलकत्तेकी अंग्रेजी बस्तीके सम्बन्धमें क्लाइवके पास एक खेदजनक समाचार पहुँचा कि बंगालके सूबेदारने कुछ अंग्रेज सौदागरोंकी सम्पत्ति जब्त कर ली और १४५ अंग्रेजोंको एक छोटी कोठरीमें कैद कर दिया जिनमेंसे अधिकांश सूर्योदयके पूर्व ही दम घुटकर मर गये। क्लाइव शीघ्रतापूर्वक बंगाल पहुँचा। उसने ९०० यूरोपीय और १५०० देशी सैनिकोंकी एक छोटी सेनाकी सहायतासे सूबेदारके ५० हजार सैनिकोंको प्लासीके मैदानमें पराजित किया। क्लाइवने तब एक ऐसे व्यक्तिको सूबेदार बनाया जिसे वह अंग्रेजोंका मित्र समझता था। सप्तवर्षीय युद्ध समाप्त होनेके पहिले ही अंग्रेजोंने पाण्डिचेरीको जीत लिया और मद्रास प्रदेशमें फ्रांसीसियोंका जो प्रभाव था उसे सर्वथा नष्ट कर दिया।

संवत् १८२० (सन् १७६३ ई०)में पेरिसकी सन्धिसे जब सप्तवर्षीय युद्ध समाप्त हुआ तो यह बात स्पष्ट हो गयी कि इस युद्धसे और शक्तियोंकी अपेक्षा अंग्रेजोंने अधिकतर लाभ उठाया है। भूमध्य सागरके किनारेवाले दोनों दुर्ग जिब्राल्टर और माहोन बन्दर जो मिनारका द्वीपपर था, आंग्ल देशके ही अधिकारमें छोड़ दिये गये। फ्रांससे उसे अमेरिकामें कनाडाका विशाल प्रदेश और नोवास्कोशिया तथा वेस्ट इण्डीजके कई द्वीप मिले। मिसिसिपीके उस पारकी भूमि फ्रांसने स्पेनको दे दी। इस प्रकार उत्तरी अमेरिकासे फ्रांसका बिलकुल अधिकार जाता रहा। यद्यपि यह सत्य है कि भारतमें जो स्थान अंग्रेजोंने फ्रांसीसियोंसे जीते थे वे उन्हें लौटा दिये गये, तो भी देशी शासकोंपरसे फ्रांसीसियोंका प्रभाव बिलकुल जाता रहा, क्योंकि क्लाइवके कार्योंसे अब उनपर अंग्रेजोंके नामका विशेष दबदबा जम गया था।

इस प्रकार अपने औपनिवेशिकोंकी सहायतासे आंग्ल देश उत्तरी अमेरिकासे फ्रांसीसियोंको निकाल बाहर करने और मेक्सिकोको छोड़ शेष महाद्वीपको अंग्रेज-जातिके लिए सुरक्षित रखनेमें समर्थ हुआ। किन्तु अधिक दिनोंतक इस विजयका आनन्द मनाना उसके भाग्यमें नहीं बदा था, क्योंकि पेरिसकी सन्धिके बाद शीघ्र ही उसमें तथा अमेरिकाके अधिवासियोंमें कर लगानेके सम्बन्धमें कलह प्रारम्भ हो गया, जिसका परिणाम युद्ध और अंग्रेजी-भाषा-भाषी स्वतन्त्र राष्ट्र अर्थात् अमेरिकाके संयुक्त राज्योंकी स्थापना हुआ।

आंग्ल देशको यह उचित प्रतीत हुआ कि उपनिवेशोंको भी गत युद्धके व्ययका, जो बहुत ही अधिक था, कुछ भाग अपने ऊपर लेना चाहिये और अंग्रेज सैनिकोंकी एक स्थायी सेना उन्हें रखनी चाहिये, इसलिए संवत् १८२२ (सन् १७६५ ई०)में

पार्लमेण्टने 'स्टाम्प एक्ट' नामका एक कानून बनाया जिसके अनुसार औपनिवेशिकोंका कानूनी कागजोंपर स्टाम्प (टिकट) लगाना आवश्यक हुआ। अमेरिकावालोंने यह कहकर इसकी अवमानना की कि हमपर कर लगानेका अधिकार पार्लमेण्टको नहीं है, क्योंकि उक्त सभामें हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं। स्टाम्प एक्टका इतना अधिक विरोध हुआ कि पार्लमेण्टने इसे रद्द तो कर दिया, पर उसने यह साफ-साफ जाहिर कर दिया कि पार्लमेण्टको उपनिवेशोंपर कर लगानेका और उनके लिए कानून बनानेका पूरा अधिकार है।

संवत् १८३० (सन् १७७३ ई०)में अमेरिकासे आनेवाली चायपर कुछ हलका कर लगा दिये जानेके कारण बखेड़ा और भी बढ़ गया। बोस्टनके कुछ राज्य-विद्रोही नवयुवकोंने बन्दरमें खड़े हुए चायसे लदे एक जहाजपर आक्रमण किया और सारी चाय पानीमें डुबो दी। बर्कने जो कामन सभाका कदाचित् सबसे योग्य सदस्य था, मन्त्रिमण्डलसे यह अनुरोध किया कि अमेरिकनोंको स्वयं अपने ऊपर कर लगाने देना चाहिये, पर तृतीय जार्ज तथा पार्लमेण्टके सदस्य औपनिवेशिकोंके इस विरोधको यों ही नहीं छोड़ देना चाहते थे। उनकी यह धारणा थी कि इस बखेड़ेकी प्रबलता विशेषकर न्यूईंग्लैण्डसे ही है और यह आसानीसे दबा दिया जा सकता है। संवत १८३१ (सन् १७७४ ई०)में कानून बनाकर बोस्टनमें माल उतारना या लादना रोक दिया गया और मासाचसेटके उपनिवेशसे न्यायाधीश और बड़ी व्यवस्था-पक सभाके लिए सदस्य चुननेका अधिकार जो पहिले प्राप्त था, छीन लिया गया और वह राजाके हाथमें दे दिया गया।

इन कार्योंसे मासाचसेट तो शान्त हुआ नहीं, उलटे और उपनिवेशोंके मनमें भी शङ्का उत्पन्न हो गयी, इसलिए सबने एक कांग्रेसकी योजना कर फिलेडेल्फियामें उसका अधिवेशन किया। कांग्रेसने यही निर्णय किया कि जबतक उपनिवेशोंकी सभी बुराइयोंका प्रतिकार न होगा तबतक आंग्ल देशके साथ व्यापार रोक दिया जाय। दूसरे वर्ष अमेरिकनोंने लेक्सिङ्गटनमें तथा बंकरहिलकी लड़ाईमें बड़ी वीरता-पूर्वक अंग्रेजी सेनाका सामना किया। नयी कांग्रेसने युद्धकी तैयारी करनेका निर्णय कर एक सेना तैयार की और जार्ज वाशिंगटनको जो वर्जिनियाका एक किसान था और गत फ्रांसीसी युद्धमें कुछ ख्याति भी प्राप्त कर चुका था, सेनाका अध्यक्ष बनाया। अबतक उपनिवेशोंका विचार आंग्ल देशसे अलग होनेका नहीं था, पर समझौतेका प्रयत्न सफल न होनेके कारण संवत् १८३३ के आसाढ़-श्रावण (जुलाई, १७७६ ई०) में कांग्रेसने घोषित कर दिया कि 'संयुक्त राज्य स्वतन्त्र और स्वाधीन हैं और अधि-कारतः यही होना भी चाहिये।'

इस घटनासे फ्रांसमें बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई। सप्तवर्षीय युद्धोंका परिणाम

फ्रांसके लिए बहुत ही दुःखदायी हुआ था। उसके पुराने शत्रु आंग्ल देशपर किसी विपत्तिका आना उसके लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात थी। संयुक्त राज्य अमेरिकाने फ्रांसको अपना स्वाभाविक मित्र समझकर नये फ्रांसीसी राजा १६ वें लूईसे सहायता पानेकी आशासे बेंजामिन फ्रैंकलिनको वर्सेल्स भेजा। फ्रांसके राजमन्त्रियोंको यह विश्वास न हुआ कि ये उपनिवेश आंग्ल देशकी बढ़ी हुई शक्तिके आगे बहुत दिनों तक टिक सकेंगे। किन्तु संवत् १८३४ (सन् १७७७ ई०)में जब अमेरिकनोंने साराटोगीमें बरगोनेको पराजित कर दिया तब फ्रांसने संयुक्त राज्यके साथ सन्धि कर उसे स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य मान लिया। यह बात आंग्ल देशके साथ युद्ध-घोषणा करनेके समान ही हुई। इन अमेरिकनोंके लिए फ्रांसमें ऐसा जोश फैला कि कुछ नवयुवक सर्दार, जिनमें लाफेयेट सर्वप्रसिद्ध था, अतलांतिक महासागर पार कर युद्ध करनेके लिए अमेरिकन सेनासे जा मिले।

वाशिंगटनके आत्मत्यागी और कुशल होनेपर भी अधिकतर युद्धोंमें अमेरिकनोंकी हार होती गयी। यदि फ्रांसीसी बेड़ेकी सहायता न मिली होती तो अमेरिकन लोग यार्कटाउनमें अंग्रेजी सेनापति कार्नवालिसको आत्मसमर्पणके लिए विवश कर सफलतापूर्वक युद्धका अन्त कर सकते या नहीं, इसमें सन्देह ही है। पेरिसकी सन्धिसे युद्ध समाप्त होनेके पूर्व ही स्पेन फ्रांससे मिल गया था। उसके तथा फ्रांसके बेड़ोंने जिब्राल्टरपर घेरा डाल दिया। अंग्रेजोंके गोलोंसे उनके युद्धपोत तहस-नहस हो गये। अंग्रेजोंके शत्रुओंने उनको इस प्रसिद्ध स्थानसे हटानेके लिए फिर कोई प्रयत्न नहीं किया। इस युद्धका मुख्य परिणाम यह हुआ कि संयुक्त राज्योंकी स्वतन्त्रता आंग्ल देशने मान ली और मिसिसिपी नदी इन राज्योंकी सीमा मानी गयी। मिसिसिपीके पश्चिमका विस्तृत लुईजिआना प्रदेश स्पेनवालोंके ही अधिकारमें रहा।

यूट्रेक्टकी सन्धिसे लेकर पेरिसकी सन्धितकके ६० वर्षोंके यूरोपीय युद्धका परिणाम संक्षेपमें इस प्रकार दिया जा सकता है—उत्तर-पूर्वमें रूस और प्रशा ये दो नवीन शक्तियाँ यूरोपीय राष्ट्रोंकी श्रेणीमें सम्मलित हुईं। साइलीसिया और पश्चिमी पोलैंडपर अधिकार कर प्रशाने अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया। उन्नीसवीं सदीमें, जर्मनीमें प्राधान्य प्राप्त करनेके विचारसे प्रशा और आस्ट्रिया दोनों आपसमें भिड़ गये। परिणाम यह हुआ कि पवित्र रोमन साम्राज्यके स्थानमें, जो नाममात्रके लिए हैप्सबर्ग-वंशकी अधीनतामें अबतक चला आया था, होएनत्सोल्लर्नोंकी अध्यक्षतामें वर्तमान जर्मन साम्राज्यकी स्थापना हुई।

सुलतानकी शक्ति बड़ी शीघ्रतासे क्षीण हो रही थी, आस्ट्रिया और रूस उसके यूरोपीय प्रान्तोंपर हाथ साफ करनेका पहलेसे ही विचार कर रहे थे। इससे यूरोपीय शक्तियोंके सम्मुख एक नयी समस्या उपस्थित हो गयी (बादमें इसका नाम 'पूर्वीय

प्रश्न' पड़ा)। यदि आस्ट्रिया और रूसको तुर्की राज्योंको अधिकारमें लाकर शक्ति बढ़ानेका अवसर दिया जाता तो यूरोपकी शक्ति-तुला, जिसका आंग्ल देश विशेष पक्षपाती था, कायम नहीं रह सकती थी। इसलिए इस समयसे तुर्की पश्चिमी यूरोपके राष्ट्रोंकी पंक्तिमें ले लिया गया, क्योंकि यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि पश्चिमी यूरोपके कुछ राज्य सुलतानके साथ मैत्री करनेके लिए इच्छुक हैं और पड़ोसियोंसे रक्षा करनेमें प्रत्यक्ष रूपसे उसकी मदद भी करना चाहते हैं।

आंग्ल देशने अमेरिकन उपनिवेशोंको खो दिया था और उसने अपनी कुटिल नीतिसे एक ऐसे राज्यको स्थापित होनेका अवसर दिया जो उसीकी भाषा बोलता था और जिसका विस्तार उत्तरी अमेरिकाके मध्य अतलांतिक महासागरसे प्रशान्त महासागरतक हुआ। फिर भी कनाडापर उसका अधिकार बना रहा। उसने उन्नीसवीं सदीमें दक्षिणी गोलार्द्धके आस्ट्रेलिया महादेशको अपने विशाल औपनिवेशिक साम्राज्यमें मिला लिया। भारतमें अब कोई यूरोपीय राष्ट्र उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा और धीरे-धीरे उसका अधिकार हिमालयके दक्षिण सारे भूभागपर विस्तृत हो गया। संवत् १९३४ (सन् १८७७ ई०)में मुगल सम्राट्के स्थानपर महारानी विक्टोरिया भारतकी सम्राज्ञी घोषित की गयीं।

चौदहवें लूईके प्रपौत्र १५ वें लूइके सुदीर्घ राज्यकालमें फ्रांसकी अवस्था पहलेसे भी बुरी रही। फिर भी उसने लारेन और संवत् १८२५ (सन् १७६८ ई०)में कार्सिका द्वीप जीतकर अपनी राज्य-वृद्धि की। इसके एक वर्ष पश्चात् कार्सिकाके आयाचो * नगरमें एक बालक उत्पन्न हुआ जिसने अपनी प्रतिभासे कुछ दिनोंके लिए फ्रांसको एक ऐसे विस्तृत साम्राज्यका केन्द्र बना दिया जो विस्तारमें शार्लमेनके साम्राज्यसे किसी प्रकार कम न था। उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धमें फ्रांसमें एकराजतन्त्रके स्थानमें प्रजातन्त्र स्थापित हो गया और उसकी सेना मेड्रिडसे लेकर मास्कोतककी प्रत्येक यूरोपीय राजधानीपर अधिकार जमानेमें लगी रही। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति तथा नेपोलियनके युद्धोंसे जो असाधारण परिवर्तन उपस्थित हुए उन्हें समझनेके लिए फ्रांसकी उस परिस्थितिपर गौरसे विचार करना होगा जिससे संवत् १८४६ (सन् १७८९ ई०)में वहाँकी संस्थाओंका पूरा सुधार और चार वर्ष पश्चात् प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई।

---

*Ajaccio

अध्याय ३४

वैज्ञानिक उन्नति

विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीके मध्यतक लोगोंका ख्याल था कि वर्तमानकी अपेक्षा प्राचीन काल अधिक अच्छा था। मध्य युगवाले समझते थे कि अरस्तूके विविध ग्रन्थोंमें जो ज्ञान-राशि संचित है उसे ही समझाना और उसीकी शिक्षा देना विश्वविद्यालयोंका मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये, नूतन अनुसन्धान द्वारा उसकी वृद्धि या उसका संस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु आजसे कोई दो सौ वर्ष पहले यूरोपवासियोंको इस बातका स्पष्ट अनुभव होने लगा कि अनेक प्राचीन विचारों और प्रथाओंमें सुधारकी आवश्यकता है। उन्हें मालूम होने लगा कि हमारी उन्नतिके प्रधान बाधक हमारे पूर्वजोंका अज्ञान तथा भ्रमात्मक विचार और वे रीतियाँ हैं जो अब अधिक समय बीत जानेके कारण समयानुकूल नहीं रह गयी हैं। इस परिस्थितिके सुधारकी प्रथम आशाका श्रेय उन परिश्रमी और धैर्यवान् वैज्ञानिकोंको है जिन्होंने यह दिखला दिया कि प्रचीन विद्वानोंसे अनेक भूलें हो गयी हैं और उन्हें वास्तवमें संसारकी घटनाओंका बहुत स्पष्ट ज्ञान न था।

मध्ययुगके विद्वानों तथा बहुत लोगोंको प्राकृतिक संसारसे उतना प्रेम नहीं था। वे लोग प्राकृतिक शास्त्रोंकी ओर उतना ध्यान न देकर दर्शन और धर्मशास्त्रकी ओर विशेष ध्यान देते थे। वे प्राचीन विद्वानों—विशेषतः अरस्तू—के ग्रन्थोंसे ही प्रकृतिविषयक कुछ ज्ञान प्राप्त कर सन्तुष्ट हो जाते थे। १३ वीं सदीमें रोजर बेकन नामक एक फ्रांसिस्कन परिव्राजकने पुस्तकोंके प्रति इस अन्धभक्तिका विरोध किया। यह बात उसे पहले ही विदित हो गयी कि यदि पानी, हवा, प्रकाश, तन्तु, वनस्पति इत्यादि निकटवर्ती प्राकृतिक पदार्थोंकी भली भाँति जाँच की जाय तो ऐसी कई महत्त्वपूर्ण बातोंका पता लगेगा जो मानव-समाजके लिए विशेष लाभदायक प्रमाणित होंगी।

उसने ज्ञान-प्राप्तिके तीन मार्ग बतलाये हैं, जिन्हें विज्ञान-विशारद लोग अब भ प्रयोगमें लाते हैं। पहला यह कि प्राकृतिक पदार्थों तथा परिवर्तनोंकी बड़ी सावधानीके साथ जाँच होनी चाहिये जिसमें अन्वेषक यह ठीक-ठीक निश्चित कर सके कि अमुक कारणसे अमुक परिस्थिति उत्पन्न हुई है। यह इसीका परिणाम है कि वर्त्तमान माप-जोख तथा विश्लेषण-पद्धतिमें आशातीत उन्नति हुई है। उदाहरणार्थ यदि

साधारण व्यक्तिके सामने एक कटोरा अशुद्ध पानी रख दिया जाय तो सम्भव है, वह उसे सर्वथा शुद्ध प्रतीत हो, पर रसायनज्ञ अपनी जाँच द्वारा शीघ्र ही बतला देगा कि उसमें किन-किन पदार्थोंका कितना अंश मौजूद है। दूसरा मार्ग प्रयोगात्मक है। बेकन किसी घटनाके निरीक्षण मात्रसे ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता था। घटनाओंके नये कृत्रिम सम्मिश्रण तथा प्रक्रिया द्वारा वह उसकी परीक्षा भी करता था। वैज्ञानिक अन्वेषक आजकल बराबर इस प्रयोगात्मक ढंगका अनुसरण करते हैं और ऐसी कई बातोंका निर्णय कर लेते हैं जो बड़ी सावधानीसे निरीक्षण करनेपर भी मालूम न हो सकतीं। तीसरा यह कि अन्वेषण तथा प्रयोगात्मक क्रियाओंके लिए विशेष यन्त्रोंकी आवश्यकता है। उदाहरणस्वरूप तेरहवीं सदीमें ही यह पता लग गया था कि गोलाकार आतशी शीशेसे देखनेपर छोटी वस्तुएँ बड़ी देख पड़ती हैं, यद्यपि दूरबीन और खुर्दबीनके बननमें कई सदियाँ बीत गयीं।

दो बड़ी-बड़ी भ्रान्तियों—कीमिया और फलित ज्योतिषमें विश्वास—के कारण वैज्ञानिक उन्नतिकी गति और भी तेज हो गयी। मध्ययुगके विद्वानों तथा अन्वेषकोंपर इन सिद्धान्तोंकी छाप यूनानियों तथा रोमन लोगोंने डाली थी। वर्तमान रसायनशास्त्रकी उन्नति कीमियागरी और गणित ज्योतिषसे ही हुई है।

कीमियागरोंने पारसमणिकी प्राप्तिके उद्देश्यसे अपना प्रयोगात्मक कार्य जारी रखा। उन लोगोंका यह विश्वास था कि यदि यह पत्थर, सीसा, पारा, चाँदी इत्यादिमें मिला दिया जावे तो वह उक्त धातुओंको सुवर्णमें परिणत कर दे। उन लोगोंकी यह भी धारणा थी कि उक्त मणिका कुछ अंश बूढ़ा मनुष्य पान कर ले तो वह युवा हो जायगा और उसकी आयु बेहद बढ़ जायगी। यूनानियों तथा अरब लोगोंने पश्चिमी यूरोपके लोगोंको ऐसी कई विचित्र वस्तुओंके नाम बतलाये थे जिनका सम्मिश्रण अभीष्ट पदार्थ उत्पन्न कर सकता है। पारसमणिका तो पता नहीं लगा, पर इस अन्वेषण-कार्यसे ऐसे कई लाभदायक मिश्रित द्रव्योंका पता लगा जो इस समय दवा या तरह-तरहके उद्योगोंमें काम आते हैं। इन द्रव्योंके विलक्षण ही नाम रखे गये।*

अरस्तूका यह सिद्धान्त था कि क्षिति, समीर, पावक और जल यही चार तत्त्व हैं और ताप, ठंढ, शुष्कता और आर्द्रता यही पदार्थोंके मौलिक गुण हैं। इस प्राचीन धारणाके कारण रसायनशास्त्रकी उन्नतिमें विशेष बाधा पड़ी। अठारहवीं सदीके एक जर्मन कीमियागरने यह दलील पेश की कि ज्वाला भी एक तत्त्व ही है जो

---

* क्रीम आव टार्टर=एक प्रकारका पोटाश इत्यादिसे बनाया हुआ मिश्रित द्रव्य। आयल आव विट्रायल=जमाया हुआ गन्धकका तेजाब।

पदार्थोंमें तबतक अव्यक्त रूपसे वर्तमान रहती है जबतक उनका गर्मीसे सम्पर्क नहीं होता। उस समयके दिग्गज विद्वानोंने भी इस सिद्धान्तको मान लिया। पारसमणि पानेकी चिरकालगत आशाको अंग्रेज रसायन-शास्त्रज्ञों, विशेषकर व्योयलने निर्मूल किया। नये-नये पदार्थोंका पता लगा, हाइड्रोजन, कार्बन और नाइट्रोजन इत्यादि गैस शुद्ध रूपमें निकाले गये।

अठारहवीं शताब्दीके अन्ततक वर्तमान रसायन-शास्त्रकी वास्तविक स्थापना नहीं हुई थी। इसी समयमें लेवोसियर नामक एक फ्रांसीसी रसायन-शास्त्रज्ञ अपने पन्द्रह वर्षके प्रयोग द्वारा हवाका विश्लेषण करनेमें कृतकार्य हुआ। उसने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि किसी पदार्थका जलना ओषजन ग्रहण करनेकी शक्ति रखनेवाले पदार्थके साथ ओषजनके मिश्रणका फल है। उसने सावधानीसे तौलकर दिखला दिया कि जले हुए पदार्थकी तौल जलनेके कारण उत्पन्न पदार्थ तथा मिले हुए ओषजन दोनोंकी संयुक्त तौलके बराबर है। उसीने पहले पहल जलका विश्लेषण कर ओषजन और उज्जन*में बाँटा और फिर इन दोनोंको मिलाकर जल भी बनाया। संवत् १८४४ (सन् १७८७ ई०)में उसने 'फ्रेंच एकेडेमी आव साइन्सेज'की रासायनिक पदार्थोंके नामकरणकी एक नयी पद्धति बतलायी। रसायन-शास्त्रकी पाठ्य-पुस्तकोंमें उन्हीं नामोंका प्रयोग होता है। लेवोसियरके तुला-प्रयोग, विश्लेषण तथा संश्लेषण, ज्वलन ज्ञान तथा प्रसिद्ध गैसोंकी ही सहायतासे रसायन-शास्त्रज्ञोंने कई नयी बातोंका पता लगा लिया और उन्होंने अपने ज्ञानका कई क्रियात्मक तरीकोंसे प्रयोग किया। फोटोग्राफी, विस्फोटक पदार्थ और आनिलाइनके रंग इत्यादि इसी प्रयोगके परिणाम हैं।

जिस प्रकार कीमियाकी आशासे रसायन-शास्त्रकी उन्नति हुई उसी प्रकार ग्रह-चारके द्वारा भविष्य-कथनके विश्वाससे गणित ज्योतिषका विकास हुआ। कुछ ही काल पूर्वतक बड़े-बड़े समझदार लोगोंका भी यही विश्वास था कि इन आकाशस्थ पिण्डोंका मनुष्यके भाग्यपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। फलतः यदि बच्चेके जन्मकालका लग्न ठीक-ठीक मालूम हो जाय तो उसका सारा जीवन-फल जान लेना सम्भव है। इसी धारणाके कारण जब ग्रह अनुकूल होते थे तभी महत्त्वके कार्य प्रारम्भ किये जाते थे। वैद्योंका भी यही विश्वास था कि दवाइयोंका गुणकारी होना ग्रहोंकी स्थितिपर ही निर्भर है। मानव-समाजके कार्योंपर ग्रहोंके प्रभावका ही विषय फलित ज्योतिष (एस्ट्रालाजी) कहलाता है। मध्य-युगके किसी-किसी विश्वविद्यालयमें यह विषय पढ़ाया भी जाता था। खगोल-विद्याका अध्ययन करनेवाले पीछे इस परिणामपर पहुँचे कि ग्रहोंकी चालका मनुष्यके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता,

*Oxygen and hydrogen

किन्तु फलित ज्योतिषवालोंने जिन बातोंका अनुसन्धान किया था उन्हींके आधार-पर वर्तमान ज्योतिषकी स्थापना हुई।

सारे मध्ययुग, यहाँतक कि तमोयुगमें भी विद्वानोंको पृथ्वीके गोल होनेकी बात मालूम थी। उन्होंने जो आयतन निकाला था वह बहुत कम भी न था। उनको यह भी ज्ञान था कि ये ग्रह और तारे आकारमें बहुत बड़े और पृथ्वीसे लाखों मील दूर हैं। तो भी विश्वके विस्तारका उन्हें नितान्त अशुद्ध ज्ञान था। भूलसे वे लोग पृथ्वीको केन्द्र मानते थे और ख्याल करते थे कि सूर्य इत्यादि सम्पूर्ण आकाशीय पिण्ड प्रतिदिन पृथ्वीकी परिक्रमा किया करते हैं। कुछ यूनानी दार्शनिक इसकी सत्यतामें सन्देह भी प्रकट करते थे, किन्तु पोलैण्ड-निवासी कोपरनिक (कोपरनिकस) नामक ज्योतिषीने साहसपूर्वक यह प्रतिपादित किया कि पृथ्वी तथा अन्यान्य ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ "आकाशीय पिण्डोंकी परिक्रमा"* संवत् १६०० (सन् १५४३ ई०)में ठीक उसकी मृत्युके बाद प्रकाशित हुआ। वह अपने इस सिद्धान्तको प्रमाणित कर सकनेमें असमर्थ था। कैथलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों सम्प्रदायके लोगोंने इस सिद्धान्तको मूर्खतापूर्ण और बेहूदा बतलाया, क्योंकि यह बाइबिलके उपदेशोंके सर्वथा प्रतिकूल था। फिर भी ज्योतिषने आकाशीय पिण्डों और उनकी स्थितिके सम्बन्धमें जिस नये विचारका मार्ग खोल दिया उसका अध्ययन गणितके नये ज्ञानकी सहायतासे बराबर जारी रहा।

जिन सत्य बातोंके सम्बन्धमें पहलेके ज्योतिषियोंके हृदयमें शङ्कामात्र प्रकट हुई थी, उनको गेलिलियोने प्रत्यक्ष करके दिखला दिया। एक छोटे-से दूरदर्शक यन्त्रकी सहायतासे, जो आजकलके यन्त्रोंके सामने बहुत ही तुच्छ था, उसने सूर्यपरके धब्बोंका पता लगाया (संवत् १६६७)। इन धब्बोंसे यह स्पष्ट हो गया कि सूर्य भी अपनी धुरीपर ठीक उसी प्रकार घूमता है जिस प्रकार पृथ्वीके घूमनेके सम्बन्धमें ज्योतिषियोंका विश्वास है। उसके छोटे दूरदर्शक यन्त्रसे यह भी देखा गया कि बृहस्पतिके उपग्रह उसकी परिक्रमा ठीक उसी तरह करते हैं जिस प्रकार विविध ग्रह सूर्यकी परिक्रमा किया करते हैं।

जिस वर्ष गेलिलियोकी मृत्यु हुई उसी वर्ष प्रसिद्ध गणितज्ञ आइजक न्यूटनका जन्म हुआ संवत् १६९९-१७८४)। गणितकी सहायतासे उसने अपने पूर्वके ज्योतिषियोंके कार्य जारी रखा। उसने यह प्रमाणित किया कि वह आकर्षण शक्ति जिसे हम लोग गुरुत्वाकर्षण कहते हैं विश्वव्यापक है और सूर्य, चन्द्र प्रभृति सभी आकाशीय पिण्ड दूरीके हिसाबसे परस्पर एक दूसरेका आकर्षण करते हैं।

---

*Upon the Revolutions of the Heavenly Bodies [अपान दि रिव्होल्यूशन्स आफ् दि हेव्हनली बाडीज।]

इधर दूरदर्शक यन्त्रसे तो ज्योतिषको सहायता मिली, उधर सूक्ष्मदर्शक यन्त्रके ारे व्यावहारिक ज्ञानकी वृद्धि हुई। सत्रहवीं सदीमें लोग मामूली भद्दे सूक्ष्मदर्शक न्त्रको ही प्रयोगमें लाते थे और उसीसे बहुत कुछ लाभ उठाते थे। लेवेनहोक ामक एक डच व्यापारीने ऐसा अच्छा लेंस (शीशा) तैयार किया कि रक्त और लके कीड़ोंतकका पता उससे लगा लिया गया। उन्नीसवीं सदीके उत्तरारम्भमें च्छे-अच्छे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र तैयार हो गये थे। अब इस यन्त्रकी इतनी उन्नति हो यी है कि उसकी सहायतासे छोटीसे छोटी वस्तुएँ चार हजार गुने आकारमें खलाई देती हैं।

अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि प्रायः सभी प्राकृतिक विज्ञान एक दूसरेपर अव- म्बित हैं। जीव-विज्ञान, आयुर्वेद, भू-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान इन सभीके विद्वानों- े अन्वेषण-विषयक कार्योंमें रसायन-शक्तिकी सहायता लेनी पड़ती है, इस कारण नके लिए इसका ज्ञान परमावश्यक है। इसी प्रकार अन्य विषयोंके लिए भी और- ेर विषयोंकी सहायता अपेक्षित है।

फ्रांसिस बेकन नामक एक अंग्रेज राजनीतिज्ञने सर्वप्रथम ज्ञात विज्ञानोंकी खोज- लिए एक योजना तैयार की। ऐसी आशा थी कि यदि समुचित रूपसे उसकी द्धतिका अनुसरण किया गया तो कई अद्भुत बातोंका पता लगेगा। हमनाम, रोजर कनकी तरह उसका भी कथन यही था कि यदि मनुष्य सभी पदार्थोंका सम्यक् नुसन्धान करे और बेहूदा शब्दोंका विश्वास ताकपर धर दे तो जो आविष्कार होंगे नके सामने पिछले आविष्कार नहींके बराबर ठहरेंगे। विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाये जानेवाले रस्तूके दर्शनका भी वह विरोधी था। उसका कथन है—ऐसा एक भी दृढ़-संकल्प- क्ति नहीं नजर आया जो सभी (भ्रान्तिमय) सिद्धान्तों और आम विश्वासोंको कर सब बातोंको जाँच समझदारीके साथ नये सिरेसे जारी करे। यही कारण है मानवजातिका ज्ञान कई प्रकारके ऐसे अपरिपक्व अनुभवोंका सम्मिश्रण है जो न्धविश्वासों तथा आकस्मिक घटनाओंसे प्राप्त हुए हैं और हमारे बचपन-कालकी बनाओंसे ओत-प्रोत हैं।

बेकनकी मृत्युके कुछ ही दिन बाद फ्रांस तथा इंग्लैण्डकी सरकारें वैज्ञानिक ्नतिमें दिलचस्पी लेने लगीं। संवत् १७१९ (सन् १६६२ ई०) में राजाकी क्षत्रतामें लन्दनमें 'रायल सोसायटी' कायम हुई जिसके विवरण अद्यपर्यन्त नियमित यपर निकलते रहते हैं। इसके चारवर्ष पश्चात् कोलबर्टने फ्रेंच एकेडेमी आफ साइं- ं * [फ्रांसीसी विज्ञान-परिषद्] नामक संस्थाका समुचित रूपसे संगठन किया। परिषदों तथा प्रशा-नरेश द्वारा संवत् १७५७ (सन् १७०० ई०) में बर्लिनमें

* The French Academy of Sciences.

सिकन्दर या सीजरसे भी बड़ा समझता था। क्वेकर्स लोगोंकी सादगी तथा युद्धके प्रति घृणासे वह विशेष प्रभावित हुआ। उसे अंग्रेज दार्शनिकों, विशेषकर जान लाकका अध्ययन करनेमें अधिक प्रसन्नता होती थी। पोपके 'एस्से आन मैन' नामक काव्य-प्रबन्धको वह उच्च कोटिका नैतिक-काव्य समझता था। वह अंग्रेजोंकी भाषण करने तथा लेख लिखनेकी स्वतन्त्रताका प्रशंसक था।

इंग्लैण्डकी जिन जिन बातोंसे वाल्टेयर प्रभावित हुआ था उन्हें उसने चिट्ठियोंके रूपमें प्रकाशित करना आरम्भ किया, किन्तु पेरिसके उच्च न्यायालयने उन्हें निन्दनीय कहकर जलवा डालनेकी आज्ञा दी। इसके बाद वाल्टेयर बुद्धिसे काम लेने और ज्ञान-विकासमें विश्वास करनेका यूरोपभरमें सबसे बड़ा प्रतिपादक बन गया। बुद्धिपर जोर देनेका परिणाम यह हुआ कि उस समयकी अनेक रीतियों और अनेक विचारोंका परित्याग किया जाने लगा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि निरन्तर अपनी परिस्थितिकी कोई न कोई असम्भव बात ढूँढनेमें तथा उत्सुक पाठकोंके सामने उसे चतुरतापूर्वक रखनेमें ही व्यग्र रहती थी। उसे प्रायः प्रत्येक विषयमें दिलचस्पी थी। उसने इतिहास, नाटक, दर्शन, उपन्यास, महाकाव्य इत्यादिके अतिरिक्त अपने बहुसंख्यक प्रशंसकोंको अगणित पत्र भी लिखे।

जिस समय वाल्टेयर सर्वसाधारणको स्वतन्त्र आलोचनाकी शिक्षा दे रहा था उसी समय वह रोमन कैथलिक संस्थापर भी आक्रमण कर रहा था। उसे राजाकी अनियन्त्रित शक्तिकी विशेष चिन्ता न थी, पर वह धर्म-संस्थाको बुद्धि-स्वातन्त्र्यका विरोध करनेके कारण उन्नतिका प्रधान बाधक समझता था। अन्धविश्वासों, धार्मिक असहिष्णुता तथा छोटी-छोटी बातोंपर जघन्य झगड़ोंके ख्यालसे तो वह धर्मसंस्थाकी निन्दा करता ही था, साथ ही वह शासनसम्बन्धी कार्योंमें धर्मसंस्थाके नियन्त्रणको अत्यन्त हानिकर समझता था। उसने अपने लेखोंमें इस बातपर जोर दिया कि धर्म-संस्थाका कोई भी कानून तबतक मान्य न होना चाहिये जबतक सरकार उसे स्पष्ट-रूपसे स्वीकार न कर ले। सब पादरियोंपर सरकारका नियन्त्रण रहना चाहिये, अन्य मनुष्योंकी तरह उन्हें भी कर देना चाहिये और उन्हें किसी मनुष्यको पापी कहकर उसको किसी भी अधिकारसे वञ्चित करनेका हक न होना चाहिये।

यह सत्य है कि उसके निर्णय बहुधा ऊपरी बातोंके आधारपर किये जाते थे और कभी-कभी वह ऐसे परिणामोंपर पहुँचता था जो परिस्थिति देखते हुए असम्भाव्य प्रतीत होते थे। उसे धर्मसंस्थाके दोष ही देख पड़ते थे और उसने प्राचीन कालमें मनुष्यजातिके लिए क्या-क्या किया है यह समझनेमें वह असमर्थ-सा प्रतीत होता था। किन्तु कई त्रुटियोंके होते हुए भी वह एक असाधारण पुरुष था। उसने अन्याय और अत्याचारका जोरोंसे विरोध किया।

वाल्टेयरके प्रशंसकोंमें डेनिस डीड्रो तथा वे विद्वान् अधिक प्रसिद्ध हैं जिन्होंने नूतन विश्वकोप तैयार करनेमें सहायता दी थी। डीड्रो अत्यन्त उदार बुद्धिवाला फ्रांसीसी तत्ववेत्ता था। वाल्टेयरकी तरह उसने भी बेकन, लाक इत्यादि अंग्रेज दार्शनिकोंका अध्ययन किया था। उसने 'फिलासफिक थाट्स' (दार्शनिक विचार) नामक ग्रन्थ तैयार किया जिसमें उसने लिखा कि जिस बातके सम्बन्धमें कभी कोई शङ्का नहीं की गयी उसकी प्रामाणिकता भी साबित नहीं हो सकी। किसी बातमें विश्वास करनेके पहले यह आवश्यक है कि हम उसमें अविश्वास या उसके सम्बन्धमें शङ्का करें। अतः संशयवादसे अर्थात् उचित शङ्का करनेसे ही हम सत्यके समीप पहुँच सकते हैं। पेरिसकी 'पार्लमेण्ट' (उच्च न्यायालय)ने इस पुस्तकको जला डालनेकी आज्ञा दी। इसके अनन्तर वह अपने एक और लेखके कारण कुछ समयके लिए कारागृहमें डाल दिया गया।

डीड्रोने विश्वकोप तैयार करनेमें डी-एलम्बर्टको अपना प्रधान सहायक चुना। सम्पादकोंने कमसे कम विरोध उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया। जिन विचारों और सम्मतियोंके साथ उनकी सहानुभूति न थी उनका भी समावेश उन्होंने अपने ग्रन्थमें किया। इतना होनेपर भी प्रथम दो जिल्दोंके प्रकाशित होते-होते राजाके मन्त्रियोंने धर्मसंस्थावालोंको प्रसन्न करनेके लिए उन्हें जब्त करनेकी आज्ञा दे दी, यद्यपि इसके आगेका काम उन्होंने नहीं रोका।

ज्यों-ज्यों विश्वकोपके खण्ड प्रकाशित होते गये, त्यों-त्यों उनकी ग्राहक-संख्या बढ़ती गयी, पर साथ ही विरोधियोंका दल भी प्रबलतर होता गया। वे कहने लगे कि कोप बनानेवाले धर्म और समाजका उन्मूलन करनेपर उतारू हैं। सरकारने फिर हस्तक्षेप किया। उसने कोप प्रकाशित करनेकी आज्ञा वापस ले ली और अभीतक जो सात खण्ड प्रकाशित हो चुके थे उन्हें बेचनेकी मुमानियत कर दी। डी-एलम्बर्ट बड़ा निराश हुआ और यद्यपि अभी कोपका कार्य 'एच्' अक्षरतक ही पहुँचा था, तो भी उसने इसके बाद इस कार्यसे हाथ धो लेनेका निश्चय किया।

सात वर्षोंके बाद डीड्रोने, सरकारी मुमानियतके रहते हुए भी, कोपके शेप दस खण्ड भी किसी प्रकार प्रकाशित कर ग्राहकोंको सन्तुष्ट किया। कोपका कार्य योग्य और विशेपज्ञ विद्वानोंसे कराया गया था। उसमें नरम किन्तु प्रभावोत्पादक शब्दोंमें धार्मिक असहिष्णुताकी, अनुचित करोंकी, गुलामीके व्यापारकी तथा फौजदारीके कानूनकी ज्यादतियोंकी आलोचना की गयी थी। उसमें लोगोंको प्रकृति-ज्ञानकी ओर ध्यान देनेको प्रोत्साहन दिया गया था।

अभीतक वाल्टेयर तथा डीड्रोने राजाओंकी या उनके अनियन्त्रित शासनकी आलोचना नहीं की थी। यह काम माण्टेस्कीने किया। उसने इंग्लैण्डकी परिमित

एकतन्त्र प्रणालीकी प्रशंसा करते हुए फ्रांसीसी शासन-पद्धतिकी त्रुटियों और असुविधाओंका दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न किया। उसका कथन था कि इंग्लैण्डवालोंकी जो स्वतन्त्रता प्राप्त है उसका कारण यह है कि वहाँ शासनकी तीनों शक्तियाँ—कानून करनेवाली, शासन करनेवाली तथा न्याय करनेवाली—एक ही व्यक्ति या व्यक्तिसमूहके हाथमें नहीं हैं। वहाँ पार्लमेण्ट तो कानून बनाती है, राजा उन्हें कार्यमें परिणत करता है और न्यायालय, जो इन दोनोंसे स्वतन्त्र हैं, यह देखते हैं कि कानूनोंकी ठीक-ठीक पाबन्दी होती है या नहीं।

वाल्टेयरकी तरह रूसोके लेखोंने भी लोगोंके हृदयमें उस समयकी अवस्थाके प्रति असन्तोष उत्पन्न करनेमें सहायता दी। वाल्टेयर, डीड्रो तथा डी. एलम्बर्टके विपरीत उसकी धारणा थी कि मनुष्य कम विचार करनेके बजाय बहुत ज्यादा विचार करते हैं। वह समझता था कि यूरोपको सभ्यताका अजीर्ण हो गया है, इसलिए उसने लोगोंसे पुनः प्राकृतिक जीवन और सादगी ग्रहण करनेका अनुरोध किया। संवत् १८०७ (सन् १७५० ई०)में उसने एक निबन्ध लिखा जिसमें उसने यह मत प्रकट किया कि कलाओं तथा विज्ञानकी उन्नतिके कारण मनुष्य नीतिभ्रष्ट हो गये हैं। कुछ समयके बाद उसने शिक्षापर एक पुस्तक लिखी। इसमें उसने अध्यापकों द्वारा किये गये प्रकृतिके संस्कारके प्रयत्नोंका विरोध किया। 'सब वस्तुएँ जैसी कि ईश्वरने रचना की है, अच्छी हैं, किन्तु मनुष्यके हाथमें पड़कर प्रत्येक वस्तु बिगड़ जाती है।' रूसोका विश्वास था कि अपने देशके शासनमें भाग लेनेका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको है। इस विषयकी चर्चा उसने अपने 'सोशल कण्ट्रैक्ट' (सामाजिक प्रण) नामक ग्रन्थमें की है। इसका पहिला वाक्य यह है 'मनुष्यको ईश्वरने स्वतन्त्र पैदा किया, किन्तु अब वह जगह-जगह बन्धनोंसे जकड़ा हुआ है।'

सुधारोंकी आवश्यकता प्रकट करनेके लिए इस समय जितनी पुस्तकें लिखी गयीं उनमेंसे इटली-निवासी अर्थशास्त्रज्ञ बेकरियाकी पुस्तकने बड़ा काम किया। इसमें उसने फौजदारीके कानूनोंके अन्यायोंका अत्यन्त स्पष्ट दिग्दर्शन किया। उसने खुले-आम मुकदमा करनेकी पद्धति जारी करनेपर जोर दिया और कहा कि अभियुक्तोंको अपने विरुद्ध साक्ष्य देनेवालोंका सामना करनेका अवसर मिलना चाहिये। अपराध कबूल करानेके लिए किसीको शारीरिक कष्ट देनेकी उसने घोर निन्दा की। उसकी राय थी कि प्राणदण्डकी प्रथा बिलकुल उठा दी जाय, क्योंकि उससे दुराचारी व्यक्तियोंपर उतना लाभजनक प्रभाव नहीं पड़ता था जितना आजीवन कैदसे पड़ता है। उसने इसपर भी जोर दिया कि दोष लगाये जानेपर अमीरों या न्यायाधीशोंके साथ भी साधारण मनुष्योंकी तरह व्यवहार होना चाहिये।

विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें यूरोपमें एक नूतन शास्त्रकी उत्पत्ति हुई।

राष्ट्रकी सम्पत्ति कैसे बढ़ायी जा सकती है, वस्तुएँ किस तरह तैयार करनी और उन्हें किस प्रकार बेचना चाहिए, माँग और पूर्त्तिका निश्चय किन नियमोंके आधारपर होता है, मुद्रा और साखका क्या महत्व है इत्यादि अनेक प्रश्नोंका विशेष अध्ययन किया जाने लगा। अर्थशास्त्रके नियमोंसे अभिज्ञ न होते हुए भी यूरोपीय राज्य धीरे-धीरे व्यापार और उद्योगोंका नियन्त्रण करने लगे। फ्रांसीसी सरकारने तो कोलबर्टकी प्रधानतामें प्रायः प्रत्येक वस्तुका नियन्त्रण प्रारम्भ कर दिया। फ्रांसकी तैयार की हुई वस्तुएँ अन्य देशोंमें शीघ्र बिक सकें, इस उद्देश्यसे किस तरहका कपड़ा बनाया जाय और किस तरहके रंगोंका प्रयोग किया जाय, इत्यादि बातोंके सम्बन्धमें निश्चित नियम बना दिये गये।

अनाज तथा खाद्य वस्तुओंके सम्बन्धमें राजाके मन्त्री कड़ी नजर रखते थे और वे इन्हें किसी एक व्यक्तिके पास अत्यधिक मात्रामें इकट्ठी न होने देते थे। कहा जाता था कि किसी देशकी समृद्धि तभी हो सकती है जब वह बाहरसे जितना माल मँगाता है उसकी अपेक्षा अधिक माल बाहर भेजे। ऐसा होनेसे उसे प्रतिवर्ष बाहरी देशोंसे कुछ न कुछ पावना रहेगा जो सोने या चाँदीके रूपमें चुकाया जायगा। इस सोने-चाँदकी आमदनीसे देशकी साम्पत्तिक अवस्था सुधरेगी। जो कहते थे कि जहाजोंकी रक्षा करने और उनके गमनागमनको प्रोत्साहित करनेमें, उपनिवेश बसानेमें तथा कारखानों द्वारा प्रस्तुत वस्तुओंका नियन्त्रण करनेमें राज्यकी शक्तिका प्रयोग होना चाहिये वे 'मर्केण्टलिस्ट' कहलाते थे।

संवत् १७५७ (सन् १७०० ई०)के लगभग फ्रांस तथा इंग्लैण्डके कुछ लेखकोंने यह मत प्रकट किया कि अर्थशास्त्रके नियमोंमें सरकारके हस्तक्षेपसे कोई लाभ नहीं। उन्होंने 'मर्केण्टिलिस्ट' लोगोंकी आलोचना करते हुए कहा कि सोना-चाँदी तथा सम्पत्ति (वेल्थ)का अर्थ एक ही नहीं है कोई भी देश नकद बचत या अनुकूल व्यापार-तुलाके न होते हुए भी समृद्ध हो सकता है। ये लोग 'मुक्त वाणिज्य-नीति' के पक्षपाती थे।

फ्रांसके प्रसिद्ध अर्थशास्त्री टर्गटने प्रचलित दोषोंके निवारणका प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ। अर्थशास्त्रका सबसे प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ संवत् १८३३ (सन् १७७६ ई०)में प्रकाशित हुआ। यह स्काटलैण्डके दार्शनिक आदम स्मिथका बनाया था। इसमें 'मर्केण्टिलिस्ट' लोगोंके सिद्धान्तोंकी तथा आयातकर, आर्थिक सहायता, निर्यात-प्रतिबन्धक इत्यादि कृत्रिम उपायोंकी तीव्र आलोचना की गयी थी। इसके बाद थोड़े ही दिनोंमें इस शास्त्रने विशेष उन्नति कर ली।

राष्ट्रकी सम्पत्ति कैसे बढ़ायी जा सकती है, वस्तुएँ किस तरह तैयार करनी और उन्हें किस प्रकार बेचना चाहिए, माँग और पूर्तिका निश्चय किन नियमोंके आधारपर होता है, मुद्रा और साखका क्या महत्त्व है इत्यादि अनेक प्रश्नोंका विशेष अध्ययन किया जाने लगा। अर्थशास्त्रके नियमोंसे अभिज्ञ न होते हुए भी यूरोपीय राज्य धीरे-धीरे व्यापार और उद्योगोंका नियन्त्रण करने लगे। फ्रांसीसी सरकारने तो कोल-बर्टकी प्रधानतामें प्रायः प्रत्येक वस्तुका नियन्त्रण प्रारम्भ कर दिया। फ्रांसकी तैयार की हुई वस्तुएँ अन्य देशोंमें शीघ्र बिक सकें, इस उद्देश्यसे किस तरहका कपड़ा बनाया जाय और किस तरहके रंगोंका प्रयोग किया जाय, इत्यादि बातोंके सम्बन्धमें निश्चित नियम बना दिये गये।

अनाज तथा खाद्य वस्तुओंके सम्बन्धमें राजाके मन्त्री कड़ी नजर रखते थे और वे इन्हें किसी एक व्यक्तिके पास अत्यधिक मात्रामें इकट्ठी न होने देते थे। कहा जाता था कि किसी देशकी समृद्धि तभी हो सकती है जब वह बाहरसे जितना माल मँगाता है उसकी अपेक्षा अधिक माल बाहर भेजे। ऐसा होनेसे उसे प्रतिवर्ष बाहरी देशोंसे कुछ न कुछ पावना रहेगा जो सोने या चाँदीके रूपमें चुकाया जायगा। इस सोने-चाँदकी आमदनीसे देशकी साम्पत्तिक अवस्था सुधरेगी। जो कहते थे कि जहाजोंकी रक्षा करने और उनके गमनागमनको प्रोत्साहित करनेमें, उपनिवेश बसा-नेमें तथा कारखानों द्वारा प्रस्तुत वस्तुओंका नियन्त्रण करनेमें राज्यकी शक्तिका प्रयोग होना चाहिये वे 'मर्केण्टलिस्ट' कहलाते थे।

संवत् १७५७ (सन् १७०० ई०)के लगभग फ्रांस तथा इंग्लैण्डके कुछ लेखकोंने यह मत प्रकट किया कि अर्थशास्त्रके नियमोंमें सरकारके हस्तक्षेपसे कोई लाभ नहीं। उन्होंने 'मर्केण्टिलिस्ट' लोगोंकी आलोचना करते हुए कहा कि सोना-चाँदी तथा सम्पत्ति (वेल्थ)का अर्थ एक ही नहीं है कोई भी देश नकद बचत या अनुकूल व्यापार-तुलाके न होते हुए भी समृद्ध हो सकता है। ये लोग 'मुक्त वाणिज्य-नीति' के पक्षपाती थे।

फ्रांसके प्रसिद्ध अर्थशास्त्री टर्गटने प्रचलित दोषोंके निवारणका प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ। अर्थशास्त्रका सबसे प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ संवत् १८३३ (सन् १७७६ ई०)में प्रकाशित हुआ। यह स्काटलैण्डके दार्शनिक आदम स्मिथ-का बनाया था। इसमें 'मर्केण्टिलिस्ट' लोगोंके सिद्धान्तोंकी तथा आयातकर, आर्थिक सहायता, निर्यात-प्रतिबन्धक इत्यादि कृत्रिम उपायोंकी तीव्र आलोचना की गयी थी। इसके बाद थोड़े ही दिनोंमें इस शास्त्रने विशेष उन्नति कर ली।